उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

MAGO - 104

स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।।

MAGO- 104

कृषि भूगोल

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

सन्देश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति श्रीमती आनंदीबेन पटेल जी की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। कोविड-19 संक्रमण काल ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जबकि कोविड-19 के संक्रमण काल में तथा कोविड-19 के बाद भी मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश, परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चित की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, बेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी है। वर्तमान की विषम परिस्थितियों के दृष्टिगत विश्वविद्यालय ने मुख्यमंत्री तथा प्रधानमंत्री राहत कोष में अंशदान देने का भी प्रयास किया है।

भौतिक अधिसंरचना की दृष्टि से विश्वविद्यालय निजी स्रोतों से ही निरन्तर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों, परामर्शदाताओं, क्षेत्रीय समन्वयकगण, अध्ययन केन्द्र समन्वयकगण तथा कर्मचारियों की एकता व कर्मठता ही वह ऊर्जा पिण्ड है जिसके बल पर विश्वविद्यालय जीवंत व प्रकाशवान है। मुझे विश्वास है कि इसी ऊर्जा पिण्ड की सहायता से यह विश्वविद्यालय देश, प्रदेश तथा समाज को अपनी सेवाओं व योगदान प्रदान कर और अधिक समृद्ध, सुदृढ़ और गौरवशाली बनाने में अपनी भूमिका अदा कर सकेगा। मैं समस्त विश्वविद्यालय परिवार के प्रति आदर व आभार व्यक्त करती हूँ।

प्रो. सीमा सिंह
कुलपति

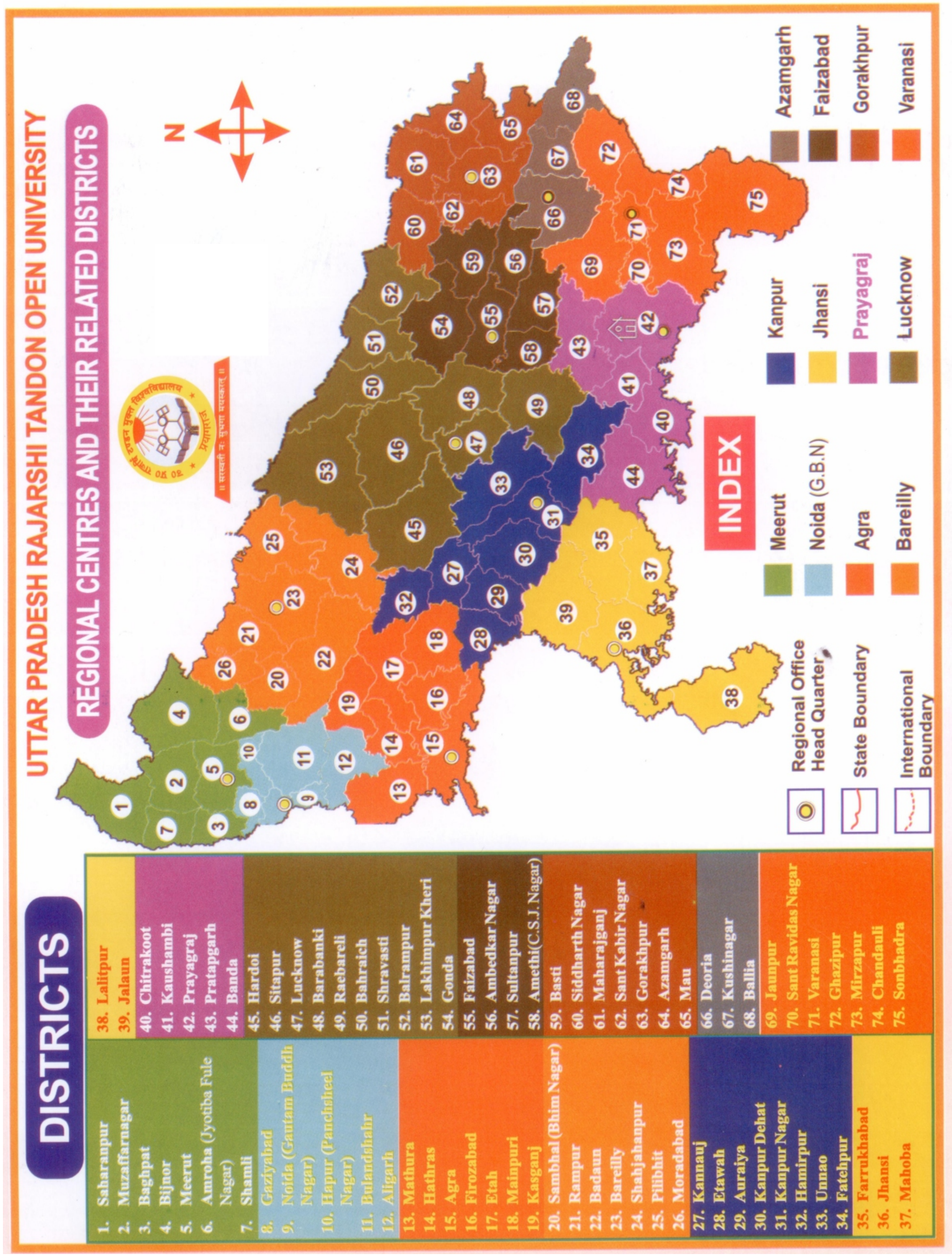

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

MAGO-104

कृषिभूगोल

उ0 प्र0 राजर्षिटण्डन
मुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAGO- 104 कृषिभूगोल

इकाई. 1 कृषिभूगोलपरिचय
इकाई. 2 कृषिउत्पत्ति एवंविकास
इकाई. 3 कृषिकोप्रभावितकरनेवालेप्राकृतिककारक
इकाई. 4 कृषिकोप्रभावितकरनेवालेमानवीय कारक
इकाई. 5 कृषिभूमिउपयोगसंकल्पना एवं तंत्र
इकाई. 6 कृषि के स्थानीयकरण के सिद्धांत
इकाई. 7 कृषि का प्रादेशिकरण एवं कृषिप्रदेश
इकाई 8 कृषिविकास के नवीनतमआयाम
इकाई. 9 कृषि की प्रमुख समस्याए एवंसमाधान
इकाई. 10 भूमिउपयोगनियोजनऔरसंतुलित कृषिविकास
इकाई. 11 पोषण कृषिविकास
इकाई. 12 कृषिजलवायुप्रादेशिकनियोजन
इकाई. 13 कृषिभूमिउपयोग के सर्वेक्षणपद्धतियां
इकाई. 14 विश्व के प्रमुख देशों के कृषिप्रदेशसंयुक्तराज्य अमेरिका, चीन, जापान
इकाई. 15 भारत के कृषिप्रदेश
इकाई. 16 कृषिविकास एवंभारत की पंचवर्षीय योजना
इकाई. 17 जनसंख्या एवं कृषि, खाद्य सुरक्षा
इकाई. 18 कृषि एवंजलवायुपरिवर्तन

उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

परामर्शसमिति

प्रो0 सीमा सिंह कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

विनय कुमार कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रमनिर्माणसमिति ; (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषाकुमारआचार्य, इतिहास, निदेशक, समाजविज्ञान, विद्याशाखा, उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 संजय कुमार सिंह सह –आचार्य, भूगोलसमाजविज्ञानविद्याशाखा उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 अभिषेक सिंह सहा0 आचार्यसमाजविज्ञानविद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 एन.के .राना आचार्य, भूगोलविभाग बी0एच0यू0, वाराणसी

प्रो0 ए0 आर0 सिद्दीकीआचार्य, भूगोलविभागइलाहाबादविश्वविलय प्रयागराज

प्रो0 अरूण कुमार सिंह आचार्य, भूगोल विभागबी0एच0यू0, वाराणसी

लेखक

डॉ0 संजय कुमार सिंह सह–आचार्य, भूगोल, समाजविज्ञानविद्याशाखा
उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0राजेशकुमारपाल सहा0.आचार्य, भूगोलविभागमॉभवानीपींजींकालेजसोगाई, चन्दौली

डॉ0 द्रेवेन्द्रनारायनपाण्डेयसहायकआचार्य, भूगोलनागरिकपीजीकालेजजंघईजौनपुर

डॉ0 पारुली सिंहसहायकआचार्य, भूगोलराष्टीय पीजीकालेजजंमुहाई, जौनपुर

सम्पादन

डॉ0 संजय कुमार सिंह सह –आचार्य, भूगोलसमाजविज्ञानविद्याशाखा
उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ0 संजय कुमार सिंह सह –आचार्य, भूगोलसमाजविज्ञानविद्याशाखा
उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

सह -समन्वयक

डॉ0 अभिषेक सिंह सहायकआचार्य, भूगोलसमाजविज्ञानविद्याशाखा
उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रितवर्ष– 2023

© उत्तरप्रदेशराजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. -

सर्वाधिकारसुरक्षित। इस सामग्री के किसीभीअंशकोउप्रराजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखितअनुमति के बिनाकिसीभी रूपमेंमिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथापुनः प्रस्तुतकरने की अनुमतिनहींहै।

नोट :पाठय साम्रग्रीमेंमुद्रितसाम्रगी के विचारों एवंआकड़ोंआदि के प्रतिविश्वविद्यालय, उत्तरदायीनहींहै।

प्रकाशनविनय कुमार, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षिटण्डनमुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2023।

MAGO- 104 कृषि भूगोल

इकाई 1– कृषि भूगोल का परिचय

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 कृषि (सामान्य परिचय)

1.4 कृषि भूगोल की प्राचीन विचारधारा

1.5 परिभाषा

1.6 प्रकृति

1.7 विषय क्षेत्र एवं उद्देश्य

1.8 कृषि भूगोल का विभिन्न विषयों के साथ संबंध

1.9 कृषि भूगोल के उपागम एवं अध्ययन विधियाँ

1.10 कृषि भूगोल– सिद्धांत एवं संकल्पनाएं

1.11 सारांश

1.12 शब्द सूची

1.13 स्व मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1.14 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तके

1.15 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना–

इस इकाई के माध्यम से आप कृषि भूगोल से संबंधित महत्वपूर्ण संकल्पनाएं, प्रकृत, विचारधाराएं, परिभाषाएं, कृषि भूगोल के विषय क्षेत्र, इसके विभिन्न विषयों के साथ संबंध, अध्ययन विधियाँ, विभिन्न प्रकार के सिद्धांतों, कृषि भूगोल के उपागम आदि का अध्ययन करेंगे तथा कृषि भूगोल से संबंधित एक विकसित विचार धारा को अपना सकेंगे। इस इकाई के माध्यम से आप यह भी देखेंगे कि आगे आने वाले विभिन्न प्रकार के अध्यायों मे इसकी भूमिका किस प्रकार से महत्वपूर्ण है। इसके अंतर्गत आप यह भी देखेंगे कि किस प्रकार विभिन्न मानव समाजों में कृषि करने कि कला को अपनी–अपनी पद्धतियाँ या रीति रिवाजों के अनुसार कार्य प्रणाली रही है ।

1.2 उद्देश्य–

यह इकाई कृषि भूगोल का एक महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करती है । इसके अध्ययन से आप–

- कृषि भूगोल के महत्व को समझ सकेंगे।
- कृषि भूगोल के संकल्पना के माध्यम से अपने उद्देश्य को एक नई दिशा प्रदान कर सकेंगे।
- कृषि भूगोल के विभिन्न प्रकार के सिद्धांतों के आधार पर अपनी एक नई विचार धारा को जन्म दे सकेंगे तथा शोध क्षेत्र में उसका प्रयोग कर सकेंगे ।
- कृषि के प्रति अपने कर्तव्य को समझ सकेंगे ।

1.3 कृषि (सामान्य परिचय)

हिन्दी के कृषि शब्द कि उत्पत्ति संस्कृत के कृष् धातु से हुई है, जिसका तात्पर्य 'जोतना' या 'खीचना' होता है। इसके अंग्रेजी Agriculture शब्द की रचना लैटिन भाषा के दो शब्दों Agre अर्थात land या field तथा culturaअर्थात thecareofया cultivation से मिलकर हुई है जिसका अर्थ 'भूमि को जोतकर फसल पैदा करना'। इस प्रकार कृषि एक मानव समूह या मानव समुदाय द्वारा मिट्टियों पर की जाने वाली कला या वह कार्य है जिससे फसले उत्पन्न होती हैं। दूसरे शब्दों में ये कहा जा सकता है कि मिट्टियों से फसले पैदा करने की कला को कृषि कहा जाता है ।

आज से करीब 10000 वर्ष पूर्व जब प्रागैतिहासिक मानव ने नव कल्प में पहली बार कुछ पौधों व पशुओं को अपनाया और उन्हे अपने जीवन रक्षक के रूप में स्वीकार्य किया। इस प्रकार प्रारम्भिक कृषि से लेकर आधुनिक कृषि व्यवस्था कई सामाजिक संस्कृतियों से गुजर कर वर्तमान स्वरूप में आई है। आज मानव इन्ही पूर्व अर्जित गुणों के आधार पर जों पीढ़ी दर पीढ़ी वंशानुक्रम में अर्जित हुए हैं, कृषि कार्यों को अपने अपने समाज में करता आ रहा है। इसी लिए विभिन्न समाजों में कृषि व्यवस्था भिन्न रूप में पाई जाती है तथा इसके करने के तौर तरीके भी भिन्न मिलते हैं।

चौंबर शब्द कोश (1954) में वॉटसन ने कृषि शब्द से आशय 'मृदा संस्कृति' से लगाया है जबकि **जिम्मरमैन (1951)** के अनुसार कृषि के अंतर्गत भूमि से जुड़े हुए सभी मानवीय कार्य– खेत निर्माण, जुताई, बुआई, फसल उगाना, सिंचाई करना, पशुपालन मत्स्य तथा अन्य जीवों का पालन करना ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कृषि के अंतर्गत समाहित क्रियाओं के विषय में वैज्ञानिक समुदाय एक मत नहीं रखते हैं।

1.4 कृषि भूगोल की प्राचीन विचारधारा–

मानव सभ्यता व संस्कृति के विकास के साथ–साथ कृषि कार्य भी उतना ही जटिल हो गया है जितना स्वयं मानव एवं मानव समाज। इसलिए समय–समय पर इसके अध्ययन के आयाम भी बदलते रहे हैं। लेकिन कार्य–प्रणाली वही है जो मानव के साथ जन्मी थी।

कृषि भूगोल प्राचीन विचारधारा का नवीन व आधुनिक विषय है, जिसकी प्राचीन कार्य–प्रणाली आधुनिक व नवीन तकनीकी–ज्ञान के प्रसारण व विकास के आधार पर अध्ययन का विस्तृत आधार प्रस्तुत करती है। विकसित, अर्धविकसित एवं अविकसित देशों में कृषि भूगोल के विकास की सीमाएं भी उसी आधार पर भिन्न–भिन्न मिलती है जिसके आधार पर इन देशों में तकनीकी ज्ञान का विकास व प्रसारण पाया जाता है। इस तरह क्षेत्रीय विभिन्नताएं, इसकी प्राचीन व नवीन विचारधाराओं की ओर भी अधिक पुष्टि करती है कि कृषि विभिन्न समाजों में भिन्नता के साथ की जाती रही है। भौगोलिक पर्यावरण की दशाएं कृषि के विभिन्न प्रकारों व प्रयुक्त पद्धतियों का स्पष्ट उल्लेख प्रस्तुत करती हैं जों इसकी मूल विचारधाराओं को आदि मानव से आधुनिक मानव क्रियाकलाप के साथ संबंधों को बताते हैं।

समय की सीमाओं वह उपयुक्त अध्ययन के माध्यम की अपर्याप्तताओं ने प्रारंभिक भूगोलवेत्ताओं को कृषि भूगोल के अध्ययन को प्रमुख उद्देश्य की ओर ही प्रेरित किया जो "कृषि के स्थानीय विभिन्नताओं" की विचारधाराओं से संबंधित था। इसकी प्रथम विचारधारा का उल्लेख 1964 में रीड्स ने इस प्रकार से प्रस्तुत किया–"कृषि भूगोल इसके विस्तृत रूप से कृषि में स्थानीय विभिन्नताओं का विवरण का उल्लेख मात्र है (" Agricultural geography in its broadest sense seeks to describe and explain a real differentiation in agriculture.")। बर्नहार्ड (1915) ने इसके पूर्व जबकि कृषि भूगोल की विचारधारा प्रस्तुत करते हुए यह माना कि कृषि भूगोल कृषि में स्थानीय विभिन्नताओं को उनके कारणों सहित प्रकाश में लाने का प्रयास है। इसी प्रकार की विचारधाराएं हिलमैन (1911) तथा ऑट्राइमबा (1964) ने भी व्यक्त किया है कि जिसमें क्षेत्र को विशेष महत्व दिया है, जो किसी राष्ट्र या देश का हो सकता है। आगे चलकर यही विचारधाराएं आर्थिक भूगोल के साथ समन्वित कर ली गई। क्योंकि कृषि क्रियाएं भी आर्थिक क्रियाओं का एक भाग है जिनके वितरण का विश्लेषण करना प्रमुख उद्देश्य है। लेकिन कृषि भूगोल इन सबसे अलग एवं विस्तृत दायरे में फैला होने के कारण अपने आप में एक विज्ञान बना रहा। यही इसकी मूल विशेषता है। यह बात इसकी परिभाषाओं से और भी अधिक स्पष्ट होती है जो आगे दी गई हैं।

1.5 परिभाषाएं–

विभिन्न विद्वानों व भूगोलवेत्ताओ ने कृषि के शाब्दिक अर्थ के साथ इसकी परिभाषा देने की कोशिश की है। कुछ परिभाषाएं निम्न है–

कृषि की साधारण शब्दों में परिभाषा– फसलों या मिट्टियों की जोत की कला को कृषि कहते हैं।

"Art of cultivation of soil or crops is called agriculture".

Whittlesey ने 87 वर्ष पूर्व 1936 मे इसकी परिभाषा देते हुए बताया कि "पौधों व पशुओं से उत्पादित वस्तुओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया मानव प्रयास या श्रम कृषि कहलाता है"।

"The use of human effort with the object of acquiring products of plant and animal origin is called agricultural geography."

सिमोन्स (1968) ने माना है कि " पशुपालन की तरह मानव द्वारा कृषि पालन को कृषि कहते है"।

"It is man's husbandry of land like animal husbandry."

चौहान (1968) के शब्दों में कृषि, "मानव प्रयास द्वारा पौधों व पशुओं की प्राकृतिक जैविकीय प्रक्रियाओं का विकास कर इनसे उत्पादित वस्तुएं, जैसे– शाक–सब्जी, फल, दूध आदि से मानव आवश्यकता की पूर्ति की जा सके कृषि कहलाती है"।

"It denotesthe human effort in making use and improving the natural genetics process of plant and animal life, so that this process may produce vegetables and animal products for human needs."

ग्रिग (1969) के अनुसार, "फसले पैदा करने के उद्देश्य से मिट्टियों को खोदने का कार्य कषि कहलाता है"।

"The practice of cultivation of soil in order to produce crops is called agriculture."

ग्रेगर (1970) के अनुसार " यह व्यवसाय के साथ साथ रहने का तरीका है"।

"It is a way of living as well as an occupation."

सायमन ने "कृषि भूगोल को मानव द्वारा भूमि कि किसानी का भूगोल माना है"।

"Agricultural geography………. as the geography of man's husbandry of land."

जिम्मरमैन (1951) ने कृषि की परिभाषा के अन्तर्गत फसलोत्पादन, सिंचन, मत्स्य पालन वृक्षारोपण, पशुपालन, तथा अन्य जलीय जीवपालन के अनेक कार्यों को शामिल किया है जिसके कारण अत्यन्त व्यापक होने के कारण यह परिभाषा कृषि विशेषज्ञों द्वारा सामान्य रुप से स्वीकार्य नहीं की जाती। कृषि मनुष्य के उन प्राथमिक उत्पादकों को कहते हैं जिसके परिणमस्वरुप वह भूमि पर बस कर उसके उपयोग का प्रयास करता है तथा यथासम्भव वनस्पतियों एवं पशुओं के प्राकृतिक प्रजनन एवं वृद्धि की प्रक्रिया को तीव्र एवं विकसित बनाता है। इन सभी कार्यों का उद्देश्य मानव के लिए वांछित या आवश्यक वानस्पतिक एवं पशु उपज प्राप्त करना होता है। कृषि में उन सभी पद्धतियों को शामिल किया जाता है जिनका इस्तेमाल कृषक कृषि के विभिन्न तत्वों के समान तथा अनुकूलतम् उपयोग में करता है।

ब्रुकफील्ड (1962) के अनुसार कृषि भूगोल कृषि क्रिया–कलापों का भूगोल है। जिसमें फसल से संबन्धित अध्ययन के साथ ही साथ कृषि से सम्बन्धित कई पक्षों की क्षेत्रीय विभिन्नता का विश्लेषण किया जाता है। कृषि विशेषज्ञों के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य

कृषि सम्बन्धित तत्वों एवं पशुओं का वितरण तथा उनसे सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण करना रहा है। मानव सभ्यता एव संस्कृति के परिवर्तन के साथ–साथ कृषि कार्य भी परिवर्तिन होकर जटिल हो गया जितना स्वयं मानवीय समाज। जिसके परिणामस्वरुप इसके अध्ययन के विषय भी परिवर्तित होते रहे हैं।

कृषि शब्द को परिभाषित करना जितना ही अधिक जरूरी है उतना ही कृषि भूगोल को परिभाषित करना भी है। कृषि भूगोल, भूगोल की एक प्रमुख शाखा है। **लिसले** (1970) ने कृषि भूगोल को आर्थिक भूगोल का अभिन्न अंग बताते हुए कृषि भूगोल को भूमि पर किए गये मानवीय कृषि कार्यों का विवेचन माना है (Agriculture Geography is the geography of man*s husbandry of the land) ।

हिट्लेसी (1936) ने कृषि की परिभाषित करते हुए बताया कि पशुओं व पौधों से उत्पादित पदार्थें को मानव श्रम से प्राप्त करने के कार्यों को कृषि कार्य कहा जाता है। (Use of human effort with the object of requiring products of plant or animal origin).

हाल में ही पोलैंड के प्रसिद्ध कृषि भूगोलविद प्रो० कॉस्टरोविकी की अध्यक्षता में गठित आयोग ने कृषि–भूगोल के अध्ययन एवं विषयवस्तु को एक नया मोड दिया है । परिणाम स्वरूप इसमे सामाजिक सरंचना का कृषि पर प्रभाव, उत्पादन क्षमता, कृषि में व्यावसायिक अभिविन्यास आदि तथ्यों को सम्मिलित किया है।

1.6 प्रकृति–

कृषि भूगोल मानव भूगोल के अंतर्गत आने वाले आर्थिक भूगोल की एक महत्वपूर्ण उपशाखा है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक प्रकार का कार्य करता है। कृषि में फसलोत्पादन तथा पशुपालन आदि कार्यों का अध्ययन किया जाता है, जबकि भौतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के क्षेत्रीय प्रतिरूपों, विषमताओं तथा अंतरसंबंधों का अध्ययन भूगोल का उद्देश्य है अर्थात कृषि भूगोल में कृषि संबंधी कार्यों (फसलोत्पादन, पशुपालन आदि) का भौतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के संदर्भ में विश्लेषण करते हुए उनके स्थानिक प्रतिरूपों के अध्ययन पर बल दिया जाता है।

बर्नहार्ड महोदय (1915) ने "कृषि भूगोल को कृषि विज्ञान तथा भूगोल दोनों माना है क्योंकि इसमें विषय वस्तु कृषि विज्ञान कि है किन्तु अध्ययन विधि संबंध भूगोल से है"।

इन्होंने आर्थिक कार्यों के प्रादेशिक विभिन्नता के कारणों का विश्लेषण करने में भूगोल सक्षम है ना कि अर्थशास्त्र। इनकी विचार धारा हेटनर द्वारा प्रस्तुत तीन महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं पर आधारित है जिसमें इन्होंने कृषि विज्ञान की व्यवस्था को निम्न प्रकार से प्रस्तुत करके कृषि भूगोल का स्थान निर्धारित किया है।

1– भौगोलिक विज्ञान– इसमें कृषि क्षेत्र तथा उत्पादन के वितरण प्रतिरूप का अध्ययन क्षेत्रीय तथा समय दोनों संदर्भों में किया जाता है (कृषि–भूगोल)।

2–ऐतिहासिक विज्ञान– इसमें कृषि की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं एवं अवस्थाओं का अध्ययन काल खंड अथवा समय के संदर्भ में किया जाता है (कृषि का इतिहास)।

3– व्यवस्थित विज्ञान– इसके अंतर्गत समानता– असमानता, एकरूपता– अनेकता, साहचर्य– विशाखन आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत –

क–कृषि प्रौद्योगिकी–

- पशुपालन
- पौधों का उत्पादन
- संबंद्ध कृषि तकनीकी

ख–कृषि अर्थशास्त्र

इस प्रकार आज कृषि–भूगोल न केवक एक सुव्यवस्थित विज्ञान के रूप में विकसित होकर एक विस्तृत विषयवस्तु का अध्ययन करता है वरन अधिक गुणात्मक, विश्लेषणात्मक , संश्लेषणात्मक, तथा गत्यात्मक अध्ययन की ओर प्रेरित करता है।

1.7 विषय क्षेत्र एवं उद्देश्य–

कृषि मानव का एक अति प्राचीनतम कार्य है परन्तु इनकी प्रणालियों तथा विधियों में समय समय पर परिवर्तन होते रहें हैं तथा अत्यधिक विकसित हूं अर्थात मानव के सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ कृषि की मान्यताओं, विचारधाराओं, संकल्पनाओं और सिद्धांतों में समयानुसार परिवर्तन होने के कारण कृषि–भूगोल की संकल्पना भी प्रभावित हुई है।

कृषि–भूगोल के विषय क्षेत्र के अंतर्गत कृषि का उद्‌भव, विकास एवं प्रसार, फसलों का वितरण प्रतिरूप, फसल एवं पशुपालन साहचर्य, फसलों का क्षेत्रीय विश्लेषण (समानताएं एवं असामानताएं), कृषि पदधित विवेचन, भौतिक–सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव एवं अंर्तप्रभाव का विवेचन, कृषि उत्पादकता, सक्षमता, कृषि गहनता का निर्धारण, शस्य–साहचर्य प्रदेश, कृषि प्रदेश, कृषि संबंधी सिद्धांत, कृषि से संबंधित समस्याएं एवं उनका निराकरण, कृषि विकास हेतु दूरगामी योजनाओं का निर्माण तथा प्रादेशिक विकास हेतु कृषि नियोजन पर बाल देना कृषि–भूगोल का मूल उदेश्य एवं विषय वस्तु बन गया है। अतः कृषि–भूगोल का विषय क्षेत्र अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक पाया जाता है।

प्रो० जसबीर सिंह एवं ढिल्लों (1984) ने कृषि–भूगोल के निम्न उदेश्य बताएं हैं–

1. पृथ्वी के धरा पर विभिन्न प्रकार की कृषि पद्धतियों के वितरण तथा स्थानिक परिप्रेक्ष्य में उनके कार्यों कि वर्णन करना,
2. कृषि पद्धति के चलन एवं उसमे होने वाले बदलावों का विश्लेषण करना,
3. कृषि उत्पादकता के दृष्टि से कमजोर क्षेत्रों का आंकलन लगाना,
4. विभिन्न क्षेत्र के बीच विभिन्नता के स्तर का आंकलन करना,
5. कृषि में होने वाले बदलाव की दिशा एवं मात्रा की पहचान करना।

कृषि भूगोल के उद्देश्य को बताते हुए बर्नहार्ड कृषि भूगोल में इसके समकक्ष अन्य अध्ययन की पद्धतियाँ का समावेश आवश्यक समझते हैं। इन्होंने बताया कि कृषि विज्ञान में कृषि का अध्ययननिम्न व्यवस्थित धारणाओं के अन्तर्गत किया जा सकता हैरू

(1) व्यवस्थित धारणा

क. कृषि तकनीकी क्षेत्र

- पशु उत्पादन क्षेत्र
- पौध उत्पादन क्षेत्र
- कृषि आर्थिकी क्षेत्र
- अन्य तकनीकी कृषि क्षेत्र

(2) ऐतिहासिक धारणा

- कृषि विकास का इतिहास

(3) भौगोलिक धारणा

उपरोक्त व्यवस्थाओं के अन्तर्गत कृषि भूगोल का क्षेत्र तीनों ही समूहों में विभक्त है। प्रथम व्यवस्था के अन्तर्गत पौधों व पशुओं से उत्पादित वस्तुओं व इनके उत्पादन की जैविकीय प्रक्रियाओं का अध्ययन कृषि विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इसमें इनके तकनीकी ज्ञान को विशेष महत्व दिया जाता है। दूसरे चरण में कृषि के विभिन्न चरणों व अवस्थाओं के विकास का इतिहास सम्मिलित किया जाता है। जबकि तीसरे चरण में इन सभी दशाओं का भौगोलिक पर्यावरण (दशाओं) के सन्दर्भ में इनके सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इसका सम्बन्ध सांख्यिकीय गणनाओं द्वारा निश्चित कर इनका आर्थिक महत्व आँका जाता है। इस प्रकार कृषि भूगोल एक सुव्यवस्थित विज्ञान के रूप में विकसित होकर विस्तृत अध्ययन का क्षेत्र हो प्रस्तुत नहीं करता बल्कि अधिक गुणात्मक, विश्लेषणात्मक एवं गत्यात्मक अध्ययन की ओर प्रेरित करता है।

1.8 कृषि भूगोल का अन्य विषयों के साथ संबंध–

कृषि–भूगोल की नेचर से स्पष्ट होता है कि यह दो विषयों अर्थात कृषि एवं भूगोल से जुड़ा हुआ है साथ ही साथ इसके अध्ययन में अर्थशास्त्र का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यही कारण रहा है कि कृषि– भूगोल का भूगोल, कृषि विज्ञान एवं अर्थशास्त्र से नजदीक का संबंध माना जाता है।

बर्नहार्ड ने कृषि भूगोल को कृषि विज्ञान और भूगोल दोनों मानते हुए यह बताया है कि इसके अध्ययन का विषय कृषि विज्ञान का है एवं उपागम अर्थात विधि तंत्र भूगोल का है।

ओटाम्बा (1964) ने कृषि भूगोल और अर्थशास्त्र के मध्य उतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध बताया है जितना कि कृषि भूगोल और भूगोल की अन्य शाखाओं से है। इसलिए इन विषयों की स्पष्ट सीमा का निर्धारण नहीं है। कृषि भूगोल अन्य उपविषयों के मध्यस्थ की भूमिका अदा करता है। इस प्रकार यह एक सहसम्बन्धात्मक विज्ञान है। कोपाक (1968) के अनुसार कृषि एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसका अध्ययन अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों एवं संकल्पनाओं के आधार पर किया जाता है। अतः कृषि भूगोल, आर्थिक भूगोल का एक अभिन्न अंग है।

कृषि विज्ञान के अंतर्गत फसल विज्ञान, मृदा विज्ञान ,पौध संरक्षण, पौध उद्यान, पशु विज्ञान तथा कृषि इंजीनियरिंग आदि का अध्ययन करते हैं, जिससे फसल एवं पशु उत्पादन में वृद्धि होती है तथा मृदा की उर्वरता भी फसल उत्पादन हेतु संचित रहती है।

सारणी 1.1 कृषि भूगोल भूगोल का अन्य विषयों के संबंध

प्राकृतिक विज्ञान	भौतिक प्रक्रियाएं	सामाजिक विज्ञान	सांस्कृतिक प्रक्रियाएं
भू आकृतिक विज्ञान	उच्चावच	समाजशास्त्र	आर्थिक क्रियाएं
जलवायु विज्ञान	मौसम एवं जलवायु	अर्थशास्त्र	प्रशासनिक नीति
वनस्पति विज्ञान	वनस्पति	राजनीतिशास्त्र	कृषि उद्योग
मृदा विज्ञान	मिट्टियाँ	परिवहन भूगोल	मानव संगठन
रसायन शास्त्र,खाद्य	उर्वरक एवं कीटनाशक	औद्योगिक भूगोल	जनसंख्या

कृषि भूगोल को कुछ विशेषज्ञों ने कृषि विज्ञानों तथा आर्थिक भूगोल से भी अलग एक स्वतन्त्र शाखा के रूप में को स्थापित किया। उनके अनुसार कृषि भूगोलवेत्ता तथा कृषि वैज्ञानिकों के अध्ययन का लक्ष्य भिन्न–भिन्न हैं। कृषि भूगोल के अध्ययन का प्रमुख्य विषय कृषि पदाथों की प्रवृत्ति तथा उनको प्राप्त करने की अनुकूल दशाओं हैं। इसलिए फायचर (1949) ने इसे "एग्रेरियन ज्योग्राफी" कहा है। बेबल (1933) ने प्रादेशिक विभिन्नताओं और विशेषताओं को कृषि भूगोल के विषयवस्तु के संदर्भ में निम्नलिखित तीन शाखाओं के अन्तर्गत रखा है– पारिस्थितिकीय कृषि भूगोल, सांख्यिकीय कृषि भूगोल तथा भौतिकी कृषि भूगोल ।

स्पष्ट है कि कृषि भूगोल का सम्बन्ध अन्य सम्बन्धित विषयों से अत्यन्त घनिष्ट का है जो इसके अध्ययन की विषय सामग्री उपलब्ध कराते हैं। वर्तमान समय में कृषि पदाथों की बढ़ती मांग के कारण, कृषि, भूगोल का अध्ययन आवश्यक होता जा रहा है।

1.9 कृषि भूगोल के उपागम एवं अध्ययन विधियाँ–

कृषि भूगोल में आर्थिक भूगोल की तरह चिशोल्म (1989) महोदय ने तीन उपागम का उल्लेख किया है, यथा–

1. **सामान्य विषय वस्तु उपागम–** इस उपागम में कृषि से संबंधित किसी भी वस्तु एवं तत्व विशेष के वितरण संबंधी सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक तत्व का अलग–अलग अध्ययन होता है साथ ही साथ उसके विश्व वितरण प्रतिरूप का भी विश्लेषण किया जाता है।
2. **प्रादेशिक उपागम–** प्रादेशिक उपागम में सर्वप्रथम विश्व को कई कृषि प्रदेशों में बांटा जाता है उसके बाद किसी एक प्रदेश में सभी फसलों के वितरण तथा उनके आपसी संबंधों का विश्लेषण किया जाता है।
3. **सैद्धांतिक उपागम–** इस उपागम में कृषि संबंधी विशेषताओं का अध्ययन व्यवहारिक सिद्धांतों के संदर्भ में किया जाता है जिसका मुख्य उद्देश्य सिद्धांतों एवं परिकल्पनाओं को बनाना और परीक्षण करना है।

हाल फिलहाल के वर्षों में उपर्युक्त तीन पारंपरिक उपागमों के अतिरिक्त कृषि भूगोल के अध्ययन में चार नए उपागमों, यथा– व्यवहारिक उपागम, तंत्र विश्लेषण उपागम, कल्याण परक उपागम एवं पारिस्थितिकी उपागम को भी सम्मिलित किया जाने लगा है जिससे विषय का अध्ययन तंत्र प्रभावित हो रहा है।

वर्तमान समय में सरकार की दृष्टि उन कृषि उत्पादों पर टिकी है जिन्हें उत्पादन का सर्वाधिक लाभ नहीं प्राप्त हो रहा है बल्कि यह लाभ समाज के बिचौलिए ले रहे हैं। इस प्रकार उपर्युक्त उपागम के आधार पर भूगोल का अध्ययन 3 चरणों में संपन्न होता है जो निम्नलिखित है।

1. **स्थिति एवं वितरण प्रतिरूप–** क्षेत्रीय असमानता एवं समानता के लिए स्थिति एवं वितरण का ज्ञान अत्यंत ही महत्वपूर्ण है, इसके अध्ययन से किसी भी फसल की दशा एवं उसके वितरण प्रतिरूप का समाधान होता है।
2. **विशेषताएं एवं विशिष्टताएं–** यदि हमें किसी फसल की जानकारी प्राप्त करना है तो उस फसल के वितरण एवं स्थिति के बाद उसकी लक्षणों की जानकारी आवश्यक हो जाती है, जैसे–

- प्रदेश में किस प्रकार का फसल बोया जाते हैं?
- फसल कितने प्रतिशत क्षेत्र पर बोया जाता है?
- क्या फसल उस क्षेत्र विशेष के लिए प्रमुख फसल है?
- फसल का प्रति हेक्टेयर लागत कितना है?
- फसल किस विधि के माध्यम से उगाई जाती है?
- फसल उत्पादकों की आर्थिक स्थिति कैसी है?
- क्षेत्र विशेष में फसल के उत्पादन का क्या महत्व है?
- फसल का अन्य प्रदेशों की तुलना में प्रति हेक्टेयर लाभ कितना है?
- फसल का बाजार में उपभोग किस प्रकार से हो रहा है?

आदि का अध्ययन हेतु फसलों के विशेषताओं एवं विशिष्टताओं का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

3. **कृषि उपजों तथा कार्यों का प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों से सहसंबंध–** इसके अंतर्गत कृषि उपजों तथा कार्यों का प्राकृतिक एवं मानवीय तत्वों से संबंध ज्ञात किया जाता है, जोकि अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष होता है।

इस अंतर्संबंध तथा अन्योन्यक्रिया को निम्न प्रकार से व्यक्त करते हैं–

- क्षेत्रीय अंतर्संबंध।
- कार्यात्मक संबंध।
- कार्य कारण संबंध।

जैसा कि पहले अवगत काराया जा चुका है कि कृषि–भूगोल एक व्यवस्थित विज्ञान है। इसलिए इसके अपने नियम–कायदे है। कृषि–भूगोल की विभिन्न समस्याओं एवं विषय के अध्ययन करने के कई उपागम जिसमें निगमनात्मक उपागम एवं आगमनात्मक उपागम विशेष महत्वपूर्ण है।

1.10 कृषि भूगोल– सिद्धांत एवं संकल्पनाएं–

हर एक विषय का अपना कुछ आधारभूत सिद्धांत एवं संकल्पना होती हैं जिनके आधार पर विषय की समस्याओं एवं उद्देश्यों की समझ विकसित होती हैं। सिद्धांत और संकल्पना किसी भी विषय की दशा की दिशा को निर्धारित करती हैं। किसी भी विषय की परिभाषा सिद्धांत और संकल्पनाएं एक दूसरे से अंतर–संबंधित होती हैं। संकल्पना विषय वस्तु की दूरी है, जबकि सिद्धांत संकल्पना की धुरी है।

1.10.1 सिद्धांत– मार्गन तथा मुंटन (1974) ने आर्थिक भूगोल के ही सिद्धांत एवं संकल्पना कृषि–भूगोल में भी प्रयोग किए जाता हैं, इन्होंने अपनी पुस्तक कृषि–भूगोल में मौलिक सिद्धांतों को 4 वर्गों में रखा है–

1– वस्तुओं एवं पूंजी का विनिमय सिद्धांत

2– संसाधनों के उपयोग संबंधी सिद्धांत,

3– तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत, तथा

4–संसाधनों के अनुकूलित उपयोग संबंधित सिद्धांत।

सामान्य रुप से कृषि–भूगोल के मौलिक सिद्धांतों को 3 भागो में रखा जा सकता है, जो निम्न है–

1–कृषि के किया–कलाप संबंधों का सिद्धांत

2–कृषि और पारिस्थितिकी तंत्र सामंजस सिद्धांत, तथा

3–क्षेत्रीय असमानता एवं संगठन का सिद्धांत।

कृषि भूगोल से संबंधित उपर्युक्त सिद्धांत आपस में एक दूसरे में समाहित हैं।

1.10.2 मौलिक संकल्पनाएं–संकल्पना भी किसी विषय के विषय–वस्तु की प्रगति की एक महत्वपूर्ण सूचक होती है। इस के सहयोग से विषय–वस्तु को सरलता से समझा जा सकता है, सरल ढंग से व्याख्या किया जा सकता है एवं विषय के विकास से संबंधित नवीन विचारधाराओं को आत्मसात किया जा सकता है। इसीलिए इसे किसी भी विषय के विषय वस्तु की धुरी कहते हैं। सभी सामाजिक विज्ञानों की तरह ही कृषि–भूगोल की संकल्पना भी विषय वस्तु के बृहद रूप को प्रस्तुत करती हैं। कृषि भूगोल के सिद्धांतों पर आधारित महत्वपूर्ण संकल्पना निम्नलिखित–

1– कृषि भूदृश्य संसाधन संरचना, प्रक्रिया और अवस्था का प्रतिफल है (Agricultural landscape is a function of resource structure, process and Stage.),

2– भूमि उपयोग की संकल्पना (Concept of land utilization.),

3– भूमि और भूमि संसाधन की संकल्पना (Concept of land and land resource.),

4– कृषि विकास एवं नियोजन संकल्पना (The concept of Agricultural Development and planning.)।

5–कृषि भूदृश्य की संकल्पना(Concept of agricultural landscape.),

इन उपयुक्त संकल्पनाओं के अतिरिक्त कृषि भूगोल में कृषि अवस्थिति, कृषि प्रादेशिक करण, क्षेत्रीय भिन्नता, क्षेत्रीय एवं अंतर क्षेत्रीय संतुलन, अन्योन्य क्रिया, कृषि विविधीकरण, कृषि पारिस्थितिकी तथा कृषि पोषणीयता आदि से संबंधित संकल्पना का उल्लेख किया जा सकता है।

1.11 सारांश–

अंतः इस इकाई के अध्ययन से आप कृषि–भूगोल की मूल प्रकृति एवं महत्वपूर्ण विचारधाराओं के बारे सीखा। आपने यह भी देखा की कृषि के मूल भूत सिद्धांतों एवं महत्वपूर्ण संकल्पनाओं को किस प्रकार से भविष्योन्मुखी लक्ष्य को निर्धारित करते हुए विभिन्न विद्वानों ने विकसित किया है। इस इकाई के अध्ययन से फसलों के उत्पादन के संदर्भ में आने वाली समस्याओं का हल ढूँढने में मदद मिलेगी।

अंत मे हम कह सकतें हैं कि कृषि–भूगोल एक सुव्यवस्थित विज्ञान के रूप में विकसित होकर विस्तृत अध्ययन का क्षेत्र ही प्रस्तुत नहीं करता बल्कि अधिक गुणात्मक, विश्लेष्णात्मक एवं गत्यात्मक अध्ययन की ओर प्रेरित करता है।

1.12 शब्द सूची–

Agricultural geography-कृषि भूगोल

Plant production- पौधा उत्पादन

Land utilization- भूमि उपयोग

Regional planning- प्रादेशिक नियोजन

Agronomy- शस्यविज्ञान

Rural landscape- ग्रामीण भू दृश्य

Primitive Agriculture- आदिम कृषि

Pre-historical period- प्रागैतिहासिक काल

1.13 स्वमूल्यांकन प्रश्न–

1–कृषि शब्द से आशय 'मृदा संस्कृति'से लगाया–

(अ) लेजली (ब) वाटसन

(स) सायमन्स (द) ब्रूकफील्ड

2—किसने "कृषि भूगोल को मानव द्वारा भूमि कि किसानी का भूगोल माना है"।—

(अ) रीडस (ब) वाटसन

(स) सायमन्स (द) ब्रुकफील्ड

3—किसने बताया कि "पौधों व पशुओं से उत्पादित वस्तुओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया मानव प्रयास या श्रम कृषि कहलाता है"।

(अ) रीडस (ब) व्हिटलसी

(स) वाटसन (द) ब्रुकफील्ड

4—किसने माना है कि "पशुपालन की तरह मानव द्वारा कृषि पालन को कृषि कहते है"।

(अ) रीडस (ब) व्हिटलसी

(स) वाटसन (द) सीमोनस

5—किसके अनुसार, "फसले पैदा करने के उद्देश्य से मिट्टियों को खोदने का कार्य कृषि कहलाता है"।

(अ) रीडस (ब) व्हिटलसी

(स) ग्रिग (द) सीमोनस

आदर्श उत्तर 1.(ब), 2.(स), 3.(ब), 4.(द), 5.(स)।

1.14 ंदर्भ एवं उपयोगी पुस्तके—

1—प्रोफेसर आर0 सी0 तिवारी एवं बी0 एन0 सिंह, कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।

2—डॉ अलका गौतम, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भंडार, प्रयागराज ।

3—Hettner, A. "Das wesenand die methoden der geographie." GeographischeZeitschrift, Vol. 2.

1.15 अभ्यास प्रश्न—

1— कृषि—भूगोल की प्रकृति को समझाए ।

2— कृषि—भूगोल के ऐतिहासिक विकास की व्याख्या करते हुए विभिन्न विद्वानों के विचार स्पष्ट कीजिए।

3— कृषि—भूगोल के विकास में योगदान देने वाले महत्वपूर्णसिद्धांतों एवं संकल्पनाओं की रूप रेखा को निर्धारित कीजिए ।

4— कृषि—भूगोल के उपागम व अध्ययन विधियों को स्पष्ट कीजिए।

5— कृषि—भूगोल के उद्देश्यों के बारे में बतलाईए ।

6– कृषि–भूगोल का अन्य विषयों के साथ संबंध स्थापित कीजिए ।

MAGO- 104 कृषि भूगोल

इकाई 2– कृषि उत्पत्ति एवं विकास

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 कृषि की उत्पत्ति (सामान्य सिद्धांत)

2.4 कृषि के उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांत

2.5 कृषि के विकास का कालखंड

2.5.1 प्राचीन काल एवं मूल कृषि केंद्र

2.5.2 मध्य काल एवं कृषि पद्धतियाँ

2.5.3 आधुनिक काल

2.5.4 अत्याधुनिक काल एवं कृषि तकनीक

2.6 भारत में कृषि का विकास

2.7 भारतीय कृषि में भूगोल का योगदान

2.8 कृषि तकनीकी व औजार

2.9 सारांश

2.10 शब्द सूची

2.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

2.12 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तके

2.13 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

कृषि– भूगोल की इस इकाई में आप कृषि के विकास का अध्ययन प्राचीन काल से वर्तमान के संदर्भ में करेंगे। साथ ही साथ कृषि की उत्पत्ति से संबंधित मूल सिद्धांतों का भी अध्ययन करेंगे। आप देखेंगे कि किस प्रकार भारत में कृषि का विकास फला–फूला है। इस इकाई के माध्यम सेभारतीय कृषि में भूगोल के योगदान को आप गहराई से समझेंगे। आप अध्ययन करेंगे की किस प्रकार भारत मे कृषि के क्षेत्र में अनेकों प्रकार के आधुनिक तकनीकियों व औजारों के माध्यम से कृषि उत्पादन व उत्पादकता में भारी वृद्धि हुई है। अर्थात इस इकाई के माध्यम से आप आज तक हुए कृषि के विकास की अवधारणाओं को चरणबद्ध तरीके से सीख सकेंगे।

.2.2.उद्देश्य

यह इकाई कृषि भूगोल की उत्पत्ति व विकास काएक महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करती है । इसके अध्ययन से आप–

- कृषि के विकास की एक रूप रेखा तैयार कर सकेंगे।

- कृषि में हुए विभिन्न समयों में महत्वपूर्ण बदलाओं को आसानी से समझ सकेंगे।

- प्राचीन काल में विद्यमान मुख्य कृषि केंद्रों के बारे में जान कर एक नई समझ विकसित कर सकेंगे।

- आधुनिक काल में हुए कृषि तकनीकियों के विकास के महत्वपूर्णता को समझ सकेंगे।

- भारतीय कृषि में भूगोल के योगदान को समझ सकेंगे ।

2.3 कृषि की उत्पत्ति (सामान्य सिद्धांत)–

कृषि सभ्यता का विकास आज का नहीं वरन् लगभग 50 (प्लीओसीन) लाख वर्ष पुराना है, जब मानव का आगमन इस धरा पर हुआ। प्रारंभ से ही मानव प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कृषि पर ही जीवन यापन कर रहा है हालांकि इस कृषि के रूप अलग अलग रहें हैं । कृषि के उत्पत्ति की इस विचार धारा ने वैज्ञानिकों के लिए शोध का एक महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत कर दिया। प्रारंभ में मानव का पौधों एवं वनस्पति से भोजन प्राप्त करने का प्रयास सीमित रहें, किंतु बाद में कुछ जानवरों, कीड़ों, मकोड़ों व चिड़ियों पर निर्भर रहने लगा। कुछ समय बीतने के पश्चात वह क्षेत्रों को जलाकर साफ करना एवं शिकार करना आदि कार्यो को अपनाया। समय बीतता गया आदिमानव जलाकर साफ किए गए क्षेत्रों पर विभिन्न फसलों का चयन करके खेती करने लगा जिसे प्रारंभिक खेती की शुरुआत कहीं जा सकती है। यह समय आज से कई हजार वर्ष पूर्व की थी ।

मानव के लिए पौधों तथा पशुओं को पालतू बनाना कोई 8000 वर्ष ईसा पूर्व प्रारंभ किया होगा, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। जबकि पशु चारण व खेती करने की प्रारंभिक दशाओं के बारे में अनेक वैज्ञानिकों में सैद्धांतिक मतभेद रहे हैं, एक सिद्धांत के मानने वालों का कहना है कि प्रारंभ में खेती व पशुपालन एक मिली–जुली अवस्था में उन उपजाऊ मैदानों में विकसित हुआ जहां अर्थव्यवस्था की भिन्नता के कारण कुछ लोग यूरेशिया के स्टेपी क्षेत्रों में जा बसे तथा वहां पूर्ण रूप से पशु चारण के साथ–साथ घुमक्कड़ जीवन यापन करने लगे। वहीं पर दूसरे सिद्धांत वालों की मान्यता है कि दो अलग–अलग वातावरण में विकसित होकर बाद में उपजाऊ क्षेत्रों में एक दूसरे से मिल गए और इस प्रकार मिली–जुली कृषि का निर्माण हुआ। किन्तु इस प्रकार के विवाद कमी होते हैं क्योंकि कुछ खोजों से यह तथ्य सामने आया है कि प्रारंभिक खेती पहाड़ों के ढालू और उन देशों के क्षेत्रों में प्रारंभ हुई जहां मिट्टियाँ जोतने योग्य थी।

इस प्रकार मानव के सांस्कृतिक विकास क्रम को कृषि के संदर्भ में निम्न चरणों में बतलाया गया है–

प्रथम चरण में जंगलों से प्राप्त कंदमूल, फल–फूल एवं शिकार से प्राप्त जीवों और मछलियों के माँस ही जीवन का आधार थीं।

दूसरे चरण में मानव के पास रहने के लिए घर तथा पास ही जीवन निर्वहन हेतु भोजन के पश्चात बची सामग्री यथा– बीज, डंठल, जड़ ,आदि को कचरे के ढेर पर फेक देते थे, तत्पश्चात वही सामग्री अनुकूल दशाओं में अंकुरित होकर पौधो के रूप में पुष्पित एंव फलवित हुए। इस प्रकार पौधों के उगाने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।

तीसरें चरण में मानवों द्वारा कुछ पशुओं को पकड़ कर पाला गया। इन पशुओं में कुछ का पालन माँस के लिए व कुछ का शिकार करने में मदद करने के लिए होता था, जिसमें कुत्ता प्रथम पल जाने वाला पशु बना।

इस प्रकार मानव अपने विवेक से पौधों एवं पशुओं को पालतू बनाकर सामाजिक एवं आर्थिक विकास को नया आयाम देने में सफल हुआ।

2.4 कृषि के उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांत

यहाँ कुछ महत्व पूर्ण सिद्धांतों का वर्णन दिया गया है–

2.4.1 पर्यावरण परिवर्तन एवं कृषि उत्पत्ति–

कृषि और पर्यावरण का गहरा संबंध होता है यही कारण है कि समय– समय पर विद्वानों ने पर्यावरणीय प्रकृतिवाद से संबंधित अपने विचारों को प्रस्तुत करते रहें हैं जिसके अंतर्गत भौतिक तथ्यों यथा–जलवायु, वनस्पति, मृदा, उच्चावच् आदि के प्रभावी गुणों की चर्चा मानव की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्रियाओं पर पड़ने वाले प्रभावों तथा उनके निर्धारण के संदर्भ में की जाती है।

•**सांस्कृतिक इतिहासकार प्रो चाइल्ड (1936)** ने कृषि की उत्पत्ति हेतु पर्यावरण निश्चयवाद सिद्धांत को उत्तरदाई बताया है इन्होंने रफेल पम्पेली (1908) के मरुद्यान सिद्धांत के आधार पर कृषि की उत्पत्ति निकट पूर्व मरुद्यान से माना है, जिसका निर्माण हिमयुग के समाप्ति होने के बाद शुष्कता बढ़ने के कारण हुआ तथा जहाँ मानव, पादप एवं पशु प्रजातियों को एक साथ रहने और अन्योन्यक्रिया करने का अवसर मिला ।

चाइल्ड महोदय ने माना कि पौधों का प्रथम घरेलूकरण नील नदी घाटी क्षेत्र में हुआ जहां बाद में सिंचाई का भी विकास हुआ। इस क्षेत्र में आदिमानव के किसान बनने के बाद उनके लिए पशुओं का घरेलू करण आसान हो गया जिनका फसलों के डंठलों से भलीभांति पोषण किया जा सकता था।

• **रॉबर्ट ब्रैडबुड (1948)** ने जलवायु के उपरोक्त शुष्क परिवर्तन को अस्वीकार किया एवं पृथ्वी की उत्पत्ति उपजाऊ चंद्राकार क्षेत्र के टार तथा जगरोस पर्वतों के पहाड़ी ढलानों से माना है जहां पौधों के घरेलू करण हेतु अनुकूल दशाए और जैव विविधता उपलब्ध थी।

•**राइट तथा वटजर** ने जलवायु परिवर्तन तथा कृषि उत्पाद में घनिष्ठ संबंधी बताया है जबकि पार्किंग तथा डेली ने इस बात की आलोचना की है कि मानव इतिहास में ऐसे परिवर्तन अन्य स्थानों तथा अन्य समय में भी घटित हुए हैं लेकिन उन स्थानों को का पौध उत्पादन का जन्म स्थल नहीं माना गया है।

2.4.2 सांस्कृतिक उत्पति एवं कृषि उत्पति–

इस सिद्धांत के प्रतिपादक **कोल्डवेल (1977)** थे, इनका यह सिद्धांत 'सांस्कृतिक विकास सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है। यह इस मान्यता पर आधारित था कि कृषि, खाद्यन्वेषण की तुलना में अधिक उत्कृष्ट व्यवसाय है।इसीलिए सांस्कृतिक विकास के साथ सर्वाधिक श्रम साध्य आखेटक एवं घुमंतू जीवन से आराम देह कृषि व्यवसाय की तरफ अग्रसर हुआ। मानव द्वारा पौधो तथा पशुपालन ऐतिहासिक दृष्टि से साहसिक घटना रही, फलस्वरूप नए—नए पौधों एवं पशुओं को पालतू बनाने के प्रति एक लगन विकसित हुई तथा विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था का जन्म हुआ। वातावरण में परिवर्तन के साथ ही साथ सामाजिक व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन हुआ। पौधों तथा पशुओं का उनके उत्पत्ति स्थल से विश्व में अन्य क्षेत्रों में प्रसार हुआ। इस प्रकार इनकी विभिन्न प्रकार की जातियों एवं प्रजातियां को संरक्षण प्राप्त हुआ। मानव खानाबदोश की जिंदगी ना जीकर एक ही स्थान पर निवासित हो गया। खाद्यान फसले व अनेक प्रकार की सब्जियों तथा विभिन्न प्रकार के फलदार वृक्षों के रूप में पौधे मानव जीवन के अभिन्न अंग बनते गए एवं सांस्कृतिक विकास की यह प्रक्रिया आज भी जारी है।

2.4.3 जनसंख्या दबाव एवं कृषि उत्पति—

जब जनसंख्या की वृद्धि धीरे धीरे होने लगी तो खाद्य संसाधनों पर दबाव बढ़ने लगा फलस्वरूप मानव की प्रवृत्त कृषि के तरफ होने लगी। इस सिद्धांत के समर्थकों में कार्ल सावर (1952), बिनफोर्ड (1968), फ्लेनरी (1969), कोहेन (1977), सेप्ट (1988), स्मिथ (1998) आदि रहें हैं ।

•**स्मिथ तथा यंग** ने माना की पर्यावरण और सांस्कृतिक कारकों के कारण निकट पूर्व की जनसंख्या खाद्य संग्रह सीमा से अधिक बढ़ गयी।

•**कोहेन महोदय** ने पाया की कृषि क्रांति के समय वैश्विक जनसंख्या वृद्धि देखी गई जिससे लोग नई खाद्य उत्पादक तकनीकी कृषि की ओर झुके।

•**बिनफोर्ड एवं फ्लैनरी** ने भी माना कि जनसंख्या दबाव निकट पूर्व के भागों में अधिक रहा जहां पर शिकार और भोजन एकत्रित करने की संभावनाएं कम थी।

•**सावर** ने माना कि पौधों की पालतू बनाने की प्रक्रिया की शुरुआत विश्व के उन क्षेत्रों में हुई है जहां भोजन के पर्याप्त भंडार उपलब्ध थे । उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य को एक स्थान पर देर काल तक रहने, फसलों को उगाने एवं उनके पकने तक प्रतीक्षा करने का समय मिल पाया।

2.4.4 बेहतर खाद्यन्वेषण व कृषि उतप्ति—

ब्रूस विंटरहोल्डर एवं कैरोल गोलैंड (1995) ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया तथा माना कि आहार विस्तार से जनसंख्या वृद्धि को भी प्रोत्साहन मिलेगा। हाल ही में सेज महोदय ने प्लीस्टोसीन काल के बाद वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि को कृषि की उत्पत्ति हेतु उत्तरदाई बताया है।

2.4.5 सहविकास एवं व कृषि उत्पत्ति—

यह डार्विनवाद के नेचुरल सिलेक्शन की संकल्पना पर आधारित है इस सिद्धांत के अनुसार **डेविड रिंगटोन(1987)** ने कृषि की उत्पत्ति को मानव के सांस्कृतिक विकास का

अंग मानते हुए दो जातियों अर्थात मानव एवं पादपध्पशु के बीच इंटरेक्शन(अन्योन्यक्रिया) का प्रतिफल बताया है तथा इसे "सांस्कृतिक चयन वाद" का नाम दिया है।

2.5 कृषि के विकास का काल खंड–

कृषि की उत्पत्ति के बारे में भिन्न कालों के आधार पर कुछ तथ्य महत्वपूर्ण हैं। विभिन्न समय में कृषि की उत्पत्ति के साथ इसका विस्तार एवं विकास की एक निश्चित दिशा रही है। इन विकास की चरणों को तीन कालों में बाँटा जा सकता है।

2.5.1 प्राचीन काल एवं मूल कृषि केंद्र–

प्रारम्भ में, ग्रीक व रोमन साहित्य में कृषि का उल्लेख मिलता है जिनमें स्ट्रेबों प्लिनी, सीजर आदि के फोन और की कृषि पर विशेष उल्लेख मिलते है। इस काल में कृषि व्यवस्था बिगड़ी हुई थी और यदा–कदा मानव समूहों के क्षेत्रों में विशेषकर रोम, यूनान एवं रूमसागरीय क्षेत्रों में की जाती थी। ब्रिटिश भूगोलवेत्ता र बंग तथा जर्मनी के जे० एन० सीवर्ज ने 18वीं शताब्दी से कृषि एवं भू आकार का उल्लेख किया है कि इस काल में कृषि व्यवस्थित रूप में न होकर प्राचीन तरीकों से की जाती थी। जबकि 19वीं सदी में कृषि भूगोल का अध्ययन कुछ प्रादेशिक आधार जैसे आर्द्रता को आधार मानकर वर्गीकृत किया गया। इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय विशेषताओं के बारे में भी उल्लेख मिलता है। इस समय तक खेती केवल फसलों तक ही सीमित थी, जिसे कृषि के नाम से जाना जाता था। लेकिन वर्तमान शताब्दी में कृषि भूगोल का विकास एक विकसित व उन्नत वैज्ञानिक ढंग से और सही विचारों के साथ हुआ है जिनमें विशेषकर कृषि भूगोल के सिद्धान्त, विषय–वस्तु, कार्य–प्रणाली, पद्धतियाँ आदि सम्मिलित किये जाते हैं। कृषि भूगोल को अब तक एक प्रादेशिक क्षेत्रीय भूगोल के नाम से ही जाना जाता था, जिसका मुख्य आधार प्राचीन समय के अर्द्ध–कृषि क्षेत्र ही थे।

प्राचीन काल में कृषि का विकास आले व पशु चारण व्यवस्थाओं के साथ पहाड़ी ढालों व बाद में क्रमशः नदी घाटी सभ्यताओं में माना जाता रहा है। ऐसी धारणा रोमन भूगोलवेत्ता व विद्वानों में अधिक प्रचलित थी। लेकिन यूनानी व जर्मन भूगोलवेता इस बात से सहमत नहीं थे। इनमें **कार्ल सावर** का यह मत है कि कृषि आरम्भ में कुछ विशेष क्षेत्रों पर ही की जाती थी तथा इसके कुछ निश्चित केन्द्र थे। प्रारम्भ में कृषि उन क्षेत्रों पर विकसित नहीं हो सकी थी, जहाँ पर कि मानव समूह हताश और भोजन की तलाश में भटकता रहता था बल्कि उन क्षेत्रों में हुई, जहाँ मानव स्वतन्त्र एवं प्रायोगिक अवस्था में विचरण करता था। इस प्रकार धीरे–धीरे प्रथम अवस्था में कृषि का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें कुछ पौधों को अपनाया गया जैसे गेहूँ मक्का आदि तथा आदिम कृषि का विकास हुआ। दूसरी अवस्था में पौधों के साथ पशुओं का विशेषीकरण उन क्षेत्रों में हुआ जहाँ इनकी बहुलता एवं विभिन्नताएँ थीं ।

तृतीय अवस्था में आदिम कृषि का विकास पहाड़ी वालों एवं पर्वतीय क्षेत्रों में हुआ। कृषि उन क्षेत्रों में भी की जाती थी जहाँ जंगल थे क्योंकि उन क्षेत्रों में मिट्टियों का खोदा जाना आसान था। धीरे–धीरे कृषि के नवीन आविष्कार ने मानव को अधिकाधिक दक्ष बनाया तथा जो मानव समूह आखेट में लगा हुआ था वह इस ओर आकृष्ट हुआ। कृषि करने वालों में सर्वप्रथम मानव समूह जो आदिम थे, किन्तु स्थायी थे, ने कुछ फसलें बोना

प्रारम्भ किया। कार्ल सावर ने निम्न परिस्थितियों में कृषि व्यवस्थाएँ प्रारम्भ होने की सम्भावनाएँ बताई है जो कृषि के केन्द्र भी माने जाते थे।

(1) कृषि प्रारम्भ में उन क्षेत्रों में विकसित नहीं हुई जहाँ मानव समूह भोजन के अभाव में रहते थे। बल्कि उन समुदायों में हुई जहाँ भोजन आवश्यकता व माँग के अतिरिक्त रहता था।

(2) पौधों व पशुओं की विभिताओं के क्षेत्रों में इनका पाला जाना सम्भव हुआ ।

(3) पाश्चात्य कृषि उन बड़ी नदी घाटियों में नहीं बाढ़ से बचने के लिए बाँध बनाना तथा सिचाई के लिए नहरें आदि बनाना समस्या थी, विकसित न होकरनम पहाड़ी ढालों व निचले क्षेत्रों में हुई।

(4) कृषि वनीय क्षेत्रों में हुई जहाँ मिट्टियों को कुरेदना या जोतना आसान था।

(5) कृषि के प्रथम अग्रणीयों ने विशेष दक्षता प्राप्त कर ली थी जहाँ आखेटकों के समुदाय इस और कम आकृष्ट हुए।

(6) कृषि कार्य करने वाले समुदाय स्थायी जीवन–यापन करने वाले रहे होंगे क्योंकि फसलों की लगातार देख भाल करने की जरूरत होती है, अन्यथा फसलों के नष्ट होने का डर था।

उपर्युक्त आधारों पर यह माना जा सकता है कि कृषि उन मानव समुदायों में विकसित हुई जो अपेक्षतया विकसित अवस्था में तथा नम जलवायु में रहते थे। ऐसे क्षेत्र प्रायः दक्षिणी–पूर्वी एशिया में थे, क्योंकि यह क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल से ही मछली पकड़ने के भी सुलभ क्षेत्र रहे।

कृषि की उत्पत्ति एवं विकास के प्रमुख केन्द्रों के बारे में महत्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान **एन० आई० बेबीलोव** जो रूसी जैव–भूगोलवेत्ता है, ने दिया है। इन्होंने प्रारम्भिक पौधों के तथा पशुओं के पालने के प्रमुख क्षेत्रों को विभिन्न कालों व परिस्थितियों में बताया है जो पुरातत्व प्रमाणों के साथ पुष्ट किये गये है।

बेबीलोव ने कृषि के 8 प्रमुख उत्पत्ति केन्द्र बताये हैं जो नीचे वर्णित है–

1– दक्षिण पश्चिम एशिया कृषि उत्पति केंद्र ।

2– दक्षिण पूर्वी एशिया उत्पति केंद्र।

3– चीन जापान कृषि उत्पति केंद्र।

4– दक्षिण अमेरिका कृषि उत्पति केंद्र ।

5– रूमसगरीय केन्द्र।

6– मध्य एशिया कृषि केंद्र ।

7– अफ्रीकन केंद्र ।

8– मध्य अमेरिका कृषि उत्पति केंद्र ।

2.5.2 मध्य काल एवं कृषि पद्धतियाँ–

मध्य युग में कृषि का विकास होना शुरू हुआ। प्राचीन कृषि केन्द्रों पर कृषि के प्रशासनिक ढाँचे एवं कुछ नयी अवस्था, नयी पद्धति व प्रणाली आदि का विकास हुआ। कृषि क्षेत्र में नये आयाम विकसित हुए। लेकिन इन सभी के परिवर्तन के पीछे पिछले युग की छाप अभी भी देखी जा सकती है। कृषि का विस्तार यूरोप व रूमसागरीय प्रदेशों में ज्यादा हुआ। रोमन काल तक पश्चिमी यूरोप के क्षेत्र में पशुपालन एवं कृषि–उपजें अपनी जड़ें भली प्रकार जमा चुकी थीं। रोमन साम्राज्य में जैतून और अंगूर की बेले स्थायी बन चुकी थीं और अनाज व दालों का उत्पादन वार्षिक था। परती जोत की सामान्य प्रथा थी और फसल बोने हेतु मिट्टी को उसके रंग, स्वाद, सुगंध व अंगुलियों द्वारा रगड़ कर योग्य तथा अयोग्य की पहचान किया जाता था। जौ तथा गेहूँ शीत काल में बोये व बसन्त काल में काटे जाते थे। तत्पश्चात अरबों ने जो हिन्द महासागर और अरब सागर में कार्यरत व अग्रज थे, अनाजों और फसलों के एक से दूसरे क्षेत्र में स्थानान्तरित करने में सहायता पहुँचायी। वे जौ, गेहूँ, कपास, चावल, सन फलियाँ, तथा मटर को मैसोपोटामिया से उत्तर व पश्चिमी अफ्रीका और स्पेन–पुर्तगाल ले गए।

8वीं व 9वीं शताब्दियों में अरबों ने दक्षिणी–पूर्वी एशिया से पूर्वी अफ्रीकी देशों में खट्टे–मीठे फल, चावल, आम, ककड़ी, नारियल, केला और अनेक देसी–पौधों को लेकर गये थे। मलेशिया, इन्डोनेशिया व थाईलैण्ड देश के लोग हिन्द महासागर को पार कर मेडागास्कर (मलयगासी) जा पहुँचे। वे अपने साथ केला, चावल, यम व तारो ले गए थे। अरबी व्यापारियों ने ही चीन व पड़ौसी देशों में लिनसिड, गेहूं, सिसामन, फ्लेक्स और फलियों का विस्तारण किया। मध्य काल में विकसित 5 विभिन्न तरह की कृषि पद्धतियाँ **स्लीचर वान बाथ (1963)** ने बतायी है जो निम्नलिखित है–

(1) अस्थायी कृषि– अस्थायी कृषि के अन्तर्गत एक बार कृषि करने के बाद उस क्षेत्रों को छोड़ दिया जाता था इसे स्थानान्तरण कृषि भी कहते हैं। यह प्राचीनतम कृषि पद्धति है। यह पद्धति दक्षिणी–पूर्वी एशिया एवं मलाया व न्यूगिनी में प्रचलित थी।

(2) आन्तरिक एवं बाहरी खेती व्यवस्था पद्धति– एक खेत के अन्दर जिसके कुछ भाग को बोकर खेती की जाती थी एवं शेष हिस्से को रिक्त छोड़ दिया जाता था। जिस भाग पर खेती की जाती थी, उस भाग में खाद आदि दिया जाता था उसे मानसिक पद्धति कहा जाता है। वास्तव में, यह व्यवस्था खाद देने की सीमा पर ही विकसित हुई।

(3) दोहरी फेरा प्रणाली– इसके अन्तर्गत एक वर्ष जिस खेत पर खेती की जाती थी, दूसरे वर्ष उस खेती को खाली छोड़ दिया जाता था, तथा फिर तीसरे वर्ष उसमें खेती की जाती थी। यह एक प्रकार की परती भूमि प्रणाली ही है जिसमें मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए ऐसा किया जाता है।

(4) तीन–वर्षीय प्रणाली– एक वर्ष खेती करने के पश्चात भूमि को दो वर्षों के लिए परती भूमि के रूप में छोड़ दिया जाता था। ऐसा तब किया जाता था जबकि उक्त भूमि कम उपजाऊ होती थी ।

(5) तीन कोर्स रोटेशन प्रणाली– शीतकाल में गेहूँ और राई की खेती करते थे तथा उसी खेत में वसन्त ऋतु में जौऔर ओटकी खेती करके और कुछ हिस्से को परती भूमि के रूप में छोड़ देते थे। इस प्रकार खेती का एक हिस्सा क्रम से परती बनकर उर्वरा होता रहता था।

12वीं व 13वीं शताब्दी के दौरान जनसंख्या वृद्धि के कारण एवं कुछ मानव समूहों की आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण विनिमय का प्रचलन व्यापक रूप से हो गया जिसके परिणामस्वरूप कृषि के निश्चित क्षेत्रों पर कृषि में विशिष्टीकरण होना प्रारम्भ हुआ जिससे खाद्य फसलों का अधिक विकास हुआ। इसी के साथ–साथ इनका महत्व इसलिए भी बढ़ा कि अधिक माँग के कारण कीमतों में वृद्धि हुई। इन सभी बातों का प्रभाव सीमित कृषि केन्द्रों पर पड़ा जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों को कृषि के अन्तर्गत लिया जाने लगा। परती भूमि, दलदल क्षेत्रों आदि की भूमि को कृषि योग्य बनाकर खेती की जाने लगी या वे क्षेत्र जो बेकार पड़े थे जिन पर कभी कृषि हुई थी किन्तु बाद में इन्हें परती के रूप में छोड़ दिया गया था उन्हें भी जोत के अन्तर्गत लिया जाने लगा। ऐसे सभी क्षेत्रों पर विभिन्न फसलों के साथ कृषि बड़े पैमाने पर एवं व्यापक रूप से की जाने लगी। इसका प्रमुख कारण इस समय तक आर्थिक मजबूती थी। लेकिन 13वीं शताब्दी में संसार के अधिकतर क्षेत्रों में महामारी व हैजा फैलजाने के कारण जन–धन की अपार हानि हुई एवं नवीन क्षेत्रों में आर्थिक दृष्टि से नुकसान पहुंचा जिससे कृषि कार्यों में फिर से शिथिलता आ गयी और कुछ भागों में कृषि कार्यों को प्रायः छोड़ दिया गया। यह कृषि विकास का अन्धकार युग था। लेकिन 15वीं शताब्दी में फिर से जनसंख्या में वृद्धि एवं आर्थिक क्षमता के कारण जहाँ फसलों के उत्पादन में कमी आयी, वहाँ दूसरी ओर उसके साथ–साथ कृषि के एक और प्रारूप का विकास हुआ। इसके अन्तर्गत फसलों के साथ–साथ किसान पशु भी पालने लगे। क्योंकि कृषि क्षेत्रों के पास ही पशुओं के लिए चरागाह भी उपलब्ध होते हैं, एवं फसलों से प्राप्त अवशेष पशुओं के लिए काम आ जाती थी। इस प्रकार धीरे–धीरे वाणिज्य कृषि का विकास हुआ तथा औद्योगिक फसलों का उत्पादन किया जाने लगा। 16वीं शताब्दी के आसपास जनसंख्या की वृद्धि के कारण खाद्यानों की मांग बढ़ गयी तथा खाद्यानों की कमी महसूस की जाने लगी। 17वीं और 18वीं शताब्दी में विभिन्न क्षेत्रों को खेती के अन्तर्गत लिया जाने लगा तथा खेती के विकास की बाढ़ आ गयी जिससे खेती को उपजाऊ बनाने एवं बाद डालकर अधिक उत्पादन लेने की कोशिश की जाने लगी। कुछ क्षेत्रों में कृषि क्षेत्रों का विकास एवं औजारों व नयी प्रणाली का विकास किया गया तथा कुछ भागों में कृषि केन्द्रों का विकास हुआ जिन्हें नगर कहते थे। इस प्रकार कृषि नगरों के पनपने के कारण उपनिषद् पनपने लगे जो जागीरदारों के हाथों में थे। इस प्रकार वहाँ जागीरदारी प्रथा का विकास होता चला गया और अधिक भूमि इनके हाथों में केन्द्रित होती गयी।

2.5.3 आधुनिक काल–

17वीं व 18वीं शताब्दी का काल कृषि में उथल–पुथल का कहा जा सकता है। क्योंकि यह काल कृषि का क्रान्तिकारी समय रहा जिसमें कृषि में नये आविष्कार हुए। तथा सामाजिक क्रान्ति की शुरूआत हुई। 1755 में इस क्रान्ति के दौरान कृषि की अवस्था एवं व्यवस्था आदि में परिवर्तन हुए क्योंकि मानवीय समाज तीव्र गति से बढ़ता जा रहा था जिसकी मूलभूत आवश्यकताएँ सीमित होते हुए भी कृषि पर निर्भर करती थीं। रोटी, कपड़ा और मकान गौण आवश्यकता थी, जिनका नितान्त समाधान आवश्यक था विभिन्न क्षेत्रों में, नगर–शहरों में सांस्कृतिक केन्द्रों का एवं सामाजिक विकास बढ़ता जा रहा था। इस समय तक ब्रिटेन में विशेषकर लोहा गलाने की विधि का भी विकास हुआ। प्रारम्भ में यह विधि, जिसके सहारे विभिन्न प्रकार के लोहे के बजार व अन्य साधनों का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप उद्योग में एवं कृषि के क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन आये इस प्रकार कृषि में कान्ति

एक प्रकार से औद्योगिक क्रान्ति की समकक्ष मानी जाती थी क्योंकि औद्योगिक क्रान्ति विशेषकर फांस एवं ब्रिटेन से शुरू हुई तथा कृषि क्रान्ति भी यूरोप के इन्हीं क्षेत्रों से प्रारम्भ हुई जिसके स्वरूप नयी मशीनें विशेषकर फांस व ब्रिटेन में बनना शुरू हुई। नये बाजार एवं अन्य रासायनिक उर्वरक तथा नयी–नयी तकनीकी आदि का व्यापक रूप से विस्तार हुआ तथा सब लोग उन्हें अपनाने लगे क्योंकि उसके पूर्व जो कृषि प्रणाली व तकनीकी कृषि में काम आती थी वह सब इन परिस्थितियों के लिए अपर्याप्त समझी जाने लगी। दूसरी ओर इन क्षेत्रों में समाजीकरण–उपनिवेशों का विकास, विशेषकर पूर्वी यूरोपीय देशों में हुआ। ये वे क्षेत्र थे जहाँ मार्क्सवादी भावना के प्रभाव के कारण भी उक्त क्रान्ति में महान योग मिला जिसके फलस्वरूप कृषि प्रणाली व तरीकों में परिवर्तन हुए।

प्रारम्भिक कृषि जीविकोपार्जन की थी इससे व्यावसायिक कृषि की ओर बड़े। कुछ क्षेत्रों में अतिरिक्त खाद्यान्न के उत्पादन के कारण उनके आस–पास के क्षेत्रों के वितरण की व्यवस्था तथा सूखाग्रस्त क्षेत्रों में खाद्यान्नों को पहुँचाने की व्यवस्था प्रमुख थी। इस समय कुछ भागों में अतिरिक्त खाद्यान्न होने लगे थे जिन्हें पड़ोसी अभावग्रस्त क्षेत्रों में पहुँचाया जाता था। इसी काल में व्यापारिक कृषि के कारण विनिमय का जन्म हुआ, यातायात का विकास हुआ। 17वीं शताब्दी के अन्त तक यातायात के बढ़ते चरण ने यूरोप को विशेषकर नया मोड़ दिया। कृषि के साथ–साथ पशुपालन, मुर्गीपालन आदि का भी विकास हुआ। इस प्रकार इस क्रान्ति से नयी तकनीकी पद्धतियों तथा तरीकों के कारण नयी नयी फसलों व विशेषीकरण व व्यवसाय आदि का विकास व विस्तार हुआ ।

इनके साथ–साथ बहु–फसलें जिसमें एक ही साथ एक ही खेत में या दो से अधिक फसलों को बोया जाना शुरू हुआ। जैसे मक्का के साथ में मूंगफली, उड़द, मूंग, चावल आदि ।

2.5.4 अत्याधुनिक काल एवं कृषि तकनीकियाँ–

आधुनिक तकनीक को अपनाना विभिन्न कारकों जैसे– सामाजिक– आर्थिक स्थिति, भौगोलिक स्थिति, उगाई गई फसल, सिंचाई सुविधाएँ आदि पर निर्भर करता है। कृषि में प्रौद्योगिकी का उपयोग शाकनाशी, कीटनाशक, उर्वरक और उन्नत बीज का उपयोग जैसे कृषि संबंधी विभिन्न पहलुओं में किया जा सकता है। वर्षों से कृषि क्षेत्र में प्रौद्योगिकी अत्यंत उपयोगी साबित हुई है। वर्तमान में किसान उन क्षेत्रों में फसल उगाने में सक्षम हैं, जिन क्षेत्रों में पहले फसल उगाने में अक्षम थे, लेकिन यह कृषि जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से ही संभव हुआ है। उदाहरण के लिये जेनेटिक इंजीनियरिंग ने एक पौधे या जीवको दूसरे पौधे या जीव या इस के विपरीत स्तीनांतरित कर ने में सक्षम बना दिया है। इस तरह की इंजीनियरिंग फसलों में कीटों (जैसे बीटीकॉटन) और सूखे के प्रतिरोध को बढ़ाती है। प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसान दक्षता और बेहतर उत्पादन के लिये प्रत्येक प्रक्रिया का विद्युतीकरण करने की स्थिति में हैं।

वर्ष 2021 में कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा इंडिया डिजिटल इकोसिस्टम ऑफ एग्रीकल्चर (IDEA) पर एक परामर्श पत्र जारी किया गया, जो कृषि क्षेत्र में डिजिटल क्रांति की बात करता है।

2.6 भारत में कृषि का विकास–

जब विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में कृषि का जन्म हुआ था तब भारत के उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र में, सिन्धु घाटी में, मिस्र घाटी की सभ्यता के समकालीन ही कृषि का विकास हो रहा

था। इसलिए भारत उपमहाद्वीप में भी कृषि का विकास अति प्राचीन काल में हुआ है लेकिन यह विकास, जिसकी झलक आज भी भारतीय गाँवों में देखने को मिलती है, अति धीमा तथा विभिन्न चरणों से गुजरा है। भारतीय कृषि के विकास की गति को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्व रहे हैं जिसमें इस की मूलभूत विशेषताएं देखने को मिलती है। ये तथ्य हैं रू 1. भौतिक तथ्य 2. सामाजिक तथ्य 3. राजनैतिक तथ्य। इस प्रकार भारतीय कृषि की मूलभूत विशेषता जलवायु, मिट्टियों, धरातल आदि से प्रभावित हुई है वहाँ दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था जिसमें सांस्कृतिक गतियाँ, सामाजिक प्रथाएँ रीति–रिवाज व अन्य संस्थापक व्यवस्थाएँ तथा परम्परागत एवं अन्य सामाजिक कारण प्रमुख हैं। कुछ मूलभूत प्रथाएँ जैसे भूस्वामित्व, काश्तकारी प्रणाली, भूमि का आकार आदि ने भारतीय कृषि को मूलरूप से सामाजिक–आर्थिक ढाँचे में ढाला है जैसे–काश्तकारी प्रणाली–इसमें फसलों का बंटवारा या सम्पूर्ण उत्पादन का बंटवारा या दैनिक मजदूरी पर कृषि की जाती थी। भारतीय कृषि इन उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त विभिन्न कृषि अर्थव्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग रूप से पायी जाती थी मध्य काल से आज तक इसमें विशेष परिवर्तन नहीं हुए हैं। केवल कृषि क्षेत्र में वृद्धि हुई है. कुछ सुविधाओं का विस्तार हुआ है, बीजों की किस्मों में वृद्धि हुई है, उत्पादन बड़ा है। लेकिन कृषि व्यवस्थाओं में स्थायित्व बना हुआ है। यह कहना गलत न होगा कि हमारी कृषि परम्परागत प्रणाली को है। जो प्रणाली तरीके व सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में थे वे ही बाज भी मौजूद है जो साधन समय काम में आते थे वही बात है। कृपया पशुओं पर निर्भर करते थे आज भी वैसा ही है। कृषि कार्यो के लिये कहा गया है कि भारतीय कृषि पशुओं द्वारा ढोई जाती है पूर्ण सत्य है । भारतीय कृषि पूर्णतया पशुओं पर निर्भर करती है। हर काम पशुओं के माध्यम से होता है। सिंचाई, बुआई से लेकर फसल से भूसा और दाने अलग करने तक के काम तक पशुओं के द्वारा ही किये जाते हैं। भारतीय कृषि में पशुओं का उतना ही महत्व है जितना कि एक किसान का, क्योंकि किसान और बेल दोनों खेत जोतने में बराबर ही चक्कर लगाते हैं या भूमि नापते हैं तथा एक ही छप्पर में एक साथ। भारतीय कृषि में पुराने तरीकों और पुराने औजारों की ही अधिकता है।

भारतीय कृषि में मूलभूत बदलाव प्रथम पंचवर्षीय योजना काल (1951– 55) में आये तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना काल तक विशेष प्रगति हुई। लेकिन इस समय में भी भारतीय कृषि भारतीय ही रही। 1951 में 111.07 लाख एकड़ भू भाग पर कृषि हुई जो 1955–56 में 114.04 लाख एकड़ हो गयी, यानि इसमें मुश्किल से 4 प्रतिशत अधिक क्षेत्र बढ़ा।

आधुनिक समय में कृषि का विकास तीव्रता से होना शुरू हुआ है। नये बीजों तथा नयी किस्म के खादों का सदुपयोग और प्रयोग दोनों हुए। खोज के आधार पर नयी किस्म के बीजों का विकास तथा इसके साथ–साथ अच्छी प्रजाति के बीजों का अधिक उपयोग किया जाने लगा तथा इनके विभिन्न क्षेत्रों में शोध की सुविधाएँ बढ़ायी गयी। देश में कृषि के विकास हेतु उत्तर प्रदेश के पन्तनगर में 1960 में कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसके अलावा देहरादून, दिल्ली, रांची, बंगलौर, मद्रास, नागपुर, हैदराबाद आदि क्षेत्रों में कृषि सम्बन्धी विभिन्न क्षत्रों के लिए शोध संस्थाएँ अनुसन्धान केन्द्र जिनमें पशु शोध केन्द्र भी सम्मिलित है तथा पशु चिकित्सालयों का भी विकास हुआ। इसके दूसरी ओर कृषि में काम आने वाले औजारो तथा विभिन्न यन्त्रों व मशीनों से विकास एवं निर्माण हेतु देश में भिन्न क्षेत्र में कृषि औजार व साधन फैक्ट्रियां बोली गयी। इनमें हरियाणा, रांची, जयपुर,

बंगलौर, नागपुर, दिल्ली, कानपुर आदि में ऐसी कम्पनियां लगायी गयी हैं जिनमें कृषि सम्बन्धी औजारों और मशीनों आदि का निर्माण होने लगा है। हार्वेस्टर, ट्रैक्टर, थ्रेसर्स, डीलर डिस्कप्लेट, लौह हल तथा सिंचाई के लिए पम्पसेट आदि का निर्माण किया जाने लगा है। लेकिन कृषि क्षेत्र में इनका उपयोग इतना व्यापक नहीं हो पाया है। साधनों का अधिकांश उपयोग हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि क्षेत्रों में ही सीमित रहा है। अन्य राज्यों में इन साधनों का सीमित रूप से उपयोग होता है जिसमें मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात आदि हैं। इन यन्त्रों के साथ–साथ कृषि में तकनीकी ज्ञान तथा तकनीकी का भी व्यापक उपयोग नहीं हो पाया है तथा यह भी सीमित रूप से ही विकसित हुआ है। कुछ विकसित राज्यों में विभिन्न भागों में कृषि विश्वविद्यालय की शोध–शालाओं में इनका विकास किया जा रहा है किसानों को इनकी शिक्षा से प्रशिक्षित कर उन्हें उन्नत बीजों, आधुनिक आविष्कारों, खादों और किस्मों के नये तरीकों आदि से परिचित कराकर उनके उपयोग की शिक्षा दी जा रही है। यही नहीं, इस क्षत्र में विभिन्न तकनीकी ज्ञान के आधार पर विभिन्न प्रकार के रासायनिक खादों का प्रयोग भी भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। देश में जगह–जगह पर सहकारी समितियाँ खोली जा रही है ताकि कृषकों को उचित मूल्य पर खाद, यन्त्र, बीज, औजार आदि ठीक समय पर आसान किश्तों पर उपलब्ध कराये जा सकें। भारत सरकार ने देश में कृषि वित्त निगम की स्थापना कर रखी है जो कृषि विकास के कार्यों, औजारों, उन्नत बीज, खाद आदि खरीदने के लिए ऋण प्रदान करता है और कृषि विकास के विभिन्न कार्यक्रमों की प्रोत्साहित करता है। लेकिन भारतीय कृषि के बारे में यह बात विख्यात है कि भारत में जितनी जातियाँ हैं उतने हो पिछड़े हुए उद्योग भी हैं और दुर्भाग्य से इन उद्योगों में से कृषि भी एक है।

2.7 भारतीय कृषि में भूगोल का योगदान–

कृषि भूगोल के अन्तर्गत हमारे देश में काफी अध्ययन किया गया है। कृषि के विभिन्न पहलुओं व समस्याओं पर भी समय–समय पर खोज की जाती रही है लेकिन इसका फायदा कुछ ही क्षेत्रों को रहा है। कृषि भूगोल के अध्ययन का आधार अधिकतर प्रादेशिकता पर रहा है इसके कारण प्रादेशिक पक्षपात का बोल–बाला बना रहा जिसके कारण प्रादेशिक असन्तुलन बढ़ा, यही कारण है कि राष्ट्रीय कृषि नीति के रूप में अध्ययन का फायदा सम्पूर्ण देश को नहीं मिल पाया है। कृषि भूगोल के क्षेत्र में कई भूगोलवेत्ताओं ने शोध व अध्ययन कर महत्वपूर्ण योगदान किया है । इनमें कुछ भूगोलवेत्ता जैसे– एन०पी० अय्यर, ई०ए० अय्यर, एल०एम० भट्ट, एस०एन०. बनर्जी, कुलकर्णी, ए०बी० मुकर्जी, ए०के० सेन, एम०एस० धावा, एम०पी० राजगोपाल, एम०शफी, एम०ए०या०डी०ए०, एस०पी० चटर्जी, जसवीर सिंह आदि के कार्य विशेष उल्लेखनीय है। इनमें कुछ के कार्य प्रादेशिक कृषि भूगोल पर है तो कुछ के भूमि उपयोग पर एवं कुछ के कृषि समस्याओं पर इन कार्यों में देश की विभिन्न सरकारी संस्थाएँ जैसे ICSSR, UGC, ICAR ने आर्थिक योगदान देकर कृषि विकास के अध्ययन को प्रोत्साहित किया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICSSR) का योगदान विशेष उल्लेखनीय है ।

2.8 कृषि तकनीकी व औजार–

कृषि में औजारों एवं यंत्रों का महत्व शुरू से ही रहा है, चाहे वह कृषि औजार पुराने, अभद्र तथा अवैज्ञानिक ढंग के ही क्यों न रहे हो। कृषि विकास का इतिहास समय समय पर नये औजारों के आविष्कार के साथ ही जुड़ा हुआ रहा है। यही कारण है कि

विभिन्न सभ्यताओं के काल में बने कृषि औजरों के मिलने वाले नमूनों व आकार– प्रकार के आधार पर ही कृषि की दशाओं का पता चलता है। पुरातत्वशास्त्री प्रमाणों के आधार पर ही प्राप्त कृषि औजारों से कृषि की दशाओं का अनुमान लगाया जाता है। वैसे प्रागैतिहासिक मानव के बारे में बहुत कम ज्ञान व जानकारी उलब्ध है। लेकिन उसने पत्थरों का अपना प्रथम हथियार बनाया जिसमें कुल्हाड़े का उपयोग महत्वपूर्ण था, ऐतिहासिक सत्य है। लेकिन आरम्भ में जब मानव ने कृषि करना प्रारम्भ ही किया था तब वह कृषि बिना औजारों के होती थी तथा प्राकृतिक रूप से वर्षा के आधार पर जो पैदा हो जाता था उसे हो उदरपूर्ति के काम में लाया जाता था। धीरे–धीरे भूमि का कुरेदने के लिए जमीन खोदने को लकड़ी व सुखे का प्रयोग किया जाने लगा।

इस प्रकार आदिम कृषि कुछ भागों में प्रचलित हुई। ऐसा माना जाता है कि 4000 ई० पर्व के आस–पास मेसोपोटामिया (दजला व फरात) घाटी सभ्यता व मिश्र की सभ्यताओं में लकड़ी के हल का प्रयोग खेती में प्रारम्भ हो चुका था जिसे अर्डस कहा जाता था। मेसोपोटामिया में, लकड़ी के साथ खुरपे को बाँधकर हल की तरह प्रयोग में लाते थे। लेकिन कठोर भूमि जोतने के अयोग्य होने से अधिक लम्बे समय तक यह प्रचलित नहीं रहा। बाद में करीब 1000 ई० पूर्व रुमसागरीय व चीन क्षेत्र के प्रदेशों में लोहे के फलदार हल का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इस समय भी हल को सींचने केलिए दो बैलों का प्रयोग किया जाता था । प्रारम्भिक काल में फसलों को बीज छिड़क कर उत्पन्न करने की विधि का प्रचलन था। यह विधि लंका, भारत, चीन देशों की आदिम जातियों में आज भी कहीं–कहीं देखी जा सकती है। हल से फरों का तरीका 7000 ई० पूर्व मिश्र सभ्यता काल में मिश्र के किसान जो फेरो कहलाते थे काम में लाते थे। बाद में फरों को पाटने के लिए लड़की के पटिये जिसे हेरो कहा जाता है, का प्रयोग प्रथम बार रोमन्स, भारत व चीन ने प्रारम्भ किया। जबकि दक्षिणी–पूर्वी एशिया में सीढ़ीनुमा खेती का प्रचलन रहा। इसी के समकालीन –पीरू, मिश्र, दक्षिणी–पश्चिमी एशिया आदि में सिंचाई के आधार पर कृषि का विकास मिलता है। 1000 ई० पूर्व के आस–पास भारत में बार्यन्स द्वारा कांस्य व लोहे के प्रयोग ने खेती में भी लोहे के औजारों का सूत्रपात किया। इन प्रकार हल में लोहे के हल के प्रयोग ने संसार से कृषि क्षेत्रों के विकास व विस्तार में योगदान दिया जिससे बेकार भूमि को कृषि में लाया जा सका।

रोमन और आधुनिक काल के मध्य (300 BC से 200AD) के समय में कृषि पद्धति व तकनीकी का विकास विभिन्न क्षेत्रों में हुआ यूरोप में जहाँ कठोर मिट्टियों के प्रदेश थे वहाँ भारी लोहे के हल का प्रयोग किया जाने लगा जो घोड़ों द्वारा खींचा जाता था ।

इंग्लैण्ड में भाप इंजन के खोज ने क्रान्तिकारी बदलाव किया। कृषि में प्रयुक्त पानी के पम्पसेट व थ्रेसर मशीनों आदि के उपयोग से कृषि में विस्तार हुआ। इसका प्रभाव समूचे यूरोप में पड़ा तथा यूरोपीय कृषि में क्रान्ति के प्रारम्भ से ही संसार के अन्य कृषि क्षेत्रों में भारी परिवर्तन आया और कई देशों में अनेक मशीनों व नयी तकनीकी द्वारा कृषि में मूलभूत परिवर्तन हुआ। इसका अधिकांश श्रेय 1892 में निर्मित गैसोलीन ट्रैक्टर तथा 1910 में कम्बस्टन इंजन ट्रैक्टर चलित मशीनों को है जिनके प्रयोग के कारण कृषि कार्यों को आसान व सुलभ बनाया जा सका। इसके आविष्कार ने भैसे,घोड़ों, बैल, खच्चर एवं मानव आदि के श्रम का स्थान ले लिया। इस प्रकार पश्चिमी देशों की कृषि में मशीनों के व्यापक प्रयोग ने परम्परागत कृषि से यान्त्रिकी कृषि का सूत्रपात किया जहाँ मानव व पशु का स्थान मशीनों ने ले लिया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण संयुक्त राज्य की कृषि से मिलता है जहाँ

कुल जनसंख्या को 20 प्रतिशत जनसंख्या ही कृषि कार्यों में लगी हुई है जो शेष 80 प्रतिशत जनसंख्या की उदरपूर्ति के साथ–साथ विदेशों में अनाज का निर्यात भी करती है। जबकि पूर्वी देशों में ठीक इसके विपरीत स्थिति पायी जाती है। तकनीकी विकास में विभिन्न रासायनिक खादों के प्रयोग के साथ–साथ अच्छी किस्म के अधिक उत्पादन के बीज आदि के विकास से भी कृषि में पर्याप्त विकास हुआ है।

2.9 सारांश–

आपने इस इकाई के माध्यम से सीखा कि कृषि, मानव जीवन का एक सफल कार्य रहा है जिसे वह प्राचीन काल से ही करता आ रहा है। हॉलाकि विभिन्न समयों में उसकी तकनीकी में अंतर रहा है। आपने देखा कि प्राचीन कल मानव पहले शिकारी था तथा कंद मूल फलों इत्यादि का सेवन करता था वही बाद में धीरे धीरे पौधों एवं पशुओ का पालना सीख गया। इस प्रकार कृषि से संबंधित पहली गतिविधि प्रारंभ हुई। समय के साथ वह कृषि के क्षेत्र में उन्नत तकनीकों का प्रयोग करता गया जिससे वर्तमान में कृषि का एक अत्यंत ही विकसित तकनीक देखने को मिला। आज के समय में हम जेनेटिक इंजीनियरिंग की बात करते है कारण स्वरूप कृषि तकनीक को एक नया आयाम मिला है। आपने देखा कि भारत के संदर्भ में कृषि का विकास वैश्विक संदर्भ के समानांतर हुआ है, क्योंकि भारत की आधारभूत इकाई कृषि ही है अर्थात भारत एक कृषि प्रधान देश है ।

2.10 शब्द सूची–

आदिम कृषि–Primitive Agriculture, भाप इंजन–Steam Engine,

जमीन खोदने को लकड़ी–Digging Stick, हल–Plough,

यान्त्रिकी कृषि–Mechanised farming, लड़की के पटिये–Harrow

प्रागतिहासिक मानव–Pre-historic Man,

पुरातत्व प्रमाणों–Archaeological Evidences,

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–Indian Council of Agriculture Research,(ICAR)

2.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न–

1–झूम क्या हैं ?

अ– भारत के उत्तर पूर्व की एक जनजाति है, ब– कृषि का एक प्रकार हैं,

स– एक लोक नृत्य है, द– एक नदी का नाम है ।

2–सर्वाधिक सघन खेती प्रचलित हैं–

अ– जापान ब– इंडोनेशिया

स– चीन द– भारत

3–नीचे दिए गए कथनों को ध्यानपूर्वक पढ़िए

1)आदिम निर्वाह कृषि में स्थानांतरण कृषि और मिश्रित कृषि शामिल है

2) भारत के उत्तर पूर्वी भागों में स्थानांतरित कृषि प्रचलित है

उपरोक्त कथनों में से कौन सा कथन सत्य है–

अ– केवल 1 ब– केवल 2

स– 1 और 2 द– न तो एक और न ही दो

4–किस प्रकार की कृषि में भूमि का उपयोग भोजन व चारे की फसलें उगाने और पशुपालन के लिए किया जाता है–

अ– स्थानांतरण कृषि ब– निर्वाह कृषि

स– रोपण कृषि द–मिश्रित कृषि

5–म्यांमार में की जाने वाली स्थानांतरणशील कृषि किस नाम से जानी जाती है–

अ– रे ब– तमराई

स– तुग्या द–कैंगिन

आदर्श उत्तर– 1(ब), 2(अ), 3(ब), 4(द), 5(स)।

2.12.संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तके–

1–प्रोफेसर रामचन्द्र तिवारी व बी एन सिंह, कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।

2–डॉ अलका गौतम, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भंडार, प्रयागराज।

3–माजिद हुसैन, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

4– Hettner, A. "Das wesen and die methoden der geographie." GeographischeZeitschrift, Vol. 2.

2.13 अभ्यास प्रश्न–

1. भारत में कृषि से की उत्पत्ति से संबंधित सामान्य सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।
2. वैश्विक संदर्भ में कृषि के विकास से संबंधित विभिन्न काल खंडों एवं उनसे संबंधित मूल कृषि केंद्रों की व्याख्या कीजिए।
3. भारत के संदर्भ में कृषि के विकास से संबंधित एक लेख लिखिए।
4. भारतीय कृषि में भूगोल के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
5- कृषि के क्षेत्र में हुए विभिन्न तकनीकों की प्रगति की व्याख्या प्राचीन काल से लेकर वर्तमान के संदर्भ में कीजिए।

MAGO-104 कृषि भूगोल

इकाई–3 कृषि को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक कारक

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 कृषि को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक कारक

3.2.1 उच्चावच

3.2.2 जलवायु

3.2.3 मृदा

3.2.4 जल संसाधन

3.2.5 वन क्षेत्र

3.3 सारांश

3.4 शब्द सूची

3.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

3.6 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

3.7 अभ्यासप्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

,3.0 प्रस्तावनाः

कृषि भूगोल के लि लेखन की यह इकाई MAGO-104 की इकाई तृतीय है जिसके अन्तर्गत आप कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों में प्राकृतिक कारक का अध्ययन करेंगे। कृषि भूगोल में कृषि भूगोलः परिचय तथा कृषि उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन करने के उपरान्त इस इकाई के माध्यम से आप समझ सकेंगे कि कृषि को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक कारकों में कौन–कौन से ऐसे कारक हैं जो कृषि के उत्पादन, क्षेत्रीय वितरण, उत्पादन इत्यादि को प्रभावित करते हैं। कषि कार्य मानव की सबसे प्राचीन विधा है जिसमें कृषि कार्य के प्रारम्भिक विकास से लेकर वर्तमान समय में तथा भविष्य में भी इसकी उपयोगिता बनी रहेगी। कृषि के लिए मृदा, जलवायु, उच्चावच, प्राकृतिक वनस्पतियाँ, जल इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है और ये किस प्रकार कृषि को प्रभावित करते हैं इस इकाई के द्वारा आप अध्ययन करेंगे। मृदा में पाये जाने वाले खनिज, वायु, जल, जैव पदार्थ, मृदा उर्वरता, मृदा के प्रकार जिसमें अलग–अलग प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है जैसे काली मृदा कपास के लिए, लाल मिट्टी मोटे अनाज के लिये, जलोढ़ मिट्टी गेहूँ, धान, मटर, जौ इत्यादि के लिए, मृदा के

मूल पदार्थ, मृदा का गठन एवं संरचना, मृदा में पाये जाने वाले जैविक पदार्थ कृषि को प्रभावित करते हैं। जलवायु के अन्तर्गत कृषि के लिये उचित मात्रा में तापमान, सूर्य का प्रकाश, वर्षा, कुहरा, पाला, हवा, आर्द्रता जैसे तत्व किस प्रकार कृषि को प्रभावित करते हैं। उच्चावच के अन्तर्गत कितनी ऊँचाई कृषि हेतु आदर्श है तथा कितनी ऊँचाई पर कौन फसल उत्तम है इसका अध्ययन आप इस इकाई के अन्तर्गत करेंगे साथ ही प्राकृतिक वनस्पतियाँ एवं जल संसाधन किस रूप में प्रभावी कारक है इसके बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.1.उद्देश्यः

कृषि एक आधारभूत उद्योग है जिस पर मानव जीवन आधारित है सम्पूर्ण पृथ्वी पर ताप कतिबन्ध, वायु दाब कटिबन्ध,जल ि‍ल का असमान वितरण, जलवायु पेटी, वर्षा क्षेत्र, पवन पेटी, सूर्याताप, आर्द्रता ऊँचाई, ढाल, मृदा प्रकार, मिट्टी में पाये जाने वाले तत्व इत्यादि जैसे प्राकृतिक कारकों का प्रभाव कृषि पर बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं। इस इकाई का उद्देश्य इन सभी कारकों एवं तत्वों के प्रभाव का अध्ययन करना है। इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप–

- विभिन्न प्राकृतिक कारकों का कृषि पर प्रभाव को समझ सकेंगे।
- कृषि प्रणाली के प्रचलन एवं उसमें होने वाले परिवर्तन पर प्राकृतिक कारकों के प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे।
- कृषि में होने वाले परिवर्तन की दिशा एवं मात्रा को जान सकेंगे।
- धरातल पर विभिन्न कृषि पद्धति का क्षेत्रीय वितरण एवं स्थानिक परिप्रेक्ष्रू में उनके सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- कृषि भूमि वितरण, कृषि प्रकार, फसलों का क्षेत्रीय वितरण तथा उत्पादन के निर्धारण में भौतिक दशाओं के प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे।
- भौतिक दशाओं का कृषि पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभावों के बारे में तार्किक विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्रमुख भौतिक दशाओं उच्चावच, जलवायु एवं मृदा का कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे।
- मृदा संरचना, गठन एवं पार्श्विका को परिभाषित कर सकेंगे।

3.2.कृषि को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक कारकः

प्राकृतिक पर्यावरण कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों में सबसे प्रमुख है क्योंकि इसके आधार पर कृषि उत्पादन, फसलों का क्षेत्रीय वितरण, कृषि प्रकार, कृषि–भूमि का वितरण, कृषि पद्धति एवं प्रणाली, फसल प्रतिरूप, शस्य संयोजन, का निर्धारण किया जाता है। प्राकृतिक कारक जिसके अन्तर्गत उच्चावच, जलवायु, मृदा, जल संसाधन, वन इत्यादि आते हैं। उच्चावच पृथ्वी सतह पर पर्वत,

पहाड़,पठार, मैदान प्रमुख स्थल रूप है जिस पर विभिन्न ऊँचाई पर विभिन्न फसलों का उत्पादन किया जाता है। कृषि भूमि उपयोग पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव ऊँचाई, ढाल एवं अवाह तंत्र का पड़ता है। हालांकि वर्तमान कृषि विकास केवल प्राकृतिक कारक पर ही निर्भर नहीं है बल्कि तकनीकी विकास ने प्राकृतिक कारक की प्रतिकूलता को अनुकूलता में परिवर्तित कर दिया है। जिस क्षेत्र में कृषि की सम्भावना नहीं है वहाँ भी मानव ने कृषि कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। उन्नतशील बीज, नई तकनीकी विकास, रासायनिक खादों का प्रयोग प्रतिकूल जलवायु प्रदेशों में गहन खेती किया जा रहा है परन्तु यह कहा जा सकता है कि प्राकृतिक कारकों की अनदेखी नहीं की जा सकती क्योंकि इसका प्रभाव वृहद् स्तर पर कृषि पर पड़ता है। जलवायु के अन्तर्गत तापमान, वर्षा, आर्द्रता, पाला, धुँध, कुहरा, सूर्यातप, वायु, वायुदाब जैसे तत्व कृषिको प्रभावित करते हैं। मृदा के अन्तर्गत गठन, पार्श्विका वर्गीकरण जैविक पदार्थ, जल,वायु, खनिज जैसे तत्व कृषि पर अपना प्रभाव डालते हैं। जल संसाधन में वर्षा का जल, सतही जल तथा भूमिगत जल कृषि कार्य को प्रभावित करते हैं जिससे सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है। वन क्षेत्र एवं वनस्पतियों के माध्यम से कृषि हेतु आवश्यक वस्तुएँ दवायें, खाद, मृदा अपरदन की रोकथाम के लिये आवश्यक कारक के रूप में हैं। कृषि को प्रभावित करने वाले प्रमुख भौतिक काकर निम्नलिखित हैं–

1. उच्चावच 2. जलवायु 3. मृदा 4. जल संसाधन 5. वन

1. <u>उच्चावचः</u>

उच्चवच से तात्पर्य धरातल पर असमान ऊँचाई वाले स्थल रूप जैसे– सबसे ऊँचाई वाले क्षेत्र पर्वत के रूप में और निम्न भाग मैदान के रूप में पाया जाता है तथा मध्यम ऊँचाई पठार एवं पहाड़ की है। उच्चवच का प्रभाव कृषि पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है क्योंकि फसलों का वितरण, उत्पादन उसके धरातलीय बनावट पर निर्भर करता है। धरातलीय स्वरूप कृषि के स्वरूप एवं प्रकार को बदल देते हैं। "Relief is the difference of height between the highest and the lowest points in the region" अर्थात् ''किस प्रदेश के उच्च्तम एवं निम्नतम भागों की ऊँचाई के अन्तर को उच्चावच कहते हैं।'' जैसे नारियल की कृषि कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में तथा सेब के बागान समुद्र तल से 1500 मीटर से अधिक ऊँचाई पर की जाती है। धान की कृषि समतल एवं निचले क्षेत्रों में की जाती है जबकि चाय के बागान ढलान वाले क्षेत्रों पर की जाती है जहाँ पानी न रूकता हो। अत्यधिक ऊँचाई पर भी कृषि संभव नहीं है क्योंकि वहाँ अपरिपक्व मृदा, विरल वायुमण्डल,जल का अभाव, ऑक्सीजन की कमी जैसे कारक कृषिके अनुकूल नहीं होते हैं। फसलों की खेती लगभग 3500 मीटर की ऊँचाई पर संभव नहीं है। नदियों द्वारा बने उत्पाद भूमि, खड्ड एवं अवनलिका क्षेत्र पर भी कृषि कार्य कठिन है इसे कृषि के लिये तैयार करने में अत्यधिक धन एवं समय की आवश्यकता पड़ती है।

<u>पर्वतीय एवं पहाड़ी क्षेत्रः</u>

पर्वतीय क्षेत्र पर कृषि कार्य की संभावना अत्यन्त कम है। चित्र 3.1 का अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट है कि समुद्र तल से ऊँचाई वाले क्षेत्र अक्षांशीय स्तर पर हिमरेखा की ऊँचाई अलग–अलग है उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में अधिक, मध्य अक्षांश में उससे कम एवं उच्च अक्षांशीय क्षेत्र में सबसे कम ऊँचाई पायी जाती है तथा कृषि का स्तर भी अक्षांशीय स्तर पर परिवर्तित हो जाता है। पहाड़ी क्षेत्र भी कृषि की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है परन्तु विश्व के कुछ पहाड़ी क्षेत्र पशुपालन हेतु उपयोगी हैं जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका पहाड़ी दूध एवं मांस हेतु पशुपालन के लिये, दक्षिण अफ्रीका के पहाड़ी क्षेत्र भेड़ पालन के लिये, आस्ट्रेलिया के पहाड़ी क्षेत्र भेड़ एवं माँस पशु के लिए चरागाह प्रदान करते हैं। पहाड़ी क्षेत्र ढलान युक्त होते हैं और इनकी ऊँचाई पर्वत से कम होती है इसके ढाल पर चाय के बागान लगाये जाते हैं।

<u>पठारी क्षेत्रः</u>

पठारी भाग पथरीले, उबड़ खाबड़, कठोर, रूक्ष मृदा की पतली परत वाले,ढलुआसतह वाले होते हैं जैसे तिब्बत का पठार कृषि के लिये उपयोगी नहीं है परन्तु कुछ पठार कृषि के लिये उपयुक्त हैं जैसे– भारत का दकन का पठार कृषि के लिये अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि यहाँ कपास, गन्ना, गेहूँ, रागी, चना, मोटे अनाज संतरा, आम की खेती बखूबी की जाती है।यदि समतल पठारी भागों पर मृदा का समुचित जमाव पाया जाता है तथा सिंचाई की सुविधा भी हो तो कृषि की जा सकती है। पठारी क्षेत्र के अकृषित भागों में कृषि करने के लिये समय, श्रम एवं धन सब की आवश्यकता पड़ेगी जो बहुत खर्चीला है।

<u>मैदानी क्षेत्रः</u>

मैदानी क्षेत्र कृषि की दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी है जो नदियों के द्वारा लाये गये जलोढ़ मृदा से निर्मित है। यह स्थल का निम्नतम भाग है। मानव का निवास मैदानी क्षेत्र में अधिकतम है।यह आदिकाल से मानव सभ्यता का केन्द्र स्थल एवं हृदय स्थल रहा है। लगभग 80 प्रतिशत से अधिक कृषि कार्य मैदानी क्षेत्र में ही किया जाता है। मैदानी भाग जुताई, बुवाई, सिंचाई, कटाई, आवागमन, सड़क, अवास, परिवहन इत्यादि की दृष्टि से आसान है। यहाँ जनसंख्या घनत्व अधिक पाया जाता है यहां पर पायी जाने वाली विभिन्न मृदा काली, लाल, लेटेराइट, जलोढ़, खादर, बलुई दोमट, दोमट मृदा विभिन्न फसलों के लिये विशेष उपयोगी है जो खाद्य एवं उद्योग हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं। विश्वके प्रमुख मैदान जैसे यांग्टीसी क्यांग, सिक्योंग मैन, ह्वांगहो मैदान, मिसीसिपी मैदान, सिंधु गंगा मैदान, ब्रह्मपु मैदान, यूरोपीय मैदान इत्यादि कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहाँ विभिन्न फसलों जैसे खाद्यान्न फसल गेहूँ, चावल, जौ, बाजरा, रागी, दलहनी फसलें चना, मटर, अरहर, मसूर, मूंग, तिलहनी फसलें सरसों, सूरजमुखी, सोयाबीन, अन्य फसले गन्ना, जूट, कपास, फूल, फल, सब्जियों की खेती इत्यादि की जाती हैं।

उच्चावच के आधार पर कृषि भूमि उपयोग को निम्न रूपों में प्रभावित करता है–

1. उच्चता (Alitude)

धरातलीय ऊँचाई का कृषि पर गहना प्रभाव पड़ता है क्योंकि समुद्र तल से ऊँचाई बढ़ने पर अर्थात् धरातल से लम्बवत् ऊँचाई पर जलवायुविक दशायें तापमान, आर्द्रता, सूर्याताप, हवा, वर्षा, वायुदाव जैसे तत्वों में परिवर्तन हो जाता है। इनकी मात्रा ऊँचाई के साथ घटने लगती है, वायुमण्डल की सघनता विरल होती जाती है जिससे कृषि के लिये अनुकूल दशायें नहीं प्राप्त होती हैं। विषुवत रेखा से उच्च अक्षांशों की ओर कृषि कार्य में परिवर्तन दिखता है। ऊँचाई एवं अक्षांशीय आधार पर वर्गीकृत पेटियाँ उष्ण, शीतोष्ण एवं शीत कटिबन्धीय जलवायु प्रदेशों में विभिन्न ऊँचाई पर कृषि, पशुपालन, वृक्षों की सघटनता अलग–अलग पायी जाती है। 4000 से 6000 मीटर की ऊँचाई पर कोणधारी वन तथा इससे निचले धरातलीय भूभाग पर खाद्यान्न कृषि एवं पशुपालन किया जाता है। हिमालयी क्षेत्र में कृषि 3000 से 3600 मीटर की ऊँचाई तक एवं पशुपालन 3600 से 3400 मीटर तक मिलता है। आल्पस क्षेत्रों में 900 से 1800 मीटर की ऊँचाई पर पशुपालन एवं न्यूजीलैंड में 900 से 1800 मीटर की ऊँचाई पर कृषि का कार्य किया जाता है। ट्रान्स ह्यूमेंस क्रिया के अन्तर्गत चरवाहे शीतकाल में लगभग 2400 मीटर से अधिक की ऊँचाई पर ऋतु परिवर्तन के साथ पलायन कर जाते हैं। उच्चता का प्रभाव सामयिक परिवर्तन के साथ पेड़–पौधे, वनस्पतियों, पशुओं, फसली क्षेत्रों पर पड़ता है। उत्तरी आयरलैंड में उच्चता एवं भूमि उपयोग के मध्य सम्बन्ध के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि प्रत्येक 900 मीटर की ऊँचाई पर 1^{0}F तापमान में कमी आती है जो निम्न है–

- समुद्र तल से 300 मीटर की ऊँचाई तक उन्नत समतल भूमि खाद्यान्न फसलों के उत्पादन के लिये उपयोगी है।
- वृक्षारोपण की ऊपरी सीमा 300मीटर तक है।
- 200 से 300 भी की ऊँचाई खाद्यान्न एवं आलू के लिये महत्वपूर्ण है।
- ऊँचाई के साथ घटते तापमान की अपेक्षा बढती हुई वर्षा तथा हवा भी महत्वपूर्ण होते हैं।
- परीक्षणात्मक वन क्षेत्र की ऊपरी सीमा 472 मीटर तक है।

ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों में मृदा का निर्माण अच्छी तरह नहीं हो पाता जिससे कृषि कार्य नहीं हो जाता जैसे– पोडजोल, पोट, एवं पीटकम जोडजोल मृदा को उर्वरता बहुत कम रहती है।

2. <u>ढालः</u>

ढाल का प्रभाव कृषि पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ता है। कृषि पर सूर्यातप, तापमान, आर्द्रता, वायुदाब, पवनकुंजी एवं पवनकुंजी ढाल, जलवायु, जलस्तर, मृदा, मृदा अपरदन, मृदा तापमान का प्रभाव ढाल प्रवणता पर पड़ता है। तीव्र ढाल पर मृदा का तापमान कम होता है तथा साधारण (मंद) ढाल पर अधिक होता है। अधिक ढलानयुक्त भूमि पर कृषि, सिंचाई, परिवहन, मृदा निर्माण मशीनरी का प्रयोग कठिन होता है। समोच्च रेखीय जुताई के द्वारा ही कृषि कार्य संभव होता है।

सन् 1962 में British Geomorphological Research Group (BGRG) द्वारा ढाल का कोणीय आधार पर वर्गीकरण किया गया है। विद्वान मैकग्रेगर ने ब्रिटेन के ढाल एवं भूमि उपयोग के बीच सम्बन्धों के आधार पर आंशिक ढलान के बारे में सुझाव दिया जो निम्न है–

1. 3^0 (मन्द ढाल)– कृषि कार्य के लिए उत्तम
2. 6^0 (साधारण ढाल)– कृषि कार्य के लिए उपयोगी जल प्रवाह गति धीरे–धीरे एवं नलिकाओं के बनने से पर्याप्त जल निकासी होती है जो कृषि के लिए उत्तम है।
3. 11^0 (नम्र ढाल)– जुताई एवं फसलों की कटाईके लिए अंतिम सीमा निर्धारित किया।
4. 18^0 (तीव्र ढाल)– ब्रिटेन में प्रायः 18^0ढाल वाले क्षेत्र पर कृषि कार्य किया जाता है इससे अधिक ढलान पर स्थायी चरागाह एवं घास क्षेत्र है। मैकग्रेगर ने 20–250 प्रवणता को साधारण खड़ा ढाल कहा।
5. 25^0 (तीव्र खड़ा ढाल)– इस ढाल पर मिट्टी का कटाव अधिक होता है जिससे जुताई नहीं की जा सकती। इस भूभाग पर वृक्षारोपण कार्य उपयुक्त है परन्तु कृषि कार्य कठिन है।

ढाल अधिक होने से अपवाह एवं अपरदन की मात्रा बढ़ जाती है।ढाल के दो गुना वृद्धि से अपरदन में ढाईगुना की बढ़ोत्तरी हो जाती है। ढालों पर खेती के लिये एवं अपरदन को रोकने के लिए सीढ़ीदार खेत बनाये जाते हैं।

फीलीपींस के उत्तर ल्यूजो में लगभग 1.5 किमी0 की ऊँचाई तक सीढ़ीदार खेत बनाकर फसल उत्पादित की जाती है जिसके लिये सिंचाई हेतु जल को बाँस के नलों द्वाराले जाया जाता है। विश्व के अलग–अलग देशों में विभिन्न ढाल प्रवणता पर कृषि कार्य किया जाता है। आल्पस में $15–20^0$ न्यूजीलैण्ड में $25–30^0$ढाल वाले भागों पर कृषि कार्य किया जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि ढाल भी कृषि कार्य को प्रभावित करते हैं।

3.2.2 जलवायु:

कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों में जलवायु का सर्वप्रमुख स्थान है। जलवायु के विभिन्न तत्व जैसे सूर्याताप, तापमान, आर्द्रता, वायुदाब, पवन, वायुराशि, बादल, वर्षण, वर्षा, कुहरा, कुहासा, पाला, तड़ितझंडा, बाढ़, सूखा कृषि को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। भारतीय मौसम विज्ञान के अनुसार कृषि कार्य 50% से अधिक जलवायु द्वारा नियंत्रित होता है। जलवायु की प्रकृति फसलों की उपज को निर्धारित करती है। भिन्न–भिन्न फसलों के लिये भिन्न–भिन्न जलवायुविक दशाओं की आवश्यकता होती है।

(a) तापमान:

कृषि प्रतिरूप, कृषि उत्पादन एवं किसी भी फसल के उत्पादन एवं कृषि कार्य के लिये तापमान का होना अति आवश्यक है। फसलों के जीवनकाल में बुवाई, अंकुरण, पल्लवन, पौध वृद्धि, विकास, पकने तक अलग–अलग तापमान की आवश्यकता होती है।

जहाँ तापमान 15^0–25^0C तक पाया जाता है वहां शीतकालीन गेहूँ, जौ, राई, जई की उपज अच्छी होती है। अधिक तापमान वाली फसलें जैसे– कहवा, कोको,मसाले, तम्बाकू, रबड़, जूट, खजूर जैसी फसलें उत्पन्न की जाती है। कम तापमान वाली फसलें जैसे आलू, चना, सरसों, अलसी है जिनके विकास के लिये लगभग 20^0C का तापमान होना चाहिए। पौधों के विकास की ऊपरी सीमा 60^0C है तथा 40^0C से अधिक तापमान पर फसलें सूखने लगती हैं क्योंकि आर्द्रता मात्रा कम हो जाती है जिससे सिंचाई प्रदान कर आर्द्रता बढ़ाई जाती है। अत्यधिक तापमान को रोकने के लिये आर्द्रता–संरक्षण जुताई पद्धति अपनायी जाती है जैसे चाय के बागानों को तीखी धूप से बचाने के लिए सिल्वर ओक वृक्ष लाये जाते हैं जिससे सूर्य की तीखी धूप से सुरक्षा प्रदान की जाती है। प्रतिकूल क्षेत्रों में भी जैसे– मरूस्थल मरुधान एवं उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों की उपज को छाया प्रदान किया जाता है।

शीतोष्ण एवं शीत प्रधान क्षेत्रों में ग्रीन हाउस प्रभाव द्वारा फसलों, सब्जियों, फूलों की खेती की जाती है। फसलों की उपज के लिए अधिकतम एवं न्यूनतम सीमा निर्धारित होती है। अन्य परिस्थिति में फसलें प्रभावित हो जाती हैं। तापमान के वितरण में अक्षांश/ऊँचाई, सामयिक/मौसमी परिवर्तन, महाद्वीपीयता जैसे कारक प्रभावित करते हैं। भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में सालभर ऊँचा तापमान रहता है जबकि तापान्तर बहुत कम होता है। उच्च अक्षांशों में तापमान कम होता है तथा सागर से स्थल की ओर तापान्तर अधिक होता है। जिसका स्पष्ट प्रभाव फसलों पर देखने को मिलता है। भारत में ग्रीष्मकाल में वर्षा एवं सिंचाई के सहयोग से चावल एवं शीतकाल में गेहूँ का उत्पादन किया जाता है। फसलों के लिये अतिशुष्कता एवं अतिशीतलता हानिकारक होती है। अतिशुष्कता के कारण फसलों में वाष्पोत्सर्जन अधिक होता हैऔर नमी कम हो जाती है जिससे पौधे सूख जाते हैं तथा अतिशीलता के कारण पौधे वाष्पीकरण की मात्रा के अनुसार जल ग्रहण नहीं कर पाते हैं जिससे शरीरिक सूखा (Physiological Drought) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः फसलों में अंकुरणा, वृद्धि एवं विकास हेतु तापमान एक आवश्यक एवं उपयोगी कारक है।

(b)हवाः

धरातल पर पवन आर्द्रता एवं पवन की वाहक, वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन जैसे कार्य को सम्पादित करती है। यह एक अप्रत्यक्ष कारक है। हवायें शीत क्षेत्र की शीतलता गर्म क्षेत्र की ओर तथा ग्रीष्म क्षेत्र की हवायें शीत क्षेत्र की ओर परिवहन कर दी जाती है। जिससे तापमान में परिवर्तन होता रहता है। तेज हवायें फसलों को नुकसान पहुँचाती हैं पवन के द्वारा ही बीजों एवं परागों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवहन होता है। अनेक स्थानीय पवनें फसलों के लिये अभिशाप और वरदान दोनों साबित होती हैं जैसे–फ्रांस में मिस्डल पवन भूमध्य सागरीय कृषि फलों के बागानों को नुकसान पहुँचाती हैं जो

ठंडी पवन है। सहारा की सिराकू तथा आल्पस की फान गर्म पवनें, राकी की चिनूक पवन पर्वत से नीचे उतरते समय बर्फ को पिघला देती हैं जिससे किसान खेती का कार्य करते हैं। सुमात्रा में कारो पर्वत बोहोराक पवन से तम्बाकू की फसल को नुकसान पहुँचता है।

(c)<u>वर्षाः</u>

फसलों के उत्पादन के लिये वर्षा एक महत्वपूर्ण कारक है क्यूंकि बिना जल के पौधों की वृद्धि एवं विकास संभव नहीं है। वर्षा के द्वारा मृदा की नमी बनी रहती है और पेड़ पौधे मृदा से नमी ग्रहण करत हैं। भारत देश की कृषि बारानी या वर्षा आधारित कृषि कहलाती है। विश्व की अधिकांश कृषि वर्षा पर ही निर्भर है। वर्षा के द्वारा ही भूमिगत जल का संतुलन बना रहता है जिससे कृत्रिम सिंचाई में लाभ मिलता है। धरातलीय भूभाग पर वर्षा की मात्रा असमान पायी जाती है कहीं वर्षा नगण्य, कहीं 25 सेमी0 से कम, कहीं 25–50 सेमी0, कीं 50–100 सेमी0 तो कहीं 200 से 250 सेमी0 तो कहीं 250 सेमी0 से अधिक वर्षा होती है। कृषि कार्य इसी वर्षा की मात्रा पर निर्धारित ोती है। मरूस्थलीय भाग अल्प वर्षा और भूमध्य रेखीय क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा वाला क्षेत्र है जहाँ फसल उपज एवं कृषि कार्य की दशायें अलग–अलग है। अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्र में गन्ना, चावल, रबर, जूट, चाय जैसी फसलें सामान्य वर्षा वाले क्षेत्र में गेहूँ, कपास, मक्का तथा कम वर्षावाले क्षेत्र में ज्वार–बाजरा, जौ, दलहन, तिलहन जैसी फसलें का उत्पादन होता है। पशुपालन, मछली पालन जैसे उद्यम के लिये भी जल की आवश्यकता होती है। वर्षा में अभाव में सूखे की स्थिति उत्पन्नहो जाती है जिससे फसल, जीव जन्तु, पेड़ पौधे, मानव सभी प्रभावित हो जाते हैं। अत्यधिक वर्षा और अत्यधिक कम वर्षा दोनों ही फसलों की उपज के लिये हानिकारक है। अत्यधिक वर्षा से मृदा का निर्माण सही ढंग से नहीं हो पाता एवं अत्यधिक वर्षा से भूमि बंजर हो जाती है जो कृषि के लिये उपयुक्त नहीं है।

(d)<u>पालाः</u>

कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों में सबसे महत्वपूर्ण कारक पाला है। भूमध्य रेखा से उच्च अक्षांशों की ओर बढ़ने पर पाला का प्रभाव बढ़ने लगता है। यह उच्च अक्षांशों की ओर अधिक पड़ता है जो कृषि के लिये घातक साबित होता है। यह फसलों के विकास को अवरूद्ध कर देता है जिससे फसलें समाप्त हो जाती हैं। उत्तरी यूरोप, साइबेरिया, उत्तरी कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका में इसका अधिक प्रभाव पड़ता है। भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में पाला का प्रभाव नगण्य होता है। सागर तटीय भागों में पाला का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि जलवायु सम रहती है।पाले का सर्वाधिक विनाशकारी प्रभाव फल, सब्जी, दलहन एवं तिलहन पर पड़ता है। ऐसे क्षेत्र जहाँ पाला की घटना सामान्य हैवहां पाला सहन करने वाली फसलें बोई जाती हैं। पाला के प्रभाव से फल, फूल, बागान, फसलों की गुणवत्ता, स्वाद, मिठास, बाजारी–मूल्य घट जाती है। उष्ण कटिबंधीय अक्षांशों में खट्टे मीठे फलों के बागान पाले के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं। तापमान में अत्यधिक कमी से पाला की संभावना बढ़ जाती है जिसे तापमान बढ़ाकर कुछ हद तक कम किया जा सकता है। विश्व के अधिकांश विकसित देशों में जैसे– कैलीफोर्निया, रोनघाटी, फ्लोरिडा, जापान जैसे देशों में प्रभावी हीटरों, विद्युत मोटर का प्रयोग कर

तापमान बढ़ाकर फसलों की सुरक्षा की जाती है। यह मंहगी व्यवस्था है। एशिया के विकासशील देशों में घास फूस के आवरण से या सिंचाई द्वारा फसलों की सुरक्षा की जाती है।

(e)हिमपातः

कृषि क्रिया एवं फसलों को प्रभावित करने वाले कारकों में हिमपात सर्वप्रमुख है। हिमपात से तापमान में कमी आती हैजिससे बीज के अंकुरण, वृद्धि एवं विकास में बाधा पहुँचती है। अत्यधिक हिमपात से फसल, पशु एवं पशुओं के चारे का अभाव उत्पन्न हो जाता है। खेतों की मिट्टी हिम के कारण जम जाती है जिससे खेत की भूमि तैयार करने में कठिनाई उत्पन्न होती है।

3.2.3 मृदाः

मृदा पेड़—पौधे, वनस्पतियों, जीव जन्तुओं, मनुष्य के लिये जीवन का आधार है क्योंकि मृदा ही सबकी पोषक है।यह एक आधारभूत संसाधन है जिस पर कृषि कार्य एवं मनुष्य की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। भूतल से 15—20 सेमी0 की गहराईतक मृदा की परत निर्धारित है जिस पर कृषि कार्य किया जाता है। मृदा की उर्वरता, गुणवत्ता, उत्पादकता को प्रभावित करती है। यह खनिज, जैव पदार्थ, जल एवं वायु के मिश्रणसे बनती है। जोफे एवं मारबट के अनुसार ''मृदा प्राकृतिक पदार्थों पर प्राकृतिक शक्तियों द्वारा निर्मित प्राकृतिक पदार्थहै।'' (Soil is a nature body, developed by natural forces acting on natural materials) मृदा के निर्माण के प्रमुख चार घटक खनिज, जैव पदार्थ, जल एवं हवा में सर्वाधिक मात्रा खनिज पदार्थों की (लगभग 80% से अधिक) होती है। तथा मृदा की प्रकृति के निर्धारण में प्रमुख कारक मूल पदार्थ, उच्चावच, जलवायु, वनस्पति, मृदा, जैविक समूह मानवीय उपयोग है। H. Jenny ने 1941 में मृदा निर्माण प्रक्रिया का निम्नलिखित सूत्र दिया—

S = Fe Clor Pt

जहाँ S = Quality of Soil

F = Function

Cl = Climate

O = organism

r = Relief

P = Parent material

t = time

मृदा निर्माण के दो प्रमुख कारक सक्रिय एवं निष्क्रिय हैं सक्रिय के अन्तर्गत जल, वायु एवं जीवमण्डल तथा निष्क्रिय कारक के अन्तर्गत मूल पदार्थ, उच्चावच एवं समय।

मृदा निर्माण के कारक निम्नलिखित हैं–

(a)मूल पदार्थ(Parent Material)

मृदा का मूल स्वरूप बड़े–बड़े टुकड़ों के रूप में होता है जिनके विखण्डन के उपरान्त मृदा का निर्माण होता है यह क्रिया सूर्यातप, तापमान, वर्षा, तड़ितझंझा, पाला, हवा, कुहरा, कुहासा, एवं मौसमी घटनाओं द्वारा होती है। शैल पर गर्मी, ठण्डी, वर्षा, आर्द्रता, शुष्कता, हिमप्रवण, हिम पिघलाव द्वारा कमजोर होने पर टूटती है और पेड़ पौधे, वनस्पतियों, जीव जन्तुओं, कीटाणु, जीवाणु, बैक्टीरिया आदि के द्वारा मृदा का निर्माण होता है। यह प्रक्रिया लम्बी अवधि का परिणाम है। इसमें रासायनिक, भौतिक एवं जैविक कारकों द्वारा परिवर्तन होते रहते हैं जिससे मृदा का निर्माण होता है। मृदा की रासायनिक अवस्था के अन्तर्गत मृदा उर्वरता, मृदा जीवाणु, जैविक कारक, क्षार विनियम एवं पी.एच. मान है तथा भौतिक अवस्था के अन्तर्गत मृदा गठन एवं संरचना, मृदा नमी, मृदा वायु एवं मृदा तापमान है।

मृदा गठन एवं संरचनाः

मृदा गठन में छोटे–बड़े अलग–अलग आकार की मृदा के कण शामिल रहते हैं जैसे बोल्डर, कोब्वल, पेब्वल, ग्रेवेल, बालू, गाद, मृत्तिका जिसमें सबसे बड़ा बोल्डर एवं सबसे महीन कण मृत्तिका का होता है। इनका प्रत्येक भूमि में अलग–अलग अनुपात होता है जिससे दोमट मिट्टी, बलुई मिट्टी, बलुई दोमट इत्यादि इन सभी की क्षमता, गुण, स्वभाव अलग–अलग होने के कारण कृषि उपज भी अलग–अलग होती है।

मृदा की संरचना पौधों के वृद्धि एवं विकास को प्रभाविक करती है। कुछ शैल कठोर होती है कुछ मुलायम, कठोर शैल में पेड़ पौधों की जड़े आसानी से नीचे नहीं जा पाती हैं जबकि मुलायम एवं ढीली संरचना वाली शैलों में जड़ें आसानी से गहराई में चली जाती है।

मृदा नमीः

बीजों के प्रस्फुटन, वृद्धि एवं विकास तक मृदा में नमी की आवश्यकता पड़ती है जल के अभाव होने से पेड़ पौधे सूख जाते हैं। पेड़–पौधे जड़ों के द्वारा मिट्टी से नमी ग्रहण करते हैं। जल की मात्रा अधिक हो जाने से मृदा में वायु का संचार कम हो जाता है जिससे ऑक्सीजन की कमी हो जाती है तथा पेड़–पौधों को पोषक तत्व सुचारू रूप से नहीं मिल पाते और सूख जाते हैं।

मृदा वायुः

मृदा के खाली स्थानों में वायु भरी होती है, मृदा में जल एवं वायु का अनुपात व्युत्क्रम होता है अर्थात् यदि वायु अधिक हैतो नमी कम एवं नमी अधिक हैतो वायु कम पायी जाती है। मृदा में वायुमण्डल की तुलना में O_2 कम एवं CO_2 अधिक पाया जाता है क्योंकि जड़ें श्वसन क्रिया द्वारा CO_2

अधिक छोड़ती हैं तथा वायु संचार अधिक होने से O_2 की मात्रा मिलती रहती है जो पेड़ पौधों, जन्तुओं के लिये लाभदायक होती है। वायु के अभाव में मृदा में उपस्थित CO_2 कार्बनिक अम्ल बनाती है जिससे भूमि में O_2 की कमी से श्वसन क्रिया ठीक ढंग से नहीं हो पाती है और पौधों की मृत्यु हो जाती है।

<u>मृदा तापमानः</u>

मृदा में पाया जाने वाला तापमान पौधों की वृद्धि के लिये अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इससे पौधों की जड़ों का विकास एवं मृदा जीवाणुओं की क्रियाशीलता बनी रहती है जिससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है। केनन महोदय ने 1925 में बताया कि वायु–संचार एवं मृदा–तापमान का पौधों की जड़ों की वृद्धि से सीधा सम्बन्ध होता है। यह तीन प्रकार का होताहै। प्रथम अधिकतम तापमान जिससे पौधों की वृद्धि रूक जाती है द्वितीय अनुकूलतम तापमान जिससे जड़ों की सर्वाधिक वृद्धि होती है तथा तृतीय निम्नतम तापमान इससे जड़ों की वृद्धि रूक जाती है।

विभिन्न पौधों एवं फसलों की वृद्धि के लिये अलग–अलग तापमान की आवश्यकता होती है उथली जड़ वाली फसलों को ऊँचा तापमान वं गहरी जड़ वाली फसलों को अपेक्षाकृत कम तापमान की आवश्यकता होती है। मृदा घोल में स्वतंत्र हाइड्रोजन आयन का अनुपात पी.एच. मान के रूप में पाया जाता है जब पी.एच. का मान 7 होता है तो इसे उदासीन (Natural) प्रतिक्रिया कहते हैं। पी.एच. 7 से कम मान अम्लता एवं ऊपर वाले मान क्षारीयता को प्रदर्शित करते हैं। उपयुक्त पी.एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच माना जाता है।

<u>मृदा उर्वरताः</u>

मृदा में पायी जाने वाली उर्वरता एवं पोषक तत्व पौध वृद्धि एवं विकास में सहायक है।मृदा में नाइट्रेट की अधिकता से जड़ों का विस्तार क्षैतिज होता है, फास्फोरस के प्रयोग से पौधों की जड़ों का अधिक विस्तार होता है। लोहा एवं मैग्नीशियम की कमी से अनन्नास एवं तम्बाकू में क्लोरोसिस रोग होता है। नाइट्रोजन की कमी से गेहूँ में एलोवेरी रोग, जिंक की कमी से धान में खेरा रोग तथा पोटाश की कमी से आलू की पत्तियों का रंग पीला व मुरझाने लगता है।

<u>मृदा–जीवांश पदार्थः</u>

मृदा में जीवांश पदार्थ फसल अवशिष्ट, जीवांशयुक्त खाद, कम्पोस्ट खाद, हरी खाद ये सभी पेड़–पौधों, वनस्पतियों, फसलों को पोषक तत्वप्रदान करते हैं जिससे मृदा संरचना में सुधार, जलधारण क्षमता में वृद्धि, तापमान में वृद्धि, जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि, पोषक तत्वों की धुलनशीलता में वृद्ध हो जाती है।

<u>जैविक कारकः</u>

जीवधारियों द्वारा पौधों के वृद्धि एवं विकास पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव को जैविक कारक कहते हैं जैसे– बैक्टीरिया, फंजाई, वायरस, शैवाल इत्यादि पेड़ पौधों को प्रभावित करते हैं। पौधों तथा जीव जन्तुओं के मृत अवशेष मृदा में पोषक तत्व का निर्माण करते हैं जो कृषि के लिये आवश्यक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कृषि को प्रभावित करने में मृदा एवं उससे सम्बन्धित अवयवों का योगदान है।

3.2.4 जल संसाधनः

कृषि विकास के लिए जल की उपलब्धता एवक आवश्यक आवश्यकता है। सभी प्रकार की कृषि जल द्वारा ही संभव है चाहे वह गहन कृषि हो, विस्तृत कृषि हो या अन्य। गहन कृषि में जल की आपूर्ति स्थानीय दशाओं जैसे लघु सिंचाई, ट्यूबवेल, नलकूप, नहरी सिंचाई द्वारा की जाती है। जल विहीन या मरूस्थलीय क्षेत्र में कृषि कार्य अत्यन्त दुष्कर है।

जल उपलब्धता के प्रमुख चार स्रोत हैं– सतही जल, भूमिगत जल, वायुमण्डलीय जल एवं महासागरीय जल।

(a)<u>सतही जलः</u>

भूसतह पर पाया जाने वाला जल सतही जल कहलाता है जो नदी, झील, तालाब, ग्लेशियर इत्यादि में पाया जाता है जिनसे नहरें निकाली जाती हैं जो दूर–दराज के क्षेत्रों में सिंचाई के लिये जल पहुँचाया जाता है और कृषि कार्य किया जाता है। मैदानी क्षेत्रों में नहर बनाने की आदर्श दशायें होती हैं। वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में सिंचाई एक महत्वपूर्ण क्रिया है। पर्वतीय क्षेत्रों से निकलने वाली नदियों में वर्षभर जल प्रवाहित है परन्तु सामयिक मौसम में जल की मात्रा परिवर्तित होती रहती है। यह सिंचाई की गहनता को प्रभावित करती है जो प्रति इकाई क्षेत्र की उत्पादकता एवं और फसल प्रतिरूप को प्रभावित करती है।

(b)<u>भूमिगत जलः</u>

धरातल के नीचे पाया जाने वाला जल भूमिगत जल कहलाता है जिसकी मात्रा और गुणवत्ता भूगर्भिक संरचना पर निर्भर करता है। जहाँ भूमिगत जल कम पाया जाता है वहाँ सिंचाई के लिये जल उपलब्ध कम हो पाता है और उत्पादन घट जाता है। भूमिगत जलतल ऊपर आने के प्रमुख कारण नदियों का जल, झील, तालाब, वर्षा का जल हैजो शैल रन्ध्रों की सहायता से धरातल के नीचे एकत्रित होता रहता है जिसे ट्यूबवेल, नलकूप, कुएँ द्वारा प्रयोग करने के लिये निकाला जाता है। धरातल के नीचे जल का वितरण असमान पाया जाता है।

(c)<u>अन्य जल स्रोतः</u>

अन्य जल स्रोत के अन्तर्गत वायुमण्डलीय जल, महासागरीय, सागरीय, अन्तःसागरीय क्षेत्र आते हैं। बादलों के द्वारा अधिक मात्रा में आर्द्रता एवं वर्षा प्राप्त होती है परन्तु ये हमेशा जल उपलब्ध नहीं कराते। वैज्ञानिक कृत्रिम वर्षा की खोज किये हैं जो कि मंहगी तकनीक है। महासागरों एवं आंतरिक समुद्री जल पृथ्वी के जल 93% है जो कि उपयोगी नहीं होता।

3.2.5 वन क्षेत्रः

वन क्षेत्र सामान्यतः अस्थिर और नव्यकरणीय संसाधनों में से है जो कि जलवायु, मृदा स्थिरता, जल से प्रभावित होता है। वनस्पतियों की सघनता मृदा अपरदन, मृदा अवनयन, अवकर्षण को रोकती है। वन क्षेत्र जलवायु एवं मौसम को नियंत्रित करती है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान देती है। फसलों के लिये छाया प्रदान करती है। वनस्पतियाँ मृदा के पोषक तत्व, नमी, जल को बनाये रखती हैं।

3.3 सारांशः

इस तृतीय इकाई में कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों से अवगत हुए होंगे जिसमें यह बतायागयाकि कुषि कार्य किन—किन कारणों से प्रभावित होते हैं जैसे— उच्चावच, जलवायु, मृदा, जल संसाधन एवं वन क्षेत्र। उच्चावच के अन्तर्गत ऊँचाई एवं ढाल का प्रभाव किस रूप में पड़ता है। जलवायु के सभी तत्व सूर्यातप, तापमान, आर्द्रता, वायुदाब, कुहरा, पाला, हिमपात, वर्षा, वर्षण, वाष्पीकरण, कृषि कार्य पर अपना प्रभाव डालते हैं। मृदा से सम्बन्धित सभी रासायनिक, भौतिक एवं जैविक तत्व मृदा निर्माण प्रक्रिया से लेकर उसके अवयव कृषि के लिये प्रमुख भूमिका निभाते हैं। विभिन्न माध्यमों से जल स्रोत कृषि के लिय जीवन रक्षक का कार्य करती है। वन क्षेत्र मृदा, जलवायु,जल सभी को नियंत्रित करते हैं वातावरण का प्रभाव सामान्य रहता है जो कृषि के लिये उपयुक्त है।

3.4 शब्द सूची

उच्चावच (Relief)
उच्चता (Altitude)
अपवाहन तंत्र (Drainage system)
ढाल (Slope)
समोच्च रेखीय जुताई (Contour Harvesting)
तापान्तर पी.एच. वैल्यू (Ph. Value)
प्राकृतिक पदार्थ (Natural Material)
मूल पदार्थ (Parent Material)
मृदा नमी (Soil Moisture)
मृदा संरचना (Soil Structure)
भूमिगत जल (Underground water)
सतही जल (Surface water)
समोच्च रेखीय कृषि (Contour Line Agriculture)

3.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तरः

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. कृषि को प्रभावित करने वाले कारक है—

(a) उच्चावत (b) जलवायु (c) मृदा (d) सभी

2. British Geomorphological Research Group (BGRG) ने ढाल का वर्गीकरण कब किया

(a) 1960 (b) 1962 (c) 1963 (d) 1964

3. अधिक तापमान वाली फसलें हैं–

(a) जूट (b) रबर (c) चावल (d) सभी

4. पौधों के विकासकी ऊपरी सीमा है–

(a) 30^0C (b) 40^0C (c) 50^0C (a) 60^0C

5. मैक्ग्रेगर ने कितने डिग्री कोणीय ढाल को जुताई वं फसलों की कटाई के लिये अंतिम सीमा निर्धारित किया–

(a) 3^0 (b) 6^0 (c) 11^0 (d) 18^0

6. H. जेनी ने मृदा निर्माण प्रक्रिया का सूत्र कब दिया?

(a) 1939 (b)1941 (c) 1942 (d) 1945

7. किस विद्वान ने बताया कि वायु संचार एवं मृदा तापमान का पौधों की जड़ों की वृद्धि से सीधा सम्बन्ध होता है।

(a) मैकग्रेगर (b) केनन (c) जेनी (d) दाकूचायेव

8. सामान्य मृदा का पी.एच. मान कितना है–

(a) 4–5 (b) 5–6 (c) 6.5–7.5 (d) 7–8

<u>आदर्श उत्तरः</u>

1. (d) 2. (b) 3. (d) 4. (d) 5. (c) 6. (b) 7. (b) 8. (c)

3.6 <u>सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें:</u>

1. Tiwari, R.C. (2007): 'कृषि भूगोल', प्रयाग पुस्तक भवन, प्रयागराज।
2. Gautam, Alka, (2016) 'Agricultural Geography', Sharda Pustak Bhawan, Prayagraj.
3. Hussain, Mazid, (2016): 'कृषि भूगोल', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. Mohammad, Ali & Hanafi, Yasir Saeed, (2013), 'Agricultural Geograpy', Vasundhara Prakashan, Gorakhpur.
5. Shafi,Mohammad (2006), 'Agricultural Geography', Dorling Kindessley Publication, New Delhi.

3.7 <u>अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)</u>

1. कृषि पर उच्चावच के प्रभाव का वर्णन कीजिए।
2. फसल उत्पादन को प्रभावित करने वाले जलवायु के तत्वों के बारे में लिखिए एवं तापमान की भूमिका का वर्णन कीजिए।
3. मृदा उर्वरता को आप किस प्रकार परिभाषित करेंगे।
4. मृदा में कॉन–कौन से पोषक तत्व पाये जाते हैं।
5. समोच्च रेखीय कृषि से आप क्या समझते हैं?
6. मृदा संरचना एवं गठन का वर्णन कीजिए।
7. कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिये जैविक खाद की क्या भूमिका है।

<u>नोट–</u> इकाई का अध्ययन कर अभ्यास प्रश्नों के उत्तर स्वयं लिखिए।

MAGO-104 कृषि भूगोल

इकाई 4— कृषि को प्रभावित करने वाले मानवीय कारक

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 कृषि को प्रभावित करने वाले मानवीय कारक

4.3.1— सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक

4.3.2— जनसांख्यिकीय कारक

4.3.3— तकनीकीय कारक

4.3.4— आर्थिक कारक

4.3.5— राजनैतिक कारक

4.4 सारांश

4.5 शब्द सूची

4.6 परिक्षोपयोगी बहुविकल्पी प्रश्न

4.7 महत्वपूर्ण पूस्तकें एवं सन्दर्भ

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत आप कृषि को प्रभावित करने वाले मानवीय कारकों के अध्ययन क्षेत्र में आने वाले जनसांख्यिकीय कारक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक, आर्थिक कारक तथा राजनैतिक कारकों का अध्ययन करेंगे। जनसांख्यिकीय कारक के अंतर्गत जनसंख्या वितरण, जनसंख्या घनत्व, कृषि में लगी जनसंख्या, जनसंख्या का स्थानान्तरण, आर्थिक कारकों के अन्तर्गत बाजार, श्रम, परिवहन, कृषि कार्य तथा उद्यम, यान्त्रीकरण व तकनीकी ज्ञान, क्षेत्र का विशिष्टीकरण तथा आर्थिक प्रशासनिक प्रतिक्रियाएं, कृषि कार्य को प्रभावित करने में राजनैतिक कारक भी प्रमुख है। इसके अलावा कृषि क्षेत्र को सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के द्वारा प्रभावित जोत के आकार तथा भू—स्वामित्व भी बडे पैमाने पर अपना प्रभाव दिखाते हैं।

4.2 उद्देश्य

कृषि भूगोल के इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप—

- कृषि को प्रभावित करने वाले जनसांख्यिकीय कारकों को भलिभांति समझ सकेंगे।

- कृषि को प्रभावित करने वाले मानवीय कारकों को भलिभांति समझ सकेंगे।
- कृषि को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक को भलिभांति समझ सकेंगे।
- कृषि को प्रभावित करने वाले राजनैतिक कारक को भलिभांति समझ सकेंगे।
- कृषि के भू–जोत में परिवर्तन के अन्य कारकों को भी समझ सकेंगे

4.3 कृषि को प्रभावित करने वालेमानवीय कारक

कृषि क्षेत्र के लिए जनसांख्यिकीय, सामाजिक, आर्थिक आदि कारकों का महत्वपूर्ण योगदान है। इनके द्वारा ही कृषि कार्य को सफल बनाया जाता है। तथा इनके ही द्वारा कृषि क्षेत्र को विशेष बनाया जाता है। और आगे चलकर इन्ही कारकों द्वारा कृषि प्रदेश का उदम होता है। जिसे विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों द्वारा विभक्त किया गया है। जैसे– गेहूँ उत्पादित क्षेत्र, चावल उत्पादित क्षेत्र, गन्ना उत्पादित क्षेत्र आदि। कृषि क्षेत्र में भिन्नताएं प्रमुख कारकों से उत्पन्न होती है जिसे आप कई वर्गों मे बांट सकते हैं ये कृषि को प्रभावित ही नहीं बल्कि उनके जीन के गुणों को भी बदल देती हैं जो निम्न है– जनसांख्यिकीय, आर्थिक कारक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक तथा राजनैतिक कारक आदि हैं।

4.3.1 सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक

भौतिक कारकों के अलावा सामाजिक एवं सास्कृतिक कारणों से भी कृषि क्षेत्र में प्रभाव पड़ता है। इन कारकों को संस्थागत माना जाता है। कृषि को मानव जगत किस परिवेश में अपना रहा है यह भी उस स्थान का पर्यावरण, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मानताएँ मूख्य रूप प्रभावी होता है। इसका असर कृषि पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं पड़ता है। कृषि का सबसे महत्वपूर्ण कार्य लोगों का जीवकोपार्जन करना तथा व्यापार को प्रभावी बनाना है। स्टाम्प महोदय ने स्पष्ट किया है कि सामाजिक आर्थिक कारकों से भू–उपयोग पर अधिक प्रभाव पड़ता है। वेगनर ॅ(हदमत च्ण्ज., 1964 जीम भ्नउंद नेम व ि जीम म्ंतजी) और बोसरूप (ठेंमदच. म्., जीम ब्वदकपजपवद व ि जीम ।हतपबनसजनतंस ळतवूजी) ने कृषि पर सबसे आधिक प्रभाव डालने वाले कारकों में मानवीय एवं सामाजिक कारक प्रमुख माना है। सामाजिक व्यवस्थाओं और संगठनों का प्रभाव कृषि पर स्पष्ट होता है। सोवियत रूस की कृषि, चीन की प्राचीन कृषि उत्तर दक्षिण अमेरिका की कृषि तथा वर्तमान में इन देशों की कृषि सामाजिक सांस्कृतिक संगठनों को बदले रूप के कारण कृषि प्रभावित हुई है। जिसके परिणाम स्वरूप कृषि पद्धतियों एवं प्रकारों में परिवर्तन आया है। इस प्रकार बदले तकनिक एवं बदलते समाज, विकास की होड़, कृषि को अधिकतम प्रभावित किये हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं विशेष कर धर्म, समाज, रीति–रीवाज, आदतें, जातिगत संस्कार आदि भी कृषि को प्रभावित किये हैं। इसमें खेतों के आकार प्रकार भू–स्वामित्व, काश्तकारी, कृषि कार्य, कृषि स्वरूप विभिन्न आर्थिक सामाजिक क्रिया–कलाप आदि प्रभावित होते है।

आदिम जनजातियों द्वारा अपने जीवकोपार्जन हेतु संगठित रूप से कृषि करते हैं कुछ धार्मिक समुहों में विशेष फसलों पर प्रतिबन्ध होता है जैसे पंजाबी लोगों में तम्बाकु मुस्लिम में सुगर, हिन्दू में गौमांस पर प्रतिबन्ध है।

भू–स्वामित्व

भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए लोगों में प्रतिस्पर्धा होती है सरकारी व्यवस्था इन्हें प्रोत्साहन प्रदान करते हैं। इसमें भू–स्वामित्व एक पहलू है। प्राचीन समय में भूमि पर सामूहिक अधिकार होता था लेकिन वर्तमान समय में व्यक्तिगत स्वामित्व है भूमि को हैसियत के सुचक के रूप में देखा जात है जिसके लिए लोगों में अधिक चाहत की होड़ लगी है चीन, रूस, पूर्वी युरोप में सामूहिक कृषि पद्धति का प्रचलन है लेसली साइमन के द्वारा–भूमि का अधिपत्य कृषि क्षेत्र को कई प्रकारों से प्रभावित करते हैं। जो निम्नवत हैं–

1. भूमि के आकार प्रकार कृषि क्षेत्र की योजना एवं लाभों का समय निर्धारित करते है।
2. भूमि विकास में लगा धन कृषि के माध्यम से प्रयोग में लाया जा सकता है।
3. कृषि विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण धन एवं भू–स्वामित्व के प्रकार है।
4. भूमि कर, लगान भी भू–स्वामित्व के प्रकारों पर ही सुनिश्चित होता है।
5. कृषि के क्षेत्र में लगने वाला धन भू–स्वामित्व के प्रकारों पर सुनिश्चित होता है।
6. कृषि क्षेत्र का विकास, भूमि को बेचना या महसूल पर देना आदि भू–स्वामित्व के प्रकार पर सुनिश्चित करते हैं।

भू–स्वामित्व की व्यवस्था किसान संगठनों में अस्थिरता को जन्म देती है। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण चीन, सोवियत रूस में क्रान्ति का उदय हुआ आज के वर्तमान समय में विश्व के कई देशों में (दक्षिण अमेरिका एवं एशियाई देश) इस प्रकार की व्यवस्था में तीव्रता से सुधार करने की आवश्यकता है।

भारत की कृषि में भू–स्वामित्व से सम्बन्धित अनेक समस्यायें पायी जाती हैं. जिनके पास भू–स्वामित्व होता है वे स्वयं कृषि कार्य नहीं करते बल्कि भूमि हीन श्रमिकों द्वारा कृषि कार्य कराते है या भूमि को बट्टे पर देते हैं इस प्रकार एक ऐसा वर्ग है जो हमेशा दूसरे की भूमि पर कृषि करता है और अधिक लाभ से अछूता रहता है जिसके परिणाम स्वरूप वह कृषि कार्य बिना मन के करता है जिससे कृषि क्षमता निरन्तर प्रभावित होती है। इस प्रकार की व्यवस्था उत्तर तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में देखी जाती है। पश्चिम उत्तर प्रदेश के विकास का मूल मंत्र भू–स्वामित्व ही है।

भू–स्वामित्व सम्बन्धित नियमों में प्रादेशिक भिन्नता पायी जाती है। फ्रायर ने विश्व के भू–स्वामित्व को चार वर्गों में बांटा है।

1. सामूहिक भू–स्वामित्व
2. बड़े इस्टेट भू–स्वामित्व
3. भू–स्वामित्व कृषक

4. असामी कृषि

1. **सामूहिक भू–स्वामित्व–** यह प्रारम्भिक कृषि है जो आज अनेको रुपों में की जाती है इजराइल में किब्बूज, मैक्सिको मे इजिडो सोवियत रूस में कोल खोज व सामूहिक फार्म, चीन में कम्यून, सरकारी फार्म या कुग्शी सामूहिक प्रकार की व्यवस्था है, इसमें भू–स्वामित्व का व्यक्तिगत अधिकार न होकर गाँव या समाज का होता है।

2. बडे इस्टेट भू–स्वामित्व–यह व्यवस्था प्राचिन समय से लेकर वर्तमान समय तक विद्यमान हैविशेषकर प0 यूरोप, द0 एशिया, फिलिपीन्स देश तथा लैटिन अमेरिका के देशों में वन्शानुगत पायी जाती है रूस में सोवखोज कहते हैं, यह फार्म सामूहिक फार्म से बड़े होते है। इन फार्मों पर कृषि मैनेजर एंव श्रमिकों के सहयोग से होती है।

3. भू–स्वामित्व कृषक– इसमें कृषक स्वयं भू–स्वामी होता है। जिसके कारण यह सबसे उत्तम

व्यवस्था है इस व्यवस्था मे फार्म छोटे आकार के होता हैं। लेकिन यह माना जा सकता है कि जिस सम्पत्ति पर भू–स्वामी का अधिकार होता है उसे सुरक्षित एवं विकसित करने की स्वयं में सबल प्रेरणा होती है।

4.असामी कृषि–इस व्यवस्था में कृषक भू–हीन होता है जिसके पास स्वयं कि भूमि नहीं

होती है वह भूमि–स्वामी को लगान देता है इस लगान को भू–स्वामी तीन रूपों में लेता है मुद्रा, बटाई तथा श्रम।

भू–स्वामी द्वारा श्रमिकों को श्रम के बदले भूमि की कब्जेदारी दी जाती है। असामी कृषकों के अनेक प्रकार हैं, जैसे– रेहन दार काश्तकार तथा पट्टेदार काश्तकार, शिक्मी काश्तकार, गैर मजूरुआ काश्तकार, कब्जेदारी काश्तकार आदि है।

जोत का आकार

कृषि के विकास में जोत के आकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है इनके मध्य कृषि के प्रकार एवं गहनता में संबन्ध पाया जाता है जोत का आकार प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों से नियंत्रित होता है। उच्चावच, अपवाहतंत्र, जनसंख्या वृद्धि, कृषकों की संख्या एवं भूमि पर उनका दबाव आर्थिक स्तर आदि के कारण स्थानी स्तर पर भू–जोत में असमानता पायी जाती है। तथा विश्व स्तर पर जोत के आकार में भिन्नता पायी जाती है जैसे– यूरोप में 10 हेक्टेयर, द0 अमेरिका में 90 हेक्टेयर, आस्ट्रेलिया 1137 हेक्टयर तथा एशिया में 5 हेक्टेयर का भू–क्षेत्र का आकार पाया जाता है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए विभिन्न प्रकार का भू–जोत का आकार सुझाया गया है। डां0 मान ने द0 भारत के लिए भू–जोत का आकार 8 हेक्टेयर, प्रो0 कोल्बर्ट ने पंजाब के लिए 15 हेक्टेयर, उ0प्र0 सरकार द्वारा 7 हेक्टेयर तथा असिंचित भागों मे 11 हेक्टेयर माना है। जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडेन, नीदरलैण्ड के लए सामान्य स्थिति में भू–जोत का आकार 10–20 हेक्टेयर है। जबकि द0 यूरोप में इससे भी कम है छोटे खेतों का आर्थिक महत्व बिखराव के कारण कम होता है।

भारत में भू–जोतों का आकार 1.33 हेक्टयर है, देश के सम्पूर्ण भू–जोत में से 62ः का आकार 1 हेक्टेयर से कम, 31 प्रतिशत 1 से 1.4 हेक्टेयर है तथा 7 प्रतिशत 1 हेक्टेयर से बड़ा है छोटे जोत आकार के कारण कृषि के लिए अलामकारी होते है क्योंकि श्रम अपव्यय अधिक, कृषि आधुनिक यंत्रों का संचाल कठिन, बडा निवेश का अभाव तथा अधिक कृषि लागत आदि के कारण है।

भारत में पुनः विभाजन तथा विखण्डन के कारण भू–जोतों का आकार छोटा होता जाता है। इसके निम्न कारण हैं–

1. उत्तराधिकार कानून
2. कृषि पर बढ़ती जनसंख्या भार
3. संयुक्त परिवारों का विघटन
4. कृषकों का ऋण भार
5. नियंत्रक कानून की कमी

भारत में कृषि की स्थिति को सुधारने के लिए स्वतंत्रता के बाद से अनेकों भूमि सुधार कार्यक्रम एवं कानून लागू किये गये हैं। जिसमें जमींदारीं प्रथा का उन्मूलन, शिक्मी काश्तकारों पर नियंत्रण, भूमि अधिकार को सरल बनाना, जोत की उच्चतम सीमा निर्धारित करना तथा सरकारी कृषि आदि की व्यवस्था मूख्य है लेकिन व्यवहारिक रूप से भूमि सुधार की विधियां या कानून सही ढंग से कार्य नहीं कर रहे हैं।

4.3.2 जनसांख्यिकीय कारक

कृषि कार्य को करने के लिए जनसंख्या एक आवश्यक कारक है। इसके द्वारा कार्य क्षेत्र में सहयोग, भूमि उपयोग तथा कृषि में उत्पादों की आपूर्ति भी प्रभावित होती है। संख्या से कृषि का अटूट सम्बन्ध है। हार्पर (1945) के शब्दों में– मानव लगभग सम्पूर्ण आहार की पूर्ति भूमि से प्राप्त करता है। इसलिए जनसंख्या जितनी अधिक होती है वहां की भूमि का उपयोग उतना अधिक होता है जनसंख्या विस्फोट एवं शिक्षा किसी भी कृषक समाज में कृषि विकास, कृषि तकनीक द्वारा कृषि क्षेत्र में परिवर्तन को जन्म देता है। मानव समाज को कृषि कार्य करने के लिए सबसे अधिक प्रेरित करने वाला कारक भूख है। तथा इसी के कारण कृषि में नये–नये अन्वेषण एवं विचारों का उद्भव हो रहा है। कृषि को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले कारकों में जनसंख्या आकार, घनत्व, साक्षरता, प्रवास, संसाधन आदि है।

जनसंख्या वितरण एवं घनत्व

जनसंख्या का वितरण कृषि क्षेत्र के उत्पादन से अधिक सम्बन्धित है ग्रामीण जनसंख्या उपजाऊ मृदा में अपना आवास बनाती हैं। जहाँ पर सिंचाई के साधन, सस्ते श्रम, उर्वरा मृदा की प्रधानता हो एवं जीवन निर्वाहक गहन कृषि हो वहीं पर अधिक केन्द्रीत होती है। अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि द्वारा अत्यधिक खाद्यान्नों की आवश्यकता होती है इसकी पूर्ति के लिए अधिक उत्पादन वाली कृषि एवं द्वि चक्रीय या बहुफसली कृषि को बढ़ावा दिया गया तथा नकदी कृषि, व्यापारिक कृषि व बागवानी फसलों का अधिक

विकास किया गया। भूमि पर मानव जनसंख्या के दबाव को प्रमाणित करने के लिए अनेक विधि से घनत्व ज्ञात किया जाता है। जो निम्नलिखित है–

1. ग्रामीण घनत्व –
2. सामान्य घनत्व–
3. मानव–मृदा घनत्व अथवा कायिक घनत्व–
4. कृषि घनत्व–
5. पोषण घनत्व अथवा मानव–शस्य अनुपात
6. आर्थिक घनत्व–

कृषि में संलग्न जनसंख्या

कृषि कार्य में लगी जनसंख्या कृषि को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। संसार के सभी देशों की जनसंख्या जो कृषि क्षेत्र में संलग्न है। वे विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न पायी जाती हैं जिसमें से विकासशील देशों की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्र से संबद्ध है। तथा विकसित देशों में मात्र 12 प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्र से संबद्ध है। कृषि कार्य में लगी जनसंख्या का केन्द्रीकरण एशिया के दक्षिणी–पूर्वी हिस्से में अधिक पाया जाता है जहाँ पर सम्पूर्ण जनसंख्या का दो तिहाई कार्यशील जनसंख्या कृषक के रूप में निवास करती है सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या का 85 प्रतिशत किसानों की संख्या है जबकि यहाँ पर पूरे विश्व का लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है तथा कृषि करने योग्य भूमि मात्र 52 प्रतिशत ही है और विकसित देशों में इसके विपरीत स्थिति बनी हुई है यहाँ पर सम्पूर्ण जनसंख्या का 10: किसान एवं सम्पूर्ण विश्व की 25 प्रतिशत जनसंख्या और 48 प्रतिशत से अधिक कृषि कार्य करने योग्य भूमि पायी जाती है।

विकासशील देशों में नेपाल 66 प्रतिशत थाईलैण्ड में 60 प्रतिशत भारत में 58 प्रतिशत तथा अफ्रीकी देशों की लगभग 55 प्रतिशत से ज्यादा जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है वहीं दूसरी ओर विकसित राष्ट्रों की निर्भरता कृषि क्षेत्र में विकासशील राष्ट्रों से कम है जैसे– स्पेन, फांस, जर्मनी, ब्रिटेन, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया तथा सिंगापुर आदि राष्ट्रों में किसानों की संख्या न्यूनतम है। कृषकों की जनसंख्या उत्तरी अमेरिका में 2.2 प्रतिशत तथा इंग्लैण्ड में 2 प्रतिशत पायी जाती है जिसके द्वारा यह पता चलता है कि इन देशों में कृषकों की जनसंख्या अत्यधिक कम पायी जाती है।

विकासशील देशों की जनसंख्या अत्यधिक कृषि कार्यों में लगी है जिसके कारण भूमि का अधिक शोषण हो रहा है तथा कृषि कार्य को पुरानी पद्धति से करना, संशोधित बीजों का उपयोग न करना, मशीनों एवं तकनीकों का प्रयोग न करने के कारण कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति उत्पादन अत्यधिक कम होता है। जिसके कारण ये क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से बहुत कमजोर एवं पिछड़े होते है इन देशो की लगभग जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर रहती

है। वहीं दूसरी ओर विकसित देशों में नये बीजों मशीनों एवं उपकरणों आदि का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है। इसलिए इन राष्ट्रों की जनसंख्या कृषिगत भूमि के घनत्व से कम है। यहाँ पर कृषिगत भूमि प्रति व्यक्ति अधिक पायी जाती है। जैसे– उत्तरी अमेरिका में 3 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी तथा आस्ट्रेलिया में 2 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी घनत्व में पाए जाते हैं। जबकि विकासशील राष्ट्रों में इण्डोनेशिया, मिस्र, केन्या, ताइवान, जापान, कोरिया, चीन, भारत आदि में जनसंख्या के अनुसार कृषिगत भूमि का घनत्व कम है। यहाँ पर प्रायः 400 प्रति वर्ग किमी कृषि क्षेत्र में जनसंख्या पायी जाती हैं। वहीं दूसरी तरफ विकसित राष्ट्रों में कृषि के अनुसार जनसंख्या घनत्व कम पाए जाने के कारण यहाँ पर कृषि कार्य व्यावसायिक एवं पशुपालन के रूप में किया जाता है। जिसमें उपकरणों, यंत्रों, मशीनों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है तथा इसमें मानवीय श्रम अत्यधिक कम लगते हैं। इनके जोत के आकार बहुत बड़े होते हैं। तथा इन राष्ट्रों की जनसंख्या कृषि कार्य के इतर व्यवसाय में संलग्न है। जबकि अधिक घनत्व वाले क्षेत्रों में अधिक खाद्यान्न का उत्पादन होता है। विकासशील राष्ट्रों में प्रमुख खाद्यान्न फसल चावल है यहाँ पर व्यावसायिक रूप से कृषि न करके जीविकोपार्जन के लिए कृषि में अधिक जनसंख्या लगी हुई है तथा यहाँ पर श्रमिकों का श्रम के रूप में अनाज ही दिया जाता है जो मजदूरी के रूप में श्रमिकों को प्राप्त होता है यह मजदूरी श्रमिकों के गुजारे के लिए अपेक्षाकृत कम होती है। विकासशील राष्ट्रों में जोत के आकार छोटे हैं एवं श्रमिक भूमिहीन हैं जो दूसरे की कृषि को बधवा, मजदूरी, रेहन पर कृषि कार्य करते है और इसी पर अपना जीवन यापन करते हैं। प्रायः यहाँ के लोग कृषि कार्य को अपनी जीवन पद्धति बना लेते हैं।

जनसंख्या का स्थानान्तरण

किसी प्रदेश या देश में कृषि विकास के लिए जनसंख्या एक प्रमुख कारक है और जब जनसंख्या प्रवास करती है इससे भी कृषि क्षेत्र में अधिक प्रभाव देखने को मिलता है। सीमान्त क्षेत्रों में जब जनसंख्या स्थानान्तरण कर जाती है तो इसका कृषि पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूप से प्रभाव पड़ता है। अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में कृषित भूमि का घनत्व कम एवं जनसंख्या अधिक होने के कारण कृषि केवल जीविकोपार्जन के रूप में की जाती है तथा अधिक जनसंख्या होने के कारण नए–नए कृषित भूमि बनाए जाते हैं जिससे पेड़–पौधों जंगलों, पर्यावरण आदि का अतिक्रमण होता है। इस प्रकार के कृषि क्षेत्र में अनेक प्रकार की बाधाएं उत्पन्न होती है। जिन्हें मानव दूर करके कृषि कार्य सम्पन्न करता है। जनसंख्या प्रवास की प्रक्रिया लगभग 15वीं सदी के पश्चात अधिक तेज हुई। इसका प्रमुख कारण आर्थिक रूप से समृद्ध राष्ट्र अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया इन देशों ने अपनी तरफ जनसंख्या को आकृष्ट किया। तथा विकसित राष्ट्रों में कृषि कार्य को करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता थी तो यूरोपीय संघ के औपनिवेशिक देशों से जनसंख्या को गिरमिटिया मजदूर के रूप में ले जाया गया। ये मजदूर क्यूबा में गन्ना उत्पादन के लिए, ब्राजील में कॉफी उत्पादन के लिए, यूरोप में बागवानी कृषि के लिए इनका स्थानान्तरण हुआ। वर्तमान समय में जनसंख्या अत्यधिक होने के कारण छोटे–छोटे क्षेत्रों में भी संख्या का अधिक प्रवास देखा जा रहा है जो कृषि क्षेत्र को अत्यधिक प्रभावित कर रहा है। इसलिए कृषि क्षेत्र में विकास के लिए जनसंख्या का होना अति आवश्यक है।

4.3.3 तकनीकीय कारक

कृषि क्षेत्र को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले कारकों में से आधुनिक तकनीकी का विकास अधिक पड़ा है। तकनीकी उपकरणों का विकास विकसित राष्ट्रों में अधिक हुआ है। तकनीकी कृषि, कृषि को विशेष रूप से प्रभावित करती है। कृषि तकनीकी के अन्तर्गत वैज्ञानिक विधियों, उन्नतशील बीजों, मशीनों, एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। जिससे कृषि क्षेत्र का उत्पादकता पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

तकनीकी कृषि का विकास अत्यन्त तीव्रगति से 18वीं शताब्दी में उपकरण क्रान्ति के कारण हुआ। यह क्रान्ति ग्रेट–ब्रिटेन एवं पश्चिमी यूरोपीय देशों में अधिक प्रचलित हुई। इसके बाद धीरे–धीरे इस क्रान्ति का प्रभाव अमेरिका एवं आस्ट्रेलियाई देशों पर भी पड़ा। सोवियत रूस में इस क्रान्ति का प्रभाव 1917 के पश्चात अधिक तीव्रगति से पड़ा। उपकरणीय कृषि के लिए जोतों का आकार बड़ा होना चाहिए। आज के नवीन कृषि क्षेत्र में मशीनों का प्रभाव अत्यधिक देखा जा रहा है विकासशील राष्ट्रों में ऐतीहासिक एवं सांस्कृतिक बाधा जैसी परिस्थितियां कम उत्पन्न होती हैं। तथा जनसंख्या के कम होने के कारण यहाँ पर भूमि की उपलब्धता अधिक है इससे तकनीकी कृषि यहां पर अधिक लाभप्रद है। तकनीकी कृषि को प्राचीन काल से आजतक तीन रूपों में बाँटा गया है।

कुदाल तकनीकी स्तर

आदि काल से कृषि कार्यों में प्रयोग में लिए जाने वाले यन्त्रों में कुदाल, फावणा प्रमुख यन्त्र थे इनका प्रयोग प्रायरू गढ्ढा खोदने, बीजों को भूमि में ड़ालने तथा घास–फूस काटने में किया जाता था यह कृषि कार्य करने की पुरानी पद्धति थी प्राचीन काल में आदि मानव कृषि कार्य स्थानान्तरण कृषि द्वारा आरम्भ किया, स्थानान्तरण कृषि करने के लिये वनों को काटकर एवं जलाकर कृषि योग्य भूमि बनाई जाती थी फिर उस भूमि पर कृषि कार्य किया जाता था इस प्रकार की कृषि के साथ ही साथ पशुपालन का भी कार्य किया जाता था।

हल तकनीकी

यह तकनीकी प्रायरू संसार के सभी भागों में देखने को मिलती है। यह कुदाल तकनीक से उत्तम तकनीक के रूप में मानी जाती है। एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका जहाँ पर भी प्राचीन सभ्यताएं प्रचलित थीं उन देशों में आज से लगभग 5000 वर्ष पहले से इनका प्रयोग होता आ रहा है। इस प्रकार की व्यवस्था में कृषि कार्य के साथ–साथ पशुपालन भी एक प्रमुख कारक था। इस प्रकार के कृषि क्षेत्र में फसलोंत्पादन एवं पशुपालन में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। विश्वभर में इस प्रकार की कृषि का दो रूप देखने को मिलता है। पूर्वी देशों में इनका प्रयोग जीवन निर्वाह कृषि के रूप में तथा पश्चिमी देशों में व्यावसायिक एवं मिश्रित कृषि की व्यवस्था थी।

ट्रैक्टर एवं मशीनीकरण तकनीक

आधुनिक युग में वैज्ञानिक उपकरणों की खोज हो जाने से कृषि क्षेत्र में मशीनीकरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। आज आधुनिक युग में जुताई का कार्य ट्रैक्टर से किया जा रहा है जो प्राचीन समय में हल के द्वारा किया जाता था जिसमें अधिक समय, कम कार्य हो पाता था जो आज के मशीनीकरण के दौर में कम समय में ज्यादा कार्य हो रहा है। प्रविधिकी के प्रयोग से कार्य दक्षता में वृद्धि हुई है। अतरू इनका प्रयोग आर्थिक रूप से समृद्ध किसानों द्वारा ज्यादा किया जाता है। इसके प्रयोग से कृषि के उत्पादकता में अत्यधिक वृद्धि दर्ज की गई है।

स्पष्ट है कि वर्तमान समय में अत्याधुनिकीरण, मशीनीकरण के प्रयोग से कृषि क्षेत्र में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है। आज के समय में कृषि कार्य के द्वारा खाद्यान्न वृद्धि के साथ–साथ कृषि कार्य को सुगम एवं व्यावसायिक रूप प्रदान किया है। उन्नतशील बीज, उत्तम सिंचाई के साधन, रासायनिक उर्वरकों की प्राप्ति आदि से कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व परिणाम देखने को मिलता है। तकनीक को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारक–

यन्त्रीकरण

प्राचीन काल में कृषि कार्य मानवीय श्रम पर आधारित था उसके कुछ समय बाद पशुओं का प्रयोग होने लगा तथा 18वीं शताब्दी के पश्चात कृषि कार्य करने के लिए कृषि यंत्रों का आविष्कार हुआ जो परिणामस्वरूप रूस, आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशों में कृषि कार्य के लिए प्रयोग में लाया जाता था। ये कृषि यंत्र अत्यधिक मूल्यवान होते थे जिससे इनका प्रयोग आर्थिक रूप से समृद्ध कृषकों ने करना शुरू किया। यंत्रीकरण का कृषि में प्रयोग पूँजी को अत्यधिक बढ़ा देता था जिससे यंत्रीकरण कृषि करना हर श्रमिक के लिए अत्यधिक कठिन कार्य था। इसलिए विकसित राष्ट्रों में इसका प्रयोग अत्यधिक हुआ।

आज के समय में यंत्रीकरण का प्रयोग लगभग पूरे विश्व में किया जा रहा है। यंत्रीकरण के प्रयोग से ही कृषि क्षेत्र में जीविकोपार्जन से व्यावसायिक रूप प्रदान किया गया है। आज यंत्रीकरण के दौर में कृषि यंत्रों की अत्यधिक मांग से अनेक उद्योगों का विकास हो रहा है। विकासशील राष्ट्रों में कृषि यंत्रों की मांग निरन्तर बनी रहती है। जिसका प्रभाव आज पशुओं तथा श्रमिकों पर देखा जा सकता है।

भूमि सुधार एंव सुरक्षा

आधुनिक युग में भूमि की उर्वराशक्ति को बनाए रखने तथा उसमें वैज्ञानिक पद्धति पर कृषि करने एंव रासायनिक उर्वरकों का कम प्रयोग करने की आवश्यकता है। इसके लिए कृषि योग्य भूमि समिति की व्यवस्था करने की जरूरत है। आज के समय में मृदा क्षारीय, लवणीय, जलायुक्त तथा अपरदन में सुधार करने की सख्त आवश्यकता है। इसके द्वारा भूमि की उर्वराशक्ति के संरक्षित तथा संवर्धन से कृषि क्षेत्र में उत्पादकता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। फसलों के उत्पादन में आवश्यकता के अनुसार पोषक तत्वों का प्रयोग

तथा कम रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है जिससे भूमि सुरक्षित रहती है तथा दीर्घायु तक उर्वराशक्ति बनी रहती है।

सिंचाई व्यवस्था

सिंचाई कृषि कार्य को अत्यधिक प्रभावी करता है। सिंचाई के द्वारा ही कृषि क्षेत्र मे क्रान्ति आयी है। सिंचाई के द्वारा ही कई स्थानों पर दो फसली या बहु फसली कृषि कार्य संपन्न किया जाता है। कृषि सिंचाई की परम्परा आज भी बहुत पुरानी है। दक्षिणी एशिया, मिस्त्र, चीन, इण्डोनेशिया तथा भारत में कृषि कार्य में सिंचाई आदि काल से प्रचलन में है। सिंचाई के द्वारा ही आज उन स्थानों पर भी कृषि संभव है जहाँ पर पानी की कमी के कारण कृषि कार्य संभव नहीं हो पाता था।

आज 21वीं शताब्दी में तकनीकी का इतना विस्तार हुआ है कि आज सिंचाई के उत्तम संसाधन उपलब्ध हैं जिसका प्रयेग करके भूमिगत जल एवं बहता हूआ जल का व्यापक रूप से प्रयोग सिंचाई के लिए किया जा रहा है। बहते हुए जल का प्रयोग बाँध बनाकर, तथा छोटी–छोटी नहरों द्वारा सिंचाई कार्य सम्पन्न किया जा रहा है तथा भूमिगत जल का प्रयोग नलकूपों, विद्युत मोटरों एवं डीजल मशीनों द्वारा सिंचाई कार्य में किया जा रहा है।

फसलों की सुरक्षा

कृषि क्षेत्र में फसलों को लेकर अनेक सुधार कार्य किए गए हैं कि किस प्रकार का पौधा किस जलवायु में या परिस्थित में अधिक उत्पादन एंव समृद्ध विकास कर सकेगा इसका पता हमें वनस्पति विज्ञान के विकास से सम्भव हो सका है कि किस प्रकार की फसल किस जलवायु में समृद्ध रूप से विकसित एवं अत्यधिक उत्पादन, बीमारियों, कीड़े–मकोड़ों, कीट–पतंगों आदि से सुरक्षा वाले उन्नतशील बीजों की खोज किया। तथा इनकी सुरक्षा के लिए अनेक कीटनाशक दवाइयों एवं बीमारियों की रोकथाम के लिए अनेक उपायों का प्रयोग बनाया है। विश्व के अनेक कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर उन्नतशील बीजों तथा तीव्र गति से विकास करने वाले बीजों, अधिक उत्पादन देने वाले बीजों के प्रकारों का लगातार अन्वेषण हो रहा है। प्रायः उन्नतशील बीजों के अन्वेषण के द्वारा फसलोत्पादन को बढ़ाया गया तथा 1966 में हरित क्रान्ति इसी का परिणाम है।

कृषि उपज का भण्डारण एवं सुरक्षा

तकनीकी विकास के पहले कृषि क्षेत्र से उत्पादित अनाज का एक बड़ा हिस्सा अच्छी भण्डारण व्यवस्था न होने के कारण नष्ट हो जाता था। भारत जैसे अनेक कृषि क्षेत्रों में कृषक स्वयं अनाज को अपने घर में भण्डारण करते थे क्योंकि भण्डारण की उचित व्यवस्था एवं सुरक्षा नहीं हुआ करती थी। भण्डारण की उचित व्यवस्था न होने के कारण अत्यधिक फसलोंत्पादन को कीड़े–मकोड़े नष्ट कर देते थे।

आज के समय में वातानुकूलित भण्डारण, शीत, संग्रहागार, डिब्बाबंद आदि आधुनिक तकनीकों से विकसित भण्डारण में रखे गए फसलोंत्पादों का शीघ्रता से विनाश नहीं होता। भोज्य पदार्थों की सुरक्षा बनी रहती है। आधुनिक भण्डारण के द्वारा जहाँ पर जिन फसलों

का उत्पादन नहीं हो रहा है वहाँ पर भी उसकी उपलब्धता आसान हो गयी है। आज के बाजारवाद के दौर में भण्डारण एक प्रमुख कारक बनता जा रहा है। अब विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न पदार्थों शाक–सब्जी, मांस, मछली, दूध से बने उत्पाद आदि सभी की उपलब्धता हर स्थान पर सम्भव है। इसके द्वारा किसानों को भी अच्छा लाभ होता है। तथा उपभोक्ताओं को भी अपनी आवश्यकता कि अनुसार वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं।

कृषि उत्पादों तथा निवेशों का वितरण

कृषि क्षेत्र में चहुमुखी विकास के कारण व्यापारिक कृषि में विशेष विकास हुआ है अतः कृषि क्षेत्रों में उत्पादित उत्पादों को अधिक मूल्य वाले स्थानों पर भेजकर लाभ कमाते हैं। तथा कृषि निवेश के लिए उन्नतशील बीज रासायनिक उर्वरक, तथा कृषि उपकरणों आदि के लेन–देन के लिए सुसंगठित परिवहन तंत्र का विकास किया है। वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र में परिवहन का प्रमुख योगदान है। क्योंकि कृषि उत्पादों का अच्छा लाभ प्राप्त करने के लिए शीघ्रता से उस स्थान पर पहुँचाया जा सके जहाँ पे उस वस्तु की अधिक मांग हो। इसके द्वारा उपभोक्ताओं को शीघ्र वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। पश्चिमी देशों में कृषि क्षेत्रों से बाजार तक सुव्यवस्थित परिवहन की व्यवस्था की गयी है जिसके द्वारा कृ षक अपने उत्पाद को तुरंत बाजार तक पहुँचा देता है तथा बाजार में आने के बाद उत्पादों का व्यवस्थित वितरण के द्वारा कृषि क्षेत्र में अधिक विकास का कारण बनते हैं।

जानवरों के जीन में सुधार

तकनीकी तथा वैज्ञानिक उन्नति के परिणामस्वरूप पशुपालन में अत्यधिक विकास सम्भव हो पाया है। आदिकाल से कृषि का पशुपालन से अटूट सम्बन्ध रहा है। कृषि क्षेत्र में पशुओं का प्रयोग किया जाता था। कृषि क्षेत्र द्वारा ही वैज्ञानिक स्तर पर डेयरी उद्योग का विकास हुआ और दुग्ध उत्पादन में श्वेत क्रांति आयी। श्वेत क्रांति के द्वारा ही दुग्ध वितरण, पनीर, मक्खन, चीज, दुग्ध पाउडर तथा अन्य दुग्ध उत्पादों का विकास हुआ। दुग्ध उद्योग के समीपवर्ती क्षेत्रों में एकत्रण करने के लिए द्रुत शीत परिवहन की व्यवस्था के द्वारा बोतलों अथवा थैलियों में भरकर वितरण करने की प्रक्रिया उन्नतशील तकनीक का परिणाम है। विकासशील राष्ट्रों के साथ ही भारत में विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, गुजरात, पंजाब, राजस्थान तथा अनेक विकसित राष्ट्रों में दुग्ध उद्योग का अधिक विकास हुआ है। पशुओं द्वारा मांस प्राप्त करने का व्यापार तकनीकी उन्नत का ही परिणाम है। इन उन्नतशील तकनीकी विकास के कारण पशुपालन एक प्रकार का विशिष्ट उद्योग बन गया है। जो कृषि क्षेत्र को अधिक प्रभावित कर रहा है।

4.3.4 आर्थिक कारक

कृषि के क्षेत्र में आर्थिक कारकों का अत्यधिक महत्व है। कृषि के लिए उस क्षेत्र आकारकीय व्यवस्था तथा आर्थिक तन्त्र अधिक महत्व रखते हैं। साथ–ही–साथ क्षेत्र के किसानों का भी आर्थिक विकास कृषि के उत्पादन पर ही निर्भर करता है इस कारण कृषि क्षेत्र में आर्थिकी विकास क्षेत्र में आर्थिक सम्पन्नता या बहुलता को दर्शाता है, कृषि क्षेत्र मंल आर्थिक सम्पन्नता का आशय किसान संशोधित बीज, कृषि के लिए नये उपकरण, सिंचाई

के उचित साधनों का प्रयोग, उर्वरकों की प्राप्ति आदि को लेकर फसलों के लिए अच्छी व्यवस्था प्रदान करना। समाज आर्थिक रूप से समृद्ध होने से कृषि क्षेत्र में भी सम्पन्नता देखने को मिलती है। क्योंकि आज के आधुनिक युग में कृषि में नई तकनिक के लिए नये–नये बीजों, उपकरणों, यन्त्रों, कीटनाशक दवाइयों आदि की प्रमुख रूप से जरूरत है। जिसको पूरा करने के लिए आर्थिक समृद्धि होना आवश्यक है। जब किसानों के पास आर्थिक सम्पन्नता नहीं होती है तो वे लोग पुरानी पद्धति पर कृषि कार्य करने के लिए बाध्य होते हैं। जिससे कृषि क्षेत्र के उत्पादन में भारी गिरावट आती है इस प्रकार की कृषि के द्वारा केवल जीविकोपार्जन किया जा सकता है। इसी कारण आज समाज दो वर्गों में बंटा है। एक वे किसान जिनके पास धन है एक वे किसान जो निर्धन हैं। उदाहरण– वे किसान जो अधिक धनवान हैं जैसे– यू0एस0ए0, कनाडा, इग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया तथा रूस जहां पर कृषि का सम्पूर्ण विकास हुआ है। इन्हें अग्रणी देश की श्रेणी में रखा जाता है। जहाँ की लगभग 11.5 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यों में संलग्न है। वहीं दूसरी तरफ विकासशील देश भारत, वर्मा, चीन, मलेशिया, इण्डोनेशिया आदि जीविकोपार्जन कृषि करते हैं। इनके पास पूंजी की कमी है इन देशों की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में लगी है। आर्थिक कारकों के अनुसार कृषि को प्रभावित करने वाले निम्न कारक हैं–

क्षेत्र की विशिष्टता

कृषि को उगाने के लिए किसी क्षेत्र का निर्धारण तथा फसलों के सीमांकन से तय किया जाता है किसी भी क्षेत्र का निर्धारण कृषि में लागत एवं आय के आधार पर चुना जाता है इसी के अनुसार कृषि क्षेत्र में व्यवसाय को निश्चित किया जाता है। तथा किस क्षेत्र में किस प्रकार का व्यवसाय (डेरी कृषि, पिग फार्म, कुक्कुट पालन, मिश्रित खाद्योत्पादन) का समृद्ध विकास होगा यह व्यवसाय में लागत के शुद्ध लाभ से निश्चित होता है कि किस क्षेत्र में कौन से व्यवसाय से अधिक लाभ होता है उसे किसान विशेष श्रेणी में रखकर उसका प्रसार आस–पास की भूमि पर कर देते हैं। इस प्रकार जितनी विस्तृत भूमि पर विशेष प्रकार की कृषि की जाती है वे क्षेत्र प्रायरू विशिष्ट क्षेत्र के अन्तर्गत निर्धारित किया जाता है। कृषि प्रदेशों का सीमांकन इसी विशिष्टता के आधार पर किया जाता है दो विशिष्ट कृषि प्रदेशों के बीच में एक ऐसा भाग पाया जाता है जिस स्थान पर दोनों ही कृषि–प्रदेशो की प्रकृति को देखा जाता है। लेकिन इन क्षेत्रों में दोनों ही कृषि–व्यवसाय के द्वारा अच्छा लाभ प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ– गेहूँ की कृषि के क्षेत्र में पशुपालन को मिश्रित कृषि व्यवसाय के अन्तर्गत रखा जाता है इस प्रकार के कृषि प्रदेश विशिष्ट प्रदेश में आते है।

बाजार

बाजार कृषि को सबसे अधिक प्रभावी करने वाला कारक है। जैस– जैसे बाजार क्षेत्र कृषि क्षेत्र से दूर होने लगता है वैसे वैसे कृषि पर बाजार का प्रभाव घटने लगता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण वानथ्यूनेन महोदय अपने सिद्धान्त में प्रमाणित किया है। फसलों के उत्पादन के पश्चात बाजार को होना अति आवश्यक होता है। यदि बाजार दूरी पर स्थित है तो कृषकों को उत्पादन का उचित मूल्य नही मिल पाता है और कभी–कभी

खेत से बाजार अधिक दूर होने पर बोई गयी फसल का मूल भी नहीं मिल पाता है। इसलिए सरकारों को यह चाहिए कि खरिद–फरोक्त की उचित व्यवस्था ग्रामिण क्षेत्रो में कि जाय जैसे विकसित राष्ट्रों में ग्रामिण क्षेत्रों से नगर के बाजारों को अच्छे यातायात से जोड़ा गया है। तथा गाँव के कृषि क्षेत्र के उत्पादों को अच्छा लाभ मिल सके उसके लिए संस्थानों की स्थापना की जाए और सरकारी एवं गैर सरकारी समितियाँ या कृषि उत्पदक बोर्ड जैसी महत्वपूर्ण संस्थानों की स्थापना करने की विशेष आवश्यकता है।

कृषि यंत्रीकरण एवं तकनीकी विकास

विश्व में आज भी आधे से अधिक जनसंख्या कृषि क्षेत्र में संलग्न है। विकासशील देशों मे आज भी लगभग 88ः जन्संख्या कृषि कार्यों को यंत्रीकरण एवं तकनीकी के अभाव में कृषि करती है। वही विकसित देशों में कृषि कार्यों में लगी जनसंख्या पूर्ण तकनीकी एवं यंत्रीकरण कृषि पर निर्भर है। तथा यहाँ पर आधुनिक वैज्ञानिक कृषि का पूर्ण विकास हुआ है। इसीकारण इन दोनों क्षेत्रों में कृषि उत्पादन में पर्याप्त अन्तर देखा जा सकता है। एशिया, लैटिन अमेरिका, अफ्रिका के राष्ट्रों में आज भी कृषि का प्रारूप जीवकोपार्जन ही है। यहाँ पर आज भी कृषि कार्य पुरानी पद्धतियों के रूप में की जाती है तथा विकसित राष्ट्रों में (कनाड़ा, यू0एस0ए0, अर्जेटिना, रूस, जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रेलिया और जापान में पूर्ण मशीनीकरण एवं वैज्ञानिक कृषि का विकास हुआ है। यहां पर कृषि जीवन जीने के लिए नहीं बल्कि साधन के रूप में प्रयोग कि जाती है। जबकि विकासशील देशों में जनसंख्या की भूख मिटाने के लिए भोजन की आवश्यकता है। और दूसरी ओर कृषि के अधिक उत्पादन को निर्यात करने के लिए बाजार की जरूरत है। कृषि क्षेत्र में यह अन्तर वैज्ञानिक कृषि तथा यंत्रीकरण की देन है।

परिवहन

परिवहन की अच्छी व्यवस्था के द्वारा अधिक दूरी को कम समय में किया जा सकता है। तथा कृषि के द्वारा उत्पादित वस्तुओं को आयात–निर्यात में शीघ्रता होती है। डेरी फार्म, व्यापारिक–कृषि तथा बागवानी–कृषि लगभग अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पर निर्भर करती है। यातायात की सुविधा लागत गति तथा साधनों की आवृत्ति मुल शर्त है। जिसका प्रभाव कृषि क्षेत्र में उत्पादित फसलों पर प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। तीव्रता से खराब होने वाले पदार्थों (हरी सब्जी, दूध, फल, फूल तथा मांस आदि) में परिवहन की तीव्रता का अत्यधिक महत्व है। क्योंकि इन पदार्थों का उत्पादन प्रायरू बाजार से दूर के क्षेत्रों में किया जाता है। इन्हें सुसज्जित ढंग से कम लागत के द्वारा बाजार तक पहुँचाया जाये। नीदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड से दुग्ध प्रोड्क्ट, मांस, फल फूल तथा खाद्यान का आयात–निर्यात यूरोपीय देशों को वायु परिवहन द्वारा किया जाता है। भारत के सभी बड़े महानगरों कोलकाता, चेन्नई, दिल्ली, अहमदाबाद और मुम्बई निकटतम प्रदेशों द्वारा उपयोगी वस्तुओं की पूर्ति विशेष परिवहन द्वारा किया जाता है।

आर्थिक– प्रशासनिक गतिविधियाँ

कृषि क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों का प्रभाव प्रमुख रूप से पड़ता है फसल उत्पादों का मूल्य (MSP) सरकार द्वारा प्रति वर्ष निश्चित किया जाता है। इन्ही मूल्यों के आधार पर कषि उत्पादन का क्रय–विक्रय निर्धारित होता है। प्रायरू जिस उत्पाद का मूल्य अधिक होता है कृषकों द्वारा उस फसल का उत्पादन अधिक मात्रा में किया जाता है। और जिसका मूल्य (MSP) कम होता है किसान उस फसल की उपेक्षा करते हैं। जैसे कुछ साल पहले जब सरकार ने गन्ने का मूल्य बढ़ाया तो किसानों ने गन्ने की कृषि अत्यधिक करने लगे। जिसका परिणाम हुआ कि गन्ने की कृषि का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया। इसका सीधा असर गेहूँ एवं चावल की फसलों पर होने लगा और गेहूँ , चावल की कृषि का क्षेत्रफल कम हो गया। इससे परेशान होकर भारत सरकार ने शीघ्र गन्ने के मूल्यों को घटा दिया जिससे फसलों की समरसता बनी रहे तथा इसके साथ ही साथ प्रशासन हर एक फसलों की मालगुजारी शुल्क लगाता है। कई देशों में जिस फसल का उत्पादन नहीं होता है उन्हें कम लगान देना होता तथा जिस फसल का उत्पादन अधिक होता है तो उन्हे लगान भी अधिक देना पड़ता है। शितोष्ण कटिबन्धीय देशों में शीतोष्ण में उत्पादित फसल का अत्यधिक लगान लगते हैं तथा उष्ण में उत्पादित फसलों का न्यूनतम लगान निश्चित होता है। ताकि उन उत्पादों को सरलता से पाया जा सके। यहाँ प्रशासन द्वारा किसानों को समृद्ध बनाने के लिए पदार्थों की वाजिब कीमत निर्धारित करने के लिए अनेक समितियों फसल उत्पादक बोर्ड तथा कई सरकारी संस्थाओं की स्थापना की गयी है।

4.3.5 राजनैतिक कारक

कृषि को प्रभावित करने वाले कारको में राजनैतिक नितियों का प्रभाव अन्य कारकों से कम होता है जबकि इनका प्रभाव क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय सभी स्तरों पर प्रभाव पड़ता है। USA कृषि स्वरूप सम्बन्धित राजनीतिक प्रशासनिक प्रभावों का विशेष अध्ययन हुआ है इसके अलावा यूरोप में भी राजनैतिक निर्णयों का कृषि पर प्रभाव का अध्ययन किया गया। विश्व के लगभग सभी देशों द्वारा प्रतिपादित नीतियों द्वारा कृषि का संचालन होता है इन नीतियों एवं कार्यक्रमों में भूमि स्वामित्व, भूमि–सुधार, जोत का आकार आदि का निर्धारण एवं संचालन सरकारी संरक्षण में ही सम्भव है. संसार के विभिन्न देशों में भूमि सुधार तथा चकबन्दी द्वारा फार्म बड़े करके उत्पादन बढ़ाने का प्रयास सरकारी प्रयत्नों का ही परिणाम है यूरोप और भारत में चकबन्दी के प्रभाव का विषद अध्ययन हुआ है जबकि मैक्सिको सरकार ने वहाँ के बडे–बडे इस्टेट को छोटे–छोटे फार्मों में विभाजित कर दिया है। ये फार्म इतने छोटे हो गये हैं कि इनपर कृषि कार्य करना उपदेय नहीं है। भारत सरकार के सन्दर्भ मे सरकार की नीति विकास उन्मुख रही है यहाँ कृषि के विभिन्न क्षेत्रों का विकास विभिन्न संस्थानों, संगठनों द्वारा किया गया है। कृषि विकास की प्रमुख संस्थायें, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, भारतीय ग्रामीण विकास कार्पोरेशन, राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान तथा कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार विश्व स्तर पर भी कृषि विकास के लिए कुछ संस्थाएं अपना योगदान प्रदान कर रही है। जैसे खाद्य कृषि संस्थान, विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्थायें आदि, उपरोक्त संस्थायें कृषि विकास के लिए ऋण, मशीनों, बीजों, उर्वरकों, दवाइयों, सिचाइयों के लिए ऋण उपलब्ध कराती है तथा सरकारी योजनाओं के माध्यम से सहायता प्रदान की जाती है।

4.4 सारांश

आप इस इकाई में कृषि को प्रभावित करने वाले मानवीय कारको का अध्ययन किये हैं। कृषि को प्रभावित करने वाले जनसांख्यिकीय कारकों में जनसंख्या वितरण, जनसंख्या घनत्व, कृषि में लगी जनसंख्या, जनसंख्या का स्थानान्तरण आदि, आर्थिक कारकों के अन्तर्गत क्षेत्र की विशिष्टता, बाजार श्रम, यात्रीकरण एवं तकनीकी विकास, परिवहन आदि, सामाजिक एवं सास्कृतिक कारकों के अन्तर्गत भू–स्वामित्व, सामूहिक भू–स्वामित्व, बड़े इस्टेट भू–स्वामित्व, भू–स्वामी कृषक, असामी काश्तकारी, जोत का आकार आदि तथा राजनैतिक कारक में विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं एवं सरकारी नीतियों का आप अध्ययन किये है।

4.5 शब्द सूची

Natural Factors-प्राकृतिक कारक, Relief-उच्चावच,

Climate-जलवायु, Altilude- उच्चता,

Gradient-प्रवणता, Temperature-तापमान,

Moisture-आर्द्रता, Frost-पाला,

Vegetation-वनस्पति, Soil-मृदा

Land Tenure-भू–स्वामित्व, Way of Life-जीवन की पद्धति

4.6 परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. भारत में औसत जोत का आकार क्या है?

(क) 1.33 हेक्टेयर (ख) 3.1 हेक्टेयर (ग) 5.2 हेक्टेयर (घ) 10 हेक्टेयर

2. वेगनर ने कृषि पर सामाजिक सास्कृतिक विचार धारा किस वर्ष दी?

(क) 1964 (ख) 1966 (ग) 1954 (घ) 1960

3. मृदा में किन पदार्थों की न्यूनता के कारण मृदा को 'भूखी मृदा' कहते हैं?

(क) मृदा नमी (ख) तापमान (ग) उर्वरा शक्ति (घ) कार्बन

4. उष्ण कटिबन्धीय भू–मध्य रेखीय क्षेत्र में सर्वाधिक फसल उत्पादन है?

(क) गेहूँ (ख) चावल (ग) कपास (घ) जूट

5. पौधों को भोजन बनाने के लिये सर्वाधिक आवश्यक है?

(क) जलवाष्प (ख) मिट्टी (ग) सौर प्रकाश (घ) पवन

उत्तर– (1) क (2) क (3) ग (4) ख (5) ग

4.7 उपयोगी पुस्तकें –

1. प्रो0 रामचन्द्र तिवारी, बी0एन0 सिंह, कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।
2. अलका गौतम, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
3. माजिद हुसैन, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. हरेन्द्र कुमार सिंह, कृषि भूगोल के मूलतत्व, राजेश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

4.8 अभ्यास प्रश्न–

1. कृषि को प्रभावित करने वाले भौतिक कारकों का विस्तृत वर्णन करों।
2. विषुवत रेखीय क्षेत्रों में उत्पादित सभी फसलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।
3. कृषि के लिए राजनैतिक पक्ष किस प्रकार महत्वपूर्ण है बताये।
4. भू–जोत के कारण कृषि किस प्रकार प्रभावित है कारण बताओ।
5. जैविक कारक तथा मृदा उर्वरक के द्वारा कृषि में लाभ एवं हानि का विश्लेषण करो।

MAGO- 104 कृषि भूगोल

इकाई 5– कृषि भूमि उपयोग संकल्पना एवं तंत्र

इकाई की रुप रेखा–

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 कृषि भूमि उपयोग की संकल्पना

5.4 कृषि भूमि उपयोग की प्रमुख संकल्पनाएँ

5.4.1 अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना
5.4.2 भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना
5.4.3 कृषि भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना
5.4.4 भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना
5.4.5 भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना
5.4.6 भूमि उपयोग के अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रतिबिम्ब की संकल्पना
5.4.7 भूमि उपयोग में व्यावहारिक संकल्पना
5.4.8 भूमि उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना

5.5 कृषि भूमि उपयोग का वर्गीकरण

5.6 सारांश

5.7 शब्द सूची

5.8 स्वमूल्यांकन बहुविकल्पी प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

5.9 संदर्भ या उपयोगी पुस्तके

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

कृषि भूगोल से संबंधित इस इकाई के माध्यम से आप कृषि भूमि उपयोग से संबंधित विशद जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई के माध्यम से आप सीखेंगे कि किस प्रकार कृषि भूमि या भूमि को उसके विकसित अवस्था के आधार पर कृषि भूमि प्रयोग, कृषि भूमि उपयोग व कृषि भूमि उपयोग की संकल्पना विकसित की गई है। इस इकाई के कृषि

भूमि उपयोग की संकल्पना में अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना, भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना, कृषि भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना, भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना, भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना, भूमि उपयोग के अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रतिबिम्ब की संकल्पना, भूमि उपयोग में व्यावहारिक संकल्पन तथा भूमि उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना आदि का अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

कृषि भूगोल के इस इकाई का आप अध्ययन करने के बाद–

1. कृषि भूमि उपयोग संकल्पना को समझ सकेंगे,
2. अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना को समझ सकेंगे,
3. भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना तथा कृषि भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना को समझ सकेंगे,
4. भूमि उपयोग में व्यावहारिक संकल्पन तथा भूमि उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना को समझ सकेंगे,
5. भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना, भूमि उपयोग के अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रतिबिम्ब की संकल्पना को समझ सकेंगे,
6. कृषि भूमि उपयोग संकल्पनाओं का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे,
7. विषय–वस्तु से संबंधित प्रश्नों का हल दे सकेंगे ।

5.3 कृषि भूमि उपयोग की संकल्पना

कृषि भूमि भौगोलिक अध्ययन का एक प्रमुख पक्ष है अतः कृषि भूमि उपयोग से संबंधित तार्किक ज्ञान प्राप्त करना जरूरी हो जाता है। जब भी हम कृषि भूमि का अध्ययन करने चलते है तो उससे संबंधित तीन महत्वपूर्ण शब्दों का उल्लेख होता है, यथा– कृषि भूमि प्रयोग, कृषि भूमि उपयोग व कृषि भूमि संसाधन उपयोग। वैसे तो ये शब्द समानार्थी होते है किन्तु ये तीनों शब्द एक दूसरे से विकसित अवस्था के द्योतक है जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

कृषि भूमि– सामान्य तौर पर भूमि का तात्पर्य धरातल के ऊपरी सतह से लिया जाता है, इस ऊपरी सतह पर हम रुक सकते है, टहल सकते है, मकान बना सकते है, बाग–बगीचे लगाने जैसे आदि क्रियाओं को सम्पन्न कर सकते है। परंतु कृषि भूगोल की दृष्टि से भूमि का तात्पर्य उसके व्यापक स्वरूप से होता है, दूसरे शब्दों में कहें तो भूमि का संबंध खेतों, चारागाहों, जंगलों, खनिज संसाधनों के दोहन आदि से रहा है। वर्तमान समय में कृषि भूमि का तात्पर्य उसके त्रिविमीय विकास से हो गया है अर्थात इसके अंतर्गत धरातल के भूगर्भ से लेकर ऊपरी वायुमंडल तक, मैदानों से लेकर पठारों, मरुस्थलों, पर्वतों, सागरों, द्वीपों को शामिल किया जा रहा है।

कृषि भूमि प्रयोग– भूमि का तात्पर्य भूमि के उस भाग से होता है जिसका प्रयोग मानवीय प्रभावों से सदा वंचित रहता है, अर्थात इसका प्रयोग प्राकृतिक तरीके से हो रहा होता है इसमें मानव का कृत्रिम तरीके से कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

कृषि भूमि उपयोग– जब भूमि का उपयोग मानव अपने अनुसार करके भूमि की प्रकृति में बदलाव करने लगता है तो भूमि का प्राकृतिक स्वरूप खतम होने लगता है तथा मानवीय क्रियाएं अधिक प्रभावी हो जाती है तो इसे भूमि उपयोग की संज्ञा प्रदान किया जाता है।

कृषि भूमि संसाधन उपयोग– कुछ विद्वानों ने कृषि भूमि के उपयोग के स्थान पर कृषि भूमि संसाधन उपयोग शब्द का प्रयोग किया। इसका तात्पर्य यह है कि जब मानव भूमि का उपयोग अपनी आवश्यकताओं के व इच्छा के अनुसार करना करना प्रारंभ कर देता है तो उस समय भूमि की प्रकृति, संसाधन के रूप में हो जाती है, अर्थात जब किसी भूमि का उपयोग क्षेत्र विशेष की आर्थिक व सामाजिक विकास को ध्यान में रखते हुए किया जाता है तो वह भूमि संसाधन की संज्ञा से अभिनिहित किया जाता है। जिस प्रकार से अन्य विषयों में कुछ विशिष्ट मौलिक संकल्पनाएं होती है ठीक उसी तरह इस इकाई की भी है जों इसके विषय वस्तु को स्पष्ट करती है। कुछ प्रमुख मौलिक संकल्पनाएं निम्न लिखित है–

5.4 कृषि भूमि उपयोग की प्रमुख संकल्पनाएँ

किसी स्थान विशेष की भूमि उपयोग ऐतिहासिक घटनाओं, प्राकृतिक पर्यावरण, आर्थिक क्रियाकलाप तथा सामाजिक मूल्यों कब प्रतिफल होता है। भौगोलिक क्षेत्र के उपयोग पर केवल भौगोलिक वितरण का ही प्रभाव नहीं होता है बल्कि प्राकृतिक पर्यावरण, सांस्कृतिक पारिस्थितकी तथा परिवर्तित भूमि उपयोग आदि का भी पड़ता है इस प्रकार पर्यावरण तथा भूम उपयोग कि मध्य संबंधों का अध्ययन करना बहुत ही आवश्यक हो जाता है। मानव की कृषि से संबंधित समस्त क्रिया कलाप धरातल तक ही सीमित है इस धरातल पर सीमित मृदा आवरण, विरल रूप में जल संसाधन, विषम धारातली स्वरूप तथा जलवायु की विभिन्नता स्पष्ट दिखाई देती हैं। विकास का स्तर, तकनीक तथा विभिन्न मानवीय क्रिया कलापों के कारण भूमि के लिए बड़ी तेजी से प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप आदर्श स्थानों पर जनसंख्या का जमघट, प्राथमिक क्रियाकलापों से चतुर्थ क्रियाकलापों तक गहनीकरण, शुष्क मैदानों, विषम पर्वतों तथा दलदली भागों जैसे कम अनुकूल स्थान की तरफ जनसंख्या का विस्थापन हुआ है जिसके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार का संघर्ष प्रकट हुआ है।

कृषि भूगोल विषय में भूमि उपयोग के संदर्भ में कई संकल्पनाएं उत्पन्न हुई है विकसित हुई हैं जिसमें से कुछ प्रमुख संकल्पनाये निम्नलिखित हैं–

1. अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना
2. भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना
3. कृषि भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना

4. भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना
5. भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना
6. भूमि उपयोग के अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रतिबिम्ब की संकल्पना
7. भूमि उपयोग में व्यावहारिक संकल्पना
8. भूमि उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना

5.4.1. अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना

भूमि का उपयोग मानव अपने आवश्यकता के अनुसार करता है मानव का प्रमुख उद्देश्य भूमि से अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। जिस भूमि उपयोग से अधिकतम लाभ प्राप्त होता है उस भूमि को अनुकूल भूमि उपयोग कहा जाहै हैं। अधिकतम लाभ की संकल्पना के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं प्रथम भूमि उपयोग क्षमता तथा द्वितीय अनेक उपयोगों के लिए भूमि की मांग। फाउंड के अनुसार भूमि उपयोग की दो विशेषताएं हैं प्रथम उपयोगी प्रकार तथा द्वितीय गहनता में परिवर्तन। सघन या गहन कृषि में प्रति इकाई अधिक लागत तथा बड़े–बड़े कृषि भूमि पर लागत कम से कम किया जाता है। कृषि भूमि उपयोग में मुख्य लागत भूमि, श्रम तथा पूजी की होती है। अनुकूलतम भूमि उपयोग की गहनता का निर्धारण एक लागत कारक या अनेक लागत कारक के माध्यम से किया जाता है। भूमि का औद्योगिक तथा व्यापारिक उपयोग से अधिकतम लाभ प्राप्त होता है इसके बाद कृषि भूमि, आवासीय, चारागाह तथा वन हेतु भूमि का उपयोग लाभदायक सिद्ध होता है। खेती के अयोग्य भूमि तथा सीमांत कृषि भूमि से अपेक्षाकृत कम लाभ प्राप्त होता है। इस तरह भिन्न–भिन्न प्रकार के स्थानों के लिए सर्वोत्तम भूमि उपयोग की दशा भिन्न–भिन्न होती है।

5.4.2. भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना

भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना बारलोव ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कृषि क्षमता का संबंध उस प्रभाव उत्पादक क्रिया से है जहां पूजी तथा श्रम के क्रमिक उपयोग के आधार पर भूमि की उत्पादन क्षमता में निरंतर वृद्धि होती है। भूमि उपयोग क्षमता का तात्पर्यभूमि इकाई क्षेत्र की उत्पादन क्षमता से है। जब उस क्षेत्र इकाई से उत्पादन लागत की तुलना में शुद्ध लाभ अधिक होता है तो उस भूमि की उत्पादन क्षमता अच्छी मानी जाती है। भूमि उपयोग क्षमता का आकलन व निर्धारण किसी क्षेत्र से प्राप्त शुद्ध लाभ के माध्यम से ज्ञात किया जाता है। जब भूमि उपयोग क्षमता अधिक होती है तो उत्पादन लागत की अपेक्षा शुद्ध लाभ अधिक प्राप्त होता है। भूमि उपयोग क्षमता के निर्धारण में कई कारक शामिल होते हैं जिसमें कृषित एवं अकृषित, बहुफसली क्षेत्र, प्रति हेक्टेयर उपज तथा कृषि में उपयोग तकनीकी का स्तर प्रमुख है। संयुक्त राज्य अमेरिका में भूमि उपयोग क्षमता का प्रयोग सर्वप्रथम बार किया गया इसके बाद महत्वपूर्ण कार्य ग्रेट ब्रिटेन में डडले स्टाम्प द्वारा किया गया है। रूस में भूमि उपयोग क्षमता का अध्ययन दोकुचायेव तथा भारत में सरकारी प्रयासों द्वारा किया गया है।

5.4.3. कृषि भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना

आर्थिक महत्व के अनुसार भूमि कई प्रकार से महत्वपूर्ण है। धरातली भूमि का उपयोग क्षेत्र, प्रकृति, उत्पादन कारक, उपभोग पदार्थ, पूजी तथा संपत्ति के रूप में किया जाता है। मनुष्य धरातल तथा मिट्टी से अपनी आजीविका को प्राप्त करता है जिससे यह स्पष्ट होता है की भूमि एक आर्थिक संसाधन है। जो देश आर्थिक दृष्टि से विकसित होते हैं वह कृषि के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। भूमि प्राकृतिक पर्यावरणीय तत्वों की उपयोगिता को प्रभावित करते हैं। भूमि एक उत्पादन कारक है जिससे आर्थिक महत्त्व की भोज्य पदार्थ, ऊर्जा तथा कच्चा माल प्राप्त होता है। भूमि के उपयोग के आधार पर आवास के लिए एवं मनोरंजन स्थल के रूप में किया जाता है। भूमि का महत्त्व स्थान विशेष के आधार पर भिन्न भिन्न होता है इस प्रकार इस स्थिति के अनुसार भूमि का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है, विशेष स्थिति होने पर उसका महत्त्व बढ़ जाता है। उत्पादन की दृष्टि से भूमि एक पूजी है जिससे मानव द्वाराकिये गए क्रिया कलाप के परिणामस्वरूप इसकी वृद्धि तथा ह्रास होती है। अर्थशास्त्रियों के लिए भूमि एक प्रकार की पूंजी है। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भूमि एक क्षेत्र है तथा भूमि उपयोग स्वयं में संसाधन युक्त है।

5.4.4. भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना

आधुनिक युग में भूमि का उपयोग तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत पर आधारित है। भूमि उपयोग के प्रकारों के लिए भूमि का चयन करते समय एक नियत अवधि में अधिकतम लाभ प्रदान करने वाली फसलों का चयन किया जाता है जैसे भारत के दक्कन भाग के लिए कपास एवं गन्ना, मलेशिया में रबड़, थाईलैंड में रबड़, ब्राजील में कहवा तथा जलोढ़ मृदा वाले क्षेत्र में चावल एवं गेहूं आदि फसलें लाभदायक सिद्ध होती है। तुलनात्मक लाभ दो तरह से प्राप्त होता है प्रथम प्राकृतिक रूप से तथा द्वितीय आर्थिक क्रियाकलाप के रूप में। किसी ऐसे क्षेत्र में जहाँ उर्वर मृदा, अनुकूल तापमान तथा वर्षा आदि तत्व होने पर वहाँ खेती का कार्य करना प्राकृतिक रूप से अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। इसके विपरीत सस्ते व अधिक श्रम के होने पर आर्थिक लाभ प्राप्त होगा। कुछ ऐसी भी फसलें हैं जिनका उत्पादन लागत कम तथा लाभ अधिक प्राप्त होता है जैसे तिलहन तथा दलहन के फसल। इस फसल में श्रम तथा पूजी की लागत कम लगती है। तुलनात्मक लाभ की संकल्पना का प्रतिपादन अर्थशास्त्री डेविड रिकॉर्डो द्वारा किया गया है।

5.4.5. भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना

भूमि उपयोग की संकल्पना के विश्लेषण में दूरी की संकल्पना एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। यह संकल्पना गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के समान है जिसके अनुसार इन्हीं दो वस्तुओं कि दूरी कम होने पर आकर्षण अधिक होता है तथा दूरी बढ़ने पर आकर्षण दूरी के वर्ग के अनुपात में कम हो जाता है। इस तथ्य को इस सूत्र द्वारा सरल ढंग से समझा जा सकता है–

$$G=M1\times M2/D2$$

G= गुरुत्वाकर्षण

M1= पहलीवस्तु की मात्रा

M2= दूसरी वस्तु की मात्रा

D2= दोनों वस्तु के बीच की दूरी

भूमि उपयोग तथा दूरी के बीच संबंधों से संबंधित सिद्धांत को सर्वप्रथम वन थ्यूनेन ने प्रस्तुत किया। भूमि उपयोग पर दूरी का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ता है। बाजार केंद्र से दूर जाने पर भूमि उपयोग के प्रतिरूप मे परिवर्तन आ जाता है तथा कम लागत एवं कम लाभ वाले क्रिया कलाप अधिक संपादित होते हैं। ऐसे क्षेत्र जो कृषक के आवास तथा परिवहन साधनों से दूर स्थित है उन क्षेत्र में भी भूमि उपयोग में अंतर पाया जाता है। बाजार केंद्र से दूरी बढ़ने पर शुद्ध लाभ की दर में कमी होती जाती है। साथ ही दूरी के अनुसार प्रभाव क्षीडता का नियम लागू होता है। जैसे हम अपने आस–पास के वस्तुओं के बारे में अच्छी तरह से जानकारी रखते हैं लेकिन जब हम उन वस्तुओं से जैसे–जैसे दूर जाते हैं वैसे–वैसे ज्ञान की कमी होने लगत है।

5.4.6. भूमि उपयोग के अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रतिबिम्ब की संकल्पना

इस संकल्पना में भूमि उपयोग से संबंधित निर्णय की क्रिया प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रतिबिंबित ज्ञान से प्रभावित होती है। भूमि उपयोग संबंधित निर्णय या तो निजी अनुभव पर अथवा अन्य व्यक्तियों या साधनो द्वारा प्रभावित होता है। निर्णय के दौरान कृषक का अनुभव, सक्रियता, शैक्षिक तथा सामाजिक स्तर, पूर्व निर्णय का प्रभाव, नवाचार के प्रति साहस तथा संबंधित ज्ञान का प्रभाव पड़ता है। जे.वोल्पर्ट का भूमि उपयोग से संबंधित निर्णय महत्वपूर्ण है जो मध्यवर्ती स्वीडेन के अध्ययन पर आधारित है। जहाँ कृषकों की उत्पादकता अनुकूलतम से कम प्राप्त हुई है। वोल्पर्ट के अनुसार अनुकूलतम उत्पादकता में कमी का कारण कृषकों का जानकारी का अभाव तथा सीमित उपलब्ध ज्ञान था। निर्णय लेना एक जटिल प्रक्रिया है जो मानव के ज्ञान को सूचित करती है। इसकी जटिल प्रकृति के कारण इससे संबंधित सर्वमान्य सिद्धांत का विकास नहीं किया जा सका है जो आर्थिक भूदृश्य का मानव द्वारा लिए गए निर्णय की व्याख्या की जा सके।

पीटर हैगेट का प्रत्यक्ष तथा प्रतिबिंबित ज्ञान के संदर्भ में प्रशंसनीय है–मानव के निर्णय लेने की प्रक्रिया न तो पूर्णतः तर्कसंगत है और ना ही पूर्णतः अव्यवस्थित है, वरन यहाँ अवसर पसंद तथा परिकलन किस संभाव्यता का मिश्रण है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भूमि उपयोग का अर्थ अत्यंत विस्तृत है। कृषि कार्य की भिन्नता एवं विशिष्टता भूमि उपयोग के विकास कार्य एवं क्रम को अभिव्यक्ति करती है।

5.4.7. भूमि उपयोग में व्यावहारिक संकल्पना

भूमि उपयोग के व्यवहारिक संकल्पना में कृषक के व्यवहार तथा भूमि उपयोग संबंधित निर्णय की विवेचना किया जाता है। जैसा कि आप निर्णय से अवगत हैं कि यह एक जटिल प्रक्रिया है तथा मानव व्यवहार का परीक्षण करना इतना सरल नहीं है अतः यह एक अत्यंतिक कठिन प्रक्रिया है। प्रत्येक कृषक का मूल उद्देश्य कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करना होता है अतः कृषक फसल से संबंधित निर्णयों को लेते समय कभी कभी असमंजस की स्थिति में रहता है। उत्पादित की गई सभी वस्तुओं पर बाजार का प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन व्यक्तिगत उपयोग हेतु किया जाता है। इस प्रकार भूमि उपयोग में उत्पादों के लिए उपयोगिता मापक का बनाया जाना अत्यंत उपयोगी रहता है। निर्णय मे संक्रमणता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो कृषक वर्ग व्यक्तिगत उपयोगिता तथा व्यक्तिगत संभाव्यता के आधार पर निर्णय लेता है।

5.4.8. भूमि उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना

भूमि उपयोग में क्षेत्री संतुलन की संकल्पना का महत्वपूर्ण योगदान है। कोई भी निर्णयकर्ता किसी भी क्षेत्र में निर्णय के दौरान मांग व पूर्ति को सदैव संतुलित रखना चाहता है। इस वर्तमान युग में आर्थिक विकास की अंधाधुंध दौड़ में उद्योगों तथा नगरों का बड़ी तेजी के साथ विकास हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप उपजाऊ भूमि पर इसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। अधिकांश उपजाऊ भूमि पर पहले से ही खेती का कार्य किया जा रहा है किंतु नगरों के निकटवर्ती उपजाऊ भूमि पर सड़कों, आवासो, उद्योगों आदि द्वारा इस उपजाऊ भूमि का अतिक्रमण किया जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार जिस प्रकार से उपजाऊ भूमि का अतिक्रमण हो रहा है अगले 20 वर्षों में विश्व का एक तिहाई कृषि योग भू–भाग समाप्त हो जाएगा। यदि किसी उपजाऊ भू–भाग को एक बार छीन ली जाएं तो वह भूमि हमेशा के लिये कृषि कार्य के लिए अनुपलब्ध हो जाएगी। इस प्रकार की कृषि हानि स्थायी होगी। इस अतिक्रमण भूमि के दूसरी ओर कृषित भूमि के विस्तार के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। इसके लिए चारागाह तथा वन्य क्षेत्र कृषि भूमि में बदले जा रहे हैं। इन सब क्रिया कलापों से पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ रहा है जो संपूर्ण मानव जगत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है। इस प्रकार भूमि उपयोग में संतुलन की स्थितिकी अत्यन्त आवश्यकता होती है।

5.5 कृषि भूमि उपयोग का वर्गीकरण

भूमि उपयोग का वर्गीकरण उसके गुण एवं दोषों के आधार पर किया जाता है जो भिन्न भिन्न रूपों में होते हैं इस आधार पर भूमि को विभिन्न श्रेणियों यह वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है। भूमि विभाजन का अनेक आधार हों सकता है जिसमें प्राकृतिक तथा सामाजिक आदि आधार है। प्राकृतिक आधार पर भू–आकृति, मृदा, वर्षा, जलवायु आदि में किया जा सकता है किंतु किसी भूमि का वर्गीकरण सामान्य भूमि उपयोग के वर्गीकरण से अलग होता है इसमें मुख्य रूप से भूमि का उपयोग तथा अनुपयोग को महत्त्व दिया जाता

है। वर्ष 1949 में स्थापित टी.सी.सी.ए द्वारा सर्वमान्य विभाजन प्रस्तुत किया गया था जो एक निश्चित आधार पर आधारित है ये वर्ग निम्नलिखित है–

(1) कृषि उपयोग भूमि

- ऐसी भूमि जो कृषि के अतिरिक्त काम में लाई गई है उदाहरणस्वरूप सड़क, आवास, रेल, तालाब, नहर,खेल का मैदान आदि।
- कृषि के अयोग्य भूमि तथा ऊसर भूमि
- बंजर भूमि

(2) सभी प्रकार के वन क्षेत्र

(3) परती भूमि के अलावा जोतरहित भूमि

- स्थावर चारागाह तथा अन्य प्रकार की पशुचारण भूमि
- पेड़ पौधों एवं बाग के अन्तर्गत की भूमि
- कृषि योग्य बंजर भूमि

(4) परती भूमि

- चालू प्रति
- अन्य परती

(5) कुल बोया गया क्षेत्र

(6) वास्तविक बोया गया क्षेत्र

(7) दो फसली क्षेत्र

भूमि उपयोग के वर्गीकरण का निम्न उद्देश्य है जो इस प्रकार हैं–

- विभाजन की स्थायी पद्धति का निर्माण करना।
- बृहत प्रकार के उद्देश्यों की आपूर्ति करना।
- सर्वमान्य योजना का आधार देना।
- भूमि उपयोग प्रकारों का वर्णन करना।

भूमि उपयोग का वर्गीकरण सामाजिक नियम के आधार पर ही किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था में भू–स्वामित्व, कृषि तथा सामाजिक संरचना का एक महत्वपूर्ण आधार है। सामाजिक व्यावस्थाओं तथा संस्थाओं से भूमि उपयोग प्रभावित होता है। भू–जोत तथा

कास्तकारी व्यवस्था के आधार पर भी भूमिका वर्गीकरण किया जा सकता है, भूमि विभाजन इन समस्त कारकों से प्रभावित होता है। अतः भू–स्वामित्व भूमि वर्गीकरण का एक महत्वपूर्ण आधार हो सकता है। कुछ प्रदेशों में अधिकांश भूमि निजी व्यवस्था के अंतर्गत होती है जबकि अन्य कुछ प्रदेशों में सामूहिक स्वामित्व के अंतर्गत भूमि की व्यवस्था की जाती है। जहाँ काश्तकारी प्रथा प्रचलन में है वहाँ भू–स्वामित्व कम होता है। कुछ प्रदेशों में सहकारिता के आधार पर कृषि कार्य किया जाता है वहाँ पर भूमि उपयोग विभिन्न रूप में होता है।

वर्तमान समय में बढ़ती हुई जनसंख्या तथा ज्ञान विज्ञान एवं तकनीक में विकास के कारण भूमि उपयोग की सीमाओं में बहुत अधिक बदलाव हो गया है। भूमि उपयोग की सीमा परिवर्तनीय होती है जो लंबे समय तक स्थायी नहीं होता है।

5.6 सारांश–

आपने इस इकाई में कृषि भूमि उपयोग संकल्पनाओं का अध्ययन किया है। अब आप अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना, भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना, कृषि भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना, भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना, भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना, भूमि उपयोग के अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रतिबिम्ब की संकल्पना, भूमि उपयोग में व्यावहारिक संकल्पन तथा भूमि उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना आदि को समझ गये होंगे। इसके अलावा कृषि भूमि उपयोग संकल्पनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके कृषि भूमि उपयोग को कैसे ह्रास से बचाया जा सकता हैं तथा कैसे अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

5.7 शब्द सूची–

Land use-भूमि उपयोग, Regional balance- क्षेत्रीय संतुलन,

Fertile land-उर्वर भूमि, Salinity–लवणता,

Soil management-मृदा प्रबन्धन, Irrigationसिंचाई,

Crop Planning- शस्य नियोजन, Plantation-बागानी,

Land encroachment-भू–अतिक्रमणAlkalinity-क्षारीयता,

Land use efficiency- भू उपयोग क्षमता,

Wathershed development-जल–संभर विकास,

5.8 परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कृषि भूमि को कौन–सा तथ्य स्पष्ट करता है?

   क–धरातल का ऊपरी सतह ख–धरातल का अनुपजाऊ सतह

ग–धरातल का उपजाऊ सतह घ–धरातल का गहराई वाला भाग

2. निम्नलिखित में से कृषि भूमि प्रयोग कौन सा स्पष्ट व्याख्या करता है?

   क–इसका उपयोग मानव द्वारा किया जाता है।

   ख–इसका उपयोग प्राकृतिक तरीके से किया जाता है।

   ग–इसमें कृतिम पदार्थों का प्रयोग होता है।

   घ–इसका प्रयोग आवासीय क्षेत्र में किया जाता है।

3. फाउंड के अनुसारउपयोग की कितनी विशेषताएं होती हैं?

   क–2 ख–4 ग–6 घ–8

4. भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना किसने प्रस्तुत की है?

   क–फाउंड ख–रिकॉर्डो

   ग–बारलोव घ–स्मिथ

5. भूमि उपयोग का तुलनात्मक लाभ की संकल्पना किस विद्वान ने प्रस्तुत की है?

   क–फाउंड ख–रिकॉर्डो

   ग–बारलोव घ–स्मिथ

6. भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना किस पर आधारित है?

   क–रिकॉर्डो के सिद्धांत पर ख–न्यूटन के सिद्धांत पर

   ग–लाश के सिद्धांत पर घ–बरलोव के सिद्धांत पर

7. भूमि उपयोग तथा दूरी के बीच संबंधों से संबंधित सिद्धांत सर्वप्रथम किसने प्रस्तुत किया?

   क–रिकॉर्डो ने ख–न्यूटन ने

   ग–वन थ्यूनेन ने घ–बारलोब ने

8. रूस में भूमि उपयोग क्षमता का अध्ययन किसने किया है?

   क–दोकुचायेव ख–डडले स्टाम्प

   ग–रिकॉर्ड घ–पीटर हैगेट

5.9 उपयोगी पुस्तकें–

5. प्रो0 रामचन्द्र तिवारी, बी0एन0 सिंह, कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।
6. अलका गौतम, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
7. माजिद हुसैन, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. हरेन्द्र कुमार सिंह, कृषि भूगोल के मूलतत्व, राजेश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

5.10 अभ्यास प्रश्न–

1. कृषि भूमि उपयोग की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
2. अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना तथा भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
3. भूमि उपयोग में व्यावहारिक संकल्पना तथा भूमि उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
4. भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना तथा भूमि उपयोग के अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान एवं प्रतिबिम्ब की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
5. कृषि भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना तथा भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
6. कृषि भूमि उपयोग की संकल्पनाओं से आप क्या समझे स्पष्ट कीजिए।

इकाई 06– कृषि के स्थानीयकरण के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 वानथ्यूनेन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

6.2.1 कृषि स्थानीयकरण का वानथ्यूनेन का सिद्धान्त

6.2.2 विद्वान वानथ्यूनेन की मान्यताएँ

6.2.3 वानथ्यूनेन का कृषि स्थानीयकरण का पेटियाँ

6.2.4 वानथ्यूनेन की कृषि भूमि उपयोग पद्धति

6.2.5 वानथ्यूनेन के सिद्धान्त में संशोधन

6.2.6 वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की आलोचना

6.2.7 वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की प्रासंगिकता

6.3 कृषि अवस्थिति के आधुनिक सिद्धान्त

6.3.1 अनुकूलतन भौतिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त

6.3.2 अनुकूलतन आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त

6.3.3 आलोचना

6.0 सारांश

6.1 बोध प्रश्न

6.2 शब्दावली

6.3 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.4 बोध प्रश्न के उत्तर

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

6-0 **प्रस्तावना –**

मानव अर्थव्यवस्था एवं जीवन में कृषि मूल है, कृषि पर जीवन निर्भर है। मानव जीवन–यापन हेतु विभिन्न परिस्थितियों, अवस्थाओं से गुजरता रहा। कभी आखेट किया, कभी पशुपालन, कभी वन्य वस्तु संग्रह किया और धीरे–धीरे कृषि प्रविधियों को अपनाने लगा और वर्तमान समय में कृषि भरण–पोषण का एकमात्र साधन बनी और इस पर आधारित अनेक व्यवसाय, उद्योग–धन्धे, क्रियाकलाप वर्तमान सभ्यता के आधार बन गये। कृषि लगभग 8000 ई०पू० से प्रारम्भ हुई, जब पौधों और पशुओं के पालने एवं उगाने का कार्य प्रारम्भ किया। एक लम्बे दौर में कभी पशुपालन प्रमुख था, कभी कृषि प्रमुख हो गयी। कृषि का स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहा। वर्तमान समय में आधुनिक विकसित औद्योगिक, वाणिज्यिक रूप में स्पष्ट दृष्टिगत होती है। बढ़ती जनसंख्या, भरण– पोषण हेतु मानव ने जंगलों को काटा और भूमि को कृषि कार्य में परिवर्तित किया। धीरे–धीरे कृषि का विस्तार हुआ। मैदानी क्षेत्रों के अलावा पहाड़ों और पठारों में भी कृषि का विस्तार होता गया। मानव अधिक से अधिक कृषि उत्पादन प्राप्त करने के लिए तत्पर रहा, जिससे कृषि क्षेत्र में शोध एवं अध्ययन का महत्व बढ़ा। कृषि भूमि उपयोग में यह महत्वपूर्ण बिन्दु होता है कि हम उस निश्चित इकाई क्षेत्र में किन विधियों, किन फसलों को अपनाकर अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकें तथा कम लागत में अधिकतम लाभ कमा सकें। इसी सन्दर्भ में कृषि वैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, जिसमें विद्वान जे०एच० वानथ्यूनेन, विद्वान डन, हुबर, लॉश, इजार्ड, एलान्सो, हीरवर्थ, मैकार्टी, लिण्डमैन, आर०बी० मण्डल, जे० न्युमैन, मार्गेन्स्टिन आदि विद्वानों ने अपने विचार दिये।

6.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- कृषि भूमि उपयोग का अर्थ समझ सकेंगे।
- तुलनात्मक लाभ, उत्पादन लागत, विक्रय–मूल्य, परिवहन लागत, कैसे अन्तर्सम्बन्धित है, को समझ सकेंगे।
- फसल उत्पादन और लाभ के तत्वों की विशद् व्याख्या कर सकेंगे।
- बाजार से बढ़ती दूरी के साथ लाभ पर पड़ने वाले तत्व परिवहन व्यय कैसे कार्य करती है, की समझ विकसित होगी।
- फसल उत्पादन के सन्दर्भ में इस फसल से या किस कृषि क्रिया से अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, का वर्णन कर सकेंगे।
- कृषि उत्पादन कार्य में बाजार की भूमिका की समझ कृषक के मस्तिष्क में विकसित होगी।

6.2 वानथ्यूनेन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

जॉन हेनरिच वानथ्यूनेन (24 जून, 1783 – 22 सितम्बर, 1850) जर्मनी के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे। संक्षेप में इनको वानथ्यूनेन के नाम से जाना जाता था। उत्तरी जर्मनी के मैकलेनवर्ग में एक कृषि फार्म के व्यवस्थापक (मैनेजर) थे। इन्होंने अपने दीर्घकाल के अनुभव एवं आर्थिक विश्लेषण के आधार पर कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धित एक सिद्धान्त की विवेचना किया, जो वानथ्यूनेन के सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह सिद्धान्त इन्होंने 1826 ई० में दिया, ये सुयोग्य कृषि अर्थशास्त्री थे, इन्होंने अपने सिद्धान्त में अर्थशास्त्र एवं कृषि अर्थशास्त्र दोनों पक्षों को शामिल किया।

6.2.1 कृषि स्थानीयकरण का वानथ्यूनेन का सिद्धान्त –

विद्वान वानथ्यूनेन ने अपने दीर्घकालीन अनुभव और ज्ञान के आधार पर सन 1826 में कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धित कृषि अवस्थित या कृषि स्थानीयकरण से सम्बन्धित सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसमें इन्होंने यह सुलझाने का प्रयास किया कि किस भू–भाग में कौन सी फसल अथवा कौन सी कृषि क्रिया पद्धति अपनायी जाये, जिससे कृषक को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। विद्वान वानथ्यूनेन ने अपने सिद्धान्त के स्पष्टीकरण में कृषि उत्पादन के समस्त आगत के साथ–साथ बाजार तक उत्पाद को ले जाने तक खर्च होने वाले परिवहन व्यय को अधिक महत्व देते हुए अपने सिद्धान्त की व्याख्या किया। कृषक को होने वाला लाभ विक्रय मूल्य में उत्पादन लागत और परिवहन मूल्य को निकाल देने से निर्धारित होता है। इनके सिद्धान्त में अर्थशास्त्र, लगान का सिद्धान्त का महत्व अधिक है। वान थ्यूनेन का सिद्धान्त ग्रामीण एवं नगरीय दोनों प्रकार के भूमि उपयोग के लिए लागू होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी कृषक का लाभ तीन विचलकों पर आधारित होता है, जो निम्न सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है –

$$P = V - (E + T)$$

जहाँ

P = कृषक का लाभ (Profit)

V = वस्तु का विक्रय मूल्य (Selling Price)

E = उत्पादन की लागत (Expense)

T = परिवहन (Transport) लागत के द्योतक हैं।

वानथ्यूनेन की मान्यता है कि किसी भी भू–क्षेत्र पर उन्हीं फसलों का उत्पादन किया जाता है, जिसमें अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। इसका परिकलन निम्न सूत्र से किया जाता है–

$$L = Y(P-C) – YD (F)$$

जहाँ

L = अवस्थापनात्मक भूकर Location rent

Y = प्रति इकाई भूमि की उपज (प्रति वर्ग किमी0 टन में) (The Crop Yield)

P = उपज का बाजार मूल्य (Market Price of the crop)

C = उपज की उत्पादन लागत (Production Expenses)

D = बाजार की दूरी (Distance of Central Market)

F = परिवहन लागत (Transport Cost)

विद्वान वानथ्यूनेन के अनुसार नगर से दूरी बढ़ने के अनुसार शस्य स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगत होता है, क्योंकि दूरी बढ़ने के साथ उत्पादकता एवं शुद्ध लाभ में कमी होती जाती है और भूमि उपयोग में परिवर्तन पाया जाता है, जो चित्र सं०–क से स्पष्ट है। वानथ्यूनेन द्वारा प्रस्तुत सूत्र के अनुसार नगर से बाहर की ओर दूरी बढ़ती जाती है, परिवहन लागत बढ़ता है, उसी अनुपात में लाभ घटने लगता है, जहाँ कहीं भी कृषक को उत्पादित होने वाली फसल से लाभ समाप्त हो जाता है, वहीं उस फसल की बाहरी सीमा निर्धारित हो जायेगी। इससे स्पष्ट होता है कि आन्तरिक उक्त पेटियों की सीमायें अधिक लाभ प्रदान करती हैं और कम लाभ देने वाली बाजार से बढ़ती दूरी के अनुसार निर्धारित होती जाती हैं। इस तथ्य का प्रभाव उनकी कृषि पेटियों पर स्पष्ट दिखायी देता है। इसे निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है – चित्र 11.1 में स्पष्ट है कि जैसे–जैसे नगर से दूरी बढ़ती जाती है, फसल का परिवहन व्यय बढ़ता जाता है, जिससे बचत कम होती है। चित्र में नगर से दूरी, उत्पादन लागत, प्रति इकाई उपज मूल्य, आर्थिक लगान (बचत), बाजार मूल्य प्रदर्शित किया गया है। नगर से बढ़ती दूरी के अनुसार प

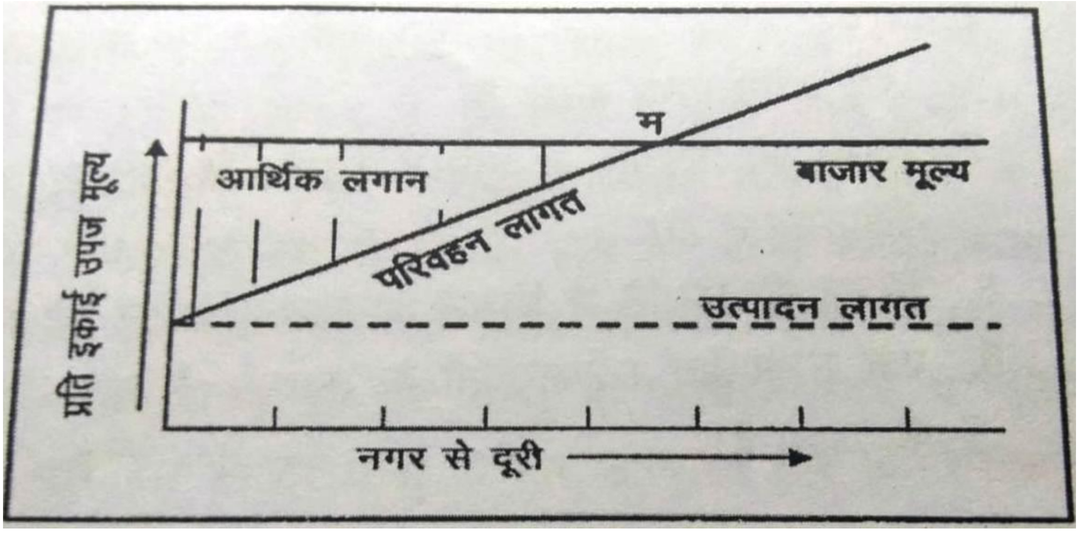

चित्र संख्या–11.1 नगर से दूरी एवं प्रति इकाई उपज मूल्य

बिन्दु पर बचत शून्य हो जाती है। इस कारण यहाँ फसल का उत्पादन लाभदायक नहीं होता है और इस भूमि को सीमान्त भूमि के नाम से जानते हैं। जैसे– मान लिया जाये, सब्जी उत्पादन का विवरण इस प्रकार है, प्रतिहेक्टेयर उत्पादन 1500 किलोग्राम है, बाजार का भाव 5 रुपया प्रति किलोग्राम है और उत्पादन व्यय 2 रुपया प्रति किलोग्राम है, परिवहन व्यय 0.10 रुपया प्रति किलोग्राम है, यदि सब्जी की खेती बाजार में की जाती है तो परिवहन शून्य होगा और कृषक को लाभ 1500 (5.00 – 2.00) – 1500 (0.10×0) = 4500 रुपया प्रति हेक्टेयर का लाभ किसान को होगा। यह लाभ अधिकतम है और यदि इसी सब्जी का उत्पादन इसी मानक के अनुसार 5 किलोमीटर दूर किया जाता है तो लाभ इस सूत्र के अनुसार घटकर रुपया 3,750/– प्रति हेक्टेयर प्राप्त होगा। 30 किलोमीटर की दूरी पर यह लाभ शून्य हो जायेगा। किसान अब आगे सब्जी का कृषि कार्य नहीं सम्पादित करेगा। इसे एक दूसरे उदाहरण और तालिका से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या–1.1

विभिन्न फसलों के उत्पादन से प्राप्त लाभ की गणना

नगर से इकाई दूरी	बाजार मूल्य	उत्पादन लागत	परिवहन व्यय	लाभ
लकड़ी				
0.5	200	140	10	50

1.0	200	140	20	40
1.5	200	140	30	30
2.0	200	140	40	20
2.5	200	140	50	10
3.0	200	140	60	0
अन्न				
0.5	80	50	3	27
1.0	80	50	6	24
1.5	80	50	9	12
2.0	80	50	12	18
2.5	80	50	15	15
3.0	80	50	18	12
3.5	80	50	12	9
4.0	80	50	24	6
4.5	80	50	27	3
5.0	80	50	30	0

स्रोत –Anddreas Grotewold, Economic Geography (1959)

विद्वान वानथ्यूनेन ने बताया कि कोई वस्तु केन्द्रीय नगर से जितना अधिक दूरी पर उत्पादित होगी, उतना ही अधिक परिवहन व्यय लगेगा और उतना ही अनुपात में आर्थिक लाभ घटता जायेगा। इसे तालिका 14.1 के आंकड़े से समझा जा सकता है। लकड़ी का उत्पादन नगर के 0.5 की दूरी पर करने पर लाभ 50 रुपये का होता है और तीन इकाई दूरी पर उत्पादन करने पर यह आर्थिक लाभ शून्य हो जाता है। इस तरह अन्न का उत्पादन एक इकाई पर करने पर कृषक को 27 रुपये का आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। पाँच इकाई दूरी पर अन्न उत्पादन से शून्य रुपये का लाभ होता है। दो इकाई दूरी पर उत्पादन से लकड़ी द्वारा 20 रुपये का एवं अन्न द्वारा 18 रुपये का लाभ होता है, लेकिन 2.5 इकाई दूरी पर लकड़ी द्वारा प्राप्त लाभ 10 है, जबकि अन्न द्वारा प्राप्त आर्थिक लाभ इसी दूरी पर 15 है, इसलिए कृषक दो इकाई तक लकड़ी का उत्पादन करेगा, दो

इकाई के बाद आर्थिक लाभ अधिक होने से अन्न का उत्पादन करेगा। जिन वस्तुओं की उत्पादकता प्रति इकाई क्षेत्र कम है, वे नगर से दूर तक उगाई जा सकती है।

विद्वान वानथ्यूनेन के आर्थिक लाभ तथा दूरी के सम्बन्ध को दिखाने के लिए चित्र 11.2 में प्रयास किया गया है। इस आरेख में आर्थिक लगान को दिखाने वाली रेखा सीधी लम्बवत् है और दाहिनी ओर गिरती हुई दिखायी जाती है। परिवहन की दर अलग–अलग होने के कारण रेखाओं की ढाल प्रवणता भी भिन्न भिन्न है। चित्र 11.2 में सब्जी, दूध, मांस एवं पशु, बाजार प्रभाव नगण्य क्षेत्र को आर्थिक लाभ व बाजार से दूरी के परिप्रेक्ष्य में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में सब्जी का उत्पादन 4.5 मील तक दूध का उत्पादन, 10 मील तक मांस और पशु का उत्पादन, 25 मील तक बाजार प्रभाव नगण्य वाला क्षेत्र 40 मील तक विस्तृत है। इन दूरियों तक इन फसलों की खेती से कुछ न कुछ आर्थिक लगान प्राप्त होगा, लेकिन फसल और भूमि उपयोग का निर्धारण तुलनात्मक लाभ पर निर्भर करता है, जो चित्र से स्पष्ट है कि सब्जी का उत्पादन 1.7 मील की दूरी तक होगा, उसके बाद दूध का उत्पादन होगा, क्योंकि 1.7 मील के बाद दूध से होने वाला आर्थिक लाभ सब्जी के लाभ से अधिक है। दूध का उत्पादन 5 मील तक होगा, उसके बाद मांस और पशु का उत्पादन होगा, क्योंकि उससे प्राप्त होने वाला आर्थिक लाभ दूध से प्राप्त आर्थिक लगान या लाभ से अधिक होगा। मांस और पशु का उत्पादन 19 मील तक किया जा सकेगा। इसके बाद बाजार प्रभाव नगण्य होने से उसका विस्तार होता जायेगा। इस तरह बाजार को केन्द्र मानते हुए इन दूरियों की त्रिज्या के आधार पर वृत्त बनाये जाते हैं, तो बाजार के चारों ओर संकेन्द्रीय वृत्त खण्ड निर्मित होंगे, जो फसलों के उत्पादन क्षेत्र को प्रदर्शित करेगा। इसी प्रक्रिया एवं गणना विधि से विद्वान वानथ्यूनेन ने कृषि स्थानीयकरण के सिद्धान्त को मॉडल के रूप में व्यक्त किया है।

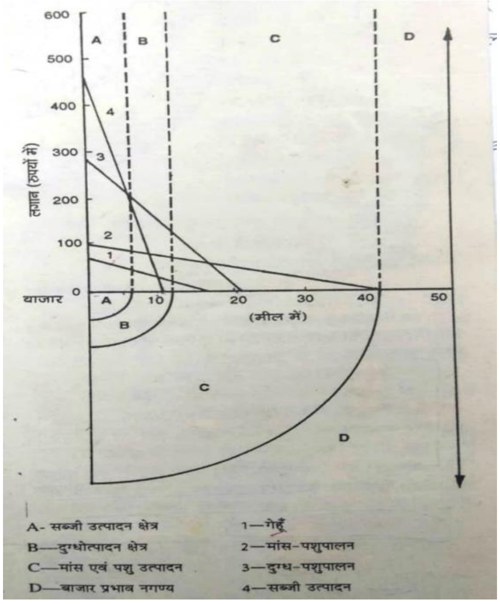

चित्र संख्या–1.2 बाजार दूरी एवं आर्थिक लगान अथवा कृषि पेटियों का सीमांकन

6.2.2 विद्वान वानथ्यूनेन की मान्यताएँ –

अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए विद्वान वानथ्यूनेन ने अनेक मान्यताएँ निर्धारित किया है, जो इनके सिद्धान्त की व्याख्या के पहले समझना आवश्यक होता है। प्रस्तुत मान्यताएँ अग्रांकित हैं –

1. इन्होंने जिस कृषि क्षेत्र की कल्पना की है, वह एकाकी प्रदेश (आइसोलेटेड स्टेट) के रूप में पाया गया, इसमें एकमात्र नगर है। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह अस्वाभाविक एवं काल्पनिक है, लेकिन फिर भी अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए इन्होंने ऐसी मान्यता को स्वीकारा।

2. प्राकृतिक रूप से कृषि क्षेत्र में एक समान मृदा उर्वरता, एक समान फसलों की उत्पादन क्षमता, एक समान उत्पादन लागत, एक समान परिवहन व्यय की कल्पना किया। यह परिकल्पना भौगोलिक दृष्टि से असहज है। क्षेत्रीय विभिन्नता की संकल्पना के विपरीत है।

3. एकाकी प्रदेश में स्थित एकाकी नगर ही उत्पादन और उपभोग दोनों का स्रोत माना गया है। यह भी वास्तविकता से परे है।

4. इनके अनुसार भार एवं दूरी के अनुपात में परिवहन व्यय बढ़ता है। यह भी उस विशेष सन्दर्भों में ही सही होता है।
5. उस एकाकी प्रदेश में स्थित एक नगर के चारों ओर ग्रामीण अधिवासीय क्षेत्रों में कृषक अधिकतम लाभ के उद्देश्य से बाजार की माँग के अनुसार कृषि क्षेत्र में फसल उगाता है।
6. नगर कृषि क्षेत्रों के अधिशेष उत्पादन (Surplus Production) का एकमात्र बाजार है और कृषि क्षेत्र नगर को वस्तुओं की आपूर्ति का एकमात्र स्रोत है।
7. नगर के बाजार में किसी विशेष फसल के लिए सभी किसान समान मूल्य पाते हैं।
8. यह कृषि क्षेत्र एक समदेशिक सतह है (Uniform plain) जिसमें भूभाग, स्थलाकृति और जलवायु में समरूपता है।
9. कृषक विवेकशील है जो एक आर्थिक मानव जैसा व्यवहार करते हैं और अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए खेती में संलग्न है।
10. कृषकों को बाजार की जरूरतों का पूर्ण ज्ञान है।
11. नगर, कृषि भूमि के केन्द्र में स्थित है और इसके आस–पास कोई भी प्रतिचुम्बक (बाजार) नहीं है।
12. यातायात का मात्र एक ही रूप है, घोड़ा गाड़ी एवं नाव। परिवहन लागत एक निश्चित दर से बढ़ती है।

6.2.3 वानथ्यूनेन का कृषि स्थानीयकरण का पेटियाँ –

अधिवास / नगर / गांव से जैसे–जैसे कृषि उत्पादन क्षेत्र की दूरी बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे शस्य स्वरूप में विभेद दिखायी पड़ने लगता है, इसी प्रकार बाजार से दूरी बढ़ने के साथ–साथ उत्पादकता एवं शुद्ध लाभ में कमी होती जाती है और भूमि उपयोग में भी परिवर्तन दिखायी देने लगता है।

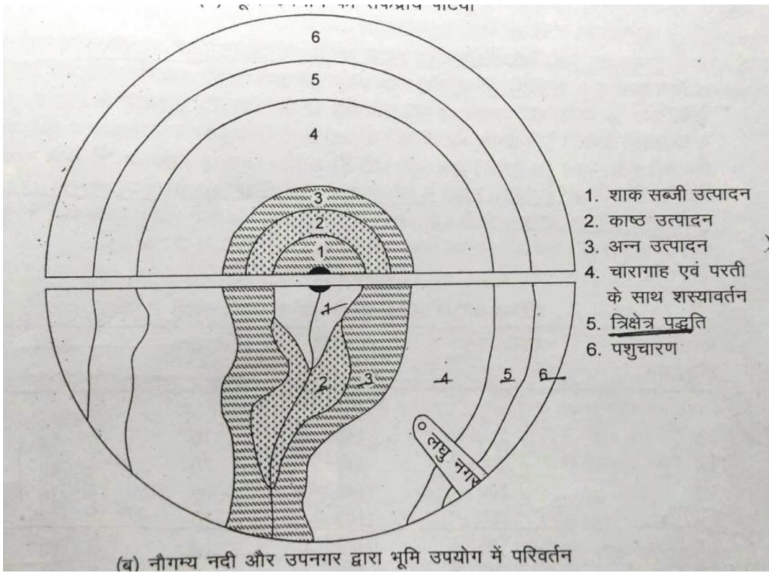

चित्र संख्या–6.3 कृषि अवथिति एवं कृषि पेटियाँ

चित्र संख्या–11.3 से स्पष्ट है कि इन्होंने कुल 6 पेटियों का उल्लेख किया –

1– केन्द्रीय नगर

2– प्रथम पेटी –यह नगर के सबसे निकट क्षेत्र है जिसमें बाजार के लिये सब्जी, दूध, डेयरी पदार्थों का उत्पादन होता है। ये उत्पादन शीघ्र नष्ट होने वाले होते हैं, इन पर परिवहन व्यय अधिक होता है। यह पेटी नगर की आवश्यकतानुसार बाहर की ओर विकसित होती है। माँग के अनुसार इसका पेटी का व्यास बढ़ जाता है।

3– द्वितीय पेटी –वानथ्यूनेन के समयजलाऊँ लकड़ी का बहुत महत्व था, इसलिए नगर के बाद दूसरी पेटी में ईंधन और इमारती लकड़ी का उत्पादन होता था। वर्तमान में इसकी उपयोगिता नहीं रह गयी है, क्योंकि गैस सिलेण्डर, एलपीजी पाइप लाइन एवं कोयले आदि का ईधन के रूप में प्रयोग किया जाने लगा।

4– तृतीय पेटी –इस पेटी में अनाज उत्पादन होता है, इसमें सघन कृषि होती है, कहीं भी परती भूमि नहीं छोड़ी जाती। इस पेटी के साथ नदी की सहलग्नता स्वीकारा था, क्योंकि इकाई की आवश्यकता थी। वर्तमान में सिंचाई के लिए नदी के अलावा अन्य साधन उपलब्ध हैं।

5– नाव्य नदी –इस नदी का प्रवाह–पथ।

6– चतुर्थ पेटी –इस पेटी में भी अनाज उत्पादन होता है किन्तु इसमें परती व चारण भूमि भी छोड़ी जाती है। इस पेटी में सिंचाई के जल की कम आवश्यकता होती है।

7– पांचवी पेटी –यहाँ भी अनाज की खेती होती है, परती भूमि का प्रतिशत अधिक (33 प्रतिशत) होता है और तीन खेत प्रणाली प्रचलित होती है। इसके अन्तर्गत एक तिहाई भाग में खेती, दूसरे में परती, तीसरे एक तिहाई भाग में पशुपालन कार्य सम्पादित होता है। पेटी के बाह्यवर्ती क्षेत्र में चारागाह पाया जाता है।

8– छठीं पेटी –इस पेटी में पशुपालन कार्य होता है। दूध से पनीर प्राप्त होता है और मांस के लिए पशुओं को पैदल नगर तक भेजा जाता है। यह पेटी दूरस्थ भाग में होती है।

विद्वान वानथ्युनेन ने अपनी 6 कृषि पेटियों को उपर्युक्त चित्र में स्पष्ट दर्शाया है। चित्र से स्पष्ट है कि केन्द्रीय नगर के चारों तरफ खेतियाँ वृत्ताकार रूप में फैली हुई हैं। नाव्य नदी के कारण पेटियों के वृत्ताकार स्वरूप में थोड़ा सा परिवर्तन परिलक्षित होता है। इनका सिद्धान्त विचारपरक है और अनावश्यक, अवास्तविक मान्यताओं पर निर्भर है।

6.2.4 वानथ्यूनेन की कृषि भूमि उपयोग पद्धति –

वानथ्यूनेन के कृषि भूमि उपयोग पद्धति की प्रस्तुत सारिणी से स्पष्ट है कि वृत्त खण्ड 0 में नगरीय औद्योगिक भूमि उपयोग का प्रकार है। यहाँ पर औद्योगिक वस्तुएँ विपणन की मुख्य वस्तुएँ हैं, उत्पादन पद्धति प्रदेश का व्यापारिक नगर है। वृत्तखण्ड–1 में जो नगर से 0.1 से 0.6 की सापेक्षिक दूरी पर है, यहाँ भूमि उपयोग गहन कृषि के रूप में हो रहा है। विपणन की मुख्य वस्तु साग–सब्जी एवं दूध है, उत्पादन पद्धति अति गहन है, जिसमें खाद आदि का प्रयोग किया जा रहा है। वृत्तखण्ड–2 की केन्द्रीय नगर से सापेक्षिक दूरी 0.6 से 3.5 है, यहाँ पर भूमि वन के रूप में उपयोग की जा रही है, यहाँ पर विपणन की मुख्य वस्तु ईधन व इमारती लकड़ी है, उत्पादन पद्धति सुव्यवस्थित, वानिकी है। वृत्तखण्ड–3, जो केन्द्रीय नगर से 3.6 से 4.6 सापेक्षिक दूरी पर है, इसका भूमि उपयोग विस्तृत कृषि भूमि के रूप में विपणन की वस्तु राई और आलू है। 6 वर्षीय फसल चक्र राई दो बार, आलू एक बार, बेंच एक और क्लोवर एक, जौ एक बार पैदा किया जाता है। वृत्तखण्ड–4, जो केन्द्रीय नगर से 4.7 से 34 सापेक्षिक दूरी पर है, इसका भूमि उपयोग विस्तृत कृषि का है, विपणन की प्रमुख वस्तु राई है, सात वर्षीय फसल चक्र अपनाया जाता है। इस फसल चक्र में चारागाह–3 राई–1, जौ–ओट एक, परती आदि अपनाया जाता है। वृत्तखण्ड–5 में केन्द्रीय नगर से सापेक्षिक दूरी 34 से 44 के बीच है, इसका भूमि उपयोग विस्तृत कृषि का है और विपणन की वस्तु राई और पशुउत्पाद से सम्बन्धित है, यहाँ उत्पादन पद्धति 3 खेत प्रणाली अपनायी गयी है, जिसमें राई, चारागाह और परती शामिल हैं। वृत्तखण्ड 6, जो केन्द्रीय नगर से 45 से 100 इकाई सापेक्षिक दूरी पर है, में भूमि का उपयोग पशुपालन के रूप में किया जाता है। यहाँ का विपणन की मुख्य वस्तु पशु उत्पाद से सम्बन्धित है। उत्पादन पद्धति पशुपालन और कुछ भाग राई से सम्बन्धित है। वृत्तखण्ड–7 केन्द्रीय नगर से 100 इकाई सापेक्षिक दूरी पर है। भूमि बंजर के रूप में पायी जाती है। यहाँ पर किसी भी प्रकार की कृषि सम्भव नहीं है, इसलिए विपणन की कोई वस्तु उपलब्ध नहीं है और न ही कोई उत्पादन पद्धति है।

6.2.5 वानथ्यूनेन के सिद्धान्त में संशोधन –

विद्वान वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की मान्यतायें अवास्तविक, अव्यवहारिक होने के कारण समय के अनुसार अप्रासंगिक होने लगी। इसलिए इनके सिद्धान्त में समय–समय पर संशोधन विद्वानों ने किया, क्योंकि विश्व के सभी भागों में मैकलेनवर्ग ने स्थित फार्महाउस जैसी भौगोलिक परिस्थितियाँ विद्यमान नहीं हैं। मृदा की उर्वरता भूमि की समतलता भौगोलिक वातावरण की समानता, परिवहन लागत, उत्पादन लागत, बाजार मूल्य, किसान की रुचि, उसकी मनोदशा व्यवहारिक पक्ष पूरे विश्व में मैकलेनवर्ग जैसी नहीं थी। अतः यह सिद्धान्त धीरे–धीरे परिवर्तित होता चला गया। विद्वान डन, हुबर, इजार्ड, मारबुल, लाश, हीरवर्थ, एलान्सो ने इस सिद्धान्त को पुनर्विश्लेषित किया, नवीन विचारों द्वारा संशोधित किया और पुनः प्रतिपादित करने का प्रयास किया, जिससे विद्वान वानथ्यूनेन के मौलिक सिद्धान्त का स्वरूप धीरे–धीरे पूर्णतः परिवर्तित होता चला गया।

6.2.6 वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की आलोचना –

वानथ्यूनेन के सिद्धान्त एक निश्चित समय, निश्चित क्षेत्र पर ही उपयुक्त था, क्योंकि उनकी मान्यतायें सर्वत्र अवास्तविक हैं। अतः इनकी आलोचनायें विद्वान डन, लाश, मारबुल, गैरिसन, चिसोल्म ने किया।

1. इनका सिद्धान्त प्राचीन समय के नगरों के लिए ही उपयुक्त है। वर्तमान काल में परिस्थितियाँ बदल चुकी है। घोड़ा गाड़ी का स्थान तीव्रगामी परिवहन साधनों, जैसे– रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी, वायुयान, पाइ लाइन परिवहन ने ले लिया है।
2. अब न तो दूरी के अनुपात में समान रूप में परिवहन व्यय बढ़ता है।
3. ईंधन के रूप में लकड़ी का स्थान कोयले एवं गैस ने ले लिया है।
4. व्यावहारिक रूप में संकेन्द्रीय पेटियाँ समान रूप से सर्वत्र नहीं मिलती है।
5. थ्यूनेन के आर्थिक लगान के विचार को अनेक आधुनिक विद्वानों ने मान्यता दी है और अपने लेखों में शामिल किया है।
6. लॉश ने लगान पर उत्पादन मूल्य, कीमत तथा पैदावार जैसे अन्य परिवर्तन की खोज की और अवस्थिति सम्भावनाओं को निश्चित करने का प्रयत्न किया तथा बताया कि शहर से दूर कृषि क्षमता में हमेंशा ह्रास होता है, जो काल्पनिक है।

7. हाल एवं चिशोल्म तथा डन थ्यूनेन के इस विचार की आलोचना की कि शहर से दूर कृषि क्षमता में ह्रांस होता है।
8. गैरिसन और मार्बुल ने सिद्धान्त में प्रयुक्त समीकरण को अपूर्ण बताया है।

6.2.7 वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की प्रासंगिकता –

विद्वान वानथ्यूनेन का कृषि भूमि उपयोग सिद्धान्त जिन मान्यताओं पर आधारित है, वे सारी मान्यताएं उस समय भी सर्वत्र नहीं थी, इसलिए उनकी मान्यतायें अवास्तविक थीं एवं उनकी क्रमबद्ध पेटियाँ विश्व के अन्य क्षेत्रों में अवास्तविक अप्रासंगिक थीं, इन्होंने अपने सिद्धान्त में तकनीकी विकास और भूमि उपयोग के स्वरूप में आने वाले परिवर्तन को शामिल नहीं किया था। आधुनिक विकसित अर्थव्यवस्था में सिद्धान्त तथ्यहीन हो गया। इनकी पेटियां यूरुग्वे ने अपवाद स्वरूप देखने को मिलती हैं। मोण्टेविडियो नगर के पास कुछ पेटियां मिलती हैं। इसी तरह उपनिवेशी मैक्सिको में कृषि मेखलायें सिद्धान्त के अनुसार पायी गयीं। वर्तमान में परिवहन द्रुतगामी होने, कृषि में यन्त्रीकरण, फसल संयोजन, फसल सन्तुलन, हरित क्रान्ति, शोधा अनुसंधान, जलवायु परिवर्तन, अन्य भौगोलिक कारणों से वानथ्यूनेन से समय से आज तक पर्यावरणीय दशाओं में अनेक परिवर्तन हुआ है। भारत जैसे सघन बसे क्षेत्र में जीवन–निर्वाहन कृषि होने से इनकी पेटियां सन्दर्भहीन हो गयीं। एक नगर, एक बाजार, एक तरह की भौगोलिक परिस्थितियां और उनके कृषि फार्म जैसी व्यवस्था धरातल पर अन्यत्र असम्भव है। इसलिए यह सिद्धान्त वर्तमान समय में अप्रासंगिक तो है, लेकिन आने वाले विद्वानों के लिए एक नयी विचार प्रस्तुत करता है।

6.3 कृषि अवस्थिति के आधुनिक सिद्धान्त –

कृषि अवस्थिति (कृषि भूमि उपयोग) का आधुनिक सिद्धान्त वास्तविक जगत् में व्याप्त चरों पर आधारित है। आधुनिक सिद्धान्तों में प्राकृतिक वातावरण तथा भूमि संसाधन की क्षेत्रीय विभिन्नताओं को अधिक महत्व दिया गया है इसके अनुसार विभिन्न

फसलों के उत्पादन के लिये अनुकूलतम प्राकृतिक और आर्थिक क्षेत्रों को सीमांकित किया जा सकता है। इस आधुनिक सिद्धान्त में दो प्रमुख आधुनिक सिद्धान्त सम्मिलित हैं –

6.3.1 अनुकूलतम भौतिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त –

(Theory of Physical Limits and Optimum Canditions)

प्रत्येक फसल के उत्पादन के लिये कुछ विशेष प्राकृतिक दशाओं की आवश्यकता होती है जैसे– अनुकूल तापमान, वर्षा, आर्द्रता, मृदा के पोषक तत्व इनकी उपलब्धता के आधार पर ही किसी विशेष फसल का सीमांकन किया जाता है। एक ऐसा क्षेत्र जहाँ इन सभी अनुकूल दशाओं का आदर्श सम्मिश्र पाया जाता है और उत्पादन की सम्भावना अधिक होती है, इस क्षेत्र को अनुकूलतम प्राकृतिक दशाओं वाला क्षेत्र (Optimum Area) कहते हैं। प्रायः ऐसी दशाएँ सर्वत्र नहीं पायी जाती और परिस्थितियाँ भी बदलती रहती है। विभिन्न प्रकार की भूमि अलग–अलग फसलों के उत्पादन के लिए अनुकूल होती है। सबसे पहले यह देखा जाता है कि कौन–सा भूखण्ड किस फसल के उत्पादन के लिए सर्वाधिक अनुकूल होगा। प्रत्येक फसल के लिए निर्धारित प्राकृतिक सीमाओं के अन्तर्गत अनुकूलतम् दशाओं का सीमांकन किया जाता है। अनुकूलतम प्राकृतिक दशाओं का क्षेत्र को चित्र 11.4 में स्पष्ट प्रदर्शित किया गया है। किसी फसल के उत्पादन के प्राकृतिक सीमाएँ, अनुकूलतम दशायें बदलती रहती हैं। जिससे विभिन्न फसलों के उत्पादन की प्राकृतिक सीमाओं एवं अनुकूलतम दशाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। जैसे–अब गेहूँ की कम समय में तैयार होने वाली किस्मों के आविष्कार से गेहूँ अधिक ठण्डे प्रदेशों में भी उगाया जाता है। यू.एस.ए. की कपास पेटी कपास उत्पादन हेतु प्राकृतिक सीमायें एवं अनुकूलतम दशायें स्पष्टतः देखने को मिलती है।

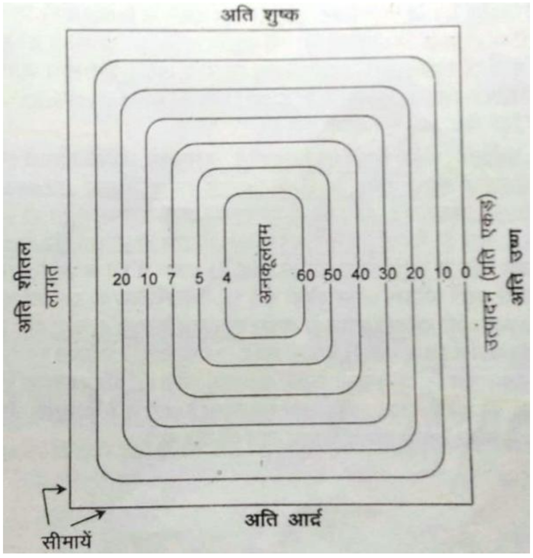

चित्र संख्या–11.4 प्राकृतिक सीमांयें एवं अनुकूलतम दशाओं का सिद्धांत

6.3.2 अनुकूलतम आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त –

(Theory of Optimum Economic Conditions and Limits)

आर्थिक दशाओं से तात्पर्य उन स्थिति से है, जिनसे किसी क्षेत्र की उत्पादकता, भौतिक कारकों के संयोग से निर्धारित होती है। परिवहन व्यवस्था बाजार, मांग और सरकारी नीति ऐसे प्रमुख आर्थिक कारक हैं, जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि की उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। भौतिक कारकों की अपेक्षा आर्थिक कारक अधिक परिवर्तनशील होता है।

एक काल अवधि में किसी क्षेत्र में इनकी स्थितियाँ अनुकूल होती है, जिससे वहाँ कृषि उत्पादकता अधिकतम होती है, जिस क्षेत्र में ऐसी अनुकूल दशायें उपलब्ध होती हैं, उन्हें 'अनुकूलतम आर्थिक दशाओं का क्षेत्र' कहा जाता है। इस क्षेत्र से दूरी बढ़ने पर आर्थिक दशाओं की अनुकूलता कम होती जाती है और उत्पादन लागत बढ़ता जाता है जिससे कई मेखलायें बन जाती है।

सर्वप्रथम मैकार्टी एवं लिण्डबर्ग (1966) ने अनुकूलतम आर्थिक दशाओं की सीमा कहाँ तक और कैसे निर्धारित होगी' का अध्ययन किया और अनुकूलतम आर्थिक

दशाओं और सीमाओं का नियम प्रस्तुत किया, इनके सिद्धान्त का आधार डेविड रिकार्डो का आर्थिक लगान का सिद्धान्त था। इस सिद्धान्त को 14.5 से स्पष्ट समझा जा सकता है।

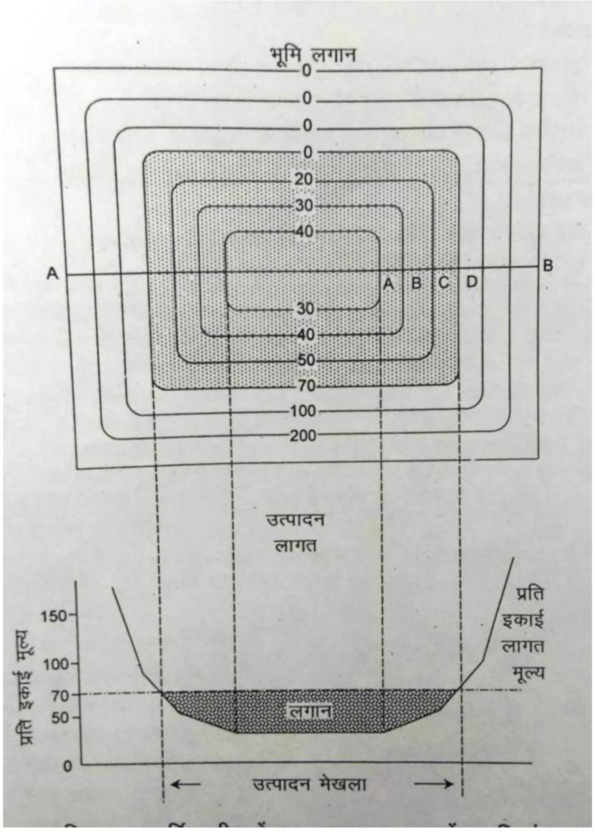

चित्र संख्या–11.5 आर्थिक सीमाओं एवं अनुकूलतम दशाओं का सिद्धांत

मैकार्टी एवं लिण्डबर्ग ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या दुग्ध उत्पादन, कृषकों की उत्पादन लागत और भूमि लगान से किया। यदि अन्य भौतिक दशायें समान हों तो परिवहन लागत द्वारा ही निर्धारित होगा कि बाजार में कृषक द्वारा दूध की आपूर्ति सीधे तौर पर या उसका रूपान्तरण (पनीर, आईसक्रीम, मक्खन, दही आदि) करके विक्रय किया जायेगा। इसके लिए मैकार्टी एवं लिण्डबर्ग ने बाजार से बढ़ती दूरी के अनुसार परिवहन लागत के आधार पर क्षेत्र को 4 भागों में A, B, C, D में बाँटा और बताया कि बाजार के लिए दुग्ध आपूर्ति A और B मेखला वाले किसान करेंगे C मेखला के किसान दूध के किसी भी रूप में आपूर्ति जबकि D मेखला के दूरी बाजार से अधिक होने के कारण दूध से रूपान्तरित वस्तुओं की आपूर्ति बाजार D मेखला के दूरी बाजार से अधिक होने के कारण दूध से रूपान्तरित वस्तुओं की आपूर्ति बाजार की होगी क्योंकि दूध के बने उत्पादन के

खराब होने की सम्भावना कम होगी और लाभ भी अधिक होगा। हालांकि इसमें उत्पादन लागत अधिक आती है परन्तु परिवहन व्यय बहुत कम पड़ता है और काल अवधि अधिक होती है।

मैकार्टी एवं लिण्डबर्ग ने अपने सिद्धान्त में समस्त आर्थिक कारकों से उत्पन्न दशाओं से कम बल्कि इसके एक अवयव परिवहन को आधार माना।

6.3.3 आलोचना –

वर्तमान तकनीकी विकास युग में मात्र परिवहन व्यवस्था ही कृषि के इस प्रकार के प्रतिरूप को जन्म देगी, इसकी सम्भावना बहुत कम है।

6.4 सारांश –

कृषि अवस्थित सिद्धान्त अथवा मॉडल मान्यताएं, कृषि भूमि उपयोग की विषमताओं, विविधताओं, जटिलताओं को समझने, वर्णन करने में अत्यन्त उपयोगी है। विद्वानों ने अनेक प्रकार के मॉडल सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर उनमें विभिन्न वर्गों में रखा, जिसमें प्रस्तुत इकाई में कृषि अवस्थित सिद्धान्त एवं आधुनिक कृषि अवस्थित सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन किया गया। वानथ्यूनेन का सिद्धान्त, मैकार्टी एवं लिण्डवर्ग का सिद्धान्त अत्यन्त रुचिपूर्ण है और आज भी कृषि भूगोलवेत्ताओं के बीच परिचर्चा का विषय बना रहता है। यह मॉडल नियोजकों के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य करेगा और लोगों को नये मॉडल परिचिन्तन मनन के लिए प्रेरित करेगा।

6.5. बोध प्रश्न –

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के सही विकल्प चुनिए –

1. वानथ्यूनेन का सिद्धान्त किस वर्ष प्रतिपादित हुआ – क. 1825, ख. 1826, ग. 1827, घ. 1828.
2. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त में द्वितीय कृषि पेटी में क्या शामिल है – क. जलाऊँ लकड़ी, ख. दूध उत्पादन, ग. सब्जी उत्पादन, घ. उपरोक्त में कोई नहीं।

3. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त के आलोचक निम्न में कौन नहीं थे– क. डन, ख. लाश, ग. इजार्ड, घ. डब्ल्यू०एम० डेविस।
4. उत्पादन की लागत को किस वर्णाक्षर से इंगित किया गया है– क. A., ख. V., ग. E., घ. T.
5. अनुकूलतम आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त दिया है– क. डन, ख. लाश, ग. इजार्ड, घ. मैकार्टी एवं लिण्डवर्ग।

6.6 शब्दावली –

1. **उत्पादन लागत**– वस्तु के उत्पादन में खर्च होने वाला व्यय, जिसमें फसल का पारिश्रमिक, लागत, मिट्टी तैयार होने में लगने वाला खर्च व अन्य निराई, गुड़ाई शामिल होता है।
2. **आर्थिक लगान –**किसी भूमि से उत्पादित फसल के विक्रय मूल्य से उत्पादन लागत और परिवहन दोनों के सम्मिलित योगों को घटाने से जो परिणाम आता है, उसे आर्थिक लगान या आर्थिक लाभ कहते हैं।
3. **समांगी प्रदेश –**ऐसा भूभाग, जहाँ पर समस्त भौतिक व मानवीय परिस्थितियाँ एक समान हों।
4. **परिवहन लागत –**उत्पादित वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में मालभाड़ा के रूप में किया जाने वाला खर्च, जिसमें माल को उतारने, लादने का भी व्यय शामिल होता है।

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, प्रमीला एवं श्रीकमल शर्मा : कृषि भूगोल, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भेपाल, 2006.
2. तिवारी, आर०सी० तथा सिंह, बी०एन० : कृषि भूगोल प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद।
3. Hussain
4. Singh

.6.8 बोध प्रश्न के उत्तर –

1. ख, 2. क, 3. घ, 4. ग, 5. घ।

69 अभ्यासार्थ प्रश्न –

1. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
2. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए उसकी प्रासंगिकता बताइये।
3. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त के प्रमुख कृषि पेटियों का उल्लेख कीजिए।
4. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की मान्यताओं का वर्णन कीजिए।
5. कृषि अवस्थित के आधुनिक सिद्धान्त का सविस्तार वर्णन कीजिए।
6. कृषि आधुनिक सिद्धान्त के प्राकृतिक सीमाओं तथा अनुकूलतम् दशाओं का सिद्धान्त कैसे है, सिद्ध कीजिए।
7. मैकार्टी एवं लिंण्डवर्ग के मॉडल की व्याख्या कीजिए।
8. आधुनिकीकरण के सिद्धान्त आर्थिक सीमाओं तथा अनुकूलतम दशाओं का सिद्धान्त का परीक्षण कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. कुमार, प्रमीला एवं श्रीकमल शर्मा : कृषि भूगोल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2006.
2. तिवारी आर०सी० तथा बी०एन० सिंह कृषि भूगोल प्रयास पुस्तक सदन इलाहाबाद।
3. Hussain Majid, Agricultural Geography, Inter India Publications, New Delhi, 1919.
4. Singh, J.and S.S. Dhillon, agricultural Geography. Tatas Mc Graw Hill Pub. New Delhi, 1988.
5. Chishilm, M (1957) Regional variations in road transport cost of milk collection from framers in England and Wales, farm Economist,3pp 30-38.
6. Chisholm, M. (1962) Rural Settlement and landuse: An Essay in Location.London, Hutchinson Library.
7. Chisholm, M. (1966) Geography and Economics. London. Hutchinsn Library publication.
8. Dunn,E.S. (1954) The Location of Agricultural Production. Gainesville : University of Florida.
9. Thunen, J.H. von (1826) Der Isolierate Staut in Beziehung and Landwirtschaft and Nationalkonomie, pt,1 Rostock.Collected edition, pt.I,ll and III ,1876, Berlin.

.

इकाई 7 विश्व के कृषि प्रदेश .

इकाई संरचना

7.0 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3.विश्व के कृषि प्रदेश

7.3.1 चलवासी बस चारण प्रदेश

7.3.2 .व्यापारिक पशुपालन प्रदेश

7.3.3 स्थानांतरण शील कृषि व्यवस्था

7.3.4 प्रारंभिक स्थाई कृषि

7.3.5. चावल प्रधान जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

7.3.6. चावल विनीत जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

7.3.7 व्यापारिक पादप रोपण कृषि

7.3.8. भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश

7.3.9 व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि प्रदेश

7.3.10. व्यापारिक शस्त्र एवं पशु उत्पाद मिश्रित कृषि प्रदेश

7.3.11.व्यापारिक दूध पशुपालन कृषि प्रदेश

7.3.12. जीविकोपार्जन एवं उत्पाद कृषि प्रदेश

7.3.13. विशिष्ट कृत्य प्रधान उद्यान कृषि प्रदेश

7.4. सारांश

7.5. बोध प्रश्न

7.6 शब्दावली

7.7 संदर्भ ग्रंथ

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.9 अभ्यास प्रश्न

7.0. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में विश्व के कृषि प्रदेश का वर्णन किया गया है किसी प्रदेश का उद्भव सीमांकन सामान्यतः उसकी विशेषताओं पर ही निर्भर होता है कृषि प्रदेश का निर्धारण अनेक चरों पर ही निर्भर है जैसे कृषि पद्धति फसलों की बुवाई फसलों के चयन में रुचि जुताई का प्रतिरूप फसल प्रतिरूप फसल चक्र सिंचाई की प्रविधि कृषकों की मनोदशा कृषक की सूची प्रशिक्षण कृषकों की धार्मिक मान्यताएं बाजार सरकारी नीति सामाजिक आर्थिक विकास प्राकृतिक कारक जैसे संरचना उच्चावच मृदा ढाल सूर्यातप तापमान पवन चक्रवात वर्षा मेघ कोहरा आदि अनेक ऐसे कारक हैं जिस पर कृषि कार्य निर्भर है इन्हीं कारकों के आधार पर उसी प्रदेश का सीमांकन भी किया जाता है विश्व कृषि प्रदेश का सीमांकन हंटिंगटन एलबम धामन कोस्टरोविकी ऐडम्स रैकेट कवाची गोल्ड टेबलेट आदि विद्वानों ने किया है विद्वान हिव्टीलसी ने 1936 में पांच आधार पर विश्व को 13 कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है चलवासी पषुचारण प्रदेश व्यापारिक पशुपालन प्रदेश स्थानांतरण शील कृषि पशु चारण प्रदेश व्यापारिक पशुपालन प्रदेश स्थानांतरणशील कृषि प्रदेश प्रारंभिक स्थाई

कृषि प्रदेश चावल प्रधान गहर्न जीविकोपार्जन कृषि प्रदेश व्यापारिक पादप रोपण

कृषि प्रदेश भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि प्रदेश व्यापारिक एवं पशु उत्पाद अथवा मिश्रित कृषि प्रदेश जीविकोपार्जन एवं उत्पाद कृषि प्रदेश व्यापारिक दुग्ध पशुपालन कृषि प्रदेश विशिष्ट उद्यान कृषि प्रदेश इस इकाई के अध्ययन से इस बात की समझ विकसित होती है कि विश्व के किस किस क्षेत्र में कौन–कौन सी फसलों को उगाया जाता है और यह भी ज्ञान हो जाता है कि वहां का आर्थिक स्तर क्या है वहां पर निवास करने वाले जनता की आर्थिक सामाजिक राजनीतिक मनोदशा कैसी है और वहां पर जीवन स्तर क्या है मध्यम स्तर निम्न स्तरीय उच्च स्तर का जीवन है या नहीं है और किस क्षेत्र में कौन सी फसल उगाई जाती है वहां के लोगों का भोजन में उस फसल की उपयोगिता क्या है इस आधार पर उनका स्वास्थ्य उनका शारीरिक संरचना शारीरिक सौष्ठव कार्यक्षमता भी स्पष्ट हो जाती है इस इकाई के अध्ययन से हम किसी क्षेत्र की अन्य तत्वों की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं

7.1 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित बिंदुओं को समझा जा सकता

है ....

1 यह जान सकेंगे कि विश्व में कृषि प्रदेश कितने हैं

2 इकाई के धन से आपको व्यापारिक पशुपालन कृषि प्रदेश का ज्ञान होगा

3 स्थानांतरण कृषि व्यवस्था को आप समझ सकेंगे

4 चावल प्रधान एवं चावल विहीन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था की विशेषताओं को आप समझ सके

5 भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश की विशेषताओं को समझ सकेंगे

6 व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि प्रदेश को समझ सकेंगे

7 विशिष्टीकृत उद्यान कृषि क्या है इसको आप हल कर सकेंगे

8 विश्व के किन किन भागों में कौन सी खेती की जाती है वहां का आर्थिक स्तर क्या है इसका ज्ञान होगा

7.3.विश्व के कृषि प्रदेश

1. चलवासी पशुचारण प्रदेशः—

इस प्रदेश को खानाबदोश की अर्थव्यवस्था या घुमक्कड़ी अर्थव्यवस्था के नाम से भी जानते हैं ऐसी अर्थव्यवस्था उन क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ पर भौगोलिक दशाएँ सघन उत्पादन के लिए अनुकूल नहीं होती हैं। यहाँ पर प्राकृतिक रूप से पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता अधिक होती है। ऐसे क्षेत्र प्रायः शुष्क होते हैं या प्राकृतिक रूप से विलक्षण होते हैं जहाँ पर उच्चावच, जलवायु, जल की उपलब्धता, उपजाऊ मिट्टी आदि की विषम परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। सहारा से लेकर अरब के शुष्क भाग तक एवं तिब्बत, मंगोलिया, टुण्ड्रा, मध्य एशियाई देश जहाँ पर ऐसी अर्थव्यवस्था पाई जाती है वहाँ के लोगों का जीवन पूरी तरह से पशु पर ही आश्रित होता है। ऐसे लोग पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर के चराने का कार्य करते हैं। इनके पशुओं में बकरी, ऊँट, भेंड़, रेनडियर प्रमुख हैं। यहाँ की प्राकृतिक दशाएँ भेड़ पालन, बकरी पालन के लिए अधिक अनुकूल होती हैं यहाँ ऊन, मांस, दूध, चमड़ा आदि कच्चे पदार्थ आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इस अर्थव्यवस्था की धुरी पशुपालन है क्योंकि यहाँ रहने वाले लोगों के जीवन यापन का मूल आधार पशु होते हैं यहाँ पर अर्थव्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण अंग स्थानांतरणशील खेती ही है चारे के लिए पशुओं के साथ चाय की कृषि करना इन लोगों के लिए एक आवश्यकता भी है इसलिए चारे का उत्पादन आवश्यक होता है। प्राकृतिक उपचार एवं जल द्वारा इनके स्थान का निर्धारण होता है प्रायः कबीलाई समाज होता है ऐसी कृषि या अर्थव्यवस्था जनजातियों से सम्बन्धित है इस कृषि कार्य में शामिल जनजातियाँ जैसे कज्जाक, खिरगिज, कालमैक्स, मंगोल आदि जनजातियाँ शामिल हैं। यह लोग अपने निवास स्थान को गुफा या हिम, झोपड़ी या तंबू के रूप में विकसित करते हैं। इनके आवास निर्माण की सामग्री अत्यन्त हल्की होती है इससे यह सरलतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता हैं। वर्तमान समय में ऐसी अर्थव्यवस्था का दिन

प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। सरकारें, लोकतंत्र सदैव बदलती रहती हैं साम्यवादी सरकारों ने इन खानाबदोश जनजातियों की जीवनशैली को स्थाई एवं नियंत्रित करने का प्रयास किया, उन्हें भूभाग पर स्वामित्व प्रदान किया। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया में व्यापारिक पशुपालन वर्तमान समय में विकसित हो गया है। इन भागों में जल वर्षा कम होती है इसलिए सीमित संसाधनों के साथ स्थान परिवर्तन आवश्यक है। चलवासी कृषि अर्थव्यवस्था की आधुनिक प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

प्रथम– चलवासी पशुचारण क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या तेजी से घट रही है।

द्वितीय– समशीतोष्ण घास के मैदान धीरे–धीरे व्यापारिक पशुपालन की अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो रहे हैं शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान का विस्तार अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका।

तृतीय– चलवासी पशुचारण वाले क्षेत्र की खानाबदोश जनजातियां अब धीरे–धीरे स्थायी खेती प्रारंभ कर दी हैं और उनके स्थानीय जनजीवन में स्थायित्व देखने को मिल रहा है। अस्थायी चलवासी खेती धीरे–धीरे समाप्त प्राय हो रहा है।

चतुर्थ– खानाबदोश जनजातियां आधुनिक सभ्यता–संस्कृति के संपर्क में शामिल हो रही हैं जिससे उनकी जीवनशैली, सोच, संस्कृति, व्यवहार में परिवर्तन हो रहा है। यह जनजातियां साइबेरिया, टुंड्रा, उत्तरी अफ्रीका, संयुक्त अरब गणराज्य, टर्की, ईरान, सऊदी अरब के क्षेत्र में स्थाई कृषि व्यवस्था का कार्य प्रारम्भ कर दी हैं।

(2) व्यापारिक पशुपालनः–

व्यापारिक पशुपालन का कार्य उन क्षेत्रों में सम्पन्न किया जा रहा है जहाँ पर पशुपालन के लिए अनुकूल चारे की व्यवस्था एवं जलवायु हो। ऐसे क्षेत्रों जहाँ विश्व के अर्द्ध शुष्क भाग हैं वहाँ पर पशुपालन का कार्य अर्थ उपार्जन अथवा व्यापारिक दृष्टिकोण से सम्पन्न किया जा रहा है। व्यापारिक पशुपालन कार्य की शुरूआत का श्रेय यूरोपीय प्रवासियों को जाता है यह लोग नई दुनिया में घास के क्षेत्रों में भू स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करके अस्थाई रूप से निवास करने लगे, अपने निजी चरागाह का विकास किए और जो चारों ओर से घेरे रहते थे ऐसे चरागाह को रेंच कहते हैं। व्यापारिक पशुपालन केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही नहीं बल्कि दक्षिण अफ्रीका, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, अर्जेंटीना आदि देशों में बड़े पैमाने पर किया जाता है इस प्रकार भौगोलिक दृष्टिकोण से व्यापारिक पशुपालन कार्य के क्षेत्रों को 2 वर्ग में विभाजित कर सकते हैं–

1. उष्णकटिबंधीय घास मैदान

2. समशीतोष्ण घास मैदान क्षेत्र

उष्णकटिबंधीय घास के मैदान प्रायः 10 से 20 डिग्री अक्षांश के मध्य विस्तृत हैं। इसमें सबसे बड़ा क्षेत्र अफ्रीका महाद्वीप में है जिसे सवाना कहते हैं यह सवाना सूडान देश में विस्तृत भू–भाग पर फैला है। समशीतोष्ण घास क्षेत्र का विस्तार न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया,

मध्य एशिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, उत्तरी अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका के क्षेत्र में विस्तृत पाया जाता है।

दक्षिण अमेरिकाः—

दक्षिणी अमेरिका में दक्षिणी ब्राजील, युरूग्वे, अर्जेंटीना आदि देशों में घास क्षेत्र का विस्तार पाया जाता है यह घास क्षेत्र व्यापारिक पशुपालन के लिए विश्व प्रसिद्ध है यहाँ पर पशुपालन का कार्य अत्यन्त विकसित अवस्था में है।

युरूग्वे और दक्षिण ब्राजील की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार पशुपालन और युरूग्वे की 60% भूमि और 60% निर्यात इन्हीं पशुपालन से सम्बन्धित उत्पादों से होता है। युरूग्वे की अर्थव्यवस्था पूरी तरह से अर्जेंटीना से मिलती जुलती है। युरूग्वे और ब्राजील फिर भी अर्जेंटीना के पंपास की तुलना में कम विकसित है क्योंकि यहाँ पर जलवायु अर्जेंटीना की तरह अनुकूल नहीं है। दक्षिणी ब्राजील में संपूर्ण देश की लगभग 75% भेड़ तथा 13% पशु पाले जाते हैं अर्जेंटीना की तरह यहाँ पर भी पशुओं के पोषण की क्षमता सीमित पाई जाती है।

अर्जेंटीनाः—

अर्जेंटीना का पंपास घास मैदान अत्यन्त उपजाऊ है। प्राकृतिक चारागाह के लिए विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ पर देश की एक तिहाई भेड़ पाली जाती है। यह क्षेत्र गौ मांस उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर सर्वाधिक गौ मांस उत्पादन होता है। अर्जेंटीना व्यापारिक पशुपालक देश है, यह विश्व का लगभग एक तिहाई गौ मांस निर्यात करने वालादेश है। विश्व के समस्त ऊन निर्यात का 9% अर्जेंटीना द्वारा किया जाता है। यहाँ से भेड़ एवं मेंमना की दृष्टि से अर्जेंटीना देश में चौथे स्थान पर है। अर्जेंटीना में बड़े स्तर पर बाजार की उपलब्धता है जिससे मांस उद्योग व पशुपालन उद्योग को अधिक बढ़ावा मिलता है। पंपास के अतिरिक्त यहाँ पर पराना पराम्वे, युरूग्वे नदियों के मध्यवर्ती भाग या पर्वतीय क्षेत्र, शुष्क मैदान, पेंटागोनिया तथा तिएरा, डेल फ्यूगो तक विस्तृत भू—भाग है। भेड़ पालन अर्जेंटीना के सुदूर दक्षिण भाग तक विशेष रूप से किया जाता है यह दक्षिणी भाग अर्जेंटीना के समस्त ऊन निर्यात का 50% उत्पाद उत्पन्न करता है।

उत्तरी अमेरिका का व्यापारिक पशुपालन क्षेत्रः—

उत्तरी अमेरिका के अन्तर्गत कनाडा, संयुक्त राज्य अमेकिरा के प्रेयरी प्रदेश को शामिल करते हैं इसके साथ ही साथ उत्तरी मेक्सिको के मांस प्रदेश को भी व्यापारिक पशुपालन के अन्तर्गत शामिल किया गया है। यहाँ का भौगोलिक वातावरण व्यापारिक पशुपालन के लिए अत्यंत अनुकूल वृहत बाजार है, तकनीकी विकास हुआ है, मांस का व्यवसाय बड़े पैमाने पर विकसित हुआ है, यहाँ पर यूरोप से आने वाले प्रवासियों के इस प्रदेश में जंगली भैंसे स्वच्छंद रूप से विचरण करते थे जो रेड इंडियन जो यहाँ के मूल निवासी थे उनका मुख्य संसाधन था।

सर्वप्रथम स्पेनिश लोगों ने अपने साथ में गाय, बैल, घोड़े ले आए और इन लोगों ने कैलिफोर्निया, मैक्सिकों में पशुपालन कार्य का विकास किया क्योंकि यहाँ पर घास पूरे साल भर उपलब्ध रहती थी। पशुओं के बड़े हो जाने पर व परिपक्व हो जाने पर वे अमेरिका के पूर्वी बाजार क्षेत्र अटलांटिक तट पर लाए जाते थे और उसके बाद वहाँ से कनाडा के पर्वतीय चरागाही प्रदेशों में पश्चिमी राकी की पर्वतश्रेणियों के आस पास के क्षेत्रों में पशुचारण का कार्य प्रारंभ किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के व्यापारिक पशुपालन कार्य के लिए न केवल प्राकृतिक कारक बल्कि मानवीय कारक भी अत्यधिक उत्तरदायी हैं वहाँ सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से पशुपालन कार्य को बढ़ावा मिला है। रेल यातायात की सुविधा, विस्तृत मक्का की खेती, विस्तृत बाजार क्षेत्र, प्रशीतक की व्यवस्था, मांस के लगातार बाजार में खपत और मांस को दूर तक भेजने के लिए व्यवस्था, अच्छे व बड़े–बड़े कंटेनर, वैज्ञानिक शिक्षण प्रशिक्षण की सुविधा, संरक्षण, सरकारी सुविधा व सरकारी नीति, अमेरिका में व्यापारी पशुपालन कार्य के लिए उत्तरदायी हैं यहाँ पर रेंच वृहत मैदान में राकी की घाटियों में शुष्क प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों में बहुतायत पाए जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में 40% मानव पार्षद परिषद हेड पाई जाती है। मांस भेड़ों और पशुओं के अलावा बकरियों से भी प्राप्त होता है। पशुपालन दूध के लिए विशेष करके गायों का सिंचित क्षेत्रों में किया जाता है।

आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंडः–

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में यूरोपीय आप्रवासी जब गए तो अपने साथ अनेक जानवर भी ले गए थे इन क्षेत्रों में भेड़ों की संख्या वहाँ की जनसंख्या से अधिक है। भेड़ आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की अर्थव्यवस्था का आधार है। आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड में प्रति व्यक्ति 2 पशु, 16 से अधिक भेड़ें पाई जाती हैं संपूर्ण निर्यात में 60% योगदान पशुपालन का इसमें 12% मांस, 40% ऊन का योगदान है। विश्व निर्यात पर 29%गोमांस एवं 46% ऊन केवल आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड से निर्यात किया जाता है। यहाँ के रेंच बड़े आकार के हैं। पशुपालन का कार्य पूरी तरह से वैज्ञानिक और आधुनिक है। चारागाह को बाड़ों में विभाजित किया गया है और विभिन्न प्रकार के जानवरों को उनकी आयु के अनुसार अलग–अलग बाड़े में वैज्ञानिक पशुपालन के लिए रखा जाता है। इनके पशुपालन कार्य में बड़े पैमाने पर पूँजी का निवेश होता है। व्यापारिक पशुपालन उद्योग का विकास क्वींसलैंड दक्षिणी बेस, विक्टोरिया आदि प्रांतों में हुआ है। वर्षा और तापमान के आधार पर भेड़ों का प्रादेशिक वितरण पाया जाता है। 50 से 75 सेंटीमीटर वर्षा वाले क्षेत्र पशुपालन कार्य के लिए सर्वोत्तम माने जाते हैं और भेड़ पालन के लिए 21 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान भी सर्वोत्तम माना जाता है।

3..प्रारंभिक जीवन निर्वाह कृषि व्यवस्थाः–

इस कृषि व्यवस्था में उत्पादन कम होता है, यह विस्तृत कृषि व्यवस्था है, यह कृषि कार्य उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में की जाती है। इस कृषि व्यवस्था के अन्तर्गत अमेजन मैदान से एंडीज पर्वत सहित प्रशांत महासागर का तटवर्ती क्षेत्र, मैक्सिको का क्षेत्र, मध्य अमेरिका का तटवर्ती क्षेत्र, दक्षिणी पूर्वी एशिया, मेडागास्कर, पूर्वी अफ्रीका, सहारा के दक्षिण मध्य एवं

पश्चिमी अफ्रीका आदि क्षेत्र इस कृषि व्यवसाय में शामिल हैं इस जीवन निर्वाहन कृषि व्यवस्था तीन रूप में पाई जाती है जो इस प्रकार है–

1. स्थानांतरणशील कृषि व्यवस्था
2. प्रारंभिक स्थाई कृषि व्यवस्था
3. गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

(3) स्थानांतरणशील कृषि व्यवस्थाः–

स्थानांतरणशील कृषि व्यवस्था वास्तव में स्थाई नहीं होती है इसे कई नामों से जानते हैं इसे Slash and Burn खेती कहते हैं। इसे आदिम जनजातियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस कृषि कार्य में कृषि यंत्र का उपयोग नहीं होता है। यह कृषि अमेरिका के अमेजन बेसिन क्षेत्र में, दक्षिण पूर्वी एशिया, पूर्वी द्वीप समूह, अफ्रीका के कांगो बेसिन क्षेत्र में, दक्षिणी एशिया में की जाती है इस कृषि को भिन्न–भिन्न नाम से भी जानते हैं जैसे श्रीलंका में चेना, फिलीपींस में कैनजिंग, हिंद चीन में लदांग, सूडान में नगासू, अमेरिका में मिल्पा इसी तरह से आसाम में झूम, भारत में इसके अनेक नाम हैं जैसे भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वालरा, खील, कुमारी, पोदू आदि नाम हैं। यह कृषि प्राकृतिक रूप से विषम परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में सम्पन्न की जाती है। उष्णकटिबंधीय प्रदेश में यह कृषि कार्य आदिम जनजातियों द्वारा होती है जहाँ पर अत्यधिक जल वर्षा, वर्षभर ऊँचा तापमान पाया जाता है। किसान सबसे पहले जंगल को काटकर या जलाकर साफ करते हैं और इसके बाद उन सघन वनों के स्थान पर क्षेत्र का चयन करते हैं और दो–तीन वर्ष तक इसी प्रकार खेती का कार्य करते हैं आग द्वारा जंगल को जलाकर खेत तैयार किया जाता है, खेत का आकार छोटा होता है लगभग 2 हेक्टेयर तक होता है। खेती में मानव श्रम का उपयोग अधिक होता है। खाद और पूंजी का निवेश ना के बराबर होता है। खेत व्यक्तिगत नहीं होते बल्कि पूरे समुदाय का होता है ये किसी स्थान पर या किसी खेत में लगभग 2 वर्ष तक खेती का कार्य करते हैं उसके बाद यह खेती छोड़ कर चले जाते हैं तथा अन्यत्र दूसरा कृषि क्षेत्र तैयार कर लेते हैं क्योंकि वर्षा के कारण मिट्टी का लगातार कटाव होता रहता है इसलिए मृदा की उर्वरता तीव्रता से घट जाती है उत्पादन कम होने लगता है परिश्रम अधिक करना पड़ता है, उत्पादित फसलों की मांग अधिक होती है और यह लोग जीवन निर्वाहन का कार्य करते हैं। खाद्यान्न फसलों का ही उत्पादन करते हैं जिससे किसी तरह यह अपना जीवन यापन कर सके। इनके प्रमुख फसलों में ज्वार, बाजरा, धान, मक्का, गन्ना, पाम, मूंगफली, मोनिया, सेम, केला, टमाटर आदि फसलों की खेती करते हैं क्योंकि यह कृषि आदिवासी लोग करते हैं। यह आदिवासी लोग कृषि के साथ–साथ मुर्गी पालन तथा अन्य पशु का भी पालन करते हैं कृषि के अलावा शिकार करना, वन्य वस्तु का संग्रह करना, मछली मारना इनके जीवन का एक महत्वपूर्ण उद्यम है। यह आदिवासी लोग विषम जलवायु में कृषि कार्य सम्पन्न करते हैं जलवायु के ही कारण इनके अर्थव्यवस्था में पशुओं का अभाव है। यह लोग रूढ़िवादी होते हैं, इनकी जनसंख्या बहुत कम है, जनघनत्व बहुत कम है यह अपनी परम्परागत कृषि कार्य को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं।

(4) प्रारंभिक स्थाई कृषिः–

प्रारंभिक स्थाई कृषि व्यवस्था अनुकूल स्थानों पर सम्पन्न की जाती है यह कृषि स्थानांतरणशील खेती करने वाले आदिवासियों के अस्थाई बसने से अथवा चलवासी पशुचारण का कार्य करने वाले आदिवासियों के अस्थाई रूप से बस जाने पर सम्पन्न की जाती है। यह कृषि स्थानांतरणशील कृषि और चलवासी पशुचारण कृषि व्यवस्था का विकसित रूप है। यह कृषि व्यवस्था पश्चिमी द्वीप समूह, मध्य अमेरिका के पहाड़ी और पठारी भूभाग पर, एंडीज श्रेणी के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में, पूर्वी अफ्रीका के पठारी भूभाग में, कीनिया, नाइजीरिया, घाना के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पूर्वी द्वीप समूह, हिंद चीन के भाग में जहाँ पर जनजातियाँ अस्थाई रूप से बस गई हैं वहाँ पर की जाती हैं यह कृषि भी आदिम प्रकार की है। उर्वरकों की कमी होती है इसलिए मृदा की उर्वरता को संतुलित रखने के लिए खेत को परती छोड़ा जाता है। उष्णकटिबंधीय आर्द्र क्षेत्र, ऊँचे पठार, पहाड़ी भाग उष्णकटिबंधीय मौसमी जलवायु वाले मैदानी क्षेत्र जहाँ पर जनसंख्या घनत्व तुलनात्मक रूप से अधिक है वहाँ पर भी यह कृषि कार्य किया जाता है। उन भागों में भी जहाँ पर शुष्कता अधिक है, जल वर्षा कम होती है वहाँ पर भी इस प्रकार की कृषि की जाती है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में विशेष करके पठारी भागों में बागाती कृषि बड़े पैमाने पर की जा रही है। इस कृषि में कोको, खजूर, रबर की कृषि सुगमता पूर्वक की जा रही है। स्थानीय किसानों की कृषि पद्धति में भी परिमार्जन हुआ है यह कृषि स्थानांतरित कृषि एवं चलवासी पशुचारण कृषि की तुलना में अधिक गहन है। यहाँ पर इस कृषि का विकास खान के आसपास तीव्र गति से हो रहा है। कृषक कृषि कार्य के अलावा पशुपालन का कार्य भी करते हैं इनके द्वारा पाले जाने वाले पशुओं में गाय, बकरी, घोड़ा, खच्चर, भेंड़ प्रमुख हैं।

गहन निर्वाहन कृषिः–

यह कृषि व्यवस्था मानसून एशिया के देशों में पाई जाती है जहाँ पर भौगोलिक दशाएं कृषि कार्य संपादित करने के लिए अनुकूल होती हैं इस कृषि व्यवस्था में स्थानीय उपयोग के लिए खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जाता है। विश्व की अधिकांश जनसंख्या इस कृषि कार्य में लगी हुई है। लगभग एक तिहाई जनसंख्या गहन निर्वाह कृषि कार्य करती हैं जनसंख्या अधिक और कृषि भूमि कम होने से लोगों के भरण–पोषण के लिए गहन कृषि को अपनाना अनिवार्य हो जाता है गहन निर्वाह कृषि व्यवस्था की विशेषताएं निम्नांकित हैं–

1. निर्वाहन कृषि व्यवस्था में चावल की खेती की प्रधानता है
2. यहाँ पर पशुपालन का कार्य गौण है
3. जनसंख्या अधिक है लिहाजा भरण–पोषण के लिए यह कृषि अपनायी जाती है।
4. मानव श्रम की अधिक आवश्यकता एवं उपयोगिता होती है।
5. कृषि क्षेत्र छोटे–छोटे और बिखरे रूप में पाये जाते हैं।

6. किसान अपने गांव में ही अस्थाई निवास बनाकर रहते हैं।

इस कृषि व्यवस्था में आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रयोग अत्यन्त कम किया जाता है, उन्नतशील बीज, प्रौद्योगिकी, रेलवेज, कीटनाशक दवाओं, रसायनों, रासायनिक उर्वरकों आदि का प्रयोग अत्यन्त कम होता है।

गहन निर्वाहन कृषि व्यवस्था में प्रति व्यक्ति उत्पादन अत्यन्त कम होता है इसलिए किसान बाजार में अपने उत्पाद को बेचने में असमर्थ होता है लिहाजा कृषकों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है। आवश्यकताओं की पूर्ति अत्यन्त मुश्किल से हो पाती है। यहाँ के कृषक जो भी अनाज पैदा करते हैं उसी पर उनका जीवन निर्भर करता है वे लोग उसका स्वयं उपभोग कर लेते हैं जिससे उत्पादन बाजार में नहीं पहुंच पाता।

भोजन में सब्जी, दाल आदि का प्रयोग अत्यन्त कम होता है जनसंख्या अधिक होने से उत्पादन की खपत स्थानीय स्तर पर ही हो जाती है। इस कृषि व्यवस्था में बाजार के लिए उत्पादन नहीं हो पाता इस कारण यहाँ पर बड़े–बड़े बाजार, हाट, मण्डियों का अभाव होता है। गहन निर्वाह कृषि व्यवस्था को फसलों की प्रधानता के आधार पर दो भागों में विभाजित करते हैं–

1. चावल प्रधान गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

2. चावल विहीन गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

(5) चावल प्रधान गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्थाः–

चावल प्रधान गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था विश्व के उन क्षेत्रों में अपनाई जाती है जहाँ पर वर्ष भर ऊँचा तापमान पाया जाता है, वार्षिक वर्षा 200 सेंटीमीटर से अधिक पाई जाती है यहाँ पर भौगोलिक दशाएं चावल की कृषि के लिए उपयुक्त होती हैं इसीलिए यहाँ पर वर्ष में तीन बार चावल की खेती की जाती है, चावल की इसी कृषि व्यवस्था को 'सावाह' (Sawah) कृषि के नाम से भी जाना जाता है। मानसून एशियाई देशों में विश्व का लगभग संपूर्ण चावल उत्पादन होता है। इन चावल उत्पादक देशों में चीन, भारत, इंडोनेशिया, बांग्लादेश, थाईलैंड, वियतनाम, म्यानमार, जापान आदि प्रमुख हैं यह सभी देश मिलकर विश्व के लगभग 90% चावल का उत्पादन करते हैं इन देशों में चावल की कृषि का कार्य डेल्टाई भागों में, बाढ़ के मैदानी क्षेत्र में या सीढ़ीदार, निम्नवर्ती भागों में सुगमतापूर्वक की जाती है। चावल की खेती के लिए गंगा, ब्रह्मपुत्र, मीनांग, इरावदी, सीक्यांग, यांग्टीसीक्यांग, कृषि भूमि उपयोग की दृष्टि से दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में चावल के अन्तर्गत सर्वाधिक कृषि भूमि का उपयोग किया जाता है जिसमें लाओस के संपूर्ण कृषि भूमि पर 95% पर चावल की खेती, थाईलैंड के संपूर्ण कृषि भूमि के 65% पर खेती, म्यानमार के सम्पूर्ण कृषि भूमि के 60% पर इसी तरह से जापान में 42%, भारत और चीन के 25% से अधिक भाग पर धान की खेती की जाती है। धान या चावल के कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का बसाव अधिक पाया जाता है, मानसूनी एशियाई देशों में जनघनत्व अधिक है, चावल उत्पादन के अधिकांश भाग का स्थानीय खपत है। मानसून एशियाई देशों में

उत्पादन का अधिकांश भाग इन्हीं मानसूनी एशियाई देशों में कुछ देश जैसे कंबोडिया, थाईलैंड, ताइवान, दक्षिणी वियतनाम, म्यानमार आदि चावल का निर्यात भी करते हैं दक्षिणी पूर्वी एशिया के वही देश जहाँ पर जनसंख्या का बसाव अधिक है एवं जनघनत्व अधिक है, चावल का अधिक उत्पादन भी करते हैं इस तरह जनसंख्या घनत्व और चावल उत्पादन क्षेत्र में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है।

(6) चावल विहीन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्थाः—

मानूसन एशिया के अधिकांश भूभाग में जल वर्षा कम होती है, तापमान भी कम होता है वहाँ पर चावल की खेती प्रमुखता से नहीं की जाती है। मानसून एशिया के वे भाग जहाँ पर औसत वार्षिक वर्षा 100 सेंटीमीटर से कम एवं निम्न तापमान होता है वहाँ पर चावल के अतिरिक्त अन्य फसलों की कृषि की जाती है ऐसे क्षेत्रों में शुष्क कृषि की विशेषताएं पाई जाती हैं और ज्वार—बाजरा, अरहर, मक्का, तिलहन जैसी फसलें उगाई जाती हैं जहाँ कहीं भी सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहाँ पर गेहूँ और कपास का भी उत्पादन किया जाता है तापमान और वर्षा के आधार पर गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि किसी एक फसल की प्रधानता होती है। दक्षिणी पूर्वी एशिया विश्व का लगभग 60% से अधिक पीनट, 57% ज्वार बाजरा, 40% सोयाबीन, 20% गेहूँ और 16% से अधिक जौ का उत्पादन करता है। मौसमी परिवर्तन अनवरत् होता रहता है इसी मौसमी परिवर्तन के परिणामस्वरूप जीविकोपार्जन कृषि को हम तीन वर्गों में विभाजित करते हैं—

प्रथम— ग्रीष्मकालीन मौसम की फसलें

द्वितीय— वर्षाकालीन मौसम की फसलें

तृतीय— शुष्क मौसम की फसलें

ऐसी कृषि व्यवस्था वाले भाग में जनघनत्व अधिक पाया जाता है, जनसंख्या का बसाव अधिक है, यहाँ पर कृषक वर्ष में दो या तीन फसलें उत्पन्न करता है। किसान वर्षा काल में ज्वार, बाजरा, मक्का, गन्ना, चावल; शीतकाल में गेहूँ, जौ, चना, मटर; ग्रीष्मकाल में जायद की फसलें, सब्जियां जैसे तोरई, भिण्डी, लौकी, कद्दू, पालक के अलावा मूंग, हरे चारे की खेती का कार्य करता है जहाँ कृषि हेतु सिंचाई की सुविधा अधिक है वहाँ पर ग्रीष्मकालीन कृषि की जाती है। इस कृषि व्यवस्था में दुग्ध और मांस के लिए पशुपालन का भी कार्य किया जाता है। जनसंख्या की अधिकता के कारण कृषक खाद्यान्न फसलों को प्रमुखता से उत्पन्न करना आवश्यकता समझता है पशुपालन के कार्य तो होते हैं बस उसके लिए चरागाह बिल्कुल नगण्य होता है। निम्न आय वाले परिवार के लोग बकरी, भेड़, सूअर, मुर्गी आदि पालते हैं और इस भाग के अधिकांश लोग शाकाहारी भी होते हैं, कृषक हल जोतने के लिए पशुओं विशेषकर के बैल का पालन कार्य करते हैं, दूध के लिए गाय और भैंस प्रमुखता से पालते हैं पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार, राज्य सरकार द्वारा दूध, पशुपालन के लिए पशुओं गाय, भैंस, सूअर, भेड़, मुर्गी, मत्स्य, रेशम के कीड़ों के लिए रेशम कीट आदि के पालन के लिए विशेष प्रोत्साहन का कार्य किया जा रहा है। ऐसे पशुपालकों को फौरी या तत्काल सरल बैंकिंग व्यवस्था, सस्ते ब्याज पर रेड सब्सिडी तथा उत्पादन के

विक्रय की गारंटी जैसे अनेक योजनाओं के माध्यम से विकास के पथ पर पशुपालन को बढ़ाया जा रहा है।

(7) व्यापारिक पादप रोपण कृषिः—

व्यापारिक पादप रोपण कृषि व्यवस्था वास्तव में विदेशी कृषि प्रणाली है इस कृषि का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना माना जाता है इस कृषि व्यवस्था में कहवा, नारियल, चाय, कोको, रबर, मसाले, केला, गन्ना आदि की खेती बागानों में व्यापारिक उद्देश्य से सम्पन्न की जाती है इस कृषि का विकास एवं प्रोत्साहन समशीतोष्ण कटिबंधीय देशों को उत्पाद का निर्यात करने के उद्देश्य से अनेक उष्णकटिबंधीय देशों में उपनिवेशवाद के दौरान सम्पन्न किया गया। उपोष्ण कटिबंधीय देशों में चाय, कपास, तंबाकू की भी खेती की जाती है, खाद्यान्न फसलों का उत्पादन वहाँ के आस—पास के श्रमिकों और पशुओं के लिए किया जाता है। बागाती या रोपण कृषि के विकास में प्रारम्भ में यूरोप और उत्तरी अमेरिका द्वारा पूंजी लगाई गयी थी, श्रमिक स्थानीय होते थे, प्रशासनिक और कुशल तकनीकी श्रमिक, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाएं, कृषि यंत्र, कल कारखाने, मशीन के पुर्जे, यातायात के साधन आजसभी यूरोप और उत्तरी अमेरिका अथवा समशीतोष्ण देशों से ही आयात किया जाता था। विश्व के बाद आधी खेती के प्रमुख क्षेत्रों में अफ्रीका, दक्षिण पूर्वी एशिया, लैटिन अमेरिका प्रमुख थे बागाती कृषि की विशेषताएं अनेक हैं जो निम्नांकित हैं—

1. बड़े पैमाने पर कृषि
2. एक फसल की कृषि पद्धति
3. रोपण कृषि और श्रमिक
4. बागाती कृषि तथा बाजार
5. बागाती कृषि में यातायात के साधनों का महत्व
6. बागाती कृषि में विदेशी पूंजी और प्रबंध
7. बागाती कृषि और औद्योगिक प्रक्रिया

बड़े पैमाने की कृषिः—

व्यापारिक पादप रोपण कृषि बड़े—बड़े कृषि फार्म पर की जाती है इसलिए सामान्य भू—जोत की तुलना में इसका आकार अधिक होता है यह बागाग 15 से 20 हेक्टेयर से लेकर सैकड़ों हेक्टेयर के आकार में विस्तृत पाए जाते हैं, किसान 1200 तक के क्षेत्र अधिक पसंद करते हैं कहीं—कहीं पर बागान 40 हेक्टेयर तक विस्तृत पाये जाते हैं भारत देश में अधिक विस्तृत बागान नहीं मिलते। लाइबेरिया के हर्बल नामक स्थान पर फायर स्टोन कंपनी का बागान लगभग 64001 हेक्टेयर क्षेत्रफल का है। भारत देश में चाय, कहवा, अन्य फसलों की बागाती खेती की जाती है लेकिन चाय बागानों का क्षेत्रफल 120 से 140 हेक्टेयर पाया जाता है।

एक फसल की कृषि

व्यापारिक पादप रोपण कृषि में फसलों का विशिष्टीकरण पाया जाता है। इस क्षेत्र में केवल एक ही वस्तु का उत्पादन होता है जैसे–असम में चाय, मलाया में रबर, ब्राजील में कहवा, क्यूबा में गन्ना की खेती प्रमुख है। इस कृषि में भौतिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारक महत्वपूर्ण प्रभावित करने वाले कारक होते हैं। इसके अलावा प्रबंध तंत्र, श्रमिक, बाजार आधिकारिक भी प्रभावित करते हैं। यह सारे कार्य केवल सभी फसलों के लिए उत्तरदायी होते हैं। बागाती खेती में कोको, केला, मसाले, कहवा, चाय, नारियल, गन्ना, रबर आदि फसलों को सुगमतापूर्वक उगाया जाता है। इन फसलों के कृषि किन–किन क्षेत्रों में की जाती है उसे निम्न पंक्तियों में समझा जा सकता है रबर मलेशिया, हिंद एशिया मे; चाय श्रीलंका, भारत में आसाम, नीलगिरी की पहाड़ी, चीन की पहाड़ी; नारियल, फिलिपिन, दक्षिण भारत में, पश्चिमी अफ्रीका, ब्राजील; कपास, पीरू, कहवा, ब्राजील, कोलंबिया, दक्षिणी भारत; गन्ना, क्यूबा, पीरू, वेनेजुएला, पूर्वी अफ्रीका, मेडागास्कर, ब्राजील, भारत; केला पश्चिमी द्वीप समूह, मध्य अमेरिका, भारत आदि देशों में सफलतापूर्वक उगाया जाता है।

कृषि पद्धतिः–

व्यापारिक पादप रोपण कृषि पद्धति बागाती खेती की एक प्रमुख विशेषता है यहाँ पर गेहूँ, धान अथवा अन्य फसलों की तरह बीज को बोकर नहीं उगाते हैं बल्कि उसका रोपण किया जाता है इसमें निम्नलिखित दो प्रकार से उपजें उत्पन्न की जाती हैं प्रथम अनेक बार रोपड़ वाली फसलें जैसे गन्ना, कपास; वृक्ष युक्त फसलें जैसे रबर, कहवा, चाय, कोको।

रोपण कृषि और श्रमिकः–

रोपण कृषि पूरी तरह से श्रमिकों पर आधारित है। इस कृषि की सबसे बड़ी समस्या प्रशिक्षित श्रमिकों की है इसीलिए सघन आबादी वाले देशों से रोपण कृषि करने वाले क्षेत्र में श्रमिकों का आयात किया जाता है। भारत, अफ्रीका आदि अनेक देश हैं जहाँ से भारी संख्या में श्रमिक विभिन्न देशों में प्रवास किए हैं मारीशस, क्यूबा, ब्रिटिश गियाना, फिजी, नेपाल, श्रीलंका, मलाया में अनेक श्रमिक भारतीय मूल के श्रीलंका और मलेशिया के चाय बागानों में आज भी भारतीय मूल के तमिल लोग श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। हवाई द्वीप में जापान, फिलीपींस के श्रमिकों की संख्या अधिक पाई जाती है। सुमात्रा और बोर्नियो में चीनी देश के निवासी श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं बागाती खेती में खेत को तैयार करने, रोपण करने, पौधों का निरीक्षण, पत्तों की छटाई, फसलों की चुनाई, उर्वरकों के प्रयोग, दवाओं के छिड़काव, खरपतवार, देखरेख, उत्पादित वस्तुओं के बाजार तक परिवहन आदि अनेक कार्य के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। आज भी ऐसी मशीनों का आविष्कार नहीं हो पाया है जिससे बागाती खेती में किए जाने वाले कार्य जैसे गन्ने को काटने, छीलने, ट्रैक्टर ट्राली, ट्रक में लादने, कहवा को इकट्ठा करने, पौधों की देखरेख, कपास चाय को चुनने, रबर के वृक्षों से लेटेक्स निकालने का कार्य कर सके इसीलिए रोपण कृषि में समस्त कार्य का सम्पादन इन्हीं श्रमिकों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है।

रोपण कृषि तथा बाजारः–

रोपण कृषि का विकास यूरोपीय लोगों द्वारा गर्म प्रदेशों में किया गया। इस कृषि का मुख्य उद्देश्य यूरोपीय देशों को उत्पाद का निर्यात करना था जैसे–जैसे उपनिवेशवाद के दौरान बाजार प्राप्त होता गया वैसे वैसे रोपण कृषि का विस्तार और विकास हुआ। आज अनेक देश उपनिवेशवाद की सत्ता से मुक्त होकर स्वतंत्र देश हो गए और अब यह बागाती खेती उन देशों से होने वाले निर्यात के लिए महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में है इससे बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त हो रही है।

रोपण कृषि और परिवहनः–

रोपण कृषि में परिवहन के साधनों का अधिक महत्व है क्योंकि उत्पादित माल को बाजार तक पहुंचाने के लिए सस्ते और सुविधायुक्त साधन की आवश्यकता होती है क्योंकि बाजार एक कृषि फार्म से दूर होते हैं और कृषि फार्म हजारों एकड़ क्षेत्रफल में फैला होता है इसलिए कृषि फार्म के मध्य सड़कें भी होती हैं जिससे उत्पादित सामान आसानी से एकत्र किया जा सकता है बागान से बाजार, बंदरगाह तक सस्ते एवं सुविधायुक्त परिवहन के साधन की आवश्यकता होती है।

बागाती खेती पूँजी एवं प्रबन्धः–

रोपण खेती में पूँजी की आवश्यकता बड़े पैमाने पर होती है। यह खेती उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंध क्षेत्रों में यूरोपीय देशों द्वारा प्रारंभ किया गया था। डच, अंग्रेज, पुर्तगाल, फ्रांसीसी आदि उपनिवेशवाद के दौरान पूर्वी द्वीप समूह, भारत, श्रीलंका, पश्चिमी द्वीप समूह, अफ्रीका में घाना, नाइजीरिया व अन्य देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किए और यह लोग वहाँ पर अपने कुशल प्रबंधन द्वारा स्थानीय कृषकों को रोपण कृषि करना सिखाया। यूरोपीय लोग वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग भी करते थे। बागाती खेती में अधिक पूंजी भी लगी हुई थी एशिया महाद्वीप के या अन्य देशों के उपनिवेश धीरे–धीरे स्वतंत्र होते गए और वहाँ के प्रादेशिक विकास संस्थाओं ने बागाती खेती का प्रबंधन अपने हाथ में ले लिया, आज भी अफ्रीका के कुछ देशों में विदेशी पूंजी द्वारा रोपण खेती की जा रही है।

बागाती खेती एवं औद्योगिक प्रक्रियाः–

रोपण कृषि की सभी फसलों का परिष्करण आवश्यक होता है कृषि फार्म पर जिस तरह से उत्पाद प्राप्त होते हैं वे उसी रूप में उपभोक्ताओं तक बाजार में नहीं भेजे जाते क्योंकि परिवहन के दौरान इनके नष्ट होने की संभावना बनी रहती है, रखरखाव का खर्च भी अधिक होता है इसीलिए इसका परिशोधन आवश्यक होता है जैसे लेटेक्स, हरी चाय, गन्ना, परिष्करण एवं औद्योगिक परिशोधन के बाद उत्पाद का वजन और मात्रा घट जाता है इसीलिए आर्थिक लाभ की दृष्टि से कृषि फार्म के पास ही उत्पाद के परिशोधन हेतु संयंत्र लगाए जाते हैं विश्व के लगभग सभी देशों में रोपण कृषि की ओर रूचि बढ़ी है और मशीनों के सहयोग से गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में ऊँचे स्थानों पर खेतों को तैयार करके फसलों की रोपाई, उसकी कटाई आदि का कार्य कुशलता पूर्वक किया जा रहा है। अनेक

उन्नतशील प्रजातियां विकसित कर ली गई हैं वह कम समय में उत्पाद देना शुरू कर देती हैं अब दिन प्रतिदिन इसका विस्तार और विकास तीव्रगति से बढ़ रहा है।

(8) भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्थाः—

भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश में भौगोलिक और प्राकृतिक विशेषताओं का महत्वपूर्ण योगदान है इस प्रदेश का नामकरण किसी फसल विशेष पर निर्भर नहीं करता है यह कृषि दोनों गोलार्द्धों में 30 से 45 डिग्री अक्षांश के मध्य महाद्वीपों के पश्चिमी किनारे पर की जाती है इस कृषि का सर्वाधिक विस्तार भूमध्य सागर के तटवर्ती देशों में है इसीलिए इसे भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश के नाम से जानते हैं। भूमध्य सागर के चारों ओर फैले देश जैसे पुर्तगाल, स्पेन, दक्षिणी फ्रांस, यूनान, इटली, सीरिया, जॉर्डन, लेबनान, इजरायल, ट्यूनीशिया, मोरक्को, अल्जीरिया आदि देश हैं इसके अलावा उत्तरी अमेरिका में मध्यम दक्षिणी कैलिफोर्निया दक्षिण अमेरिका में मध्यवर्ती चिल्ली का पश्चिमी भाग दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका ऑस्ट्रेलिया में दक्षिण ऑस्ट्रेलिया का मरे डार्लिंग प्रदेश कृषि प्रदेश के अन्तर्गत शामिल है। भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश के अन्तर्गत निर्वाहन कृषि व्यापारिक कृषि पशुपालन और ग्रीष्मकाल में सिंचाई सुविधा पर आधारित कृषि उत्पादन और शीतकाल में वर्षा पर आधारित फसल का उत्पादन खाद्यान्न, साग—सब्जी, फल आदि उगाया जाता है यहाँ की कृषि में अनेक प्रणालियां हैं क्योंकि यह ऐसा कृषि प्रदेश है जहाँ पर पर्वत, तटीय मैदान, घाटी, बड़े मैदान, छोटे मैदान अनेक धरातलीय स्वरूप एक साथ पाए जाते हैं। यहाँ पर क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती है इन क्षेत्रों में कृषि से सम्बन्धित अनेक कार्य बड़ी सरलता पूर्वक किए जाते हैं यहाँ पर फल उत्पादन, खाद्यान्न उत्पादन, भेड़, बकरी का पालन प्रमुख रूप से किया जाता है। भूमध्यसागरीय जलवायु में ऐसी कृषि का विस्तार है जहाँ भूमध्यसागरीय जलवायु में शीतकाल में वर्षा होती है, ग्रीष्मकाल शुष्क होता है। वायुदाब पेटी, पवन पेटी, के खिसकाव का प्रभाव होता है यहाँ पर पर्वतीय ढाल पर अधिक वर्षा होती है लगभग 100 सेंटीमीटर होती है जबकि निचले भाग पर लगभग 25 सेंटीमीटर वर्षा होती है। धरातलीय विषमता, जलवायुगत विषमता के कारण यहाँ पर फसल उत्पादन और पशुपालन में विविधता पाई जाती है। कृषि व्यवस्था में प्राकृतिक कारकों के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी योगदान है। यहाँ पर यातायात साधनों की सुलभता, जनसंख्या के दबाव, सरकारी नीति, बाजार, सागर तट की स्थिति, विपणन व्यवस्था आदि के कार्य यहाँ पर कृषि अधिक विकसित रूप में की जाती है। भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश प्राचीन सभ्यता का केन्द्र रहा और यहाँ पर जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है यह कृषि व्यवस्था जीवन निर्वाह एवं व्यापारिक दोनों प्रकार से सम्पन्न की जाती है। व्यापारिक कृषि एवं जीवन निर्वाह कृषि दोनों व्यवस्था यहाँ की वर्षा, बाजार, जनसंख्या, कृषि, तकनीक, पूंजी, प्रबन्ध, सरकारी नीति द्वारा निर्धारित और नियंत्रित होती है। अफ्रीकी देशों में वर्षा कम होती है यहाँ पर गेहूँ से शराब और जैतून का तेल विश्व प्रसिद्ध उत्पाद माना जाता है। कैलिफोर्निया में अंगूर की खेती, सानज्वेकिन की घाटी में प्रसिद्ध है यहाँ पर साग—सब्जी, कपास का उत्पादन किया जाता है। यूनान में गोद एवं शराब; स्पेन में संतरा, जैतून, शराब; कैलिफोर्निया में संतरे, अंगूर शीतकालीन सत्र में बहुलता से उगाई जाती है इस कृषि व्यवस्था में उष्ण, शुष्क, ग्रीष्मकाल, मृदुल और नम शीतकाल में पर्वतीय समीपता,

छोटी पृथक घाटियां, पर्वतपदीय मैदान आदि अनेक विविधतापूर्ण धरातलीय स्वरूप है जिस कारण से यहाँ पर कृषि की निम्नलिखित चार व्यवस्था पाई जाती है।

(1) ग्रीष्मकाल में सिंचाई से पैदा होने वाली फसलें:—

ग्रीष्मकाल में बर्फ पिघलकर नदियों में प्रवाहित होती है, यह जल मैदानों और निम्न भागों में आसानी से पहुंच जाता है, नदियों में प्रवाहित जल से सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है और इससे किसान चारा की फसलें, फल की खेती, सब्जी की खेती सरलतापूर्वक सम्पन्न करते हैं। फल और सब्जी के उत्पादन के लिए यह मैदान अत्यन्त उपयुक्त होता है, यहाँ पर सभी समशीतोष्ण जलवायु की सब्जियां सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं। यहाँ पर चारा फसल, अल्फाल्फा, क्लोवर, कूपाइन, वर्च सफलतापूर्वक उगाया जाता है इन्हीं चारा फसलों पर दुधारू जानवर पाले जाते हैं और दुग्ध डेयरी उद्योग यहाँ का प्रसिद्ध उद्योग है।

(2) बिना सिंचाई के सहयोग से फल का उत्पादन:—

इस कृषि पद्धति के द्वारा खजूर, अंगूर, अंजीर और जैतून की खेती की जाती है यहाँ पर लताएं और वृक्षों का रोपण कर किया जाता है सिंचाई की सुविधा, उबड़ खाबड़ भूभाग में नहीं उपलब्ध हो पाती है जहाँ पर 25 से 75 सेंटीमीटर वर्षा होती है वहाँ जैतून प्रमुख रूप से उगाया जाता है यहाँ पर जैतून की खेती के लिए सभी पर्यावरण दशाएं सुलभ हैं इसीलिए विश्व का 90%जैतून का उत्पादन भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश में किया जाता है। भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश को जैतूनी जलवायु प्रदेश के नाम से भी जानते हैं। जैतून की विशिष्टता भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रमुख देश मोरक्को, पुर्तगाल, ट्यूनीशिया, ग्रीस, स्पेन, इटली आदि प्रमुख देश जैतून उत्पादन के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। असिंचित क्षेत्रों में दूसरी महत्वपूर्ण फसल अंगूर है जहाँ पर वार्षिक वर्षा 35 सेंटीमीटर से अधिक होती है उन क्षेत्रों में अंगूर की खेती सफलतापूर्वक उगाई जाती है भूमध्यसागरीय बेसिन में दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका के मध्य, चिली के पश्चिमी भाग में, आस्ट्रेलिया में अधिक मात्रा में अंगूर की खेती शुष्क कृषि के रूप में संपादित की जा रही है।

चारागाही एवं पशुपालन व्यवस्था:—

यह प्रणाली पूरी तरह से जलवायु पर निर्भर है चरागाह थोड़े समय के लिए उपलब्ध हो पाता है क्योंकि निचले भाग में गर्मी अधिक होती है और पर्वतीय भाग पर शीतकालीन वर्षा होती है जिससे चरागाह के विकास के लिए अल्प समय मिल पाता है। उबड़—खाबड़ धरातलीय स्वरूप जलवायु अभिक्षमता, मौसम की वनस्पतियों और जटिल परिस्थितियों के कारण यहाँ की कृषि व्यवस्था के पशुपालन को दो वर्गों में रखा गया है।

(a) बड़े पशुओं का पालन:—

इस व्यवस्था में मिश्रित कृषि विशिष्ट रूप में पाई जाती है भौगोलिक दशाएं पशुपालन उद्योग में सहायक हैं यहाँ पर सिंचाई के आधार पर ग्रीष्मकाल में अल्फाल्फा, वर्च, ब्लू

पाइन आदि चारा फसलों के आधार पर पशुओं को पाला जाता है नगर के समीपवर्ती क्षेत्रों में दूध, पशुपालन एक महत्वपूर्ण व्यापारिक उद्यम है। कहीं–कहीं पनीर और मक्खन का उत्पादन भी किया जाता है, ताजे दूध की आपूर्ति स्थानीय भागों के लिए की जाती है। ताजे दूध की आपूर्ति में परिवहन साधनों का योगदान प्रमुख होता है।

(b) भेड़ बकरी व छोटे पशु का पालनः–

भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था में भेड़, बकरी, सूअर व अन्य छोटे पशुओं को अधिकाधिक संख्या में पालन किया जाता है, यहाँ पर मुर्गी पालन एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में सम्पन्न होता है, कुछ क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन का कार्य सफलतापूर्वक किया जाता है। मधुमक्खी पालन का कार्य फलों के क्षेत्रों में ज्यादा अनुकूल सिद्ध होता है।

शीतकालीन वर्षा पर आधारित फसल उत्पादनः–

भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश में शीतकालीन वर्षा के सहयोग से खाद्यान्न फसल व सब्जियों का उत्पादन किया जाता है। कैलिफोर्निया को छोड़कर सभी भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेशों में गेहूँ की खेती सफलतापूर्वक की जाती है कुछ विद्वान भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश को गेहूँ का उद्भव क्षेत्र मानते हैं। कैलिफोर्निया में बड़े पैमाने पर सब्जी की खेती, अंगूर की खेती की जाती है, कैलिफोर्निया से सब्जी को पश्चिमी यूरोप, पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका के बड़े जनसंख्या वाले क्षेत्रों को भेजा जाता है। इस तरह से कैलिफोर्निया में अंगूर, गेहूँ, साग–सब्जी के द्वारा बड़े पैमाने पर मुद्रा अर्जन का कार्य सम्पन्न होता है।

(9) व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषिः–

कृषि व्यवस्था तकनीकी उपयोगिता और तकनीकी विकास का प्रतिफल है मध्य अक्षांशीय क्षेत्र में शुष्क प्रदेश एवं आर्द्र प्रदेश के मध्य विस्तृत घास के मैदान पाए जाते हैं जहाँ पर मिट्टी, वनस्पति और हिम युग के निक्षेपण से अधिक उपजाऊ है इस कृषि में सीमित क्षेत्र सम्मिलित किए गए यह कृषि शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान जैसे उत्तरी अमेरिका में प्रेयरी प्रदेश, दक्षिणी अमेरिका में पंपास, ऑस्ट्रेलिया में डाउन्स, ईस्ट एशिया के घास क्षेत्र में यह कृषि सफलतापूर्वक सम्पन्न हो रही है। इस कृषि व्यवस्था में निम्नलिखित विशेषताएं विद्यमान हैं–

1. कृषि क्षेत्र विस्तृत भू–भाग पर है
2. कृषि में उच्च स्तर के यंत्रों का उपयोग होता है
3. कृषि में फसल का विशिष्टीकरण पाया जाता है
4. कृषि क्षेत्र में पूँजी का अधिकतम निवेश भी किया जाता है।

व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि की प्रमुख फसल गेहूँ है, गेहूँ की खेती इन घास के मैदानी क्षेत्रों में बड़े–बड़े कृषि फार्म पर सम्पन्न की जाती है यह कृषि फार्म 200 से 400 हेक्टेयर तक के विस्तृत आकार के होते हैं कुछ कृषि फार्म 800 हेक्टेयर तक के भी पाए जाते हैं इस प्रदेश में मशीनें ही मुख्य हैं जिसके आधार पर अनेक प्रकार के कृषि कार्य

सरलतापूर्वक सम्पन्न किए जाते हैं। यहाँ पर ट्रैक्टर, ड्रिल, हल, कंबाइन ट्रक, मालगाड़ी एक अनिवार्य घटक है मशीनों के आविष्कार और उपयोग के फलस्वरूप इस कृषि प्रणाली का विकास हुआ है। मशीनों के अभाव में इतने बड़े पैमाने पर यह कृषि कार्य संभव नहीं हो सकता है। यहाँ पर जनसंख्या कम पाई जाती है इसलिए प्रति व्यक्ति फसल उत्पादन की मात्रा बहुत अधिक होती है जनसंख्या कम होने से स्थानीय स्तर पर फसल उत्पादन की खपत भी बहुत कम अथवा सीमित होती है इसीलिए यहाँ पर उपज का अधिकार सभी व्यापार के लिए उपलब्ध हो पाता है चावल उत्पादन कृषि क्षेत्र और व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि क्षेत्र की व्यवस्थाओं और विशेषताओं में विभिन्नता पाई जाती है। दोनों में अन्तर पाया जाता है चावल का उत्पादन अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में किया जाता है चावल का उत्पादन प्रायः उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सम्पन्न होता है चावल के उत्पादन वाले क्षेत्रों में चावल की स्थानीय खपत अधिक होती है वहाँ पर सस्ता श्रम उपलब्ध होता है भूमि मंहगी होती है जबकि व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन वाले क्षेत्र में कृषि कार्य यंत्रीकृत होता है कृषि फार्म बड़े आकार के होते हैं, जनसंख्या कम होती है, स्थानीय खपत कम होती है, उपज का अधिकांश भाग व्यापार के लिए उपलब्ध हो जाता है। चावल के क्षेत्रों में कृषि कार्य में मानव श्रम का उपयोग अधिक होता है जबकि विस्तृत कृषि क्षेत्र में जहाँ पर गेहूँ की विशिष्टता है वहाँ पर अधिकांश कार्य मशीनों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है गेहूँ यहाँ का प्रमुख उपज है, बाजार के मुख्य निर्यातक फसल के रूप में माना जाता है विश्व के प्रमुख खाद्यान्न उत्पादन क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा का बसंतकालीन गेहूँ, मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका और कोलम्बिया के पठार का शीतकालीन गेहूँ, अर्जेंटीना के पंपास क्षेत्र में गेहूँ प्रदेश, आस्ट्रेलिया में मरे डार्लिंग नदी घाटी क्षेत्र, दक्षिणी पश्चिमी भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश का गेहूँ क्षेत्र, यूक्रेन और रूस का गेहूँ क्षेत्र के समस्त गेहूँ प्रदेश में बड़े पैमाने पर खाद्यान्न का उत्पादन निर्यात सुगमतापूर्वक होता है इसके लिए यहाँ पर भौतिक और मानवीय दोनों ही कारक अनुकूल हैं।

(10) व्यापारिक शस्य एवं पशु उत्पाद अथवा मिश्रित कृषि प्रदेशः—

मिश्रित कृषि प्रदेश के अन्तर्गत पशुपालन का कार्य व्यापारिक स्तर पर फसल उत्पादन के साथ किया जाता है अर्थात् मिश्रित कृषि में फसल उत्पादन और पशुपालन दोनों कार्य एक साथ सम्पन्न होते हैं इस व्यवस्था का भी विकास और जन्म यूरोप में ही हुआ, यह कृषि व्यवस्था नार्वे, स्वीडन अर्थात् पश्चिमी यूरोप से लेकर नाइजीरिया के क्षेत्र तक एक लंबी पेटी के रूप में विस्तृत रूप से पाई जाती है जैसे—जैसे हम इस पेटी के पूर्व बढ़ते हैं यह पेटी अत्यन्त संकीर्ण होती जाती है एवं सर्वाधिक चौड़ाई लगभग 1200 किलोमीटर पाई जाती है। यह कृषि संयुक्त राज्य अमेरिका में इंडियाना, नेब्रास्का, वर्जीनिया, ओकलाहोमा, टेनेसी में सम्पन्न की जाती है इसके अलावा मेक्सिको के मध्य भाग, दक्षिणी अमेरिका में अर्जेंटीना, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी भागों में यह खेती सुगमतापूर्वक की जा रही है। मिश्रित कृषि प्रदेश की विशेषताएं निम्नलिखित हैं।

1. मिश्रित कृषि फार्म अपेक्षाकृत बड़े—बड़े होते हैं औसत कृषि फार्मों का क्षेत्रफल 60 हेक्टेयर तक विस्तृत क्षेत्र पर पाए जाते हैं कहीं—कहीं पर यह 800 हेक्टेयर तक के

क्षेत्र पर भी विस्तृत हैं जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में मिश्रित कृषि फार्म 450 से 800 हेक्टेयर तक के आकार के पाए जाते हैं। यूरोपीय क्षेत्रों में मिश्रित कृषि फार्म का औसत क्षेत्रफल 30 हेक्टेयर का है, यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में जनसंख्या इन कृषि फार्म पर बिखरे रूप में पाई जाती है। कृषक मजदूरों के मकान, उनके पशुओं के लिए आवास, चारा इत्यादि उसी कृषि फार्म पर बनाए जाते हैं, जानवरों के लिए बाड़े और चारा आदि का भंडारगृह कृषि फार्म पर विकसित कर लिया जाता है।

2. मिश्रित कृषि पद्धति में फसल चक्र एक प्रमुख विशेषता पाई जाती है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने में फसल चक्र सहयोग करता है जैसे एक बार में 6 वर्ष के आवर्तन की प्रणाली अपनाई जाती है, जिसमें पहले वर्ष ओट्स, दूसरे वर्ष टर्निप या आलू, तीसरे साल पुनः ओट्स तथा अन्य 3 वर्षों में घास की खेती की जाती है। चार या पांच वर्ष के आवर्तन पद्धति में पहले वर्ष चरागाह, दूसरे वर्ष गेहूँ, तीसरे वर्ष में आलू, और चौबे वर्ष में अनाज या ओट्स, 5 वर्ष में जौ बोये जाने की परम्परा है।

3. मिश्रित कृषि व्यवस्था यानी पशुपालन और कृषि जहाँ पर एक साथ सम्पन्न की जाती है इस कृषि व्यवस्था में अधिक पूँजी और श्रम दोनों की आवश्यकता होती है इसी व्यवस्था में 80% से अधिक कार्य मशीनों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है अब सघन कृषि फार्म पर अधिकांश कार्य मशीनों के सहयोग से सम्पन्न हो रहा है कृषि फार्म को तैयार करने, फसलों की बुवाई करने, फसलों की कटाई करने, फसलों की मड़ाई करने का कार्य मशीनों के द्वारा सम्पन्न हो रहा है, रासायनिक खादों का छिड़काव भी मशीनों से, कीटनाशक खरपतवार नाशक दवाओं का प्रयोग भी मशीनों से सम्पन्न हो रहा है इसलिए उन्नत किस्म की मशीनों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक दवाइयों, खरपतवार नाशी रसायनों आदि के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

4. इस कृषि में फसल और पशुपालन दोनों कार्य साथ–साथ होते हैं इन फसलों का उत्पादन पशुओं के खिलाने के लिए भी किया जाता है इस तरह से यहाँ पर एक ही चारे के रूप में पशुओं को खिलाने की दृष्टि से, अन्न का उत्पादन एवं व्यापार के लिए भी उत्पादित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस कृषि व्यवस्था में मक्का और गेहूँ का उत्पादन बड़ी सफलतापूर्वक किया जाता है विभिन्न रूप से पशुपालन के लिए उपयोगी होती है। उत्पादन बहुत अधिक होता है जिसकी पूरी खपत बाजार में नहीं हो पाती है जबकि पशु उत्पादन के विक्रय हेतु बाजार सुलभ है। यहाँ के उत्पादित पदार्थ को संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी क्षेत्रों को परिवहन के माध्यम से भेजा जाता है, कृषि फार्म को अधिकांश आय पशुओं के व्यापार से ही हो जाती है। यहाँ के प्रमुख पशु सूअर, भेड़, मुर्गी, घोड़ा, गाय आदि हैं। पशुओं का उत्पादन मुख्य रूप से मांस प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा पशुओं से यहाँ पर चमड़ा, अंडा, दूध का उत्पादन भी बड़े पैमाने पर होता है। गाय का पालन मांस और दूध दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु होती है जबकि सूअर का पालन केवल मांस के लिए ही किया जाता है।

मिश्रित कृषि के कारण किसान को कुछ न कुछ लाभ हमेशा उपलब्ध होता है इसीलिए मिश्रित कृषि कभी घाटे का सौदा नहीं होती है एक फसल के नष्ट होने पर दूसरी फसल और दोनों फसल के नष्ट होने पर पशु उत्पाद किसानों को उपलब्ध होता रहता है।

यूरोप के पश्चिमी भाग में, सोवियत रूप मे, संयुक्त राज्य अमेरिका में मिश्रित कृषि का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है भौगोलिक दशाएँ फसल और पशुपालन दोनों के लिए बेहद अनुकूल है। सामान्य तापमान और सामान्य वर्षा इस कृषि प्रदेश की प्रमुख विशेषता है यहाँ की कृषि मिट्टी भी हिमोढ़ प्रकार की है। पूरा कृषि प्रदेश शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात से प्रभावित रहता है, वर्षा बहुत हल्की होती है, बौछारों से युक्त होती है यह वर्षा वर्षभर होती रहती है जो कृषि के लिए अत्यन्त अनुकूल होती है।

(11) जीविकोपार्जन एवं पशु उत्पादक कृषिः–

इस कृषि का जन्म क्षेत्र उत्तरी यूरोप है जहाँ पर जीविकोपार्जन फसल और पशु उत्पादन दोनों का कार्य एक साथ किया जाता है। इस कृषि व्यवस्था की अनेक विशेषताएँ मिश्रित कृषि व्यवस्था की विशेषताओं से मिलती है क्योंकि इसमें भी कुछ फसलों का उत्पादन कृषि फार्म पर किया जाता है अंतर इतना है कि यहाँ का उत्पादन का आधा भाग ही बाजार में उपलब्ध हो पाता है जबकि विस्तृत कृषि व्यवस्था में अधिकांश उत्पादन बाजार में उपलब्ध होता है। जीविकोपार्जन फसल और पशु उत्पादन के नाम से ही स्पष्ट है कि इस कृषि क्रियाकलाप का मुख्य उद्देश्य जीवन यापन के लिए ही है कुछ क्षेत्रों में बाजार के लिए कुछ भी उत्पाद प्राप्त करना संभव नहीं होता ऐसी कृषि विश्व के बहुत कम क्षेत्रों में की जाती है। विद्वान व्हिटलसी महोदय जब इस कृषि व्यवस्था का विश्लेषण कर रहे थे उस समय रूस के क्षेत्र में कृषि सुधार के कारण कृषि कार्य में ह्रास की स्थिति देखी जा रही थी और यह कृषि विश्व के अन्य देशों में भी बहुत कम क्षेत्रों पर सम्पन्न हो रही थी आज विकास के मापक बदल रहे हैं। कृषि क्षेत्र में तेजी से परिवर्तन हो रहा है अब यह जीविकोपार्जन और पशु उत्पादन कृषि व्यवस्था, व्यापारिक फसल और पशु उत्पादन कृषि में बदलती जा रही है ऐसी खेती एशिया के पश्चिमी भागों के उत्तर में उत्तरी ईरान, मध्यवर्ती एशिया, उत्तरी साइबेरिया में जहाँ पर भौगोलिक दशाएं अनुकूल नहीं हैं वहाँ पर येन केन प्रकारेण की जा रही हैं जीवन यापन के लिए फसल का उत्पादन और पशुपालन दोनों कार्य का सहयोग लेना पड़ रहा है। यहाँ पर मौसम या तो शुष्क है या तो अति शीतल है इस कारण से वर्ष में बड़ी मुश्किल से एक फसल का उत्पादन होता है इसीलिए लोगों को पशुपालन के फसल उत्पादन के साथ–साथ इस पशुपालन का कार्य भी करना होता है जिससे उनका जीवन यापन सरलतापूर्वक हो सके।

(12) व्यापारिक दुग्ध पशुपालन कृषिः–

व्यापारिक दूध पशुपालन कृषि का मुख्य लक्ष्य दूध और दूध से निर्मित होने वाले पदार्थों जैसे पनीर, मक्खन, दही आदि का व्यापारिक उत्पादन के लिए कृषि कार्य करना है, यह उत्तम कृषि व्यवस्था है इस कृषि व्यवस्था में पूंजी, श्रम, कृषि की मशीनों, प्रबंधन

कौशल प्रशिक्षण आदि की नितान्त आवश्यकता होती है। यह कृषि व्यवस्था उन्हीं क्षेत्रों में अधिक सफल देखी जाती है जहाँ पर बाजार की निकटता हो। मक्खन, पनीर, दूध, क्रीम, मांस बेचने की सुविधा भी उपलब्ध हो, परिवहन के लिए विशेष रूप से साधन भी सुगमता से सुलभ हो, ऐसी कृषि व्यवस्था के लिए प्रशीतक की भी सुविधा होनी चाहिए। ऐसी कृषि समशीतोष्ण जलवायु प्रदेश में विशेष रूप से बड़े पैमाने पर की जा रही है। उष्ण प्रदेशों में बाजार के निकट दुग्ध पशुपालन का कार्य किया जाता है यह कृषि व्यवस्था 3 प्रदेशों में सम्पन्न की जा रही है। प्रथम उत्तरी अमेरिका में सुपीरियर, मिशिगन, ह्यूरन इरी, ओण्टोरियो जैसी बड़ी झीलों के पश्चिमी भाग के प्रेयरी प्रदेश में यह कृषि कार्य सम्पन्न किया जा रहा है। पश्चिमी यूरोप के उत्तरी भाग में अंध महासागर के तटवर्ती क्षेत्रों से लेकर रूस की राजधानी मास्को तक यह कृषि कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया जा रहा है। तीसरा क्षेत्र आस्ट्रेलिया के दक्षिणी पूर्वी भाग में और तस्मानिया, न्यूजीलैंड में भी यह कृषि उन्नत तरीके से सफल रूप से सम्पन्न की जा रही है। इन महत्वपूर्ण क्षेत्रों के अलावा दक्षिणी अमेरिका में अर्जेंटीना और अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीका देश, साथ ही एशिया में पूर्वी जापान में भी यह कृषि व्यापारिक स्तर पर बड़े पैमाने पर सम्पन्न की जा रही है। इस कृषि में दुग्ध उत्पादन के संदर्भ में सोवियत रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, जर्मनी, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, नीदरलैंड, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, अर्जेंटीना, न्यूजीलैंड, डेनमार्क, ब्राजील, पाकिस्तान, पोलैण्ड, इटली, जापान, चीन विश्व के महत्वपूर्ण देश हैं जो व्यापारिक दूध पशुपालन का कार्य करते हैं। प्रति गाय प्रतिवर्ष उत्पादन होने वाले दूध में अंतर पाया जाता है। पश्चिमी यूरोपीय देश की गाय और ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, जापान, हालैण्ड, की गायें दूध का उत्पादन अधिक करती हैं या दूध अधिक देती हैं जबकि भारत, पाकिस्तान की गायें दूध कम देती हैं। भारत की गाय को पिकअप काऊ कहा जाता है। दूध से बने पदार्थ जैसे पनीर, पाउडर, दूध, मिल्क,कंडेंस, मिल्क, मक्खन आदि के उत्पादन में भी क्षेत्रीय प्रादेशिक स्तर पर अंतर पाया जाता है। कुछ देश दूध के पदार्थों के उत्पादन के लिए विश्वविख्यात हैं जैसे डेनमार्क, हालैण्ड, न्यूजीलैंड, मक्खन और पनीर के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका सूखा दूध के लिए विश्व प्रसिद्ध है। दूध एवं दूध से उत्पादित पदार्थों की प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा में भी राष्ट्रीय स्तर पर अंतर पाया जाता है। यूरोपीय देश जैसे आयरलैंड, स्वीडन, फिनलैंड, पोलैंड में दूध की प्रति व्यक्ति खपत अधिक है उसके बाद न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका में भी दूध की प्रति व्यक्ति खपत उच्च स्तर की है लेकिन दक्षिणी एशियाई राष्ट्र, पूर्वी एशियाई राष्ट्र, दक्षिण पश्चिम एशिया में दूध के प्रति व्यक्ति उपलब्धता अत्यन्त दयनीय स्थिति में है विश्व के निर्यातक देशों में न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया का महत्वपूर्ण स्थान है जबकि रूस, ब्रिटेन आदि देश मक्खन के अच्छे निर्यातक हैं, पनीर निर्यातक देशों में न्यूजीलैंड, नीदरलैंड, स्विट्जरलैंड, डेनमार्क, फ्रांस आदि का नाम विश्व में सर्वोपरि है जबकि पनीर के आयातक देशों में बेल्जियम, जर्मनी, ब्रिटेन आदि देशों का नाम पहले आता है आज विश्व के अनेक देशों में जीवन स्तर ऊँचा उठने के साथ–साथ डेरी उत्पादन वस्तुओं की मांग तेजी से बढ़ी है। इस कृषि में मांग को देखते हुए पशुओं की नस्लों, यंत्रों, पशुपालकों के प्रशिक्षण और प्रशीतक की सुविधा, पशुओं के रख–रखाव, उनकी चिकित्सा, उन पर अन्वेषण, अनुसंधान कार्य लगभग

सभी देशों में तेजी से बढ़ा है। रेफ्रिजरेटर के विकास के फलस्वरूप डेयरी उद्योग वैज्ञानिक स्तर पर किया जा रहा है इस व्यवस्था में तीव्र वेग वाले परिवहन साधनों की भी आवश्यकता होती है जो वर्तमान समय में लगभग सभी देशों में यह उपलब्ध है अब कई देशों में पाइप लाइन के द्वारा भी दुग्ध परिवहन कार्य पर विचार किया जा रहा है।

(13) विशिष्ट कृत उद्यान कृषिः–

इस कृषि के अन्तर्गत साग–सब्जी, फल–फूल की खेती की जाती है यह कृषि लगभग सभी देशों में शहरी क्षेत्रों में और औद्योगिक क्षेत्रों में कुशलतापूर्वक की जा रही है। नगरों में मकानों के पीछे, ग्रामीण क्षेत्रों में गांव के चारों तरफ फल–फूल, साग–सब्जी आसानी से उगाया जाता है और यह एक सामान्य बात भी है। बड़े–बड़े नगरों के सीमांत क्षेत्रों पर या रूरल अर्बन फ्रिंज, ग्रामीण क्षेत्र में साग–सब्जी और फूल–फूल की खेती व्यापारिक दृष्टि से भी की जाती है। यह कृषि संयुक्त राज्य अमेरिका, उत्तरी पश्चिमी यूरोप, डेनमार्क, ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में घनी आबादी के भाग में कुशलतापूर्वक की जा रही है। भारत में भी यह कृषि बड़े–बड़े नगरों के चारों तरफ आसानी से देखी जा सकती है इस कृषि प्रदेश में साग–सब्जी, फल–फूल आदि को उगाया जाता है। खेत का आकार बहुत छोटा होता है इसमें पूंजी और श्रम की अधिक आवश्यकता होती है उत्पादन अधिक होता है, उत्पादित वस्तुओं या पदार्थों को बाजार तक ले जाने के लिए परिवहन साधन की सुलभता होनी चाहिए। कृषि पद्धति में गहनता सबसे अधिक पाई जाती है आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमेरिका में इसे ट्रक फार्मिंग के नाम से भी जाना जाता है। आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमेरिका में यह कृषि बड़े–बड़े फार्म में की जाती है। वहाँ पर वर्ष में एक और कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में दो फसलें उगाई जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा देशों में वैज्ञानिक प्रगति के कारण से इस कृषि का विकास अधिक हुआ है। इस व्यवस्था में द्रुतगामी परिवहन साधन, रेफ्रिजरेटर आदि की व्यवस्था से और मशीनीकरण के कारण एक क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलता है। रेफ्रिजरेटर, रेलगाड़ी, ट्रक, छोटी चार पहिया साधन के द्वारा हरी ताजी साग–सब्जी, फल–फूल दूर तक के नगरों को सरलतापूर्वक पहुंचाई जाती है इस कृषि फार्म में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के उद्देश्य से उचित मात्रा में उर्वरक, सिंचाई के साधन, कीटनाशक, खरपतवारनाशी दवाओं, निराई–गुड़ाई, देखरेख, कुशल श्रम, उन्नतिशील बीज की आवश्यकता होती है भारत देश में इस कृषि व्यवस्था के लिए प्राकृतिक और मानवीय कारक अनुकूल हैं यहाँ पर पर्याप्त तापमान, सूर्य का प्रकाश, पौधों के विकास के लिए उचित और पर्याप्त वर्द्धन काल, उपजाऊ मिट्टी, श्रमिकों की उपलब्धता के कारण अब यह खेती छोटे–छोटे खेतों में, बाग बगीचों में आवासीय क्षेत्रों के पास सफलतापूर्वक की जा रही है। भारत में लगभग सभी प्रकार की सब्जी जैसे आलू, टमाटर, प्याज, शलजम, गोभी, बैंगन, भिंडी, परवल, तोरई, लौकी, कद्दू, सेम, पालक, मेथी, लहसुन, धनिया, सोयाबीन आदि की खेती बड़ी ही सफलतापूर्वक सम्पन्न हो रही है। भारत देश में दिन–प्रतिदिन बढ़ते नगरीकरण, औद्योगीकरण के कारण से साग–सब्जी, फल आदि की मांग भी बढ़ी है इसीलिए साग–सब्जी, फल–फूल की खेती में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलता है वर्तमान समय में कीटाणुनाशक, खरपतवारनाशक रसायनों के बाजार में उपलब्धता के कारण प्रति हेक्टेयर

उत्पादन भी बढ़ा है। अब भारत देश साग–सब्जी, प्याज, आलू, टमाटर का अन्य एशियाई देशों में निर्यात भी करता है।

विद्वान होवार्थ एवं स्पेंसर ने एतदर्थ छः प्रकार की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है जिसमें मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, तकनीकी एवं कृषि आर्थिकी महत्वपूर्ण है इन्होंने देश को निम्नलिखित कृषि प्रदेशों में रखा है–

1. उष्णकटिबंधीय रोपण कृषि प्रदेश
2. व्यापारिक बागाती कृषि प्रदेश
3. व्यापारिक दूध उत्पादक कृषि प्रदेश
4. व्यापारिक फसल एवं पशुपालन प्रदेश
5. विस्तृत व्यापारिक फसल एवं उत्पादक कृषि प्रदेश
6. भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश
7. प्राच्य निर्वाह कृषि प्रदेश
8. उष्णकटिबंधीय आदिम प्रकार की निर्वाह कृषि प्रदेश
9. पशुधन उत्पादन कृषि प्रदेश
10. चलवासी पशुचारण कृषि प्रदेश
11. अकृष्य प्रदेश

विश्व को उपयुक्त कृषि प्रदेशों के विवेचन के उपरान्त सरल रूप में 10 कृषि प्रदेशों में रखा जा सकता है जो प्रस्तुत चित्र से स्पष्ट है। कृषि प्रकार के निर्धारण एवं सीमांकन में प्राकृतिक पर्यावरण के साथ–साथ सांस्कृतिक पर्यावरण को भी सम्मिलित किया गया है इसका कृषि के उद्भव, विकास, परिवर्तन और हर ओर से अधिक महत्व है।

सारांश

इस इकाई में विश्व के कृषि प्रदेश का वर्णन किया गया है जैसा कि आपको जानकारी है कि इसके पूर्व के इकाई में विश्व के कृषि प्रादेशीकरण की योजना का सविस्तार वर्णन किया गया कि विश्व में किन किन विद्वानों ने किन किन कृषि प्रदेशों को किन किन आधारों पर निर्धारित किया है इस इकाई में अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए विद्वान व्हिटलसी द्वारा निर्धारित 13 कृषि प्रदेश का वर्गीकरण संक्षिप्त में किया गया है इन 13 कृषि प्रदेश में चलवासी पशुचारण व्यापारिक पशुपालन स्थानांतरण शील कृ षि प्रारंभिक स्थाई कृषि चावल प्रधान जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था व्यापारिक पादप रोपण कृषि चावल गहन जीवन निर्वाहन कृषि व्यवस्था भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था व्यापारिक एवं पशु उत्पादक कृषि व्यवस्था अथवा मिश्रित कृषि व्यवस्था जीविकोपार्जन फसल एवं पशु

उत्पादक कृषि व्यवस्था व्यापारिक दूध पशुपालन कृषि व्यवस्था विशिष्टीकृत उद्यान कृषि व्यवस्था आदि 13

कृषि प्रदेश में विभाजित किया गया है कृषि प्रदेशों के माध्यम से यह विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है कि कृषि कृषि प्रदेश में किस विभाग में वहां के तापमान वर्षा आर्द्रता स्थलों के आधार पर किन फसलों का चयन किया जा सकता है वहां के किसानों के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक सरकारी नीति और लोगों के प्रकृति के आधार पर फसलों का चयन करते हुए एक कषि प्रदेश का निर्धारण करने का प्रयास किया गया जैसे यह भी देखा गया है कि कहां पर फसल के साथ पशुपालन का कार्य भी सफलतापूर्वक किया जा रहा है फसलों की प्रमुखता है और किन फसलों को गौंड रूप में कृषि कार्य में शामिल किया गया है इतना ही नहीं कहां पर बागवानी की जा रही है इस आधार पर कृषि प्रदेश का निर्धारण उनकी समग्रता को ध्यान में रखते हुए किया गया है कृषि प्रदेश के अध्ययन कर लेने से विद्यार्थी को इस बात की जानकारी हो जाएगी कि विश्व में कृषि क्षेत्र में कितनी विविधता है और विश्व के किस भाग में कौन सी फसल उगाई जाती है और वहां पशु और फसल संयोजन की क्या अंतर है आज ऐसे अनेक प्रश्न है जिनका उत्तर इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आसानी से दिया जा सकता है

बोध पश्न

1.चलवासी प्रसारण किया जाता है चलवासी पशुचारण किया जाता है

क ंमंगोलिया तिब्बत

ख मध्य एशियाई देश

ग सऊदी अरब अफ्रीका उत्तरी अफ्रीका

घ उत्तरी भारत राज्य

2. व्यापारिक पशुपालन का कार्य निम्न में किस देश में नहीं है

क अर्जेंटीना

ख ऑस्ट्रेलिया

ग न्यूजीलैंड

घ बांग्लादेश

3.चेना क्या है

क चावल

ख पशु

ग खिसकती खती

घ कुछनही

4.फजेंडा किसे कहते हैं

क. चाय बागान

ख. कहवा बागान

ग. आम बागान

घ. कुछ नही

5.कहवा की खेती के लिए कौन सा देश विश्व प्रसिद्ध है

क .बाजील

ख. नेपाल

ग. पीरु

घ. चीन

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1.प्रो० आर०सी० तिवारी, प्रो० बी०एन० सिंह :कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद।

2.ब्रज भूषण सिंह : कृषि भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।

3-Symon, L. : Agricultural Geography, Bell & Sons, London, 1967.

4 Kostrowicki, J : World Types of Agricuture, Polish Academy, Warsaw, Poland.

5 Noor Mohd. : New Dimensions in Agriculture, Concept, New Delhi, 1991.

6 Singh & Dhillon : Agricultural Geography, TATA Mc Graw Hill, New Delhi.

7 Whittlesey, D. : Major Agricultural Regions of the Earth, A.A.A.G. Vol 26.

अभ्यास के लिए प्रश्न

1.विश्व को कृषि प्रादेशिक करण निर्धारण की योजना को समझाते हुए किसी एक विषय प्रदेश का सविस्तार वर्णन कीजिए

2.विद्वान लिटिल से द्वारा वर्गीकरण की योजना को समझाइए

3. स्थानांतरण सेट करें की प्रमुख विशेषताओं को समझाते हुए यह बताइए कि यह कृषि आज विश्व में कहां कहां की जाती है

4 चावल प्रधान जीविकोपार्जन कृषि का मुख्य क्षेत्र कहां है उसका सविस्तार वर्णन कीजिए

5.ग्रहन निर्वाहन कृषि की प्रमुख विशेषताएं बताइए

6.भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था की प्रमुख विशेषता बताते हुए उसके क्षेत्र का निर्धारण कीजिए

7. जीविकोपार्जन फसल उत्पादन कृषि व्यवस्था का सविस्तार वर्णन कीजिए

8 विशिष्ट उद्यान कृषि की प्रमुख विशेषता समझाते हुए यह बताइए यह कृषि कहां की जाती है

.

इकाई 8 कृषि विकास के नवीनतम आयाम

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 कृषि के नवीनतम आयाम

- 8.3.1 हरित क्रांति
- 8.3.2 रासायनिक उर्वरक
- 8.3.3 जीन क्रांति
- 8.3.4 जैव कीटनाशक
- 8.3.5 जैव उर्वरक
- 8.3.6 उन्नत बीज
- 8.3.7 श्वेत क्रांति
- 8.3.8 नील क्रांति
- 8.3.9 शुष्क क्षेत्रीय कृषि
- 8.3.10 पारिक जैविक कृषि
- 8.3.11 कार्पोरेट कृषि
- 8.3.12 पुष्प कृषि
- 8.3.13 कृषि में प्लास्टिक का नवाचार

8.4 कृषि के नवीनतम आयाम के प्रभाव

8.5 सारांश

8.6 शब्द सूची

8.7 परीक्षापयोगी प्रश्न

8.8 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना–

कृषि भूगोल की यह अष्टम इकाई है इसमें आप कृषि के नवीनतम आयाम व नवीन आयामों में शामिल पद्धतियों के साथ साथ कृषि के नवीन आयाम जैसे हरित क्रांति, नवीन व उन्नतशील बीज का प्रयोग, रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग, जैव कीटनाशकों का प्रयोग, शुष्क कृषि क्षेत्र व मधुमक्खी पालन आदि का अध्ययन करेंगे।

भारत एक कृषि प्रधान देश है अतः कृषि में नवीन पद्धतियों के माध्यम से उत्पादन में वृद्धि किया जा सकता है अतः ऐसे में कृषि क्षेत्र में सदैव नवीन ज्ञान व शोध कार्य की आवश्यकता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कृषि के नवीन अवधारणाओं को समझ सकेंगे।
- कृषि में उपयोग की जाने वाले नवीन यंत्रों, बीजों व रसायनों के बारे में अपनी समझ को विकसित कर सकेंगे जिससे आप आसानी से अपने आसपास के लोगों को इसके बारे में जागरूक कर सामाजिक उत्थान में सरोकार कर सकेंगे।
- कृषि के नवीन आयामों को समझकर आप उनके उपयोग में सावधानियां में इनके लाभ हानि का साकी मूल्यांकन कर उनके उपयोग को बढ़ावा दें सकेंगे।
- कृषि के नवीन आयामों के उपयोग से कुपोषण जैसी समस्याओं को दूर करने में यह कैसे सहयोगी की भूमिका में होगा इसको आप समझ सकते हैं या समझ कर अपने समाज व देश के विकास में सहयोगी की भूमिका में कार्य कर सकेंगे।

8.3 कृषि के नवीनतम आयाम[New Dimension of Agriculture]

नूतन आयाम से तात्पर्य है कि कृषि में पुरानी पद्धतियों व पुराने खाद्यान्न को छोड़कर नए संसाधनों व नई कृषि उपजो को उत्पादित कर अपने आय को बढ़ाना जिससे किसानों की दशा सुदृढ़ हो और अपने देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ाकर देश की सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि कर देश की समृद्धि में अपना सहयोग दे सके। किसी भी देश की समृद्ध किसान उस देश की समृद्धि का द्योतक होता है कृषि के यह नूतन प्रयोग ही आज के समय में किसी भी क्षेत्र व देश की समृद्धि में सहायक हो रहे हैं कृषि के नवीन आयाम मुख्य निम्नलिखित हैंः–

8.3.1 हरित क्रांति (Green Revolution)–

हरित क्रांति का तात्पर्य ऐसे बीजों के विकास एवं उपयोग से हैं जिसके कारण कृषि के उत्पादन में वृद्धि हो हरित क्रांति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सयुक्त राज्य अमेरिका के डॉक्टर विलियम गेड ने किया था। सर्वप्रथम रॉक फेलर और फोर्ड फाउंडेशन के संरक्षण में गेहूं की फसल हेतु 1950 के दशक में अधिक उपज की प्राप्ति हेतु किया गया

था। नवीन प्रजातियां मौसम के परिवर्तन का कम असर व अल्प समय में तैयार होती थी। इस फाउंडेशन के निर्देशक डॉ नॉर्मन बोरलॉग थे। इनके अथक प्रयास वह कठिन परिश्रम का प्रतिफल हुआ कि यह गेहूं के उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि हुई जहां भारत जैसे देशों में 1960 के दशक तक अपने नागरिकों के भरण पोषण हेतु गेहूं को आयात करना पड़ता था वही आज भारत गेहूं का निर्यात भी करता है यह हरित क्रांति का ही परिणाम है।

डॉक्टर नॉर्मन बोरलॉग 1970 में उनके इस प्रयास हेतु उन्हें विश्व शांति का नोबेल पुरस्कार दिया गया 1960 के दशक में रॉकफेलर और फोर्ड फाउंडेशन के द्वारा मनिला(फिलिपींस) में अंतरराष्ट्रीय चावल अनुसंधान की स्थापना की गई। जिससे परिणाम यह रहा कि चावल के उपज में अप्रत्याशित वृद्धि हुई और यह विश्व के विभिन्न देशों द्वारा कुपोषण जैसी समस्याओं से लड़ने में उपयोगी सिद्ध हुआ।

हरित क्रांति का भारतीय कृषि पर प्रभाव–

- हरित क्रांति से ग्रामीण की आय में वृद्धि हुई जिससे जीवन स्तर ऊंचा हुआ
- इससे कृषि क्षेत्र में भी नवीन प्रौद्योगिकी के उपयोग से रोजगार के अवसर में वृद्धि हुए।
- कृषि क्षेत्र में गहन उत्पादन प्रणाली के विकास से कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सका।
- इसका परिणाम यह रहा कि भारतीय कृषि जीवन निर्वाह स्वरुप से निकलकर व्यापारीक तथा बाजारोंन्मुख रुप ग्रहण करती जा रही है।
- इसके उपयोग से कृषि भूमि क्षेत्र का प्रसार हुआ तथा बंजर भूमि को भी कृषि योग्य बनाया गया।

हरित क्रांति का दुष्प्रभाव–

- हरित क्रांति का प्रभाव सीमित खाद्यान्नों पर रहा जैसे– गेहूं, चावल,मक्का, बाजरा आदि जबकि दलहन व तिलहन फसलो पर कोई लाभ नहीं मिला।
- हरित क्रांति से बड़े काश्तकारों को फायदा हुआ।
- इससे आय की असमानता में वृद्धि हुई जिससे सामाजिक ताना–बाना टूटा और लोगों में आपसी संघर्ष की वृद्धि हुई।
- हरित क्रांति के परिणाम स्वरूप बेरोजगारी में वृद्धि हुई। (इसका मुख्य कारण कृषि यंत्रों के उपयोग से है।)
- पूंजीवादी कृषि के विकास को बढ़ावा मिला क्योंकि कृषि कार्य में अधिक पूंजी की आवश्यकता पड़ती है।
- ग्रामीण श्रमिकों का पलायन नगरों की ओर बढ़ा।

8.3.2 रासायनिक उर्वरक–

रासायनिक उर्वरक कृषि में उपज बढ़ाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले तत्व हैं जो पेड़–पौधों की वृद्धि में सहायता के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं इनका प्रयोग खेतों में व पत्तियों पर छिड़काव के माध्यम से किया जाता है।

यद्यपि मानव द्वारा कृषि कार्य जबसे स्थाई रुप से प्रचलन में है तब से ही मानव जैविक उर्वरको का प्रयोग करता रहा है जैसे–राख, पशु के मल–मूत्र, एवं अन्य जैविक तत्व आदि। किंतु 19वीं सदी में मानव ने बैज्ञानिक विधियों द्वारा नित्य नए खोज हुए जिसके द्वारा मृदा में किस तत्व की कमी है और इसके पूर्ति हेतु कौन से रसायन का कितना छिड़काव किया जाए तो यह मृदा के उर्वरता को बनाए रखने में सहायक होगी मुख्य रूप से मृदा की उर्वरता हेतु तीन तत्व आवश्यक हैं– नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटेशियम। नाइट्रोजन एक सर्वव्यापी पदार्थ है। किंतु फास्फोरस व पोटैशियम का वितरण एकांकी क्षेत्रों में पाया जाता है जैसे फास्फेट मोरक्को और संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग दो तिहाई भंडारण है तथा पोटाश का भंडार मुख्यतः 4 देशों कनाडा, पूर्व सोवियत संघ, जर्मनी एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में पाए जाते हैं। यही कारण है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में रासायनिक उर्वरकों का अधिकतम आयात किया जाता है जिससे यहां के किसानों को महंगी कीमत पर उपलब्ध हो पाता है। जिससे यहां की कृषि खर्चीली हो जाती है।

8.3.3 जीन क्रांति[Gene Revolution]

जननिक इंजीनियरिंग द्वारा बीजों की नई शंकर किस्मों को तैयार कर फसलों का उत्पादन बढ़ाए जाने को जीन क्रांति कहा जाता है। इसमें उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग नहीं किया जाता है। जिससे यह विधि पर्यावरण पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं डालती है जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा मानव जीवन में तीव्र व सतत विकास के लक्ष्यों के प्राप्ति में सहयोगी हो सकता है जिसके माध्यम से कुपोषण व व्यक्तियों को आवश्यक कैलोरी में ऊर्जा की जरूरतों को पूरा किया जा सकता है इस तकनीक में कुछ चुनौतियों का भी सामना करना पड़ सकता है। जैसे– जैव विविधता में ह्रास, कीड़ों व रोगाणुओं के ट्रांसजीन प्रतिरोध में नवीन जहरीले कीड़ों व रोगाणुओ का जन्म हो सकता है।

8.3.4 जैव कीटनाशक–

जैव कीटनाशक कुछ निश्चित प्रकार के प्राकृतिक जीवो जैसे पशु, पौधे एवं जीवाणु तथा कुछ खनिजों से प्राप्त होते हैं। जैसे–नीम की पत्तियां, नीम की गिरी, गोमूत्र, राख (जैविक पदार्थों के जलने से प्राप्त) आदि। इनका प्रयोग हम कृषि को क्षति पहुंचाने वाले कीटों के विनाश के लिए किया जाता है। जैव कीटनाशक से केवल कीटों को ही नष्ट करते हैं अन्य जीव सुरक्षित रहते हैं. अतः जैव कीटनाशक रासायनिक कीटनाशक की अपेक्षा अधिक सुरक्षित और लाभकारी होते हैं। जहां रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से

पौधों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने लगती है। तथा इनके प्रयोग से पौधों में संचित रासायनिक कीटनाशक तत्वों की मात्रा, जीव–जंतुओं के ग्रहण करने पर उनके आहार श्रृंखला के माध्यम से प्रवेश कर जाती हैं तथा उन्हें प्रभावित करती है कभी–कभी रासायनिक कीटनाशक के उपयोग से कीटों की दूसरी प्रजातियां भी नष्ट हो जाती हैं अतः जैव कीटनाशक के उपयोग के निम्न लाभ हैं–

- यह एकाकी होते हैं अर्थात जिस कीट के लिए इनका छिड़काव होता है। सिर्फ वही कीट नष्ट होते हैं।
- जैव कीटनाशक पर्यावरण अनुकूल व सस्ते होते हैं।
- ये पौधों की उतकों के लिए भी हानिकारक नहीं होते हैं।
- इनके उपयोग से कीटों में प्रतिरोधी क्षमता का विकास नहीं हो पाता है।

8.3.5 जैव उर्वरक या जीवाणु खाद

भूमि की उर्वरता को टिकाऊ बनाए रखते वे सतत फसल उत्पादन के लिए कृषि वैज्ञानिकों ने प्रकृति प्रदत्त जीवाणुओं की पहचान कर उनसे विभिन्न प्रकार के पर्यावरण हितैषी उर्वरक तैयार किए हैं जिसे हम जैव उर्वरक या जीवाणु खाद कहते हैं। कृषि के उत्पादन में तीव्र वृद्धि और हरित क्रांति की सफलता में रासायनिक उर्वरको की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिससे विश्व को बढ़ती हुई जनसंख्या हेतु खाद्यान्न आपूर्ति हो सका किंतु ये रासायनिक उर्वरक न केवल महंगे होते हैं साथ ही साथ ये भूमि के दीर्घकालीन उपजाउपन को नष्ट करते हैं और जल एवं मृदा प्रदूषण में भी वृद्धि करते हैं अतः ऐसे में जैव उर्वरक को प्रोत्साहित किया जा रहा है जो भूमि में पोषक तत्वों की पूर्ति व पर्यावरण के समृद्धि में सहायक होते हैं ये मुख्यतः जीवाणुओं एवम् फंगस (कवक) से प्राप्त किए जाते हैं कुछ प्रमुख जैव उर्वरक निम्न हैदृ

1. एजोला–

यह पानी में तैरता हुआ फर्न है। जो शैवाल से मिलती जुलती है इसे सामान्यतः धान के खेत या उथले पानी में उगाया जाता है। जो तीव्र गति से बढ़ता है तथा यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन को ग्रहण कर पोषक पदार्थ बनाता है।

2. **नील हरित शैवाल–**

यह एक जीवाणु फाइलम होता है। जो प्रकाश संश्लेषण से ऊर्जा उत्पन करते हैं। ये जीवाणु के नीले रंग के कारण इसका नाम साइनों कहा जाता है यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन को ग्रहण कर मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा की मात्रा में वृद्धि करता है।

3. राइजोबियम–

यह भी भूमि का जीवाणु है। जो नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है। यह मुख्य रूप से दलहन फसलों में पाया जाता है जो फसलों की जड़ों में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर भूमि को उर्वरा बनाता है।

4. मायकोरिजा–

यह एक कवक है। जो कवक भूमि से अवशोषित पोषक तत्व परपोषी को देता है तथा मृदा के पोषण में वृद्धि करता है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। अतः आधुनिक कृषि में इन उर्वरकों की लोकप्रियता बढ़ रही है इसका प्रमुख कारण यह है कि यह उर्वरक मानव के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं तथा मृदा को दीर्घकालिक संरक्षण प्रदान करते है। अतः इन्हें भविष्य का उर्वरक कहते हैं।

8.3.6 उन्नत बीज–

विकसित व विकासशील देशों के कृषि विकास में उन्नत बीजों का प्रमुख योगदान रहा है। इन बीजों के उपयोग से न केवल कृषि में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है बल्कि पौधों के जैविक संरचना में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। उदाहरणार्थ शोधों से ऐसे बीजों का विकास संभव हो सका है जो कि कम समय में तैयार हो, कीट प्रतिरोधी क्षमता विकसित किया गया तथा सूखा एवं हल्के प्राकृतिक आपदाओं के समय में भी पैदावार अच्छी दे सके। हरित क्रांति का प्रारंभ उन्नतशील बीजों से ही प्रारंभ हुआ किंतु आज भी इनका शतप्रतिशत उपयोग नहीं किया जा सका है इसके अनेक मिथक भ्रम है उदाहरणस्वरूप इनके प्रयोग से लोगों की मनः स्थिति में बदलाव आता है, प्रचार प्रसार का अभाव, सभी किसान उन्नतशील बीज के महत्त्व को समझ पाने में अक्षम हैं अतः ऐसे में सरकारों द्वारा विभिन्न संस्थाओं व विश्वसनीय साधनों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में उन्नतशील बीजों के प्रचार प्रसार व उनमें विश्वास पैदा करना होगा। जिससे उत्पादन तीव्र वृद्धि हो सके हाल में कृषि वैज्ञानिकों के कृत्रिम बीजों को विकसित करने में सफलता प्राप्त की है भारत में यह शोध कार्य भाभा परमाणु शोध केंद्र द्वारा व अन्य संस्थाओं द्वारा किया जाता रहा है।

8.3.7 श्वेत क्रांति

यह भी कृषि के साथ वैकल्पिक रूप में एक नवीन उज्जवल व आशान्वित क्षेत्र है। जिससे किसान अपने आय में वृद्धि कर सकता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। और यहां विश्व में शीर्ष स्तर पर मवेशी व पशु पाए जाते हैं जबकि हमारे यहां पशुओं में दुग्ध उत्पादन की मात्रा कम है सरकारों द्वारा इनके उत्पादन में वृद्धि हेतु नस्लों के सुधार हेतु कार्य करने की आवश्यकता है। हमारे यहां जहां प्रति गाय दुग्ध उत्पादन 175 किलोग्राम प्रतिवर्ष एवं प्रति भैंस 504 किलोग्राम प्रतिवर्ष है वही नीदरलैंड में प्रति गाय 4220 किलोग्राम प्रतिवर्ष ब्रिटेन में 3950 किलोग्राम प्रतिवर्ष तथा डेनमार्क में 3905 किलोग्राम प्रतिवर्ष है। इसके बावजूद भी हमारे यहां पशुओं की संख्या अधिक होने के कारण विश्व के शीर्ष दुग्ध

उत्पादन देशों में है। यहां की गाय कम दूध देती हैं जिसके कारण उन्हें 'टी कप काऊ' कहा जाता है।

8.3.8 नील क्रांति

नीली क्रांति से तात्पर्य मत्स्य उत्पादन से है मत्स्य कृषि के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में कम पूंजी में भी इसकी शुरुआत कर आय को बढ़ाया जा सकता है। वहीं यह वैकल्पिक भोजन के रूप में भी उपयोग कर इससे नागरिक जीवन में पोषण स्तर में वृद्धि की जा सकती है। मत्स्य उत्पादन प्रायः दो प्रकार के होते हैं–

1. मीठे जल से।

2. खारे जल से।

प्रमुख मत्स्य क्षेत्र–

विश्व को प्रमुख मत्स्य क्षेत्र के रूप में यदि बांटा जाए तो यह तीन भागों में निम्नलिखित हैं

1 प्रशांत महासागर मत्स्य क्षेत्र

2 अटलांटिक महासागर मत्स्य क्षेत्र

3 हिंद महासागरीय मत्स्य क्षेत्र

विकास की दृष्टि से विश्व के पांच प्रमुख मत्स्य प्रदेशों में बांटा जाता है ।

- उत्तरी पश्चिमी प्रशांत महासागर क्षेत्र
- उत्तरी पूर्वी अटलांटिक क्षेत्र
- उत्तरी पश्चिमी अटलांटिक क्षेत्र
- पश्चिमी मध्य प्रशांत महासागर क्षेत्र
- दक्षिणी पूर्वी प्रशांत महासागर क्षेत्र

- **उत्तर पश्चिमी प्रशांत महासागर क्षेत्र–**

  यह क्षेत्र उत्तर में अल्यूसियन तट से प्रारंभ होकर दक्षिण में फिलीपींस व जापान तक विस्तृत है इसके अंतर्गत रूस का पूर्वी तटीय क्षेत्र, चीन के मध्य क्षेत्र, दक्षिण कोरिया, फिलीपींस एवं जापान के प्रमुख क्षेत्र हैं। चीन, जापान तथा दक्षिण कोरिया विश्व में मत्स्य उत्पादन का क्रम से 13, 8 तथा 3 उत्पादन करते हैं।

- **उत्तर पूर्वी अटलांटिक क्षेत्र**–

  इसका विस्तार उत्तर पश्चिमी यूरोप तट के सहारे पुर्तगाल से लेकर आइसलैंड, नार्वे, स्वीडन तक फैला है। यह प्रमुख मत्स्य उत्पादक देशों में नार्वे, ग्रेट ब्रिटेन, डेनमार्क, स्वीडन, फिनलैंड आदि प्रमुख है। उत्तरी सागर का यह क्षेत्र मछली

पकड़ने के लिए बहुत ही अनुकूल माना जाता है। इस क्षेत्र में काड मछली विश्व की सबसे अधिक पकड़ी जाती है।

- **उत्तरी पश्चिमी अटलांटिक क्षेत्र**–
 इसके अंतर्गत संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यू इंग्लैंड प्रदेश व कनाडा के नोवा स्कॉसिया तथा न्यूफाउंडलैंड के तटीय क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है। इसी क्षेत्र में ग्रैंड बैंक तथा जार्ज बैंक जो विश्व के प्रसिद्ध मछली उत्पादक क्षेत्र अवस्थित है। यहां पर न्यूफाउंडलैंड के पास गल्फस्ट्रीम की गर्म जलधारा तथा लैब्राडोर की ठंडी जलधारा के मिलने से मछलियों के उत्पादन हेतु अनुकूल स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
- **पश्चिमी मध्य प्रशांत महासागर क्षेत्र**–
 इसका विस्तार फिलीपींस से प्रारंभ होकर इंडोनेशिया जावा होता हुआ ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी सागर तटीय क्षेत्रों तक होता है। इस क्षेत्र में मछलियों की विभिन्न प्रकार की प्रजातियों का विकास होता है। उदाहरण स्वरूप मैकरेल, ट्यूना,मुलेट, रेडफिश, बॉस, आयस्टर क्रैब आदि।
- **दक्षिणी पूर्वी प्रशांत महासागर क्षेत्र**–
 इसके अंतर्गत पेरू तथा चिली के मत्स्य क्षेत्र सर्वाधिक प्रसिद्ध है। पेरू तट के पास एक ही प्रजाति की मछली भारी मात्रा में पकड़ी जाती है यहां पर जल के अपवेलिंग के कारण सागरी तल के पोषक तत्व ऊपर आते रहते हैं। जिस कारण से मछलियों के पोषण में सहायक होते हैं जब कभी इस तट पर एल नीनो की गर्म जलधारा प्रबल हो जाती है तो पेरू की ठंडी जलधारा कमजोर पड़ जाती है जिस कारण सागर तली में पोषक तत्वों का ऊपर की ओर आना रुक जाता है, परिणाम स्वरूप पुष्टाहार के अभाव में भारी संख्या में मछलियों की मृत्यु होती है। पेरू देश एकोवी मछली का अग्रणी उत्पादक है।

8.3.9 मधुमक्खी पालन–

मधुमक्खी पालन कृषि उत्पादन कार्य का एक महत्वपूर्ण अंग है यह ग्रामीण क्षेत्रों हेतु अच्छी होती है तथा यह ग्रामीण किसानों को अतिरिक्त आए का एक अच्छा स्रोत हो सकता है जिससे ग्रामीण क्षेत्र में युवक व किसान रोजगार के अवसर का सृजन कर सकते हैं मधुमक्खी पालन की सफलता हेतु हमें मधुमक्खियों के जीवन चक्र, उनके कार्य, उनकी शारीरिक रचना, भोजन, रहन–सहन व उनमें बीमारियों की जानकारी हासिल करने के उपरांत ही यह कार्य करना लाभदायक होगा। मधुमक्खिया पुष्पों से पराग एकत्र कर उनसे मधु बनाती हैं। यह मधु अनेक रासायनिक क्रियाओं के फल स्वरुप बनकर मधु कोष में जमा हो जाता है मधुमक्खियां मधु को आपातकालीन भोजन के रूप में संग्रह करती हैं। जो जल्दी खराब नहीं होता है तथा इसमें विभिन्न प्रकार के विटामिन व खनिज तत्वों की प्रधानता होती है। यह एक स्पूर्ति दायक, थकावट दूर करने वाला और एक गुणकारी

औषधि है। जो रोगों से लड़ने में रोग प्रतिरोधक का कार्य करती है। मधुमक्खी पालन हेतु निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए–

- आसपास के क्षेत्रों में पराग की उचित व्यवस्था हो।
- प्रशिक्षण केंद्रों से प्रशिक्षण प्राप्त करके ही इन कार्यों को प्रारंभ करें।
- तीव्र शीत से सुरक्षा होनी चाहिए।
- बाढ़, धुआं, तूफान आदि खतरों से इनका बचाव रखना चाहिए।

8.3.9 शुष्क क्षेत्रीय कृषि

इस क्षेत्र में वर्षा 75 सेंटीमीटर से कम होती है अतः इन क्षेत्रों में कृषि कार्य एक दुष्कर कार्य होता है। अतः ऐसे में इन क्षेत्रों के विकास हेतु नई तकनीकों के माध्यम से इनमें कृषि की जरूरत होती है। जिससे शुष्क क्षेत्रों के लोगों को भी मुख्यधारा में लाया जा सके और उनके भरण पोषण हेतु स्थानीय स्तर पर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके इसके मुख्यतः निम्न तरीके हैं–

1 स्प्रिंकलर या बौछारी सिंचाई विधि

इस विधि के अंतर्गत पानी को पंप द्वारा सीधे पाइप में लगे स्प्रिंकल के माध्यम से हवा में स्प्रे किया जाता है जो भूमि की सतह पर एक समान रूप से चारों ओर फैल कर गिरता है तथा पानी धीरे–धीरे पेड़ की जड़ों में रिसकर प्रवेश करता है। इस विधि में कम पानी में अधिक और अच्छी सिंचाई होती है। इस विधि से पौधों की पत्तियों पर पड़े धूल भी साफ हो जाते हैं जिससे पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया तीव्र हो जाती है। जो पौधों के वृद्धि में सहायक होते हैं। इस विधि से सिचाई के अन्य निम्नलिखित लाभ हैं–

- सिंचाई हेतु मेड़ों एवं उनके रखरखाव की आवश्यकता नहीं पड़ती हैं।
- कृषि में श्रम लागत की बचत होती है।
- पानी के नियंत्रण से सिंचाई दक्षता में वृद्धि।
- कम जल में भी अधिक सिंचाई।
- इस विधि में सिंचाई ऊंचाई से की जाती है जिससे सभी पौधे में लगभग बराबर मात्रा में जल प्राप्ति होती है।

ड्रिप सिंचाई–

इसमें जल प्रवाह पाइप द्वारा प्रवाहित किया जाता है। इन पाइपो में छोटे–छोटे छिद्र होते हैं। जिनसे पानी पौधों की जड़ों के पास बूंद बूंद टपकता रहता है इस विधि का प्रयोग साग सब्जियों, फूलों, फलदार पेड़ों की सिंचाई के लिए अधिक उपयोगी होता है।

इस विधि से सिंचाई करने पर खरपतवार एवं रोगों पर नियंत्रण करने में सहायता मिलती है। इस विधि में जहां कम जल में अधिक सिंचाई व श्रमिकों पर व्यय में बचत होती है। वही पौधों की जड़ों को पर्याप्त मात्रा में जल एवं पोषण की प्राप्ति होती है क्योंकि खरपतवार कम होते हैं। अर्थात खेत की पोषण शक्ति सिर्फ पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं।

8.3.10 पारिक जैविक कृषि (Eco Organic Farming)

इसे जैव कृषि या पोषणीय कृषि भी कहते हैं। पारंपरिक कृषि जिनसे उत्पादन कम मिलता है एवं नवीन उच्च लागत से अधिक उत्पादन मिलता है को प्रोत्शाहित किया जा रहा है। पारिस्थितिक कृषि का तात्पर्य से ऐसे कृषि प्रणाली से हैं जिससे हम बिना पारिस्थितिक क्षति के ही अनंत काल तक कृषि कार्य जारी रख सकते हैं। इसमें हम पौधों या फसल पर किसी भी प्रकार के रोग निवारण हेतु व वृद्धी में सहायता हेतु रसायनों का प्रयोग नहीं करते हैं। बल्कि उनके स्थान पर किसान द्वारा जैविक उर्वरक और जीव नाशको को वरीयता दिया जाता है। पारीक जैविक कृषि का मुख्य सिद्धांत है कि प्रकृति के अनुरूप ही कृषि उत्पादक में विकास करना तथा यह विकास भी प्रकृति की क्षमता तक ही करना है, तथा प्राकृतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप से बचना व कृषि के उपरांत मृदा के पोषण क्षमता के पुनर्भरण हेतु भी सिर्फ प्राकृतिक तत्वों का ही सहारा लेना होता हैं। अतः यदि संक्षेप में कहें तो यह कृषि कि वह प्रणाली है। जिसमें पारिस्थितिक कृषि प्रणाली का क्रियान्वयन पारिस्थितिक तत्वों के द्वारा ही किया जाता है। जिसमें आधुनिक कृषि व पारंपरिक कृषि पद्धतियों का समन्वय पाया जाता है।

जापान में संत वैज्ञानिक मेशा फुकुओका जिंदे 1988 का मैग्सेस पुरस्कार मिला है इन्होंने पारिस्थितिक कृषि प्रणाली का प्रचार प्रसार किया। भारत जैसे विकासशील देश हेतु यह पद्धति अत्यंत उपयोगी साबित हो सकती है। जिसके माध्यम से न केवल कृषि की लागत में कमी की जा सकेगी, वरन हम अपने पर्यावरण, मृदा, जल, वायु आदि सभी कारकों को भी प्रदूषण से बचा सकते हैं। अतः ऐसे में हमें पर्यावरण दृष्टिकोण से इस पद्धति से कृषि कार्यों को बढ़ावा देना चाहिए जैविक कृषि पारिस्थितिक कृषि के नजदीक है। इस पद्धति में किसानों द्वारा रासायनिक खाद व हानिकारक कीटनाशकों पर आधारित आधुनिक कृषि के स्थान पर कंपोस्ट, जैविक कीटनाशक एवं हरि खाद आदि के माध्यम से पारंपरिक कृषि पद्धतियों को बढ़ावा दिया जाता है। आज विश्व में जैविक कृषि को बढ़ावा दिया जा रहा है। उदाहरण स्वरूप अर्जेंटीना, श्रीलंका, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, ब्राजील, फ्रांस, स्पेन, इटली, नॉर्वे, स्वीडन, भारत, जर्मनी आदि प्रमुख देश है जो इसको अधिक से अधिक बढ़ावा दे रहे हैं। भारत का सिक्किम प्रथम राज्य है। जो अपने यहां संपूर्ण रुप से जैविक कृषि को लागू कर दिया है अर्थात सिक्किम के किसान अपने यहां सिर्फ जैविक उर्वरक का ही प्रयोग करते हैं।

जैविक कृषि जहां एक तरफ पारिस्थितिकी के अनुकूल है वहीं इसमें थोड़ी मात्रा में उत्पादन हराश की समस्या देखने को मिलती है अतः ऐसे में यह कृषि व्यवस्था किसी भी देश या क्षेत्र में लागू करने से पूर्व वैज्ञानिक विश्लेषण व अध्ययन की आवश्यकता होती है क्योंकि हाल ही में देखें तो 2021 के अंत में श्रीलंका के आर्थिक संकट का यह भी एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में विद्वानों ने बताया क्योंकि श्रीलंका में जिस प्रकार से आर्थिक संकट आया उसके 2 वर्ष पूर्व ही श्रीलंका में संपूर्ण जैविक कृषि को लागू कर दिया गया था। जिससे उनके उत्पादन क्षमता में तीव्र गिरावट दर्ज की गई जो उनके यहां आर्थिक विषमता को बहुत ही तीव्र गति से बढ़ा दी जिससे संपूर्ण देश आर्थिक को संकट का सामना करना पड़ा।

8.3.11 कार्पोरेट कृषि—

भारत में इस प्रकार की कृषि की शुरुआत संयुक्त राज्य अमेरिका की तर्ज पर किया जा रहा है। इस कृषि को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा भी किया जा रहा है। उदाहरण स्वरूप नेस्ले, जानसन, कोका कोला, कैडबरी, मैकडोनाल्ड आदि। रिलायंस, अदानी व टाटा समूह की स्वदेशी कंपनिया भी इस क्षेत्र में अपना पैर फैला रही हैं। इनमें से कुछ कंपनियों के द्वारा पहले से ही इस क्षेत्र में जैसे चाय, कहावा, अंगूर जैसे की बागाती कृषि की जाती रही है। देशी व विदेशी कंपनियों द्वारा इस प्रकार की कृषि हेतु किसानों से जमीन खरीदी अथवा पट्टे पर ली जाती है। यह पद्धति आर्थिक दृष्टिकोण से काफी लाभकारी है, किंतु इस पद्धति का सामाजिक व पर्यावरण पहलू पर काफी चिंताजनक असर है। क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा किसान अपने भाईचारे व सौहार्दपूर्ण माहौल में रहते हैं। उनमें आपसी सहयोग की भावना विद्यमान होती है किंतु कारपोरेट कृषि से ये ताने—बाने टूट जाएंगे भारत में कृषि के विकास में सांस्कृतिक क्रियाओं का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान रहता है, यहां तक कि जलवायु अनुकूल होने के बावजूद भी संस्कृति व अस्मिता से जोड़कर देखते हैं। लेकिन कृषि कार्य संस्कृति के खिलाफ नहीं करते हैं। उदाहरण स्वरूप पंजाब में तंबाकू की कृषि हेतु भारत में सबसे उपयुक्त जलवायु हैं किंतु सिख धर्म में तंबाकू सेवन धर्म के खिलाफ माना जाता है जिससे पंजाब में तंबाकू की कृषि ना के बराबर होती है।

कारपोरेट के लाभ—

- वाणिज्य कृषि को बढ़ावा मिलेगा।
- नगदी फसलों के बढ़ावा से किसान की आर्थिक स्थिति सुदृढ होगी।
- कारपोरेट कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी।
- तकनीकी का विस्तार होगा।
- ग्रामीण क्षेत्रों की समृद्धि बढ़ेगी।

कारपोरेट कृषि के नुकसान–

- सामाजिक ताने–बाने में भी विखराव होगा।
- धन अर्जन के चक्कर में खाद्यान्न फसलों पर संकट होगा।
- छोटे किसानों की आर्थिक स्थिति में नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।
- बंजर भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि होगी।
- धीरे–धीरे छोटे किसान समाप्त हो जाएंगे।

8.3.12 पुष्प कृषि–

मानव जीवन में फूलों का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान है। इससे मानव को सौंदर्य बोध व आनंद अनुभूत होती हैं। भारत में पुष्प कृषि का इतिहास बड़ा ही प्राचीन है। वैदिक ग्रंथों, बौद्ध काल, रामायण, महाभारत आदि में पुष्प सज्जा आदि का वर्णन मिलता हैं। महाभाष्य में जोकि पतंजलि द्वारा लिखित ग्रंथ है में उद्यान पौधों का वर्णन मिलता है, गुप्त काल में भी नागरिक जीवन में पुष्पों के महत्व को दर्शाया गया है, वरामिहिर तथा कालिदास ने भी अपने ग्रंथों में पुष्प सज्जा का वर्णन किया है। बाणभट्ट जोकि राजा हर्ष के दरबारी कवि थे ने भी राजमहल के चारों तरफ पुष्पों के उद्यान संबंधित वर्णों को अपने ग्रंथ में किया है। अतः इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है भारत में पुष्प कृषि प्राचीन काल से ही होती आ रही है जो भारतीयों को अपने प्रति वैदेशिक शक्ति को भी आकर्षित करती थी। यूरोपियों के आगमन के उपरांत भारत में आंग्ल शैली के उद्यान विकसित हुए। यह उद्यान इटली, फ्रांस, यूनान, चीन तथा रोम के उद्यानों की शैली पर आधारित थे

भारत में पुष्प उत्पादन के भारतीय पुष्प उत्पादन की भाती पुष्प उद्योग भी काफी प्राचीनतम है। प्राचीन काल से ही भारतीय फूलों का व्यापार प्रचलित रहा है। फूलों का निर्यात किया जाता है क्योंकि शीतकाल में यहां के पुष्प अधिक टिकाऊ होते हैं। जिससे व्यापार में सहूलियत होती है। इस कारण से भारतीय फूलों का शीतकाल में अधिक मांग बढ़ जाती है। फूलों के वाणिज्यक कृषि पर हाल ही में अधिक ध्यान दिया गया है। घरों तथा कार्यालयों को फूलों से सजाने तथा उपहार देने तथा उपहार में पुष्प देने का प्रचलन भी आज के समय में बहुत तेजी से बढ़ा है। इस कारण से पुष्प कृषि को बढ़ावा मिलता है।

8.3.13 कृषि में प्लास्टिक का नवाचार–

कृषि में प्लास्टिक का उपयोग वैश्विक हो चुका है। भारत में भी इसका उपयोग मृदा के छाया हेतु, सिंचाई तथा कृषि कार्यों के पैकिंग आदि के लिए किया जाता है। यूरोपीय देशों में प्लास्टिक का उपयोग कृषि उद्यान, खाद संरक्षण, बागवानी पैकेजिंग, आयात,निर्यात आदि में बहुतायत रूप से किया जा रहा है। प्लास्टिक के उपयोग से कृषि में नवाचार की वृद्धि हुई है। आज के समय में कृषि कार्य में उपयोग किए जाने वाले संसाधनों में प्लास्टिक के बहुतायत उपयोग किया जाता है। उदाहरण स्वरूप प्लास्टिक की

पाइप सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता है, कांच के घरों के निर्माण हेतु प्लास्टिक की चद्दर ओर से फिल्में बनाई जाती हैं, जूते हुए खेत को प्लास्टिक्स से ढक नमी की मात्रा को बरकरार रखा जाता है। खाद्यान्नों के संरक्षण हेतु फल एवं सब्जियों हेतु प्लास्टिक के उपयोग किए जाते हैं। यहां तक की भूमि जल दोहन हेतु भी प्लास्टिक के पाइपों का प्रयोग किए जाने लगा है। प्लास्टिक के अंधाधुन उपयोग से पारिस्थितिकी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। क्योंकि प्लास्टिक जैव निम्नीकरण नहीं है और यह जहां भी फेंका जाता है दीर्घकाल तक अपने मूल अवस्था में विद्यमान रहता है। इसको सड़ने में अधिक समय की आवश्यकता होती है। जिससे यह पर्यावरण समस्या के रूप में मानव के सामने विकराल रूप ले रहा है।

8.4 कृषि के नवीनतम आयाम के प्रभाव–

कृषि में नवाचार के प्रयोग से लाभ व हानि दोनों का सामना करना पड़ा है अतः हमें सावधान होकर हमेशा कृषि में नवीन यंत्रों, तकनीकों, उर्वरकों व सिंचाई आयामों को उपयोग करने की आवश्यकता होती है–

कृषि के नवीन आयाम के लाभ–

- खाद्यान्नों की कमी से जूझ रहे देशों को त्वरित लाभ।
- कुपोषण जैसी समस्याओं में धीरे–धीरे कमी।
- किसानों की स्थिति में सुधार।
- नवीन यंत्रों के माध्यम से कम श्रम की आवश्यकता।
- नवीन तकनीकी से जल बर्बादी में अंकुश।
- मृदा जांच कर उसमें कमी वाले खनिजों की आपूर्ति कर पोषण क्षमता में सतत वृद्धि बनाए रखने में आसानी।
- कृषि उत्पाद में तीव्र वृद्धि।
- कृषि में वाणिज्यक कृषि की वृद्धि।
- कृषि योग्य भूमि में वृद्धि।
- कृषि कार्य से ग्रामीण क्षेत्रों में भी आत्मनिर्भरता नवीन आयाम से संभव।
- कृषि कार्य में यंत्रीकरण से लागत में कमी।
- कुशल प्रशिक्षण के माध्यम से कृषि में नवाचार।

कृषि के नवीन आयाम के नुकसान–

- पर्यावरणीय क्षति में वृद्धि।
- भूमि की उर्वरा शक्ति में धीरे–धीरे क्षति।
- बंजर भूमि में वृद्धि।
- रासायनिक उर्वरकों से जल एवं वायु प्रदूषण में वृद्धि।

- पोषण स्तर पर भी नकारात्मक प्रभाव।
- खाद्य पदार्थों के साथ जीवो में रसायन व अन्य तत्वों से स्वास्थ्य संबंधी क्षति।

8.5 सारांश–

आपने इस इकाई में कृषि विकास के नवीन आयाम के अंतर्गत हरित क्रांति,रासायनिक उर्वरक, जीन क्रांति, जैव कीटनाशक, जैव उर्वरक, उन्नत बीज, श्वेत क्रांति, नील क्रांति, मधुमक्खी पालन व शुष्क क्षेत्रीय कृषि का अध्ययन किया है। निश्चय ही आप यह समझ गए होंगे कि कृषि में नवीन आयाम क्या है? एवं इसके लाभ क्या है? तथा इनके प्रचार प्रसार एवं इनमें नित्य ने शोध की सतत रूप से आवश्यकता है।

8.6 शब्द सूची

भारतीय गायों हेतु प्रयुक्त–Tea Cup Cow, कुपोषण–Malnutrition,

उत्तक–Tissu, वर्णसंकर–Hybrid, प्रकाश संश्लेषण–Exposure,

औषधीय पौधे–Pharmaceutical plants, जैव विविधता–Biodiversity,

प्रतिरोधी–Immunity, प्राकृतिक आपदा–Natural Hazard

परागकण Pollination

8.7 परीक्षापयोगी प्रश्न

1.हरित क्रांति का उद्देश्य किसको बढ़ावा देना था ?

A.खाद्यान्न B.फल C.वस्त्र D.परिवहन

2.दुग्ध उत्पादन प्रति पशु में शीर्ष देश है ?

A.भारत B.रूस C.नीदरलैंड D.फ्रांस

3.मत्स्य उत्पादन को किस नाम से जानते हैं?

A पीली क्रांति B. लाल क्रांति C.नीली क्रांति D.भूरी क्रांति

4.विश्व में हरित कृषि के जन्मदाता हैं।

A-वाक्समैन B.एम एस स्वामीनाथन C.डेविस D.नॉर्मन बोरलॉग

5.हरित क्रांति के खोजकर्ता निम्न में से कौन है?

A-जॉर्ज विलियम B.विलियम गैड C.विलियम एफ D. विलियम डेविस

6.भारत में सर्वप्रथम किस राज्य में संपूर्ण रुप से जैविक कृषि की गई ?

A सिक्किम   B. गेवा   C. टसम   D. नागालैंड

उत्तरमाला 1. A 2. C 3. C 4. D 5. B 6. A

8.8 अभ्यास प्रश्न

1.हरित क्रांति से आप क्या समझते हैं संक्षिप्त विवरण दें ?

2.जैव उर्वरक के लाभ व उनके दूरगामी परिणाम को स्पष्ट करें ?

3.शुष्क क्षेत्र कृषि को स्पष्ट करें ?

4.मधुमक्खी पालन (एपीकल्चर) को स्पष्ट करें ?

5.रासायनिक उर्वरक के हानि व लाभ की व्याख्या करें ?

6.उन्नतशील बीज उसके प्रभाव को स्पष्ट करें ?

इकाई 9 कृषि की प्रमुख समस्याएं एवं समाधान

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 कृषि की प्रमुख समस्याएं

9.3.1 प्राकृतिक समस्या

9.3.2 आर्थिक समस्या

9.3.3 संगठनात्मक समस्या

9.4 भारतीय कृषि की समस्याए

9.5 कृषि का समस्याओं का समाधान

9.6 सारांश

9.7 शब्द सूची

9.8 परीक्षोपयोगी प्रश्न

9.9 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

9.10 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना–

कृषि भूगोल की यह नौवीं इकाई है इस अध्याय में आप कृषि क्षेत्र की प्रमुख समस्याएं प्राकृतिक, आर्थिक व संगठनात्मक के साथ–साथ भारतीय कृषकों की समस्याओं का अध्ययन करेंगे, जैसे– नवीन बीज का अभाव, मानसून पर निर्भरता, कृषि जोतो का आकार, प्राकृतिक कारको, कृषि भूमि सुधार की असफलता, कृषि भूमि पर बढ़ता जनदबाव आदि जैसी प्रमुख समस्याओं का अध्ययन करेंगे तथा इनके साथ ही साथ कृषि क्षेत्र की समस्याओं के समाधान उदाहरण स्वरूप परिवहन, शीत प्रशितक गृह, भण्डार गृह की नवीन तरीकों का विकास व कृषि के साथ बागवानी उद्यान, मत्स्यन व पशु पालन आदि कृषि को बढ़ावा देने वाले कारकों का अध्ययन इस अध्याय में करेंगे।

कृषि क्षेत्र का विकास किसी भी देश के विकास व भरण पोषण मे महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः ऐसे में हम कृषिगत समस्याओं को इंगित कर उनके समाधान के बारे अध्ययन कर संपोषणीय विकास की प्रतिस्पर्धा में शामिल हों विकास का मार्ग प्रशस्त करेंगे

9.2 उद्देश्य–

भूगोल की इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप–

- विश्व में कृषि के समस्याओं क ी व्याख्या कर सकेंगे।
- भारतीय कृषि की समस्याओ का विश्व के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर सकेंगे।
- कृषि के समस्याओं का समाधान ढूंढने में सहायता होगी।
- कृषि क्षेत्र में संपोषणीय विकास के मार्ग प्रशस्त होंगे।
- कृषि क्षेत्र के समस्याओं का समाधान करने हेतु नवीन तरीकों का मार्ग प्रशस्त होगा।

9.3 कृषि की प्रमुख समस्याएं–

कृषि क्षेत्र की समस्याओं को यदि दूर कर दिया जाए तो विश्व में खाद्यान्न समस्या समाप्त हो सकती हैं। ऐसे में विश्व की प्रमुख संस्थाओं को कृषि क्षेत्र में नवीन, वैज्ञानिक शोध व तकनीक ज्ञान के विकास की आवश्यकता है। यदि आज के समय में हम कृषि उत्पादकता में विविधता को समाप्त कर दें तो विश्व में लगभग डेढ़ गुना खाद्यान्न उपज में वृद्धि हो जाएगी। कृषि क्षेत्र की प्रमुख समस्याए निम्नलिखित है–

9.3.1 प्राकृतिक समस्याएं–

विश्व के देशो में भौगोलिक बनावट की दृष्टिकोण से पर्याप्त विविधता व अंतर देखने को मिलता है। विश्व के अधिकांश देशों में भूमि संबंधी समस्याएं, मृदा की प्रकृति, गुण व उनमें पाए जाने वाले तत्व में अंतर तथा अपवाह प्रणाली से संबंधित हैं। अधिक ऊंचे पर्वतीय व पठारी क्षेत्रों में जहां सीढ़ीदार ढलानों पर कृषि की जाती है यदि सोपान (सीढ़ी) न बनाया जाएं तो पठारी व पहाड़ी क्षेत्र में मृदा का तीव्र अपरदन होता है। जिससे कृषि योग्य भूमि अपरदित हो जाती है। परिणाम स्वरुप कृषि कार्य बाधित होता है। विश्व के जिन देशों में स्थांतरित कृषि प्रचलित हैं, उन देशो में मृदा अपरदन अधिक होता है। कृषि कार्य के पूर्व इस पद्धती में पेड़ों व जंगलों को काटकर कृषि कार्य तब तक किया जाता है, जब तक कि भूमि की उर्वरा शक्ति समाप्त न हो जाए तदोपरांत भूमि को छोड़ दिया जाता है। और अंयत्र इसी प्रक्रिया को अपनाया जाता है। अतः खाली भूमि में मृदा अपरदन की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। तथा विस्तृत भू क्षेत्र नष्ट हो जाते हैं। यह प्रक्रिया आज भी अफ्रीका व दक्षिणी पूर्वी एशियाई के क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

इसी प्रकार विश्व के विभिन्न शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो में सिंचाई के साधनो के समुचित विकास के अभाव में किसान प्राकृतिक साधनों के सहारे कृषि कार्य करते हैं। जो कृषि क्षेत्र की प्रमुख समस्या है, अतः ऐसे में उन क्षेत्र में सिंचाई एवं अन्य सुविधाओ (उन्नतिशील बीज कम सिंचाई वाले, उर्वरक) के द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं। किन्तु यह समस्या आज भी विश्व के विकासशील व पिछड़े देशों में यह एक समस्या बनी हुई है।

कृषि को प्रभावित करने में जलवायु भी महत्वपूर्ण भूमिका रखती है क्योंकि विकासशील व पिछड़े देशों के किसान संसाधनों के अभाव में मुख्य रुप से सिंचाई के लिए प्रकृति पर ही निर्भर होते हैं। जिससे मानसून के अच्छा होने पर पैदावार अधिक वृद्धि किंतु

कम होने पर पैदावार में गिरावट आ जाती है। इसके साथ ही प्राकृतिक कारण जैसे तूफान, चक्रवात, ओलावृष्टि आदि जैसे–सामायिक व असामायिक मौसमी घटनाएं भी उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

9.3.2 आर्थिक समस्याए–

विश्व के विकासशील देश प्रमुख रुप से कृषि प्रधान है अर्थात प्राथमिक कार्यों में संलिप्तता अधिक होती है। इन क्षेत्रों की अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न होती है। इन क्षेत्रों में आर्थिक पिछड़ेपन की गंभीर समस्या है। जबकि कृषि विकास हेतु अधिक समय तक पूंजी के निवेश की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण स्वरूप परिवहन का विकास मार्गो का विकास, बंजर भूमि के विकास, सिंचाई साधनो के विकास हेतु दीर्घ कालिक पूंजी की आवश्यकता होती है। किंतु आर्थिक पिछड़ेपन के कारण ये देश अपने किसानों को पूजी उपलब्ध कराने में असमर्थ होते हैं। जिससे विकास नहीं हो पाता है।

कृषि के विकास हेतु नवीन व वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाएं जाने की आवश्यकता है। विकसित देशो में कृषि में अत्याधुनिक यंत्रों, उन्नतबीजों, दवाओं, उर्वरकों तथा नवीन तकनीक के सहयोग से की जाती है। उदाहरणस्वरुप जापान, रूस, अमेरिका, कनाडा, फ्रांस आदि में कृषि उपज की उत्पादकता प्रति हेक्टेयर भी काफी अधिक है। किंतु विकासशील देशों में अत्याधुनिक यंत्रों, उन्नतशील बीज, उर्वरको आदि के अभाव में आधुनिकतम युगीन संसाधनों की अनुउपलब्धता व धनाभाव के कारण उत्पादकता में कमी देखने को मिलता है। आज के समय में विकसीत देशों द्वारा विकासशील देशों व पिछड़े देशों को पूजी व तकनीक तकनीकी सहायता प्रदान करने लगे हैं। किंतु पिछड़े देश व विकासशील देशों में अधिकांश किसान निरक्षर व भाग्यवादी हैं। जिससे इन देशों में संचार माध्यमों की कमी होने के कारण सूचना व ज्ञान का प्रसार आसानी से किसानों तक नहीं हो पाता है। अतः ऐसे में सरकार की प्राथमिकता के रूप में किसानों को जागरूक बनाए जाने की आवश्यकता है। इन देशों की प्रमुख आर्थिक समस्याएं निम्नलिखित है

1. **उर्वरको का प्रयोग–**

खाद्य तथा कृषि संगठन (FAO) के एक रिसर्च से पता चला है कि रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में 50 प्रतिशत तक उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। इस संगठन के द्वारा कृषकों को रासायनिक खाद के अधिक प्रयोग का सुझाव दिया है। इस संगठन ने अपने एक सर्वे के माध्यम से यह पाया हैं कि विभिन्न प्रदेशों में उर्वरक उपयोग की असमानता मिलती है जिसका प्रमुख कारण धनाभाव ही होता है।

2. सिंचाई के साधन–

जिस प्रकार जल के अभाव में मानव के जीवन की कल्पना करना असंभव है। ठीक उसी प्रकार से सिंचाई की सुविधाओं के अभाव में कृषि की कल्पना नहीं की जा सकती है। और यदि यह सिंचाई संतुलित मात्रा में समयानुसार फसलों को मिल जाती है। तो उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है, किंतु विकासशील और अल्पविकसित देशों में सिंचाई के साधनों उदाहरणस्वरूप नहरों, नलकूप व सतत प्रवाही नदियों के अभाव में अच्छे

बीज व उर्वरकों की उपलब्धता के बावजूद वैज्ञानिक कृषि करना कठिन व दुष्कर हो जाता है।

3. उन्नतशील बीजों का प्रयोग–

विकासशील व अल्पविकसित देशों में उन्नतशील बीजों के उपयोग की समस्याएं हैं। क्योंकि इनके यहां वितरण की असमानता पाई जाती है। हालांकि इन देशों में अनुसंधान केंद्रों का विकास हो चुका है। किंतु किसानों तक बीजों की पहुंच व उनमें जागरूकता का अभाव अभी देखा जाता है। उन्नतशील बीजों की प्रमुख समस्या यह होती है कि यह प्रथम उपयोग पर तो अधिकतम उत्पादन देते हैं किंतु दोबारा उपयोग में इनकी उत्पादन क्षमता घट जाती है। किंतु किसान धनाभाव के कारण उन्हीं का उपयोग बार–बार करने का प्रयास करते हैं। जिनसे उनके उत्पादन क्षमता में कमी आ जाती है।

4. कृषि उपकरणों का प्रयोग–

विकसित देशों की तुलना में विकासशील व अल्पविकसित देशों में आधुनिक कृषि उपकरणों के उपयोग का अभाव पाया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादकता में गुणात्मक वृद्धि देखने को नहीं मिल पाती है। आधुनिक कृषि उपकरणों के प्रयोग से किसान श्रम व समय की बचत के साथ–साथ पूजी की भी बचत होती है, किंतु विकासशील व अल्पविकसित देशों में कृषि उपकरणों जैसे ट्रैक्टर, थ्रेसर, निराई मशीन, बुवाई मशीन आदि के उपयोग में क्षेत्रीय भिन्नता है। ऐसे में इन यंत्रों के उपयोग एवं उत्पादन जब तक क्षेत्रीय स्तर पर नहीं होगा तब तक कृषि उत्पादकता में वृद्धि नहीं हो पाएगी इसका प्रमुख कारण ये क्षेत्र आर्थिक व तकनीकि रूप से पिछड़े होना हैं।

5. कीटनाशकों का प्रयोग–

फसलों के उत्पादन में वृद्धि हेतु कीटनाशक दवाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से फसलों को रोगाणुओं से जहां एक तरफ सुरक्षा मिली है। वहीं दूसरी तरफ ऐसी दवाओं का आविष्कार भी हुआ है जिनसे मुख्य फसल के अतिरिक्त घास फूस पर ही सिर्फ़ इन दवाओं के प्रयोग का असर होता है। जिससे मृदा के पोषक तत्व सिर्फ मुख्य फसलों को ही मिलता है। जिनसे उनकी उत्पादकता में भी गुणात्मक परिवर्तन हों सकता है। जिससे कृषक द्वारा खेत में उपयोग किए गए उर्वरको का पोषण सिर्फ मुख्य फसल को ही मिलता है, लेकिन धनअभाव के कारण इन क्षेत्रों के किसान रसायन , कीटनाशक व घास फूस नाशी दवाओं का कम उपयोग कर पाते हैं।

6. परिवहन–

कृषि के विकास में परिवहन का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान होता है। विकसित देशों में जहां परिवहन के सस्ते व अच्छे साधनों का विकास हो गया है। वहीं विकासशील व अल्पविकसित देशों में परिवहन साधनों के अल्प विकास के कारण कृषि उपजो को बाज़ार तक पहुंचाने में कठिनाईयो का सामना करना पड़ता हैं।

जिससे ख़राब होने वाले (कम टिकाऊ) उत्पादों को ओने पौने दामों पर बेचना पड़ता है। अन्यथा उत्पाद खराब हो जाते हैं। उदाहरण स्वरूप टमाटर, पालक, दूध, हरी मटर आदि को यदि जल्द से जल्द उपयोग न कर लिया जाए तो यह पदार्थ खराब हो जाते हैं। परिवहन के विकसित क्षेत्रों में किसानों की उपज का उचित दाम भी मिलता है। यहीं कारण हैं कि प्राचीन कालीन नगर व शहरों का विकास द्वीपो के तट पर व आंतरिक भागों में नदियों के किनारे पर ही हुए हैं क्योंकि प्राचीन काल में परिवहन कके मुख्य साधन नदियां व समुन्द्र ही होते थे।

9.3.3 संगठनात्मक समस्या–

संगठनात्मक समस्या मुख्य निम्नलिखित हैं–

1.भूस्वामित्व–

भूस्वामित्व भी कृषि के विकास को काफी हद तक प्रभावित करती है। जहां विकसित देशों में बड़े–बड़े फार्म हैं। तथा उन पर किसी व्यक्ति या कंपनियों के अधिकार हैं। वे इस पर श्रमिकों के माध्यम से कृषि करते हैं, अतः इन मजदूरों की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हो पाया।

जिनके पास अपनी स्वयं की भूमि नहीं होती है। वे किसानों की जमीन को बटाई या किराए पर लेते हैं। जिसके फलस्वरूप खर्च किए गए धन और बचत में बहुत अधिक अंतर नहीं आता है। इससे किसानों की स्थिति में खासा सुधार नहीं हो पाया। ऐसे में सरकारों द्वारा अधिक जनसंख्या घनत्व वाले देशों में भूमि सुधार की आवश्यकता है। जिससे अधिक भूमि मालिकों से भूमि को लेकर भूमिहीन किसानों को देकर भू वितरण में संतुलन स्थापित किया जा सके। जिससे किसानों की आय में वृद्धि हो सके।

2. कृषि उत्पादों का उचित मूल्य–

कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारण में मुख्यतः दो बिंदुओं पर निर्भर होता है

- जिन उत्पादों को विदेशी बाजारों में बेचा जाता है अर्थात निर्यात किया जाता है। उनके उत्पाद घरेलू बाजारों में दाम में अधिकता देखी जाती है।
- जिन उत्पादों की मांग की अपेक्षा उत्पादन कम होता है, उनके दाम में वृद्धि हो जाती है।

ऐसे में देश की सरकारों द्वारा इस व्यवस्था को अर्थात बाज़ार संतुलन को बनाए रखने हेतु हमेशा चौकन्ना रहने की आवश्यकता होती है। जिससे किसानों को उनके उत्पाद का सम्मान पूर्ण कीमत मिल पाए और मार्केट में वस्तु की कीमतों में ज्यादा वृद्धि ना हो सके विश्व में सरकारों द्वारा जहां खुली व प्रतिस्पर्धी बाजार की नीतियों को अपनाया गया है वहीं समय–समय पर सरकारों द्वारा कृषि उत्पादों के दामों को भी विभिन्न कमेटियों द्वारा कृषि उत्पादों के दामों को भी निर्धारित (MSP न्यूनतम समर्थन मूल्य) करने का प्रयास करती है। जिससे कम से कम किसान का न्यूनतम लागत और उसे कुछ लाभ मिल सके।

विश्व के कुछ देशों में वस्तुओं के उत्पादन व दाम में संतुलन हेतु सरकारों द्वारा विभिन्न वस्तुओं जैसे उर्वरक, रसायन, उन्नत बीजों , कृषि उपकरणों व सिंचाई के साधनों पर अनुदान देती रहती है। जिससे बाजार और उत्पाद में संतुलन बना रहे और महंगाई तीव्रता से ना बढ़े। किंतु यह प्रयास भी किसानों की स्थिति में सुधार करने मैं बहुत अधिक सफल नहीं हो पाई

3. बाजार सुविधा–

विकासशील और अल्पविकसित देशों के बाजारों में सुधार तथा ग्राहकों तक कृषि उत्पाद की पहुंच एक बड़ी समस्या है। विक्रय सुविधा के अभाव में किसानों को उनके उत्पाद का सही दाम नहीं मिल पाता है। ऐसे में व्यापारी किसानों के उत्पादों को औने पौने दाम पर लेकर बाजार में मोटी कीमत पर वसूलते हैं। जबकि यह तरीका उचित नहीं ऐसे में यदि किसान अपने उत्पाद को व्यापारियों को न दे तो उनके उत्पाद खराब हो जाते हैं, अर्थात किसानों के पास उचित परिवहन, संसाधन व स्टोरेज क्षमता का अभाव है। जिससे किसान को अपने उत्पाद का कम कीमतों पर ही विक्रय कर संतोष करना पड़ता है। जबकि विकसित देशों में परिवहन, स्टोरेज क्षमता व अत्याधुनिक संसाधनों का उपयोग कर किसान अपने उत्पाद को अच्छे दामों में बाजार में बेचते हैं, तथा बिचौलियों से मुक्त स्वतंत्र व्यापार करते हैं। विकासशील व अल्पविकसीत देशों में इस समस्या को दूर करने हेतु सरकार को निम्नलिखित कार्यों पर बल देने की आवश्यकता है–

- उत्पाद को उसकी गुणवत्ता के अनुसार मूल्य प्रदान करना।
- सरकारी व प्राइवेट पार्टनरशिप मॉडलों पर बेहतर परिवहन सुविधाओं का विकास करें।
- कृषकों के उत्पादों के संरक्षण हेतु कम दर पर सार्वजनिक भंडार गृह व शीत प्रशितक की स्थापना की जाए।
- कृषिगत नवीन जानकारियों के प्रचार प्रसार किए जाएं और किसानों को प्रशिक्षण दिए जाए।

4. कृषिगत नवीन जानकारियों, अनुदानों व अन्य सुविधाओं का प्रसार–

विकासशील व अल्पविकसित देशों में किसानों का प्रशिक्षण व शिक्षा बहुत बड़ी समस्या है। प्रायः देखा जाता है कि कृषि कार्य में बहुधा अशिक्षित व्यक्ति ही लगे रहते हैं। ऐसे में सरकारी योजनाओं, बैंकों से ऋण प्राप्त करने के तरीके, बाजार संबंधित ज्ञान व मौसम की पूर्वकालिक सूचनाओं के प्रति अनभिज्ञ रहते हैं। जिससे कृषि के विकास को बल नहीं मिल पाता है ऐसे में किसानों को शिक्षित व प्रशिक्षित होना अति आवश्यक है।

9.4 भारतीय कृषि की समस्याएं–

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 20 प्रतिशत योगदान है, तथा लगभग 48 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य से जुड़ी है। किंतु यहां के कृषक आज भी परंपरागत व जीविकोपार्जन कृषि करते हैं। कृषि को व्यवसाय के रूप में नहीं देखते हैं अतः किसानों के सम्मुख निम्नलिखित समस्याएं है–

9.4.1 नवीन कृषि सिंचाई सुविधाओं का अभाव–

भारत के कुल कृषि योग्य भूमि के लगभग 40 प्रतिशत भाग की ही सिंचाई हो पाती है। अर्थात भारतीय कृषि मानसून पर आधारित है। मानसून की क्रिया अनिश्चित व अनियमित होती है, जिससे भारतीय कृषि उपज व पैदावार अनिश्चित होता है। ऐसे में सिंचित क्षेत्रों के विस्तार की जरूरत है। सरकार को इस क्षेत्र में नवीन तकनीकी व शोधों के माध्यम से कृषि के ऊपज को बढ़ाने हेतु सिंचाई नितांत आवश्यक है। उचित सिंचाई के अभाव में फसलों के प्रति हेक्टेयर उत्पादन में काफी ह्रास होता है। जो सिंचाई में विस्तार कर बढ़ाया जा सकता है।

9.4.2 कृषको का भाग्यवादी होना–

भारतीय कृषक भाग्य भरोसे रहते हैं। इसका प्रमुख कारण उनके अशिक्षित व अज्ञानी होने के कारण है। अधिकांश भारतीय कृषक कृषि कार्य को जीविकोपार्जन हेतु करते हैं। व्यवसाय हेतु नहीं उत्पादन अधिक नहीं हो पाता है तथा गरीबी और लाचारी पूर्ण जीवनयापन करते रहते हैं।

9.4.3 नवीन बीजों का कम प्रयोग–

भारतीय किसान नवीन बीजों के उपयोग में उदासीनता दिखाता है। तथा अपने पारंपरिक बीजों का ही प्रयोग करने का प्रयास करता है। जिससे उत्पादकता कम होती है। इसका प्रमुख कारण प्रचार–प्रसार का अभाव व आर्थिक कमजोरी है। ऐसे में सरकार द्वारा सामुदायिक केंद्रों के माध्यम से किसानों को अनुदान, ऋण व बीजों को कम दाम पर उपलब्ध होना चाहिए जिसके उपयोग से कृषक अपने उत्पाद को बढ़ा सकें।

9.4.4 उर्वरक की समस्या–

भारतीय कृषि की प्रमुख समस्या न्यून उत्पादकता है। जिसका प्रमुख कारण पारंपरिक उर्वरकों का प्रयोग करना होता है अतः ऐसे में कम उत्पादन प्राप्त हो पाता है। जबकि किसानों को रासायनिक उर्वरक, जैविक उर्वरकों के अधिक से अधिक उपयोग कर कृषि उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। कम उर्वरक के प्रयोग का प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों में उर्वरक की कम उपलब्धता, धनाभाव व जीवन निर्वाह कृषि करना प्रमुख कारण है।

9.4.5 कृषि पद्धति एवं प्राचीन उपकरण–

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात काफ़ी गरीबी के कारण कृषि में प्राचीन पद्धतियों का उपयोग किया जा रहा था। गरीबी के कारण कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीकों का

कम विकास हों पाया। धीरे–धीरे अब कृषि क्षेत्र में नवीन पद्धति व नवीन उपकरणों के उपयोग से किसान उत्पादकता में वृद्धि कर रहे है। ऐसे में नवीन शोध व वैज्ञानिक तकनीक को बढ़ावा देने की जरूरत है।

9.4.6 भूमि की उर्वरा शक्ति ह्रास–

प्राचीन काल से निरंतर कृषि उत्पादकता में वृद्धि हो रही है किंतु बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण हेतु अधिक खाद्यान्न उत्पादन हेतु भूमि के परती न छोड़ने से उसकी उर्वरा शक्ति में निरन्तर ह्रास हो रहा है। ऐसे में उर्वरा शक्ति में वृद्धि हेतु जैविक व रासायनिक उर्वरकों की उचित मात्रा के उपयोग की आवश्यकता होती है।

9.4.7 किसानों की आर्थिक विपन्नता–

कृषि हेतु पूजी की अधिक आवश्यकता होती है। भारत की लगभग 48 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में लगी है। जिसकी प्रमुख समस्या पूंजी काअभाव है। जबकि कृषि हेतु दीर्घ कालीकपूजी निवेश की आवश्यकता पड़ती है। जैस सिंचाई साधनों में विस्तार, नवीन कृषि यंत्रों का उपयोग, बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, परिवहन साधनों का विकास, फसल संरक्षण, व संवर्धन केंद्रों के विकास की आवश्यकता होती है। जो सरकार द्वारा ही संभव हो सकता है। अतः ऐसे में भारत सरकार के द्वारा कृषि विकास हेतु अनेकों योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। किंतु स्थिति अभी अच्छी नहीं हो पाई ऐसे में किसानों के विकास हेतु सरकारों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करने की आवश्यकता है।

9.4.8 कृषि भूमि के आकार–

भारत में कृषि योग्य भूमी के जोतों का औसत आकार(1.08 हेक्टेयर) छोटा पाया जाना भी कृषि के नवीन यंत्रों के उपयोग में बाधा बनती है। क्योंकि ये यंत्र बड़े होते हैं तथा इनको चलाने के लिए अधिक जगह की आवश्यकता होती है। अतः भारत में जनसंख्या दबाव अधिक होने के कारण व आपसी विवाद की वजह से जोतों का आकार छोटे होते जा रहे हैं। ऐसे में सरकार को भूमि सुधार व चकबंदी आदि के माध्यम से लोगों के छोटे–छोटे खेतों को एक स्थान पर करके उनके आकार में वृद्धि किया जा सकता है। जिससे उनकी उत्पादकता के वृद्धि में सहायक होंगे।

9.4.9 प्राकृतिक आपदाएं–

प्राकृतिक आपदाएं उदाहरण स्वरूप फसलों पर टिड्डी दल का आक्रमण, बाढ़, सूखा, ओला, चक्रवात आदि से फसलों को बहुत अधीक क्षति पहुंचती है। जिसके परिणाम स्वरूप कृषि के उत्पादकता में कमी हो जाती है। इन आपदाओं में कुछ को मौसम पूर्वानुमान के आधार पर किसानों को सूचित कर जागरूक किया जा सकता है।

9.4.10. भूमि सुधार कार्यक्रम की असफलताएं–

भारत में आजादी के उपरांत 1951 में सर्वप्रथम भूमि सुधार कार्यक्रम चलाए गए थे। यह कार्यक्रम कुछ राज्यों में वरदान साबित हुए जबकि कुछ राज्यों में असफल रही, ऐसे में सरकार को भूमि सुधार हेतु कार्य करने की आवश्यकता है। उदाहरण स्वरूप कुछ लोगों के पास सैकड़ों हेक्टेयर भूमि है, जबकि अधिकांश के पास अल्प मात्रा में भूमि मिलता है। ऐसे में सरकार द्वारा भूमि सुधार हेतु केंद्रित भू मालिकों के नियंत्रण से भूमि को मुक्त कर गरीब भूमिहीन किसानों को समानुपात में बांटकर व्याप्त असंतुलन को समाप्त करने की जरूरत है।

9.4.11 कृषि भूमि पर बढ़ता जनदबाव–

भारत में जनसंख्या की वृद्धि के कारण कृषि भूमि पर दबाव बढ़ रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप औसत जोत का आकार लगभग 1.08 हेक्टेयर हो गया है। जोतो के आकार में कमी होने से प्रति हेक्टेयर उत्पादन पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। भारत में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि 0.12 हेक्टेयर है। कम कृषिगत क्षेत्र होने के कारण उत्पादन भी कम होता है।

9.4.12. वितरण, परिवहन व स्टोरेज की समस्या–

विकासशील तथा अल्पविकसित देशों में उत्पादित कृषि उत्पाद को बाजार व मंडियों तक पहुंचाने व उन्हें बेचने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप मंडियों का दूर होना, परिवहन के उचित व्यवस्था का अभाव में किसानों के अपने सामानों को दलालों के हाथ में बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। अतः ऐसे में सरकार व संस्थाओं द्वारा इनके परिवहन, स्टोरेज व वितरण की अच्छी व्यवस्था करने की जरूरत है।

9.5 कृषि का समस्याओं का समाधान–

कृषिगत समस्याओं के समाधान से जहां हमारे देश में खाद्यान्नों के आयात में अधिक धनराशी खर्च करनी पड़ती है, से छुटकारा मिलेगा वही हम अपने नागरिकों के उचित पोषण आहार व निश्चित कैलोरी की मात्रा लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सकेंगे। ऐसे में देश के पोषण स्तर में सुधार हो सकेगा। कृषिगत क्षेत्र की निंलिखित प्रमुख समस्या है–

9.5.1 कृषि के साथ पशुपालन–

किसानों के समस्याओं के समाधान हेतु जीवन निर्वाह कृषि व प्राचीन तरीकों के स्थान पर व्यापारिक कृषि करने की आवश्यकता है। साथ–साथ किसान समृद्ध तभी हो सकता है, जब वह समय के साथ स्वयं कोसमय के साथ बदल कर कृषि व पशु पालन व्यापारीक स्तर पर नवीन तकनीकों के माध्यम से करे। ऐसे में सरकार द्वारा किसानों को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न प्रकार के अनुदान, परिवहन व विभिन्न प्रकार के संसाधनों के अधिकतम उपयोग हेतु बढ़ावा देना चाहिए।

9.5.2 बागाती कृषि का विकास व बढ़ावा–

बागाती कृषि मे परंपरागत औपचारिक कृषि के स्थान पर वैज्ञानिक व नवीन परिष्कृत पौधों को लगाकर अधिकाधिक उत्पादन को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

जिससे प्रतिहेक्टेयर अधिकतम उत्पादन को बढ़ाया जा सके। उत्पादन बढ़ने से जहां एक तरफ किसान की आय में वृद्धि होगी, वही प्रति व्यक्ति उपलब्धता मे भी वृद्धि होगी। जिससे सुपोषण व निश्चित कैलोरी के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहूलियत होगा। बागातीकृषि की प्रमुख फसलें इस प्रकार हैं– जीरा, सौफ, रबड़, मसाले, काली मिर्च, लाल मिर्च, केशर आदि।

9.5.3 उद्यान कृषि को प्रोत्साहन–

जहां खाद्यान्न फसलों का कृषि कार्य करना दुष्कर या कठिन है। ऐसे क्षेत्रों में फल उत्पादन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उदाहरणस्वरुप पठारी, शुष्क व मरुस्थली क्षेत्रों में फल उत्पादन अर्थात उद्यान कृषि को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। क्योंकि यह क्षेत्र फल उत्पादन हेतु उपयुक्त होते हैं। तथा जीवन निर्वाह कृ षि के स्थान पर फल उत्पादन अधिक लाभदायक होगा। उद्यान कृषि की मुख्य फसल अमरुद, केला, आम, नारियल, अनार, बेल, सरीफा, आवला आदि प्रमुख हैं। उद्यान कृषि बढ़ावा देने हेतु उच्च तकनीक, नवीन ऊन्नत किस्म के पौधे, डिब्बा बंद खाद प्रसंस्करण, वितरण तथा भंडारण की नवीन व टिकाऊ तकनीक को प्रोत्साहन करने की आवश्यकता है जिससे उत्पादन के साथ–साथ वितरण कर किसान लाभार्जन कर सकें।

9.5.4 जैविक कृषि को बढ़ावा–

हरित क्रांति को बढ़ावा व कृषि के आधुनिकीकरण से उत्पन्न समस्याओं जैसे–कृषि कार्य में उपयोग किए जा रहे रसायन, कीटनाशक, उर्वरक आदि का मानव स्वास्थ के साथ मृदा पर भी दीर्घ काल में नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। जो कि भविष्य के लिए खतरनाक है। जैविक कृषि को बढ़ावा देना जहां किसानों के लिए आवश्यक आवश्यकता बन गई है, वही मनुष्य के स्वास्थ पर भी पड़ रहे नकारात्मक असर से बचने हेतू यह जैविक कृषि कॉफी स्वास्थ्यवर्धक है। अतः ऐसे में जैविक कृषि अधिकाधिक उपयोग व अनुसंधान के माध्यम से नवीन कंपोस्ट खाद को बनाने की विधियो के सृजन की आवश्यकता है। जो हमारे जीवन मृदा में पोषक क्षमता को दीर्घकाल तक बनाए रखने व सम्पूर्ण विश्व के सतत् विकास के लिए आवश्यक है।

9.5.5 मृदा प्रबंधन–

कुछ क्षेत्रों की मृदा मानवीय हस्तक्षेप व प्राकृतिक कारणों से अम्लीयता, लवणीयता व क्षारीयता मे वृद्धि हो रही है। जो कृषि हेतु अनुपयोगी हो जाती है। ऐसे में सरकार द्वारा जागरुकता अभियान व किसानों को प्रशिक्षण के माध्यम से मृदा के संरक्षण को बढ़ावा देने की जरूरत है। इस कार्य के लिए सरकारी संस्थाओं एवं स्वसेवी संस्थाओं को भी आपसी सहयोग से मृदा संरक्षण को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

9.5.6 मत्स्य कृषि को बढ़ावा–

कृषि के साथ साथ मत्स्यन को भी बढ़ावा देने की आवश्यकता है। जिससे किसानों की आय में वृद्धि हो सके। जैसे भारत के पूर्वोत्तर राज्यों, ठंडे क्षेत्रों में शीत मत्स्यन (उत्तराखंड, लद्दाख, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश) एवं आंतरिक क्षेत्रों में मत्स्यन के विकास की असीमित संभावना है। ऐसे में किसानो को उचित प्रशिक्षण व मछलियों की उन्नत किस्म, उचित आहार, जलाशय, प्रसंस्करण आदि के विकास एवं सतत शोध कार्य की आवश्यकता है। जो किसानों को आर्थिक मजबूती प्रदान करने में सहायक होते हैं तथा यह कृषि के साथ–साथ आसानी से किया जा सकता है।

9.5.7 मानवीय तत्व–

कृषि को मानवीय तत्व जैसे सामाजिक व सांस्कृतिक तत्व भी प्रभावित करते हैं। जैसे यदि भारत में देखा जाए तो पंजाब में तंबाकू उत्पादन के अनुकूल जलवायु मिलती है, किंतु सिख धर्म मे तंबाकू सेवन प्रतिबंधित है। अतः ऐसे में पंजाब राज्य तंबाकू नाममात्र का उत्पादन करता है, वहीं मुस्लिम धर्म में सूअर के मांस का सेवन प्रतिबंधित है, जिसके कारण मुस्लिम धर्म के लोग सूअर पालन का कार्य नहीं करते हैं आदि। ऐसे कई कारण हैं जो कृषि को प्रभावित करते हैं। अतः ऐसे में हमें जलवायु एवं मृदा के अनुकूल कृषि कार्य को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

9.5.8 सिंचाई में नवीन तकनीक को बढ़ावा–

कृषि के विकास हेतु सबसे प्रमुख आवश्यकताओं में सिंचाई है जो फसल के लिए अतिआवश्यक है। ऐसे में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए फसलों को समय–समय पर सिंचाई आवश्यक होती है। जिन देशों के किसान अधिकाधिक मानसून या प्राकृतिक स्रोतों पर निर्भर होते है, उन क्षेत्रों के किसानों को कभी–कभी निराशा का सामना करना पड़ता है। ऐसे में उन देशों में कृषि की उत्पादकता में वृद्धि हेतु आवश्यक है कि नवीन तकनीकों के माध्यम से कम जल में अधिक क्षेत्रों की सिंचाई हो सके ऐसी नवीन तकनीकों का विस्तार हों एवं उसे लोकप्रिय बनाए जाने की आवश्यकता है। प्रमुख नवीन तकनीकी जैसे स्प्रिंकलर या बौछार सिंचाई विधि, ड्रिप सिंचाई विधि, तालाब व पोखरों के निर्माण को बढ़ावा, सोलर पंप के उपयोग को बढ़ावा आदि। इन नवीन तकनीकों से जहां किसान प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि सहायक होगा वही उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी। जिससे एक समृद्ध राष्ट्र का निर्माण होगा।

9.5.9 किसानों को आसान व किफायती दर पर ऋण की उपलब्धता–

कृषि के विकास में पूजी बाधा बनती है। किसान कभी–कभी आसानी से उपलब्धता के कारण बड़े साहूकारों से कर्ज़ ले लेता है, जो अधिक ब्याज दर पर होता है ऐसे में किसानों की अपेक्षाअनुकूल उत्पादन ना होने पर ऋण चुकाने में असमर्थ होता है। जो कभी–कभी गलत कदम उठाने के लिए किसानों को मजबूर करता है अतः ऐसे में किसानों को आसानी से कृषि ऋण की उपलब्धता होनी चाहिए। जो कम दर पर हो जिससे किसान अपनी आवश्यकता अनुसार कृषि कार्यों

में उपयोग कर कृषि उत्पादकता में वृद्धि कर अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत कर सके।

9.5.10 परिवहन व शीतल भंडार गृहों का विकास–

किसी भी देश के अच्छे परिवहन व उचित भंडार की सुविधा कृषि के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। जहां परिवहन की अच्छी सुविधा होने पर किसान अपने उत्पाद को अधिक दाम मिलने वाले बाजारों व मंडियों में बेचने आसानी से जा सकते हैं। वहीं शीतल भंडार गृह में किसान अपने जल्द खराब होने वाले उत्पादों को सुरक्षित रख सकेगा। जिससे वह उत्पाद को सुरक्षित भण्डार के कारण धीरे धीरे लंबे समय तक बाजारों में विक्रय हेतु उपलब्ध करा सकेगा। जिससे उसकी आय में वृद्धि होगी।

जहां किसानों को परिवहन व भंडारण की क्षमता में विकास से अपने उत्पादों को बेचने की अधिकाधिक मार्ग प्रशस्त होंगे।वही कम समय में अधिक दूरी को भी यात्रा किया जा सकेगा किसी भी देश के परिवहन विकास उसकी समृद्धि का सूचक मानी जाती है।

9.6 सारांश

आप इस अध्याय में कृषि भूगोल की प्रमुख समस्याएं तथा उनके समाधान के बारे में अध्ययन किया है। अब आप समझ गए होंगे कि कृषि की समस्या क्या है? इनके नवीन समाधान क्या हो सकते हैं ? भारतीय कृषि की प्रमुख समस्या क्या है? इस समस्या को दूर करने के उपाय क्या है? अतः आप कृषि क्षेत्र की प्रमुख कमी को दूर करने का प्रयास व अपने आस पास के किसानों को जागरूक करने का प्रयास करेगें।

9.7 शब्द सूची–

पोषक तत्व Nutrients,विविधता Diversity, सिंचाई Irrigation, संगठन Organization, उत्पादन Production,
बागाती कृषि Plantation agriculture, लवणता Salinity,
कुपोषण Nalnutrition, विकासशील देश Developing Countries,
भूमि सुधार Land reform,

9.8 परीक्षापयोगी प्रश्न–

1. उद्यान कृषि हैं ?
A- आम B- केला C-जीरा D- नारियल

2. बागाती कृषि नहीं है?

A-केसर B- मसाले C- काली मिर्च D- गेहूं

3. आजादी के बाद भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम कब लागू किया गया?

A- 1950 B- 1951 C- 1960 D- 1961

4. भारत में औसत जोत का आकार है?

A- 1.28 हेक्टेयर B- 1.18 हेक्टेयर C- 1.08 हेक्टेयर D- 1.00 हेक्टेयर

5. भारत में प्रति व्यक्ति किसी योग्य भूमि उपलब्धता है?

A- 1.2 हेक्टेयर B- 0.12 हेक्टेयर C- 1.8 हेक्टेयर D- 0.18 हेक्टेयर

6. कृषि की समस्या क्या नहीं है?

A- जैविक कृषि B- परिवहन C- उन्नत बीज D- मृदा अपरदन

उत्तरमाला– 1. C **2.** D **3.** A **4.** C **5.** B **6.** A

9.9 महत्वपूर्णपुस्तकें संदर्भ

1. आर. सी. तिवारी कृषि भूगोल प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज
2. अलका गौतम कृषि भूगोल शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज
3. माजिद हुसैन कृषि भूगोल रावत पॉब्लिकेशन
4. शर्मा भारद्वाज कृषि भूगोल रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ, उत्तर प्रदेश

9.10 अभ्यास प्रश्न–

i) किसानों के आय वृद्धि में सहायक कृषि को स्पष्ट करें।

ii) क्या किसानों की आर्थिक स्थिति उत्पादन को प्रभावित करती है?

iii) कृषि के प्रमुख समस्याओं को स्पष्ट करें।

iv) कृषि क्षेत्र के प्रमुख समस्याओं के समाधान को स्पष्ट करें।

v) भारतीय कृषि की समस्याओं को स्पष्ट करें।

vi) भारतीय कृषि की समस्याओं को दूर करने के उपायों को स्पष्ट करें।

vii) भारतीय कृषि एवं विश्व कृषि में क्या समस्याओं में एकरूपता है?

इकाई 10–भूमि उपयोग नियोजन और संतुलित कृषि विकास

इकाई की रूपरेखा–

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 भूमि उपयोग नियोजन की आवश्यकता

10.4 भूमि उपयोग नियोजन का उद्देश्य

10.5 भूमि उपयोग नियोजन का महत्व

10.6 भूमि उपयोग नियोजन की पद्धतियाँ

10.7 भूमि उपयोग नियोजन का सिद्धान्त

10.8 भूमि उपयोग नियोजन को प्रभावित करने वाले कारक

10.9 भारत के कृषि नियोजन प्रदेश

10.10 संतुलित कृषि विकास

10.11 सारांश

10.12 शब्द सूची

10.13 परीक्षोपयोगी बहुविकल्पीय प्रश्न

10.14 महत्वपूर्ण पुस्तकें एवं संदर्भ

10.15 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

कृषि भूगोल के इस इकाई में आप भूमि उपयोग नियोजन तथा संतुलित कृषि विकास का अध्ययन करेंगे। भूमि उपयोग नियोजन में भूमि की अवधारणा, भूमि उपयोग नियोजन की पद्धति, भूमि उपयोग नियोजन को प्रभावित करने वाले कारक, भूमि उपयोग परिवर्तन, भूमि उपयोग नियोजन के उद्देश्य, भूमि उपयोग नियोजन का महत्व, भारत के कृषि नियोजन प्रदेश, कृषि नियोजन प्रदेश तथा संतुलित कृषि विकास आदि के विभिन्न बिन्दुओं का अध्ययन करेंगे। भूमि उपयोग नियोजन की पद्धति में अमेरिका की पद्धति, ब्रिटिश पद्धति एवं भारतीय पद्धति, भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले भौतिक कारक तथा मानवीय कारक, भूमि उपयोग नियोजन के उद्देश्य में कृषि आधार की स्थापना, भूमि सुरक्षा योजना, पूंजी निवेश की सुविधाएं, सिंचाई का विस्तार तथा योजना को लागू करना,

भूमि उपयोग नियोजन के विभिन्न महत्वों का कृषि नियोजन प्रदेश, कृषि जलवायु प्रदेश तथा संतुलित कृषि विकास के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे।

- भूमि उपयोग नियोजन की अवधारणा तथा आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- भूमि उपयोग नियोजन पद्धति तथा सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- भूमि उपयोग नियोजन के उद्देश्य तथा महत्व को समझ सकेंगे।
- संतुलित कृषि विकास को समझ सकेंगे।
- भारत के कृषि नियोजन प्रदेश को समझ सकेंगे।
- भूमि उपयोग नियोजन को प्रभावित करने वाले कारक को समझ सकेंगे।
- भूमि उपयोग नियोजन का कृषि विकास में सहायक है कि नहीं, समझ सकेंगे।

10.3 भूमि उपयोगी की आवश्यकता–

किसी प्रदेश का भूमि उपयाग उसके मानवीय तथा भौतिक कारकों का परिणाम होता है ये सभी कारक सभी स्थानों पर एक समान तथा एक समान तीव्र के रूप में कार्यरत नहीं होते हैं जिसके परिणामस्वरूप संसार के सभी क्षेत्रों में भूमि उपयोग का स्वरूप कृषि व्यवस्था तथा स्पष्ट होता है। मनुष्य इन्हें लगातार नया–नया आयाम देता रहता है। भूमि उपयोग में मानव की क्रिया–कलाप भूमि की प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ देता है। जिसके परिणामस्वरूप अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती है जिसका उचित समाधान ढूढ़ना आवश्यक हो जाता है। इसी दृष्टि से भूमि उपयोग।

मानव आपकी स्वयं की आवश्यकता की आपूर्ति के लिए भूमि तथा भूमि से सम्बन्धित तत्वों का उपयोग करता है जिसका वह निवास, व्यवसाय, उद्योग, शिक्षा, परिवहन, सुरक्षा, मनोरंजन तथा प्रशासन आदि के लिए उपभोग करता है लेकिन कृषि भूमि का उपयोग वह सामान्य रूप से नहीं करता है जिसके परिणामस्वरूप उसमें सामाजिक परिवर्तन होते रहते हैं। वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि उपयोग के दशा में अत्यधिक परिवर्तन आये हैं। ऊसर तथा बंजर भूमि पर सिंचाई का विकास, कृषि भूमि में विकास के लिए निर्वनीकरण आदि कारणों से भूमि उपयोग में होने वाले परिवर्तन पारिस्थितिकी तन्त्र को प्रभावित करते हैं, जिससे अनेक समस्याएं उत्पन्न होती है जिसका निवारण भूमि उपयोग नियोजन का रास्ता ही है।

10.4 भूमि उपयोग नियोजन का उद्देश्य

भूमि उपयोग नियोजन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य है–

- भूमि उपयोग नियोजन के माध्यम से भूमि का संरक्षण किया जाना चाहिए।
- भूमि उपयोग नियोजन के लिए उचित कृषि आधारों की स्थापना करना है।
- भूमि उपयोग नियोजन के लिए उचित कृषि आधारों की स्थापना करना है।
- भूमि का जाँच के बाद सिंचाई तथा उर्वरक आदि सुविधाओं का विस्तार किया जाना होगा।
- कृषि सम्बन्धित विभिन्न विकासात्मक तत्वों का योजनाओं का प्रयोग करना।
- कृषि के विकास के लिए अनेक प्रौद्योगिकीय की आवश्यकता होती है। वर्तमान के यंत्रों द्वारा कृषि में सुधार करना है।

10.5 भूमि उपयोग नियोजन का महत्व

- भूमि उपयोग नियोजन के माध्यम से सभी प्रकार के भूमि के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- भूमि की आर्थिक उपयोगिता या देश में अर्थव्यवस्था की उपयोगिता को आंकी जा सकती है।
- भूमि की उत्पादन क्षमता को आंका जा सकता है।
- भूमि की क्षमता के आधार पर भूमि का उपयोग किया जा सकता हैं।
- जनसंख्या का कृषि पर दबाव को आंका जा सकता है तथा जिसमें आवश्यकतानुसार बदलाव भी किया जा सकता है।
- भूमि की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए उचित प्राविधियों का प्रयोग किया जा सकता है।
- नये–नये भूमि उपयोग क्षेत्रों का पहचान किया जा सकता।
- नियोजन के माध्यम से भूमि दुरुपयोग को रोका जा सकता है।
- भूमि उपयोग नियोजन का प्रमुख उद्देश्य अप्रयुक्त भूमि को योग्य बनाना।

10.6 भूमि उपयोग नियोजन की पद्धतियाँ

भूमि संसाधन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन कृषि शास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, भूगोलवेत्ताओं, पर्यावरणवेत्ताओं तथा मृदा विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। भूमि संसाधन की समस्या विश्वव्यापी हैं सभी देश इससे प्रभावित है। संसार के सभी देश अपने जलवायु तथा प्रौद्योगिकी के माध्यम से भूमि उपयोग नियोजन करने का प्रयास किया है। विश्व में भूमि उपयोग नियोजन का प्रारम्भ संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा किया गया इसके बाद अन्य देशों में किया गया। भूमि सुधार के लिए विश्व स्तर पर आयोजित सेमिनारों में तथा कार्यशालाओं द्वारा भूमि उपयोग सम्बन्धित अध्ययन को नये–नये आयाम मिले। इसमें भूमि के लिए विभिन्न प्रकार के सुझाव दिये गये।

भूमि उपयोग के लिए अमेरिकी पद्धति

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय मृदा संरक्षण सेवा द्वारा भूमि उपयोग नियोजन के लिए मार्ग प्रशस्त किए जिसका उद्देश्य निम्नवत है–

- मृदा अपरदन से उत्पन्न समस्याओं को समाधान करना।
- हर एक भूमि के लिए उपयुक्त उपयोग को निर्धारित करना।
- मृदा की उर्वराशक्ति को कायम रखकर तथा वृद्धि करना।
- भूमि–क्षमता के आधार पर उपयोग तथा हर क्षेत्र के लिए संरक्षण कार्य की तैयार करना।

अमेरिकी मृदा संरक्षण सेवा के द्वारा भूमि को 2 मुख्य तथा 8 उपभागों में बांटा गया है जिसमें कृषि अयोग्य भूमि तथा कृषि के योग्य भूमि हैं।

(क) कृषि के लिए अयोग्य भूमि

(I) समस्या से ग्रसित भूमि– इसमें अपरदन की समस्या नहीं होती है किन्तु यह पथरीली, अधिक नमी तथा कुछ अन्य तत्व से ग्रस्त है। इन समस्या से निवारण नहीं पाया जा सकता है। अतः ऐसे भूमि पर पशुपालन तथा जंगल एवं वन्य जीव–जन्तुओं के लिए उपयोग किया जाना चाहिए।

(II) अधिक समस्या ग्रस्त भूमि– शुष्क तथा अल्प शुष्क, पथरीली भूमि, ढालू, ऊबड़–खाबड़ धरातल आदि शामिल है। ऐसे भूमि पर चारागाह का विकास करके पशुचारण का विस्तार किया जाना चाहिए।

(III) अत्यधिक समस्याग्रस्त भूमि– इसमें ऊबड़–खाबड़ भूमि, तीव्र ढाल, शुष्क तथा आर्द्र भूमि शामिल है। इस प्रकार के भूमि पर वन्य जीवन संरक्षण, वानिकी तथा पशुचारण के विकास हेतु प्रोत्साहन किया जा सकता है।

(IV) जटिल भूमि समस्या– इसमें अपरदन भूमि, दलदली भूमि, पथरीली, ऊबड़–खाबड़ धरातल तथा विषम भूमि शामिल होता है। इस प्रकार के भूमि पर पशुचारण, वानिकी, वन्य

जीव संरक्षण तथा मनोरंजन के साधन का विकास किया जाना चाहिए।

(ख) कृषि योग्य भूमि–

(I) सर्वोत्तम भूमि– इस प्रकार के भूमि में कम से कम बांधाएं होती हैं कृषि कार्य सरल होता है तथा भूमि को विभिन्न कार्यों में उपयोग लेते हैं।

(II) उत्तम भूमि– इस प्रकार के भूमि में सामान्य समस्याएं विद्यमान रहती हैं तथा उत्पादित फसलों की संख्या कम होती है। इस प्रकार के भूमि को साधारण विधियों के माध्यम से संरक्षित किया जा सकता है। इस भूमि में शस्यावर्तन तथा खाद का प्रयोग अवश्य किया जाता है।

(III) मध्यम से उत्तम भूमि– इस प्रकार की भूमि में अनेक समस्या विद्यमान होती है जिसके कारण फसलों का चयन सीमित होता है। इस प्रकार की भूमि को फसल के अनुकूल बनाने के लिए संरक्षण की आवश्यकता होती है जिसके लिए सोपानी कृषि पद्धति, शस्यावर्तन, भूमि को ह्रास करने वाली फसल तथा रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग आवश्यक होता है।

(IV) निम्न श्रेणी की भूमि– यह भूमि बहुत मुश्किलों से भरी होती है। इसमें कार्य करने के लिए अत्यधिक सावधानी तथा कुशल प्रबन्ध किया जाना आवश्यक होता है। इस प्रकार की भूमि पर कृषि न करके पशु पालन का कार्य किया जाना उचित होती है। क्योंकि यहां चारागाह तथा घास की खेती सरलता से की जा सकती है।

2. भूमि उपयोग नियोजन की ब्रिटिश पद्धति–

ब्रिटिश भूगोलवेत्ता डडले स्टाम्प का भूमि उपयोग नियोजन में विशेष योगदान था, जिन्होंने भूमि उपयोग का वर्गीकरण करते समय तात्कालिक भूमि उपयोग, मृदा सर्वेक्षण, पुराने भूमि उपयोग का समीक्षा, उत्पादन एवं उत्पादकता तथा कृषि पद्धति आदि तत्वों को ध्यान में रखकर भूमि उपयोग नियोजन का सुझाव दिया। इन्होंने ब्रिटेन की भूमि को 3 प्रमुख तथा 10 उपवर्गों में बांटा, जो निम्नवत है–

(क) उच्च भूमि–

(I) मध्यम–उत्तम, अच्छी कृषि भूमि।

(II) गहन खेती के लिए योग्य भूमि।

(III) प्रथम स्तर–घास भूमि।

(IV) गहन मृदा की उत्तम भूमि।

(ख) मध्यम श्रेणी की भूमि–

(I) हल्की मृदा की भूमि।

(II) सामान्य भूमि।

(ग) निम्न श्रेणी की भूमि–

(I) कम उर्वरा शक्ति मृदा की भूमि।

(II) पर्वतीय या पहाड़ी चारागाह भूमि।

(III) कम उर्वरा शक्ति हल्की मृदा की भूमि।

(IV) अति निम्न स्तर भूमि (बंजर भूमि)।

3. भारत में भूमि उपयोग नियोजन की पद्धति–

अमेरिकी पद्धति की भाँति भारत में भी मृदा विशेषता के आधार पर भूमि उपयाग सर्वेक्षण करके भूमि उपयोग नियोजन किया गया है। भारतीय मृदा का सर्वेक्षण अखिल भारतीय मृदा एवं भूमि उपयोग सर्वेक्षण संगठन के द्वारा कराया गया है। इस संस्था या संगठन ने भूमि को 2 प्रमुख समूह तथा 8 उप विभाग किया है जो निम्नवत है–

(क) कृषि योग्न भमि–

(I) सर्वोत्तम कृषि योग्य भमि–इसमें कोई समस्या नहीं है।

(II) उत्तम कृषि योग्य भूमि– इस स्तर की भूमि अपरदन एवं बाढ़ से ग्रसित रहती है। अतः इसका नियन्त्रण अवश्य किया जाना चाहिए। सिंचाई के लिए उचित तथा प्रवाह प्रबन्धन की भी उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

(III) मध्यम–उत्तम कृषि योग्य भूमि– इस प्रकार की भूमि पर अपरदन एवं बाढ़ से नियन्त्रण, जल संरक्षण तथा उचित प्रवाह प्रबन्ध की नितान्त आवश्यकता है।

(IV) सीमित कृषि भूमि– इस प्रकार के भमि में उचित प्रबन्धन तथा संरक्षण कि नितान्त आवश्यकता होती है।

(ख) कृषि हेतु अयोग्य भूमि–

(I) पशुचारण के लिए योग्य भूमि।

(II) पशुपालन या वानिकी के लिए योग्य भूमि।

(III) पशुपालन एवं वानिकी के लिए भूमि

(IV) मनोरंजन, वन्य प्राणी, जल संरक्षण के लिए योग्य भूमि।

10.7 भूमि उपयोग नियोजन का सिद्धान्त

भूमि उपयोग नियोजन से सम्बन्धित तो बहुत से सिद्धान्त हैं लेकिन यहां तीन प्रमुख भूमि उपयोग नियोजन सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे–

आर्शद भूमि उपयोग सिद्धान्त–

इस सिद्धान्त के अनुसार भूमि का आदर्श उपयोग व्यक्तिगत लाभों के लिए नहीं किया जाता है बल्कि राष्ट्रहित के उद्देश्य से किया जाता है बल्कि राष्ट्रहित के उद्देश्य से किया जाता है। इस सिद्धान्त में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि कृषि के योग्य भूमि का विनाश न हो पाये जिसका तात्पर्य है कि इस भूमि का उपयोग गैर–कृषि कार्यों जैसे–मनोरंजन, परिवहन, आवास तथा औद्योगिक कारखाने आदि के लिए उपयोग न किया जाये। किसी एक इकाई भूमि का उपयोग का उपयोग अनेक कार्यों में किया जा सकता है किन्तु आदर्श भूमि उपयोग उस दशा को कहा जाता है जब प्रति व्यक्ति आय या शुद्ध लाभ अधिकतम हो। अर्थात् वह भूमि जो हमें अधिकतम शुद्ध लाभ दे सके उसे आदर्श भूमि उपयोग कहते हैं।

बहुभूमि उपयोग सिद्धान्त–

इस सिद्धान्त के अनुसार मानवीय आवश्यकताओं की पूर्मि के लिए भूमि का उपयोग कृषि के लिए, आवास के लिए, औद्योगिक विकास के लिए, मनोरंजन के विभिन्न साधनों के लिए, परिवहन तथा संचार सेवा के विकास के लिए, सुरक्षा प्रशिक्षण संस्थानों के लिए तथा सामाजिक एवं प्रशासनिक संस्थाओं के लिए किया जाता है। यह सिद्धान्त अधिकतर पश्चिमी देशों के उन देशों पर लागू होता है जहां जनसंख्या कम और भूक्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक है। इसमें कृषि भूमि का विभिन्न उपयोग करके फसलों में लगातार हेर–फेर होता है जिससे भूमि की उर्वराशक्ति बरकरा बनी रहती है।

सर्वाधिक उत्पादन का सिद्धान्त–

इस सिद्धान्त के अनुसार भूमि का इस भांति उपयोग किया जाना चाहिए जिससे भूमि से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके। कृषि उत्पादन सामान्य रूप से भूमि की उर्वराशक्ति तथा जलवायु पर निर्भर करती है। लेकिन उन्नतशील बीजों, उन्नत तकनीकों, उर्वरकों तथा सिंचाई आदि का प्रयोग करके उत्पादन को अधिकतम सीमा बढ़ाया जा सकता है। कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए कुल कृषि भूमि तथा फसल क्षेत्र को बढ़ाकर, कृषि की गहनता को बढ़ाकर तथा प्रति हेक्टेयर उत्पादन में वृद्धि करके किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर पंजाब तथा हरियाणा है जहां पर हरित क्रान्ति के द्वारा कृषि उत्पादन में कई गुना वृद्धि हासिल हो सकी। इस क्रान्ति में विशेषकर गेहूँ तथा चावल का उत्पादन अधिक हुआ।

10.8 भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारक–

बहुत से कारक भूमि उपयोग को प्रभावित करके उत्पादन कार्य में व्यवधान डालते हैं। भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले दो प्रमुख कारक हैं–

1. भमि उपयोग को प्रभावित करने वाले भौतिक कारक–

धरातल, मृदा, जलवायु, जल व्यवस्था आदि प्रमुख भौतिक कारक है जो भूमि उपयोग को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। भूमि उपयोग का मूल स्वरूप

इन्हीं भौतिक कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं। ये भौतिक कारक जहां पर अनुकूल होते हैं वहां पर भूमि उपयोग अधिक तथा जहां अनुकूल नहीं होते हैं वहां पर कम होता है।

2. भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले मानवीय कारक–

मानवीय क्रिया–कलाप भी भूमि उपयोग को प्रभावित तथा नियंत्रित करते हैं। सामाजिक, आर्थिका औद्योगिक तथा राजनीतिक आदि व्यवस्था तथा संस्था मानीय वातावरण को सुरक्षित तथा नियोजित करते हैं। ये संस्थाएं तथा व्यवस्थाएं मानवीय समाज को इनके उपयोग करने के लिए सुनियोजित व सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करती है। मानवीय आर्थिक–क्रिया–कलाप भी प्रभावित करती है। यह व्यवस्था प्रत्येक स्थान पर समान स्वरूप में नहीं होता है इनका स्वरूप स्थान विशेष में बदलता रहता है। इसके अलावा सामाजिक संस्थाएं तथा संगठन, सांस्कृतिक वातावरण, सामाजिक आदर्श व मूल्य, सामाजिक परम्परा व्यवस्था, सरकारी नीतियां–नियम तथा योजनाएं आदि भी भूमि उपयोग को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार भौतिक तथा मानवीय क्रिया–कलाप भूमि उपयोग को प्रभावित करते हैं जिसका प्रभाव पूर्णतया कृषि पर पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप संसार के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार की कृषि व्यवस्था व कृषि पद्धति का विकास हुआ है। संसार के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न समाजों की विभिन्न अर्थव्यवस्था होती है जिसके कारण भिन्न–भिन्न जीविकोपार्जन पद्धति का विकास हो जाता है। जैसे कहीं पर जनसंख्या जमघट के कारण गहन कृषि, विरल जनसंख्या वाले क्षेत्र में विस्तृत कृषि तथा शुष्क क्षेत्र में शुष्क कृषि आदि। इन सभी तत्वों के अलावा अन्य तत्व भी भूमि उपयोग को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं जैसे– जनघनत्व, जनसंख्या वितरण, मानवीय क्रियाएं तथा बदलता सामाजिक मान्यताएं आदि तत्वों का प्रभाव परिवर्तित समय के साथ–साथ देखा जा सकता है। मानव की सभी क्रिया–कलापें प्राकृति व्यवस्था के संतुलन में अवरोध उत्पन्न करते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप धरातल पर विभिन्न प्रकार की समस्याएं तथा नई–नई बीमारियाँ जन्म ले रही है। मानवीय क्रिया–कलाप से उत्पन्न समस्याओं को पूर्णरूप से समाप्त तो नहीं किया जा सकता है लेकिन उनको कम किया जा सकता है तथा कम करने के लिए प्रयास भी किया जा रहा है।

10.9 भारत के कृषि नियोजन प्रदेश–

कृषि विकास के लिए कृषि नियोजन करना अति–आवश्यक है। कृषि व्यवस्था के विभिन्न विशेषताओं जैसे वर्तमान समय की उत्पादन व्यवस्था, उत्पादन व उत्पादकता के कारक तथा उत्पादकता की सम्भावना जिसमें विभिन्न कृषि पारिस्थितिकी, जैविक तथा भौतिक दशाएं आदि अनुकूल कृषि पद्धति को प्रभावित करती है जिसकी व्याख्या कृषि नियोजन के लिए करना आवश्यक हो जाता है।

भारत के कृषि नियोजन प्रदेश जलवायु तथा धरातलीय विशेषताओं से अत्यधिक प्रभावित है। अतः कृषि नियोजन प्रदेश का सीमांकन करने से पहले कृषि जलवायु प्रदेशों का अध्ययन करना उचित होगा।

कृषि जलवायुविक प्रदेश

कृषि और जलवायु का आपस में घनिष्ठ संबंध होता हैं। जलवायु एक प्रमुख कारण हैं जिससे क्षेत्र विशेष की वनस्पति प्रभावित होती हैं, यही कारण है कि प्राकृतिक वनस्पति को जलवायु वर्गीकरण में अभिसूचक के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं। तीव्र गति से बढती जनसंख्या के भरण–पोषण हेतु भारत जैसे विकासशील देश में कृषि विकास को प्रथम प्राथमिकता देना अनिवार्य है। कृषि जलवायु प्रदेश नियोजन का मुख्य उद्देश्य कृषि और संबंध संसाधनों के वैज्ञानिक उपयोग द्वारा कृषि उत्पादन, आय और रोजगार में वृद्धि करना हैं। भारत के योजना आयोग (1989) ने कृषि जलवायवीय प्रादेशिक नियोजन के लिए निम्नलिखित चार उद्देश्य निर्धारित किये–

(I) राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य मदों की मांग पूर्ति का संतुलन स्थापित करना, जो क्षेत्रों के विभव तथा सम्भावनाओं के सावधानीपूर्वक किये गये विश्लेषण पर आधारित हो।

(II) उत्पादकों की शुद्ध आय का अधिकतम करना।

(III) अतिरिक्त रोजगार, विशेषतः भूमि हीन श्रमिकों के लिए उत्पन्न करना तथा

(IV) राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधनों (जल, जंगल, जमीन) के वैज्ञानिक तथा वहनीय प्रयोग के लिए रूपरेखा तैयार करना।

उपर्युक्त उद्दश्यों की पूर्ति हेतु योजना आयोग तथा NRSA (राष्ट्रीय दूरस्थ सवेदंन एजेन्सी) ने देश को 15 कृषि जलवायु प्रदेशों में बाटा–(I) पश्चिमी हिमालयी प्रदेश (II) पूर्वी हिमालय प्रदेश (III) सतलज–यमुना मैदान (IV) गंगा का ऊपरी मैदान (V) मध्यगंगा मैदान (VI) गंगा का निचला मैदान(VII) पूर्वी पठार तथा पहाडियाँ (VIII) अरावली–मालवा उच्चभूमि (IX) महाराष्ट्र के पठार (X) दक्कन का भीतरी प्रदेश (XI) पूर्वी तटीय मैदान (XII) पश्चिमी तटीय मैदान (XIII) गुजरात के मैदान तथा पहाडियां (XIV) पश्चिमी राजस्थान (XV) द्वीपीय प्रदेश।

इस कृषि जलवायुविक प्रदेश का विस्तृत अध्ययन हेतु इकाई 12 को देखें।

कृषि नियोजन प्रदेश–

भारत का कृषि नियोजन प्रदेश, भारतीय कृषि जलवायु प्रदेश पर निर्भर है। कृषि नियोजन प्रदेशों का सीमांकन तथा आवश्यक प्रस्ताव व सुझाव देने से पहले देश की मृदा के प्रकार, प्राकृतिक स्वरूप, जलवायिक स्वरूप, सिंचाई स्वरूप, कृषिकों में जागरुकता व ज्ञान तथा कृषि तकनीक आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

कृषि नियोजन प्रदेशों का सीमांकन करते समय कृषि के विभिन्न पक्षों के बारे जानकारी होना आवश्यक है। छोटे स्तर पर कभी–कभी कोई कृषि नियोजन प्रदेश अधिक बड़ा हो जाता है जबकि कुछ प्रदेश अपनी विशिष्टता के कारण छोटे प्रदेश होते हैं। इन लघु कृषि प्रदेशों की भूमि उपयोग विशेषताओं तथा कृषि समस्याओं का स्थानीय व क्षेत्रीय स्तर पर समाधान तथा विकास सम्बन्धित कार्य योजना निर्माण करने में सहायता मिलती है जिससे आकांक्षित सफलता की संभाविता बढ़ जाती है।

भारतीय कृषि नियोजन प्रदेश को 6 वृहद 25 मध्यम तथा 58 लघु स्तरीय प्रदेशों में

बांटा गया है जो निम्नवत है–

1. तटीय प्रदेश–

इस वृहद प्रदेश में 3 मध्यम स्तर के प्रदेश हैं प्रथम–पूर्वी तटीय मैदान है जिसमें दक्षिणी तमिलनाडु मैदान, उत्तरी तमिलनाडु मैदान, आन्ध्र तटीय मैदान, उत्तरी उत्कल मैदान एवं पूर्वी आन्ध्र तट, द्वितीय– पश्चिमी तटीय मैदान है जिसमें कोंकण तटीय मैदान, कर्नाटक तटीय मैदान, मालाबार तट, दक्षिणी एवं उत्तरी केरल, तृतीय–गुजरात मैदान इसमें कच्छ प्रायद्वीप, मध्य मैदान–मेहसाणा बड़ोदरा एवं काठियावाड़ तट, पंच महल–सावरकांठा क्षेत्र, सुन्दर नगर मैदान अहमदाबाद मैदान आदि लघु स्तरीय प्रदेश शामिल है।

2. प्रायद्वीपीय पठारी प्रदेश–

इस वृहद प्रदेश में 9 लघु प्रदेश शामिल है प्रथम– अरावली पहाड़ियाँ हैं जिसमें अरावली श्रेणी, पूर्वी राजस्थान, द्वितीय– मध्य पठार है जिसमें महाराष्ट्र सह्याद्री, उत्तर–पश्चिम मध्य प्रदेश–चम्बल बेसिन एवं मालवा पठार, तृतीय– बुन्देलखण्ड–मालवा पठार है जिसमें पूर्वी मालवा पठार एवं बुन्देलखण्ड, चतुर्थ–पूर्वी पठार है जिसमें उड़ीसा की पहाड़ियां, छोटानागपुर पठार–हजारी बाग–रांची पठार एवं बहोलखण्ड, पंचम– उत्तरी दक्कन पठार है जिसमें बालाघाट, वर्धा पठार, बस्तर की पहाड़ियाँ एवं नर्मदा घाटी, षष्टम–आन्तरिक आन्द्र प्रदेश है जिसमें पूर्वी कर्नाटक एवं उत्तरी तेलंगाना उच्च भूमि, सप्तम–रायलसीमा–जवादी पहाड़ियां एवं चित्तूर–कडप्पा उच्च भूमि, अष्टम्–दक्षिण दक्कन पठार है जिसमें उत्तरी कर्नाटक एवं दक्षिणी कर्नाटक, नवम्–तमिलनाडु उच्च भूमि है जिसमें मध्य कावेरी बेसिन एवं दक्षिणी सह्याद्रि आदि लघु स्तरीय प्रदेश शामिल है।

3. पश्चिमी हिमालय प्रदेश–

इस वृहद प्रदेश में 3 मध्यम स्तरीय प्रदेश शामिल है प्रथम– उत्तर प्रदेश हिमालय है जिसमें गढ़वाल हिमालय एवं कुमाऊँ हिमालय, द्वितीय–हिमाचल हिमालय है जिसमें उप हिमालय, मध्य हिमालय एवं लघु हिमालय, तृतीय– जम्मू–कश्मीर घाटी है जिसमें पीर पंजाल की श्रेणियां एवं पूंछ–जम्मू आदि लघु स्तरीय प्रदेश शामिल है।

4. मैदानी प्रदेश–

इस वृहद प्रदेश में 6 मध्यम स्तरीय प्रदेश शामिल है। प्रथम– मध्यगंगा का मैदान हे जिसमें गोमती–मध्य अवध मैदान–अवध मैदान, गोमती मैदान एवं मध्य शुष्क क्षेत्र, निचला गंगा–यमुना दोआब–कानपुर–प्रयागराज दोआब एवं आगरा मैदान, द्वितीय–पंजाब–हरियाणा मैदान है जिसमें मध्य पंजाब मैदान–दिल्ली क्षेत्र तथा पंजाब हरियाणा बांगर पंजाब का सीमावर्ती क्षेत्र, तृतीय भाबर–तराई मेदान है जिसमें रूहेलखण्ड–ऊपरी घाघरा मैदान एवं हरियाणा– उत्तर प्रदेश भाबर, चतुर्थ– बिहार का मैदान है जिसमें दक्षिणी बिहार का मैदान एवं गंगा पार मैदान, पंचम–गंगा का निचला मैदान है जिसमें हुगली जलोढ़ मैदान एवं मध्य बंगाल मैदान, राढ़ मैदान–कलकत्ता क्षेत्र, षष्टम–असम का मैदान है जिसमें ब्रह्मपुत्र घाटी, बराकघाटी तथा मिकिर पहाड़ियां आदि लघु स्तरीय प्रदेश शामिल है।

5. राजस्थान मैदान–

इस वृहद प्रदेश में 2 मध्यम स्तरीय प्रदेश शामिल है। प्रथम–राजस्थान बांगर है जिसमें राजस्थान बांगर, द्वितीय–मरुस्थली क्षेत्र है जिसमें मध्य मरुस्थली लघु स्तरी प्रदेश शामिल है।

6. द्वीपीय प्रदेश–

इस वृहद प्रदेश में 2 मध्यम स्तरीय प्रदेश पश्चिमी द्वीप तथा पूर्वी द्वीप शामिल है। पश्चिमी द्वीप में लक्षद्वीप तथा पूर्वी द्वीप में अण्डमान तथा निकोबार द्वीप लघु स्तरीय प्रदेश शामिल है।

भारत के कुछ क्षेत्रों का सही आंकड़ा उपबन्ध न होने के कारण उनको कृषि नियोजन प्रदेश में शामिल नहीं किया गया है लेकिन उनके समीपवर्ती क्षेत्रों की विशेषता उनमें पायी जाती है जिसके कारण उनको उसी प्रदेश में शामिल किया जा सकता है।

पूर्वी हिमालय का भी मध्यम एवं लघु स्तरीय प्रदेश में विभाजन किया जाता है जिसमें असम की पहाड़ियाँ, शिलांग का पठार, मणिपुर–मिजोरम घाटियां एवं पहाड़िया, नागालैण्ड का पहाड़ी क्षेत्र, अरुणांचल प्रदेश का पहाड़ी क्षेत्र तथा सिक्किम तथा पर्वतीय क्षेत्र आदि विभाजन शामिल है।

कृषि नियोजन प्रदेश का सीमांकन करने के पश्चात् उनकी समस्या से रूबरू होकर उनके विकास के लिए योजनाएं तैयार की जाती है। स्थानीय लोगों को जागरुक करके विकास के लिए रूपरेखा तैयार की जाती है। इन समस्याओं के लिए राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार द्वारा कार्यक्रम चलाया जाता है जैसे–मृदा प्रबन्धन, सिंचाई विकास, जल विभाजन कार्यक्रम, शस्य नियोजन, उद्यान एवं बागाती कृषि का विकास, पशुपालन, मत्स्य पालन, कृषि वानिकी, रोजगारपरक कृषि आदि समस्याओं का समाधान के लिए मूल समस्याओं की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक होता है जिसके आधार उसका निवारण एवं सुझाव प्राप्त किया जा सके।

10.10 संतुलित कृषि विकास–

संतुलित कृषि विकास शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है प्रथम देश या प्रदेश के मांग के अनुसार विभिन्न प्रकार के फसलों का उत्पादन ताकि किसी भी प्रकार की फसल की कमी न हो सके तथा दूसरा कृषि का विकास पर्यावरण परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कृषि नीतियों व योजनाएं तैयार व क्रियान्वयन करना ताकि कृषि तथा प्रकृति समायोजन बना रहे। सभी को विदित है कि व्यावसायिक कृषि में लाभ विकास का लक्ष्य होता है जिसके परिणामस्वरूप उन्हीं फसलों का उत्पादन किया जाता है जिनसे अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस कृषि में स्थानीय मांग पर ध्यान नहीं होता है इसके अलावा अन्य परिस्थितियों में भी असंतुलन होता है जिसके कारण समस्याएं जन्म लेती हैं। जैसे– राष्ट्रीय नीति के अभाव के चलते भारत में कभी दलहन तो कभी तिलहन फसलों का उत्पादन कम या ज्यादा हो जाता है जिसका खामियाजा किसान तथा उपभोक्ता को भुगतना पड़ता है।

कृषि विकास को संतुलित कृषि विकास या पर्यावरण समायोजन के नाम पर महत्वहीन बना दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप संसाधनों का दोहन गलत ढंग से किया जाने लगा है जिसके कृषि विकास का रास्ता संकटमय बनता जा रहा है। मृदा का अधिकतम उपयोग के नाम पर उसके मूल गुणवत्ता का नाश किया जा रहा है। अधिक मांग व लाभ की आपूर्ति के लिए अधिक उत्पादन की आवश्यकता होती है जिसके लिए अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग किये जाने से मृदा उर्वरा शक्ति का ह्रास हो रहा है। अतः संतुलित विकास के लिए यह आवश्यक है कि मृदा की मौलिक गुणवत्ता की रखा की जाये और उसका उपयोग लम्बी अवधि तक किया जाये। उदाहरण स्वरूप गंगा का मैदानी भाग की मृदा हजारों साल से उपयोग बावजूद आज भी उत्पादन देने में सक्षम है।

विकास की दौड़ में भूमि का गहनतम उपयोग करके अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करना कृषि विकास का पहचान माना जाता है। इसी कारण से प्रति हेक्टेयर उत्पादन को कृषि विकास का मानदण्ड माना जाता है। अधिकतम उत्पादन के उद्देश्य की आपूर्ति के लिए अधिक रासायनिक खाद, सिंचाई, भूमि की अधिक जुताई, उन्नतशील बीज, कीटनाशक का प्रयोग, प्राकृतिक आपदा से सुरक्षा आदि की सहायकता के साथ पर्याप्त पूंजी का निवेश भी आवश्यक होता है। विकसित देश द्वारा ये सुविधाएं आसानी से उपलब्ध हो पाती है जबकि विकासशील देशों में इनमें से कुछ ही सुविधा उपलबध हो पाती है। इस प्रकार विकासशील देशों के पास अधिक उत्पादन हेतु असंतुलित सुविधा ही उपलब्ध हो पाता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत खाद्यान्न समस्याओं से जूझ रहा था उसके लिए कृषि विकास का अर्थ खाद्यान्न उत्पादन तक सीमित हो गया था, जिसके कारण क्षेत्रीय पारिस्थितिकी तंत्र को छोड़कर कृषि विकास कार्यक्रम बनाये गये। कृषि स्वरूप भारत खाद्यान्न के मामले में आत्म निर्भर हुआ। लेकिन हरित क्रान्ति से प्रगति के कारण कृषि सम्बन्धित अनेक समस्याएं जन्म लेने लगी, जिसमें भूमिक्षरण, भूमि प्रदूषण, जल प्रदूषण, भण्डार की समस्या, क्षेत्रीय असंतुलन आदि हैं। हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप पंजाब, हरियाणा आदि राज्य कृषि उत्पादन में अग्रणी राज्य बन गये जबकि अधिक जनंसख्या वाले राज्य उत्तर–प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश आदि में समस्या बनी थी। पूर्वांचल के अधिकांश राज्य अपने पिछड़े कृषि के कारण विद्रोह के रास्ते पर चल पड़े थे जिसका प्रमुख कारण भारत में उचित कृषि कार्यक्रम का अभाव था जिससे यहां की कृषि विकास में असंतुलन का जन्म हो गया। सही नीति तथा योजनाओं के अभाव के कारण कुछ राज्यों में कम उत्पादन के कारण इनके मध्य समायोजन का अभाव पाया जाता है। जिनके लिए केन्द्र सरकार द्वारा अनेक अवांछनीय प्रतिबन्धों का सृजन करना पड़ा। जैसा कि सभी को विदित है कि भूमि का असमान वितरण भारत के कृषि विकास में सबसे बड़ी समस्या है। श्रमिकों के पास भूमि का अभाव तथा कम श्रम बल वालों के पास अधिक भूमि है।

भारत सरकार द्वारा संतुलित कृषि विकास के लिए भानु प्रताप समिति का गठन किया गया था, इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय कृषि विकास के मार्ग में बांधा डालने वाले समस्याओं से छुटकारा पाया जा सके। इस समस्या की प्रमुख सिफारिशें निम्नवत हैं–

- इस समिति के अनुसार देश की कृषि विकास का स्तर उत्कृष्ट नहीं है। इसमें लगे किसान, मजदूर तथा सीमान्त किसान की दशा में सुधार लाना ताकि 15 वर्ष बाद उत्पादन को दो गुना वृद्धि किया जा सके।

- भारतीय कृषि को औद्योगिक के समान सुविधाएं प्रदान करना।

- कृषि भूमि से आधा ही उत्पादन हो पा रहा है क्योंकि सिंचाई के अभाव, बाढ़, सूखा और मृदा समस्याएं आदि के कारण उचित लाभ नहीं मिल पा रहा है।

- पशुपालन, मत्स्य पालन, रेशम कीट पालन, कृषि वानिकी, कृषि से सम्बन्धित लघु तथा गृह उद्योग आदि की दशा ठीक नहीं है। इनके विकास से विशेष आय तथा कृषिक की दशा को सुधारा जा सकता है।

- उचित भण्डार का अभाव के कारण मुनासित मूल्य प्राप्त करना कठिन हो जाता है। अतः स्थानीय स्तर पर भण्डारण की सुविधा आवश्यक है।

- कृषि भूमि का उचित वितरण के लिए नियम–कानून का अनुपालन कड़ाई के साथ करना।

- हदबन्दी के माध्यम से अधिक से अधिक भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाना। भूमिहीनों के भूमि प्रदान करना।

- समिति का विचार है कि जब तक भूमि सुधार के लिए नियम–कानून सही ढंग से लागू नहीं होगा तब तक कृषि में संतुलित विकास सम्भव नहीं है।

समिति के उपरोक्त तर्क से स्पष्ट होता है कि अधिकांश सिफारिशें कृषि सम्बन्धी आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक पक्षों से सम्बन्धित है। कृषि को भारत में व्यवसाय के रूप में नहीं बल्कि जीवन पद्धति के रूप में देखा जाता है। इसी कारण से विदेशी चिंतन का इस पर कोई असर नहीं होता है। ब्रिटिश समय के दौरान भी इसी समस्या के कारण कोई सार्वभौम राष्ट्रीय नीति नहीं बन पायी। भारत की स्थानीय सरकारें भूमि सम्बन्धित कानून का निर्माण तथा लागू करने में शिथिलता अपनाई है जिसके परिणामस्वरूप देश में कृषि विकास स्तर समान नहीं है।

कृषि विकास में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान एवं कृषि विश्वविद्यालयों की भूमिका भी विशेष कार्य नहीं किया है जिसका प्रमुख कारण कृषि कार्य करने वाले लोगों से जुड़ाव न होना है। भूमि का उचित उपयोग के लिए राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग ब्यूरो तथा राज्यों की मृदा सर्वेक्षण इकाइयों ने मृदा मानचित्र का सीमांकन का कार्य लिया था लेकिन अभी तक कुछ क्षेत्रों का मानचित्रण नहीं हो पाया है। इसी तरह जल संसाधन का उचित प्रयोग कृषि कार्य में नहीं हो पा रहा है। इस प्रकार भारतीय कृषि अपने पुराने पद्धति से निकल नहीं पा रही है जिसके कारण क्षेत्रीय असमानता कम न होकर बढ़ रही

है।

पर्यावरणीय तत्वों का अनदेखी के कारण भी भारतीय कृषि विकास में असंतुलन विद्यमान है। उन्नतशील बीज के प्रयोग के पूर्व यह आवश्यक है कि वह क्षेत्रीय पारिस्थितिकीय तन्त्र से समायोजन सम्बन्धित सभी पक्षों का ज्ञान किसान को कराया जाना चाहिए ताकि वे सतत कृषि विकास की ओर बढ़ सके। लेकिन ज्ञान के अभाव के कारण पर्यावरण समायोजन विकास विगड़ने लगता है। हरित क्रान्ति के दौरान अधिक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग, अधिक जोताई, उन्नत बीजों का उपयोग का प्रतिफल अब प्रकट हो रहा है जिसके कारण लोगों द्वारा जैविक खाद का उपयोग करने पर बल दे रहे हैं। रासायनिक उर्वरकों तथा दवाओं का अधिक उपयोग के कारण मानव में तरह–तरह की बीमारियों जन्म ले रही है।

आधुनिक समय में कृषि विकास की योजनाएं कृषि जलवायु प्रदेशों को आधार मानकर बनाया जाना चाहिए जिससे कृषि विकास निरन्तर विकास हो सके।

10.11 सारांश–

आप इस इकाई में कृषि भूगोल से सम्बन्धित भूमि उपयोग नियोजन तथा संतुलित कृषि विकास का अध्ययन किया है। अब आप समझ गये होंगे कि भूमि उपयोग नियोजन तथा संतुलित कृषि विकास को। भूमि उपभोग नियोजन की आवश्यकता, महत्व, भूमि उपयोग की पद्धतियां, सिद्धान्त, भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों, कृषि नियोजन प्रवेश, कृषि जलवायु प्रदेश भूमि उपयोग नियोजन का परिवर्तन तथा संतुलित कृषि विकास के लिए विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है। भूमि उपयोग नियोजन से सम्बन्धित पद्धतियों में अमेरिकी पद्धति ब्रिटिश पद्धति तथा भारतीय पद्धति, भूमि उपयोग नियोजन को प्रभावित करने वाले कारकों में प्राकृतिक तथा मानवीय कारक, भूमि उपयोग नियोजन से सम्बन्धित सिद्धान्त में आदर्श भूमि उपयोग सिद्धान्त, बहुभूमि उपयोग सिद्धान्त तथा सर्वाधिक उत्पादन सिद्धान्त को आप समझ गये होंगे।

10.12 शब्द सूची–

Land use- भूमि उपयोग, Siol Enrichment- मृदा संवर्धन,

Cattle Grazing- पशुचारण, Subsistence Agricuture- निर्वाहन कृषि, Agro-Climate- कृषि जलवायु, Intensive Farming- गहन कृषि,

Soil inferlity-मृदा बांझपन, Food Crisis- खाद्य संकट,

Chemical Fertilizers- रासायनिक उर्वरक,

10.13 परीक्षोपयागी बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. सर्वप्रथम भूमि उपयोग नियोजन की शुरूआत कहां से प्रारम्भ हुआ?

(क) संयुक्त राज्य अमेरिका (ख) भारत (ग) रूस (घ) ब्रिटेन

2. अमेरिकी मृदा परीक्षण सेवा के द्वारा भूमि उपयोग नियोजन को कितने प्रमुख भागों में बांटा गया है?

(क) 3 (ख) 5 (ग) 2 (घ) 8

3. भूमि नियोजन सम्बन्धित कार्य अखिल भारतीय मृदा संगठन द्वारा कितने मुख्य वर्ग में बांटा है?

(क) 2 (ख) 3 (ग) 8 (घ)10

4. योजना आयोन ने 1989 में किस आधार पर कृषि जलवायु प्रदेशों का वर्गीकरण किया गया है?

(क) जवायु (ख) जल संसाधन

(ग) मृदा प्रकार (घ) सभी के आधार पर

5. कृषि नियोजन प्रदेशों को कितने प्रमुख भाग में बांटा गया है?

(क) 5 (ख) 8 (ग) 4 (घ) 6

उत्तर– 1–क, 2–ग, 3–क, 4–घ, 5–घ

10.14 महत्वपूर्ण पुस्तकें/सन्दर्भ–

1. Bansil, P.C., Agricultral Problems of India, New Delhi : Vikas Publication 1974
2. Bhatiya. S.S., "A New Method of Agricultral Eifficiency in UP." In Economic Geography 1967
3. तिवारी.आर.सी., कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।
4. तिवारी एवं सिंह, भारत का भूगोल, प्रवालिका पाब्लिकेशन, प्रयागराज।
5. गौतम, अल्का, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
6. हुसैन, माजिद, कृषि भूगोल, रावत पाब्लिकेशन, नई दिल्ली।

10.15 अभ्यास प्रश्न

1 भूमि उपयोग नियोजन की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

2 भूमि उपयोग नियोजन के उद्देश्यों तथा महत्व का संक्षित वर्णन कीजिए।

3 भूमि उपयोग नियोजन और भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों का संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

4 भूमि उपयोग नियोजन की पद्धति एवं सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

5 संतुलित कृषि विकास संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

6 संतुलित कृषि विकास में विद्यमान समस्याओं का वर्णन कीजिए।

MAGO- 104 कृषि भूगोल

इकाई 11– पोषण कृषि विकास

इकाई की रूपरेखा –

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्‌देश्य
11.3 पोषणीय कृषि पद्धति
11.4 पोषणीय कृषि विकास की विशेषताए
11.5 पोषणीय कृषि की प्रासंगिकता
11.6 पोषणीय कृषि के सिद्धान्त
11.7 पोषणीय कृषि के घटक
11.8 पोषणीय कृषि की कार्य–योजना
11.9 पोषणीय कृषि विकास के उपाय
11.10 पोषणीय कृषि विकास के मुख्य बिन्दु
11.11 निष्कर्ष एवं सारांश
11.12 शब्द सूची
11.13 स्वमूलांकित प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
11.14 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तक
11.15 अभ्यास प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी)

11.1 प्रस्तावना –

कृषि भूगोल के लेखन की इस इकाई में आप पोषणीय कृषि विकास का अध्ययन करेगें। पोषणीयता किसी भी तत्व को उसकी विद्यमान दशा को कायम बनाये रखना। पोषणीयता का तात्पर्य है कि "भावी" पीढ़ियों की आवश्यकताओं को देखते हुए मानव जीवन की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए आवश्यक पारिस्थितिक दशाओं का पाया जाना। यहाँ पर कल्याण का स्तर आर्थिक पोषणीयता का द्योतक है, दूसरी ओर ब्राबीयर पोषणीयता को सामाजिक सन्दर्भ में अभीष्ट सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं, संस्थाओं, संस्कृति, अथवा अन्य सामाजिकता को बनाये रखने में सक्षम माना जाता है। सर्वप्रथम डॉ0 रूडोल्फ स्टीनर (1920) ने जैव गतिक कृषि पर अपने व्याख्या को प्रस्तुत किया। इसके बाद दो दशकों में ही कार्बनिक कृषि के लिए रोडेल फाउण्डेशन की स्थापना हुई। ब्राजील (1992) में हुए पृथ्वी सम्मेलन के 'एजेण्डा–21' के अन्तर्गत "पोषणीय कृषि" को सम्मिलित किया गया। जिसके तहत वर्तमान कृषि की समीक्षा, कृषि में रोजगार विविधता लाना, भूमि संसाधन नियोजन सूचना उपलब्ध कराना, भूमि एवं कृषि संरक्षण पुर्नवास के कार्यक्रम प्रस्तावित किये गये। ये सभी पोषणीय विकास के वर्तमान स्वरूप को चुनौती देने वाली सतत् अथवा स्थायी

विकास के लिए प्रयासरत है। पोषणीय अथवा स्थायी कृषि अपने आप में काफी विस्तृत है तथा इसमें अनेक तकनीके हैं, जिनका मूल उद्‌देश्य कृषि को लम्बे समय तक के लिए सतत् प्रक्रिया के रूप में उभारना है।

वर्तमान समय में पर्यावरण की चिन्ता विश्वव्यापी बहस, सेमिनार सम्मेलन आदि का विषय वस्तु है। इसका उद्‌देश्य कृषि के क्षेत्र में वृद्धि के साथ–साथ मृदा की उत्पादक शक्ति की रक्षा की जाय। चट्‌टोपाध्याय ने इसको परिभाषित करने वाले सभी प्रयासों में विकास को दीर्घ अवधि तक चलने वाली सुखद परिणामों वाली बिना समाप्त या कम हुए भविष्य की पीढ़ियों को उपलब्ध रहने वाली सत्त प्रक्रिया बताया है। भविष्य की पीढ़ियों द्वारा अपनी आवश्यकता की पूर्ति की क्षमता से समझौता किये बिना, वर्तमान की आवश्यकता की पूर्ति करने वाले विकास को पोषणीय विकास के रूप में परिभाषित किया गया है। वर्तमान एवं भविष्य की मानव पीढ़ियों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी भी विकास का 'पोषणीय' होना आवश्यक है। भारतीय अर्थशास्त्री सुखमय चक्रवर्ती के अनुसार 'पोषणीय विकास' शब्द बन्ध की सफलता इसी में निहित है कि यह कुछ भी स्पष्ट नहीं कहती अतः किसी के लिए कुछ भी हो सकता है।" विकास प्रणलियों को समग्र रूप से देखा जाना चाहिए। क्योंकि बिना पोषणीय विकास के पोषणीय कृषि की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। पोषणीय कृषि में वैज्ञानिक सोच के साथ–साथ स्थानीय वा पारम्परिक ज्ञान को भी महत्व दिया जाता है। पोषणीय कृषि भविष्य के सुनहरे सम्पोषण की वकालत नहीं करती, बल्कि यह आज के यथार्थ पर आधारित है। (भट्‌टाचार्य के 1977) पोषणीय कृषि से हमारा दृष्टकोण बिल्कुल नहीं है कि कृषि रसायनों का उपयोग तुरन्त बन्द कर देना चाहिए, बल्कि धीरे–धीरे उस स्थिति को प्राप्त करना है, जहां उत्पादन और आमदनी बढ़ाने के लिए इन रसायनों के प्रयोग की आवश्यकता ही न रहे। इसके लिए वर्तमान स्थिति, पदार्थो तथा ऊर्जा के प्रवाह एवं उत्पादन के लिए प्रचलित स्थानीय तकनीको व ज्ञान के गहन विश्लेषण की आवश्कता होगी। कृषि एक बहुआयामी कार्य है, अतः इसकी पोषणीयता के भी कई आयाम है। उदाहरण स्वरूप आर्थिक पोषणीयता, सामाजिक पोषणीयता एवं पारिस्थितिक पोषणीयता आदि। इस प्रकार पोषणीय कृषि को परिभाषित करने के लिए अनेक वैकल्पिक शब्दावलियां है। इन शब्दावलियों में पोषणीय, वैकल्पिक, पुरूद्वारक, निम्न वाहय निवेशित, निम्न निवेशित संधृत, संसाधन संरक्षक, टिकाऊ, सतत्, अक्षय, प्रतिपालनीय आदि प्रमुख है। इन्हे प्रायः आधुनिक कृषि संसाधन क्षरणीय, औद्योगिक, वृहत, या उच्च, वाहय निवेशित है। अध्ययन में सरलता के लिए मुख्यतः संघृत पोषणीय, पोषणीय या टिकाऊ शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो उपर्युक्त सभी शब्दावलियों को समन्वित करते हैं।

11.2 उद्देश्य –

पोषणीय कृषि विकास की प्रमुख चुनौती आन्तरिक संसाधनों का बेहतर एवं सर्वोत्तम उपयोग करना। (जूल्स महोदय के अनुसार) पोषणीय कृषि खाद्यान्न या रेशा उत्पादन की वह प्रणाली है, जिसमें निम्नलिखित उद्देश्यों के ध्यान में रखा जाता है।

1. पोषणीय कृषि उत्पादन प्रक्रियाओं में पोषण चक्र, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, फीट कीटभक्षी अर्न्तसम्बन्ध जैसे प्राकृतिक तन्त्रों को पूर्णतः आत्मसात करना।
2. उत्पादन संसाधन के अवसर की प्राकृतिक विरासत को कायम बनाये रखना।
3. जैविक कृषि में नवीनतम तकनीकों का प्रसार करना।
4. ग्रामीण युवाओं। किसानों एवं उपभोक्ताओं को व्यापारियों के मध्य जैविक खेती को बढ़ावा देना।
5. कृषको एवं ग्रामीण लोगों में आत्मनिर्भरता को बढ़ाना।
6. ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम एक क्लसटर प्रदर्शन का आयोजन करना।
7. भूदृश्य एवं मौसम/जलवायु की पर्यावरणीय सीमाओं में वर्तमान उत्पादन दर को लम्बे समय तक टिकाऊ रखने एवं उत्पादन क्षमता में सुधार लाना।
8. वनस्पतियों एवं जन्तुओं की प्रजातियों की जैविक एवं जीन क्षमता का अधिक उत्पादन प्रयोग करना।

11.3 पोषणीय कृषि पद्धति –

पोषणीय कृषि विकास में स्थानीय ज्ञान कृषि तकनीक जिन प्रक्रियाओं/पद्धति पर निर्भर करती है, उसमें सुधार और विकास पर बल दिया जाय। पोषणीय कृषि पद्धति निम्नलिखित है–

1– पारिस्थितिक कृषि –

पोषणीय कृषि को परिस्थितिक कृषि के रूप में कुछ ऐसे पारिस्थितिक एवं आर्थिक तन्त्र के रूप में माना जाता है। जो बहु उद्देश्यीय, बहुस्तरीय, बहुसंघटक, और सर्वोत्तम संरचना, समन्वित सम्बन्ध और सन्तुलित विकास की प्रेरक हो। शी, शान ने पारिस्थितिक कृषि की निम्न विशेषताओं की ओर इंगित करते हैं–

1– यह सुनियोजित सर्वोत्तम विधि है, जिसका सामाजिक एवं पारिस्थितिक प्रभाव पड़ता है।

2– पारिस्थितिक कृषि केवल आर्थिक ही नहीं, ब्लकि सामाजिक एवं पर्यावरणीय पोषणीय का विशेष रूप से ध्यान रखती है। पारिस्थितिक कृषि से आशय ऐसी कृषि प्रणाली से है, जिसे पारिस्थितिक सम्पदा को क्षति पहुंचाये बिना अनन्त समय तक चलाया जा सकता है। पारिस्थितिक कृषि प्रणाली का क्रियान्वयन पारिस्थितिक तत्वों से होता है। इसमें आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी और परम्परागत कृषि प्रौद्योगिकी के गुणों का समन्वयन होता है।

2 कार्बनिक कृषि–

कार्बनिक कृषि का अर्थ है– जैविक सम्बन्ध सूत्रता की क्षमता में कृषि करना। पोषणीय कृषि पद्धति में कार्बनिक कृषि पद्धतियों को संशोधित एवं संवर्धित करने में सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। इस पद्धति को अपनाने के इच्छुक कृषक की पहले प्राचीन भारतीय और चीनी कृषि प्रद्धतियों पर निगाह डालना चाहिए, जिनको आज वर्तमान समय में देश के कुछ भू–भागों में अपनाया जा रहा है। कार्बनिक कृषि पणाली में फसल चक्र, फसल अवशेष, मवेशियों के मलमूत्र, आदि से तैयार खाद, फलीदार पौधों, हरी खाद, खेतों में इतर कार्बनिक कचरा, और भूमि की उत्पादकता, तथा जुताई बचाये रखने, पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति करने, कीटो खरपतवारों व अन्य कीटों पर नियंत्रण के लिए विभिन्न पहलुओं पर अधिकतम निर्भर रहा जाता है। कार्बनिक कृषि के निम्न प्रमुख है–

1– अकार्बनिक रासायनिक कारको के स्थान पर कार्बनिक खाद और अन्य जैविक का उपयोग करना।

2– जैविक पद्धतियों से कीटो को नियंत्रित करना।

3– भूमि के स्वास्थ्य और कृषि उत्पादकता में सुधार के लिए व्यापक प्रबन्ध तकनीक अपनाना।

कार्बनिक कृषि आधुनिक कृषि से सम्बद्ध जटिल समस्याओं से मुक्त है और पारिस्थितिकी के अनुकूल है, क्योंकि इसमें, वायु भूमि और जल संसाधनों को दूषित किये बिना प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण किया जाता है।

3 जैविक कृषि –

जैविक कृषि पद्धति जैविक पदार्थो कृषि रसायनों के बिना कार्बनिक, एवं जीवों के सहयोग पर बल दिया जाता है। कृषि को टिकाउ बनाने के लिए विश्व के अलग–अगल क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार के जो गैर परम्परागत कृषि विधियाँ प्रचलन में है, उनमें जैविक कृषि को अधिकांश स्थानों पर आश्रय दिया जाता है। जैविक कृषि प्रणाली से कुछ विद्वान पारिस्थितिक कृषि के सन्दर्भ में भिन्नता रखते हैं कि उनके अनुसार इसमें भी पर्यावरण का अवनयन होता है। जैसे–नाइट्रोजन का खेतों में रिसाव दलहनी फसलो के द्वारा हो जाता

है। जानवरो के गोबर की खाद से अमोनिया गैस के उत्सर्जन से पर्यावरण का सन्तुलन विगड़ता है।

4 रुढवादी कृषि –

रुढवादी कृषि पद्धति अर्थात् अधिक उपज देने वाली, बीजो, सिंचाई, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी दवाओं के संयोग पर आधारित कृषि, भारत के सीमान्त एवं लघु कृषको की दरिद्रता दूर करने में सक्षम नहीं रही है। कृषि की उत्पादकता में किंचित वृद्धि भारी आर्थिक एवं विनाशकारी पारिस्थितिक लागत पर हुई है। स्वतन्त्रता के बाद विकास का जिस अन्धाधुन्ध संसाधनों का प्रयोग किया गया, उसकी चपेट में हजारों वर्ष पुरानी कृषि (परम्परागत कृषि) भी आ गयी। पारम्परिक कृषि सदस्यों से पीढ़ी संचित अनुभवो और ज्ञान पर आधारित थी। तकनीकी विकास के न होने से प्राकृतिक परिस्थितियों से सामांजस्य स्थापित करने वाली ही कृषि पद्धति थी। यद्यपि इसमें उत्पादकता कम थी, लेकिन विविधता पर्याप्त थी। जो भूमि की प्राकृतिक उर्वरता बनाये रखने वाली थी। कई दृष्टिकोण के आधार पर परम्परागत कृषि पोषणीयता के अधिक समीप थी। भारत में अभी भी विभिन्न कृषि विभिन्न कृषि पारिस्थितिकी दशाएं प्राचीन परम्परागत कृषि पद्धति के कुछ अवशेष विद्यमान है, जिन्हें पुनर्जीवित, संवर्धित व सम्बन्धित करके पोषणीय कृषि के आधार को शसक्त किया जा सकता है। कहने का आशय यह है कि परम्परागत कृषि पद्धति में पोषणीय कृषि की सम्भावनाएं छिपी हुई है। भारतीय किसानों को यह ज्ञात भली–भांति था कि किस प्रकार की मृदा की उत्पादकता को फसलो में हेर–फेर के द्वारा संरक्षित किया जा सकता है। परम्परागत कृषि में किसान कृषि को समन्वित रूप से देखते थे, चाहे वह खेत व प्रजातियों का चुनाव हो या मिश्रित खेती हो, फसल चक्र हो व बीजों का चुनाव हो या उनका रख–रखाव हो। पारम्परिक कृषि में किसान निम्न बातों का विशेष ध्यान रखते थे–

1. रुढवादी कृषि में कृषक की पसन्द देशों की प्रजातियों में होती है।
2. रुढवादी कृषि में सदैव से मिश्रित कृषि का प्रचलन रहा है। मिश्रित कृषि करने से खेत की उर्वरा शक्ति में तालमेल बना रहा है।
3. परम्परागत कृषि पद्धति में बीजों के रख–रखाव व बुवाई का अपना ही महत्व होता है। प्रायः इस बीजों को राख व नीम की पत्ती के साथ अंकुरित करते हैं।
4. रुढवादी कृषि में किसान अपने खेत से भली प्रकार से परचित होता है। वह खेत की मिट्टी, प्रकृति, जल की उपलब्धता, आदि को ध्यान में रखते हुए चयन करता है।
5. रुढवादी कृषि में फसल को बीमारी से बचाने के लिए विषाक्त रसायनों के उपयोग के द्वारा उपचार किया जाता है।
6. भारतीय परम्परा और संस्कृति में भी कृषि व पशुपालन को एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में देखा गया।

इस प्रकार परम्परागत कृषि की अनेक पद्धतियां जैसे–मृदा में जैविक एवं हरी खाद का प्रयोग, मिश्रित कृषि, समुचित फसल चक्र, फसल विविधता आदि पोषण संरचना में प्रमुख भूमिका निभाती है।

5 सेन्द्रिय कृषि पद्धति –

सेन्द्रिय कृषि पद्धति में सभी प्रकार के रासायनिक उर्वरको एवं कीटनाशकों का विरोध करता है। प्राकृतिक रूप से उपलब्ध पदार्थो जैसे–फास्फेट खाद या सल्फर, कृत्रिम रूप से रसायनों से तैयार किये गये पदार्थ, जैसे असेन्द्रिय उर्वरक या खरपतवार, नाइट्रोजन नाशकों के मध्य अन्तर करने के लिए प्रयुक्त होता है। पोषणीय कृषि की एक मात्र पद्धति सेन्द्रिय कृषि है उनका मत है कि कोई भी कृषि पद्धति, जिसमें वाह्य निवेशों का प्रयोग होता है, मौलिक रूप से अपोषणीय है। कुछ विद्वानों के अनुसार सेन्द्रिय विधियों द्वारा भी पर्यावरण का अवनयन होता है।

11.4 पोषणीय कृषि विकास की विशेषता –

पोषणीय कृषि विकास की मौलिक विशेषताएं निम्नलिखित है–

1. **जैव विविधता–** जैविक विविधता का पाया जाना पोषणीय कृषि का सूत्राधार है। विविधता से कृषि में पोषणीय कृषि का आधार बनता है। सौभाग्य से भारत जैव–विविधता में एक धनी देश है। जैव विविधता का अर्थ है नव जीवन की सम्भावना एवं नवीनता की ज्योति, जब कि घटती जैव विविधता संकुचन एवं समापन का प्रतिविम्ब है। थैम्पन ऐसे कृषि प्रतिरूपों की जोरदार वकालत की है, जो एक फसल की समान पौधा किस्मों के स्थान पर फसल विविधता को बढ़ावा देता है।
2. **मिट्टी की उर्वरा शक्ति एवं प्राकृतिक संवर्धन–**पोषणीय कृषि विकास की विशेषता में प्रमुख है। रसायनों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से नाइट्रेड और आर्सेनिक ने मृदा को नकारात्मक रूप प्रदान किया है। जिससे सम्पूर्ण कृषि पारिस्थितिक तन्त्र को पंगु बना दिया है। पोषणीय कृषि के अन्तर्गत मृदा उर्वरता प्रबन्धन का प्रमुख उद्देश्य बेहतर परिणाम के लिए मिट्टी को स्वास्थ्य अवस्था में रखना है।
3. **पारिस्थितिक अवसर–**पोषणीय कृषि विकास में पारिस्थितिकी तन्त्र के साथ सामजस्य बैठाने के लिए सम्पूर्ण गुन्जाइश होती है। विशिष्ट क्षेत्रों एवं देशों में भौतिक, पारिस्थितिक दशाओं एवं सामाजिक आर्थिक दशाओं के अनुसार अलग–अलग कृषि पद्धतियां अपनायी जाती है। पोषणीय कृषि विकास के लिए पारिस्थितिक विधियां प्रमुख रूप से स्तम्भ का कार्य करती है।
4. **मृदा पोषण अवसर–**पोषणीय कृषि विकास की विशेषताओं में मृदा के पोषण के लिए पोषण चक्र प्रमुख कुन्जी है। भारत में IPMS ने सकारात्मक उत्पादकता दिखलायी

है। रसायन उर्वरक के साथ सेन्द्रिय एवं जैविक खादों के प्रयोग ने फसल उत्पादकता को पहले से ही किसी समय में बहुत बढ़ा दिया गया।

5. **कीट–पतंगों प्रबन्ध–** पोषणीय कृषि विकास में समन्वित कीट प्रबन्ध के अन्तर्गत जैविक एवं सांस्कृतिक नियंत्रणों का प्रभाव एवं प्रयोग अधिकतम होता है। पोषणीय कृषि की एक प्रमुख विशेषता है कि पौध रक्षक रसायनों का कीट बीमारी एवं खरपतवार नियंत्रण के लिए प्रयोग में परहेज लाना है। पोषणीय कृषि फार्म विविधता, मृदा एवं फसलों का उन्नत स्वास्थ्य, मिट्टी के लिए लाभकारी कीटों के प्रभाव के पक्षधर है।
6. **सामाजिक आर्थिक एवं पर्यावरणीय अवसर–**पोषणीय कृषि विकास में उत्पादन होने के साथ–साथ ग्रामीण जनसंख्या की समृद्धि के लिए विकास के दरवाजे खोलने में भी समक्ष होती है। कृषि प्रणालियों विविधता में (मिश्रित कृषि, फसलों के साथ–साथ मधुमक्खी पालन, फसलों का संयोग, पशु पालन आदि) कृषकों की आय को उल्लेखनीय स्तर तक बढ़ावा देती है। जिससे पर्यावरणीय सन्तुलन को पुनर्जीवित किया जा सके। पोषणीय कृषि आय, व्यय, भोजन एवं रोजगार के विविध स्रोत उत्पन्न करती है।
7. **कृषि वानिकी –**पोषणीय कृषि विकास में कृषि वानिकी फसल–तंत्रों को स्थिर बनाती है तथा मृदा पोषण एवं सूक्ष्म जीवों को मदद प्रदान करती है। कृषि वानिकी के संयोग से बीज, फल, जलावन लड़की, चारा एवं शाक–सब्जी आदि फसलों में समृद्धि प्राप्त होती है। इससे कृषको को अधिक आय बेकार भूमि सुधार एवं उपयोग में सहायता प्रदान होती है।

पोषणीय विकास के लिए उपर्युक्त तत्वों के साथ–साथ जैव प्रौद्योगिकी और शस्य पालन, जल प्रबन्धन, दूषित जल परिष्करण एवं प्रयोग, घरेलू एवं अपशिष्ट के कृषि में प्रयोग के द्वारा लाभदायक होता है। अर्थात् विज्ञान एवं तकनीकी की उपलब्धियों के प्रयोग से पारिस्थितिक तन्त्र के तरीके से किया जाता है।

11.5 पोषणीय कृषि विकास की प्रासंगिकता –

पोषणीय कृषि की उत्पादन बढ़ाने के लिए, कृषि उत्पादन में प्रयुक्त विभिन्न यंत्रों, रासानिक उर्वरको, कीटनाशी दवाओं, संकर बीजों एवं अन्य सम्बन्धित कार्यो के लिए 'छूट या प्रोत्साहन' के रूप में निरन्तर उपयोग किया गया। उत्पादकता बढ़ाने के लिए मिछली शदी के छठवें दशक में हरित क्राति का प्रारम्भ हुआ। जिसमें बड़े पैमाने पर रासायनिक उर्वरकों के कृषि में प्रयोग के लिए देश में रासायनिक संयत्र लगाये गये। कृषि के विभिन्न तत्वों को सम्मिलित करते हुए समग्र कृषि विकास के लिए 1966–67 ई0 में एक नयी कृषि नीति तैयार की गयी। जिससे कम समय में उत्पादन में अधिक वृद्धि हो सके। हरित क्रान्ति का प्रत्यक्ष एवं सर्वाधिक प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ा। इस नयी नीति के तहत कृषि में अधिक उपज देने वाली प्रजातियों को व्यापक उपयोगी बनाया गया। जिसे प्रजाति कार्यक्रम

की संज्ञा दी गयी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अधिक उत्पादक बीजों का प्रयोग, सिंचाई सुविधाओं का विकास, भू–स्रोतों का उपयोग, रासायनिक उर्वरक पौध–संरक्षण, सस्ते कृषि की व्यवस्था, शिक्षण–प्रशिक्षण के माध्यम से नयी कृषि तकनीक को अवगत कराना।

आधुनिक कृषि की इन उपलब्धियों के साथ कुछ चुनौतीपूर्ण विसंगति को जन्म दिया। जिससे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हुई। आज के आधुनिक कृषि पद्धति में विभिन्न जहरीले रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक को डालकर खेतों को ठीक करने का दावा किया जाता है। सभी किसान एक फसले को उत्पादन करते हैं, जिससे बीमारियों के आक्रमण से कुछ भी नहीं बच पाता है। 'वर्तमान समय सबसे कष्टकारी यह है कि आज अधिकतर खाद्यान्न पदार्थ जिसमें धान्य, दलहन, तिलहन, शाक, सब्जियां सभी सम्मिलित है, कीटनाशकों से प्रदूषित है, जो कि आधुनिक कृषि की तकनीकों की देन है। आज भी पशुओं एवं मानव के ऊर्जा तन्त्र और तान्त्रिका तन्त्र को प्रभावित कर रहा है। जिसके कारण शरीर की सूक्ष्म एकता विखर रही है। जिससे जन्मजात विकलांगता पनपती है। आधुनिक रासायनिक दृष्टिकोण से उत्पन्न जटिलताओं को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **खाद्यान्न में वृद्धि**–पोषणीय कृषि की प्रासंगिकता में खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि से खाद्यान्न संकट को पूर्णरूप से टला नहीं है। जब कि खाद्यान्नों की उत्पादकता विश्व के औसत का दो–तिहाई ही है। जिससे सम्भाव्य उत्पादकता से वास्तिवक उत्पादकता बहुत कम है। जिससे राहत मात्र प्राप्त हुई है।
2. **अंशकालिक क्रान्ति**–पोषणीय कृषि विकास की प्रासंगिता में अंश कालीन आधुनिक कृषि का प्रभाव कुछ खाद्यान्न फसलों तक सीमित रहने के कारण इसे 'आंशिक क्रान्ति' भी कहा जाता है। प्रथम योजना से सांतवी योजना तक गेहूं की उपज तीन गुना चावल की उपज दो गुना ही गयी। अन्य खाद्यान्नों में कोई वृद्धि नहीं हुई है। अन्य अनाज दलहन, तिहलन, इस क्रान्ति से अप्रभावित रहे है।
3. **उपज विषमता**–पोषणीय कृषि भी प्रासंगिकता में आधुनिक कृषि में केवल गेहूं और चावल प्रभावित हुए हैं। जब कि अधिकांश फसले वंचित रह गयी है। इसलिए भोजन में कार्बोहाइट्रेट की मात्रा का अनुपात बढ़ा है और प्रोटीन और वसा का अनुपात घटा है। विशेष रूप से गरीब भारतीयों के लिए इनकी आपूर्ति कठिन है। दलहन का उत्पादन लगभग स्थिर रहा है। तिलहन फसलों पर हरित क्रान्ति का पूर्णतः प्रभाव नहीं है। वाणिज्यक फसलों यथा–गन्ना, कपास, पटसन, तिलहन में खास प्रगति नहीं हुई है। क्योंकि इससे व्यापरीकरण में बाधा उत्पन्न हो रही है।
4. **उच्च कृषि व्यय**–संपोषणीय कृषि विकास की प्रासंगिकता में उच्च कृषि लागत में कई गुना वृद्धि हुई है, जबकि कृषि उपज में कोई सार्थक वृद्धि परिलक्षित नहीं होती है। हरित क्रान्ति के पूर्व सीधे गेहूं का आयात होता था, वर्तमान में उसका स्थान उर्वरक ने ले लिया है।

5. **उत्पादकता में दृढता**—कृषि विकास की प्रासंगिकता में कृषि उत्पादन दर दीर्घकाल में 3 प्रतिशत दर को पार नहीं हो पायी है। जिससे वर्तमान समय में उत्पादकता को बनाये रखने के लिए उर्वरक जैसे निवेश की मात्रा बढ़ाना है। जिससे देश की खाद्य फसलों के उत्पादन में स्थिरता की प्रवृत्ति प्रकट हो रही है।
6. **प्रादेशिक विषमता में वृद्धि**—पोषणीय कृषि विकास की प्रासंगिकता में आधुनिक कृषि की विकास दर में प्रखर क्षेत्रीय असमानता देश में प्रादेशिक असन्तुलन बढ़ रहा है। इस कृषि पद्धति से बहुत कम क्षेत्र लाभ प्राप्त कर पा रहे हैं। इस प्रकार इस आधुनिक पद्धति की सफलता मुख्य रूप से पंजाब, हरियाणा, पंश्चिमी उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र व गुजरात के कुछ भागों तक सीमित रही। जिससे इस क्रान्ति को उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली है।
7. **फार्म आय फेलाव में असमानता**—पोषणीयता विकास की प्रासंगिकता आधुनिक कृषि के ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आय का स्तर उन्नत हुआ है। परन्तु इसमें तीव्र असमानता मिलती है। बड़े कृषक उत्पादकता बढ़ाने वाले और लागत कम करने वाले नवाचारों को सर्वप्रथम अपनाते है, जबकि छोटे अनपढ़ किसान इससे पीछे रह जाते हैं।
8. **वर्तमान की कृषि पद्धति का पर्यावरण पर दुष्प्रभाव**—पोषणीय कृषि विकास की प्रासंगिकता में वर्तमान कृषि पद्धति का दुष्प्रभाव भूमि की प्राकृतिक उर्वरा शक्ति में ह्रास, भूमि का दलदली तथा ऊसर होना, भू—गर्भ जल संतुलन का भंग होना, बीज—विविधता का समाप्त होना, खाद्य पदार्थो का विषाक्त होना, वातावरण का ह्रास आदि रूपों में प्रकट होने लगा है। आधुनिक कृषि के कारण पारिस्थितिक तन्त्र भी दुष्प्रभावित होने लगा है।

11.6 पोषणीय कृषि का सिद्धान्त —

पोषणीय कृषि विकास के लिए तकनीकी रूप से मुख्यतः तीन सिद्धान्त के बारे उल्लेख है—

1. पोषणीय कृषि में जटिलता एवं किस्म—

विविधता का अभिप्राय 'अनेकता' से है। अर्थात् एक ही स्थान पर विभिन्न प्रकार के जीवित अथवा अजीवित वस्तुओं का पाया जाना प्रकृति के मूल स्वरूप में ही विविधता पायी जाती है। जैव विविधता जितनी अधिक होगी जैव उत्पादकता उतनी अधिक होगी। पोषणीय कृषि के लिए विविधता का होना आवश्यक है। जिससे पौधों जीव—जन्तुओं की अनेक प्रणालियों को प्रयोग में लाया जा सकता है। नियोजित कृषि के साथ, वृक्षों का साहचर्य, अनेक फसलों को बोने, फसलों के चक्रीय क्रम को बढ़ाने अनेक गतिविधियों द्वारा विविधता को बढ़ाया जा सकता है। 'जटिलता' का अर्थ भी अनेकों प्रकार से उपयोग में

लाकर जाता है। प्रत्येक अवयव को पूरी तरह से (चक्रयी ढंग से) उपयोग में लाकर प्राप्त किया जा सकता है। जैसे–धान का प्रयोग अनेकों सकार से किया जा सकता है–

1. पौधों के चावल भोजन का चारे के रूप में प्रयोग करना।
2. पौधों के बचे भाग का चारे के रूप में प्रयोग।
3. पौधे के अवशिष्ट का कम्पोस्ट के रूप में प्रयोग।
4. अनाज को बेचकर धन को प्राप्त करना।

जहां एक ओर उत्पादकता किसी के लिए किसी एक वस्तु पर निर्भरता घटती है। जो आम में बढ़ोत्तरी सुनिश्चत होती है।

2. मृदा की सजीवता –

पोषणीय कृषि विशेषज्ञों के अनुसार मृदा वह जीवित संसाधन है, जो अनेक जीव–जन्तुओं को धारण किये रहती है। मिट्‌टी में अनेक प्रकार के जीव–जन्तु निवास करते हैं। मिट्‌टी की तुलना, जन्तुओं के शरीर में स्थित पाचक तन्त्र से ही की जा सकती है। जो जटिल भोजन को रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं के द्वारा उपयोगी तत्वों में बदल देता है। मिट्‌टी की सुरक्षा तथा उर्वरा शक्ति बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक है। मृदा को मुख्य रूप से हवा, पानी, गर्मी तथा विषाक्त पदार्थो से खतरा रहता है। इनसे बचने के लिए किसी न किसी प्रकार की वनस्पति से ढ़ककर रखना चाहिए। यह मिट्‌टी में रहने वाले जीवों तथा उगने वाले पौधों के स्वास्थ्य पर निर्भर रहती है।

3. पोषक व सम्पदा का चक्रीय क्रम –

प्रकृति के प्रत्येक चक्रीय क्रम से प्रत्येक अंग बंधे हुए हैं। जिसके कारण प्राकृतिक संसाधनों की कमी नहीं होती, जो एक चक्रीय क्रम में बंधे होते हैं। इनकी चक्रीयता को तोड़ने का परिणाम आज अनेक समस्याएं सामने दिखाई पड़ती है। कृषक का खेत भी एक इकाई है, जिसे जहां तक सम्भव हो सके, जो अपने में पूर्ण होना चाहिए। यह व्यवस्था स्थायी होनी चाहिए। यह आत्मनिर्भरता तभी होगी, जब खेत के पोषक तत्वों, ऊर्जा जल, वस्तुएं चक्रीय रूप से चलती रहे। अतः पोषणीय कृषि में पोषणों व संसाधनों के चक्रीय क्रम को निर्बाधित या न्यूनतम हस्तक्षेपित रखा जाता है।

11.7 पोषणीय कृषि के संघटक –

पोषणीय कृषि मुख्य रूप से फसल चक्र, उर्वरता उपयोग, कीट एवं व्याधियों की नियंत्रक विधियां रासायनिक कृषि से भिन्न होती है। पोषणीय कृषि विकास के निम्न घटक है–

1. **जैव उर्वरक–**कम्पोस्ट, भूसा एवं फसल अवशेष अन्य फसल उत्पाद, गोबर की खाद, जीवाणु खाद, हरी खाद अवशेष फसल आदि के माध्यम से भूमि के पोषक तत्वों की

पूर्ति की जाती है। इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय गुणवत्ता बनाये रखने में सहायक होती है। पोषणीय कृषि करने वाले कृषक, जलीय खरपतवार, खली एवं मछली खादों का भी प्रयोग करते हैं। आर्गेनिक खादों के प्रयोग से भूमि में कार्बनिक तत्वों की मात्रा में वृद्धि होगी, जो धारणा क्षमता में वृद्धि करेगी। फसल चक्र में मिट्टी की उर्वरता बनाये रखने के लिए दलहन फसलों को सम्मिलित किया जाय।

2. **जैव कीट पर अंकुश**—पोषणीय कृषि में कीट व्याधियों में नियंत्रण कृषिकों व कृषि वैज्ञानिकों दोनों के लिए एक विकट समस्या है। कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसमें वानस्पतिक कीटनाशक, जैसे—नीम आधारित उत्पादों को बढ़ावा देना।
3. **गैर रासायनिक खरपतवार नियंत्रण**—पोषणीय कृषि में कृषक खरपतवार नियंत्रण के लिए यांत्रिक विधियों का अधिक प्रयोग करते हैं। जिससे खरपतवार का उपयोग कम से कम किया जा सके। क्योंकि ये पर्यावरण प्रदूषण के मुख्य घटक से बचाया जा सके।

11.8 पोषणीय कृषि हेतु कार्य—योजना —

पोषणीय कृषि विकास के कार्य योजना में वर्तमान आवश्यकताओं का अवलोकन करते हुए कृषि प्रणाली का पोषणीय कृषि में अचानक स्थानान्तरण नहीं किया जा सकता है। हरित क्रान्ति का क्रम जिस प्रकार सोपानिक रहा, उसी प्रकार से पोषणीय कृषि की विभिन्न प्रणालियों का प्रतिस्थानान्तरण क्रमशः होगा। पोषणीय कृषि को अपनाने के लिए समुचित व्यवस्था या प्रबन्धन के लिए रूकने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए पोषणीय कृषि विधियों का सुविधानुसार कहीं से प्रारम्भ करें। प्रारम्भ में इस पद्धति को अकार्बनिक कृषि के सन्दर्भ में जांच के लिए अपनाये तथा अपने अनुभव के आधार पर आगे बढ़ाये। पोषणीय कृषि विकास के लिए प्रमुख कार्य योजना निम्न है—

1. जैविक साधन से पौधों का पोषण —

जैविक स्रोत के माध्यम से पौधों का पोषण के लिए निम्न बिन्दु आवश्यक हैं—

1. मृदा परीक्षण—मृदा को स्वास्थ्य बनाने में मिट्टी का स्वास्थ होना, जिससे कि मृदा की सजीवता बनी रहे। फसल चक्र—दलहन, तिलहन, अनाज, नकदी फसले आदि सभी भूमि की उर्वरता बनाये रखते हैं।

2. कम्पोस्ट—जैविक खाद व कम्पोस्ट को उपलब्ध कराने हेतु जीवांश की संरक्षित करें।

(अ) जीवांश को कभी न जलाये।

(ब) पोस्ट बनाने की विधि को अपनाये।

(स) बायो गैस को अपनाये—खेतो के लिए जीवांश बनाये।

4. **वर्मी कम्पोस्ट**–केचुए जल्दी से जैव पदार्थो को कम्पोस्ट में बदल देते हैं। इसलिए केचुए को संरक्षित करने की आवश्यकता है।

2. रासायनिक पौध–पोषण –

पोषणीय कार्य योजना के लिए जैव पौध पोषण की कमी की पूर्ति के लिए रासायनिक उर्वरको का प्रयोग किया जाय। रासायनिक उर्वरक का उपयोग उपयुक्त स्थान पर किया जाय।

3. जल प्रबन्ध व भूमि प्रबन्ध–

1. **जल प्रबन्ध**– पोषणीय कृषि विकास योजना में जल प्रबन्धन के लिए खेतों का पानी खेत में रहे, इसके लिए खेतों में हल्की मेड़बन्दी करें। जिससे प्रत्येक खेत फार्म में छोटा तालाब हो, भूमि जल क्षमता के अनुसार दोहन करे वर्षा पर आश्रित होने पर उपलब्ध जल का उपयोग सही बीज अंकुरण जीवन रक्षक सिंचाई के लिए करें।
2. **भूमि प्रबन्ध**–पोषणीय कृषि विकास योजना में भूमि का शोषण, क्षरण, लवणीयता, व जल जमाव से बचाये। खेत की मिट्टी खेत में रहे, इसके लिए चारों तरफ नाली व हल्फी मेड़ को बनाये। जिससे न्यूतनम जुताई पद्धति को अपनाये। भूमि पर किसी जीवांश को नहीं जलाये, अन्यथा भूमि की जैव क्रिया विपरीत रूप से प्रभावित हो जाती है। जैव पदार्थ क्षारीय व लवणीय भूमि सुधार का सशक्त माध्यम है जिनका उपयोग भूमि को स्वास्थ्य रखने में किया जाय।

3. **पारिस्थितिक सन्तुलन**–पोषणीय कृषि कार्य विकास योजना में पारिस्थितिक सन्तुलन बनाने के लिए पक्षी, सरीसृप वर्ग व मेढ़क को संरक्षण प्रदान करें। क्योंकि ये सभी कीटों को नियंत्रण में रखते हैं। प्रकाश प्रपंच व फिरोमेन प्रपंच का उपयोग करें। वे कीट तीव्रता का संकेत देते हैं। एण्टीफीडेण्ट, कम जहरीले रसायनों का उपयोग उचित समय व मात्रा में करें। अतः पोषणीय कृषि विकास के लिए अनिवार्य है कि अभीष्ट देश/प्रदेश में पारिस्थितिक प्रदेशों की पहचान कर उसके अनुरूप कृषि का स्वरूप स्थापित किया जाय। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय दृष्टि से कृषकों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति बाधक न हो, ऐसी कृषि की पोषणीय कृषि का नाम दिया जाता है।

11.9 पोषणीय कृषि विकास का उपाय –

पोषणीय कृषि विकास के लिए सामान्य भूमि उपयोग संक्षिप्त प्रारूप अथवा सतत् विकास की योजना आवश्यक है। जिससे वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही साथ लम्बे समय तक आवश्यकता की पूर्ति का मार्ग प्रस्तुत हो सके। सतत् कृषि विकास के विस्तार के लिए निम्न उपाय है–

1. **समन्वित जल इंतिजाम**—पोषणीय कृषि विकास के उपायों में कृषि के लिए जल आधारभूत संसाधन है। देश विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में धरातलीय एवं भू–गर्भ जल की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है। इसके समुचित प्रबन्धन की। जल प्रबन्धन के लिए निम्न सुझाव है– (अ) बाढ़ से सुरक्षा (ब) जल निकास की व्यवस्था (स) भू–गर्भ जल–प्रबन्धन के लिए निषेधात्मक, उपचारात्मक एवं प्रतिकारक तीनों उपाय की समन्वित प्रयास की तात्कालिक आवश्यकता है।
2. **पारिस्थितिक स्थिति के अनुरूप कृषि**—पोषणीय कृषि विकास के उपायों में कृषि पारिस्थितिक दशाओं के अनुरूप शस्य प्रतिरूप और कृषि पद्धति अपनायी जाय। प्रत्येक क्षेत्रों की धरातलीय बनावट अपवाह तन्त्र, वर्षा की मात्रा, मिट्टी की उर्वरता, मिट्टी की संरचना, भू–गर्भ जल स्तर, बाढ़ की आवृत्ति एवं तीव्रता में भिन्नता पायी जाती है। भूमि उपयोग प्रारूप को अपनना पोषणीय कृषि विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।
3. **शस्य विभेद में अभिवृद्धि**—पोषणीय कृषि विकास के उपाय में देश व प्रदेश स्तर पर शस्य विविधीकरण की पर्याप्त सम्भावनाएं पायी जाती है। जिससे देश व प्रदेश की आर्थिक, सामाजिक व पारिस्थितिक पोषणीयता की दृष्टि से अनिवार्य है।
4. **कृषि वानिकी का विकास**—पोषणीय कृषि विकास के उपाय में फसलों के साथ–साथ वृक्षों को भी प्रति इकाई भूमि पर उगाया जाय, तो इसे कृषि वानिकी के नाम से जाना जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रति इकाई क्षेत्र के उत्पादन की बढ़ाना व नियोजित करना, जिससे भूमि का सुचारू रूप से लम्बे समय तक उपयोग हो सके।
5. **जैव उर्वरा का प्रयोग**—पोषणीय कृषि विकास के उपायों में मिट्टी एक पारिस्थितिकी तन्त्र है। पर्यावरण का एक अभिन्न अंग है। खेतों में मृदा जीवन तथा उसके सूक्ष्म जीव फलेगें और फूलेगें मिट्टी की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होगी। गोबर की खाद को नवीनतम शोध के आधार पर सूक्ष्म पोषक तत्वों का पूरक माना जाता है। जिससे मिट्टी की बेहतर बनाने में सहयोग देती है। हरी खाद के प्रयोग से मृदा के समृद्धिकरण की प्रचुर सम्भावना है। फसल अवशिष्ट (धान की भूसी मूंगफली का अवशेष, ज्वार–बाजरा अवशेष, मक्के के अवशेष) आदि को सीधा खेतों में जोतकर कम्पोस्ट बनाकर प्रयोग किया जा सकता है।
6. **केंचुआ खाद**—पोषणीय कृषि विकास के उपायो में जो वैज्ञानिक केचुआ को प्राकृतिक उर्वरक के कारखाने कहते हैं। जो कि सड़े–गले ब्यर्थ जैविक पदार्थो व कूड़े–करकट को उत्तम खाद में परिवर्तित करके मिट्टी की उपज को बढ़ाते हैं। केचुए सड़ी–गली चीजों व फसल के अवशेष को खाकर उन्हें उत्तम जैविक खाद 'वर्मी कम्पोस्ट' या वर्मी कास्टिंग में बदल देते हैं। जिससे पोषणीय कृषि विकास का प्रमुख निवेश हो सकता है।
7. **समन्वित कीट प्रबन्ध**—पोषणीय कृषि विकास के उपाय के लिए रासायनिक कीटनाशकों का प्रभावी निरापद विकल्प अपरिहार्य है। जिससे रासायनिक कीटनाशकों से होने वाली समस्याएं जैसे–खाद एवं पेय विषाक्त, भूमि की उर्वरता

ह्रास, पर्यावरण प्रदूषण, दूरगामी कुपरिणाम, (परभक्षी और परजीवी कीटो के विनाश) आदि समस्या से बचा जा सके। समन्वित कीट प्रबन्धन बेहतर विकल्प हो सकत है।

11.10 पोषणीय कृषि विकास के मुख्य बिन्दु –

पोषणीय कृषि विकास के लिए मुख्य बिन्दु निम्न है–

1. मिट्टी को जैविक माध्यम से कृषि, बागवानी, वृक्षारोपण, आदि का आधार स्थायी कृषि पद्धति होनी चाहिए।
2. मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए सभी जैविक एवं कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थो को खेतों में वापस डालना चाहिए।
3. वर्मीकल्चर व कम्पोष्ट उत्पादन के संशोधित तरीके को विकसित व प्रोत्साहित करना चाहिए।
4. मूल स्थानीय बीजों का प्रयोग में लाया जाना चाहिए। जिससे स्थानीय परिस्थितियां अनुकूल रहे।
5. कृषि–वानिकी, कृषि चारागाह वानिकी पद्धतियों को उत्पादकता एवं भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए अपनाना चाहिए।
6. पोषणीय कृषि आन्दोलन को पोषणीय जीवन पद्धति की ओर एक आवश्यक कदम समझना चाहिए।
7. पोषणीय कृषि विकास के लिए सभी कार्यरत संस्थाओं को आगे बढ़ना चाहिए। जिससे नीति परिवर्तन के लिए, हमें प्रकृति के साथ समन्वय में कार्य करना चाहिए, न कि इसके विरूद्ध।

11.11 सारांश –

आप ने इस इकाई में पोषणीय कृषि, पोषणीय कृषि पद्धति, पोषणीय कृषि की विशेषताएं, पोषणीय कृषि की प्रासंगिकता, पोषणीय कृषि के सिद्धान्त एवं उसके घटक, कार्य–योजना महत्व एवं मुख्य बिन्दु के बारे में अध्ययन किया है। अब आप समझ गये होगें कि पोषणीय कृषि क्या है, पोषणीय कृषि की विभिन्न पद्धति–जैविक पद्धति, कार्बनिक पद्धति, परम्परागत पद्धति क्या है? पोषणीय कृषि की प्रासंगिकता एवं सिद्धान्त, पोषणीय कृषि विकास की कार्य–योजना को कैसे बनाया जा सकता है। पोषणीय कृषि विकास के विभिन्न आयामों के माध्यम से समझाया गया है।

11.12 शब्द सूची –

Sustainalble	–	पोषणीय
Traditinal	–	परम्परिक
Organic	–	कार्बनिक

Bioligical	–	जैविक
Ecological	–	परिस्थितिक
Primitive Agriculture,	–	आदिम कृषि
Mechanised farming,	–	यान्त्रिकी कृषि

11.13 स्व मूल्यांकित प्रश्न एवं आदर्श उत्तर –

1. डॉ0 रूडोल्क स्टीनर ने जैव गतिक पर अपने व्याख्या कब प्रस्तुत किये।
   अ– 1920 ब– 1921 स– 1931 द– 1940
2. पोषणीय कृषि विकास के कितने सिद्धान्त हैं।
   अ– तीन ब– चार स– पांच द– दो
   अ– 1966–67 ई ब– 1967–68 ई स– 1968–89 ई0 1961–62 ई
3. पोषणीय कृषि विकास कितने घटक है।
   अ– दो ब– चारस– तीन द– पांच
4. समग्र कृषि विकास नीति कब तैयार की गयी।
   अ– 1966–67 ब–1967–68 स 1968–69 द–1961–62

आदर्श उत्तर

1. (अ)1920 2. (अ) तीन 3. (स) तीन
4. (अ) 1966–67 ई0

11.14 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तक –

1–प्रोफेसर रामचन्द्र तिवारी व बी एन सिंह, कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।
2–डॉ अलका गौतम, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भंडार, प्रयागराज।
3–माजिद हुसैन, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4– Hettner, A. "Das wesen and die methoden der geographie." GeographischeZeitschrift, Vol. 2.
5– बी0एल0 शर्मा, कृषि भूगोल, साहित्य भवन, आगरा,

11.15 अभ्यास प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी) –

1. पोषणीय कृषि विकास पद्धति के बारे में लिखिए।
2. पोषणीय विकास की क्या प्रासंगिकता है।
3. पोषणीय कृषि विकास के घटक के बारे में लिखों।
4. पोषणीय कृषि विकास की क्या विशेषता है।
5. पोषणीय विकास की कार्य–योजना के बारे में बारे में लिखो।

MAGO-104 कृषि भूगोल

इकाई 12– कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन

इकाई की रूपरेखा–

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 कृषि जलवायु
12.4 कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन
  12.4.1 मृदा इंतिजाम
  12.4.2 सिंचाई विकास
  12.4.3 जल विभाजन विकास
  12.4.4 फसल नियोजन
  12.4.5 बागवानी कृषि
  12.4.7 मत्स्य विकास
  12.4.8 रोपण कृषि
  12.4.9 रोजगार आयाम
12.5 सारांश
12.6 शब्द सूची
12.7 परीक्षोपयोगी प्रश्न
12.8 महत्वपूर्ण पुस्तकें
12.9 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना–

भारत भूगोल के इस इकाई में आप कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन से सम्बन्धित अनेक बिन्दुओं का अध्ययन करेंगे। जलवायु तथा कृषि के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे, कृषि जलवायु प्रदेशों का भी अध्ययन करेंगे, कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन में मृदा इंतिजाम, सिंचाई विकास, जल विभाजन, फसल नियोजन, बागवानी कृषि, मत्स्य विकास, रोपण कृषि, पशुपालन तथा रोजगार आयाम आदि बिन्दुओं का अध्ययन करेंगे। मृदा इंतिजाम कृषि जलवायु प्रदेश के संदर्भ में किया जायेगा, इसके अनुरूप ही मृदा का विकास तथा प्रबन्ध किया जायेगा, पशु पालन कृषि जलवायु प्रदेश के अनुरूप उसके विकास, शंकर प्रजाति के विस्तार तथा दुग्ध व्यवसाय का नियोजन किया जायेगा, इसी प्रकार अन्य बिन्दुओं की समस्या, विकास, विस्तार तथा प्रोत्साहन किया जायेगा।

12.2 उद्देश्य–

कृषि भूगोल के इस इकाई का आप अध्ययन करने के बाद–

- कृषि जलवायु प्रदेश के महत्व को समझ सकेंगे।

- कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन को समझ सकेंगे।
- कृषि जलवायु प्रदेश के अनुरूप मत्स्य पालन क्षेत्र, उत्पादन तथा प्रजाति का नियोजन समझ सकेंगे।
- कृषि कृषि जलवायु प्रदेश के अनुरूप कहां पर कौन–सी समस्या है उसका निवारण करने हेतु नियोजन को समझ सकेंगे।

12.3 कृषि जलवायु प्रदेश–

जलवायु तथा कृषि एक–दूसरे में गहरा सम्बन्ध होता है। जलवायु पर्यावरण का एक प्रमुख कारक है जिससे किसी क्षेत्र की कृषि एवं वनस्पति प्रभावित होती है। कृषि फसलों का विकास वनस्पतियों तथा पौधों से हुआ है। इनकी किस्में, संवर्धन तथा पैदावार आदि जलवायु के विभिन्न तत्वों द्वारा प्रभावित होते हैं। जलवायु के प्रमुख तत्वों में वर्षा, तापमान, आर्द्रता, पवन, वायुदाब तथा पवन का वेग शामिल है। इन्हीं जलवायिक तत्व से फसल प्रभावित होती है। इस प्रकार यदि जलवायु की क्षेत्रीय या प्रादेशिक विशेषताओं को ध्यान में रखकर कृषि नियोजन की रूपरेखा तैयार किया जाये तो कृषि विकास का आशानुकूल वृद्धि किया जा सकता है। कृषि जलवायु नियोजन का प्रमुख उद्देश्य प्राकृतिक तथा मानव जनित साधनों का अधिकतम वैज्ञानिक उपयोग करने से है। जिसमें मानवीय श्रम, मानीवय ज्ञान, जलवायु, मृदा स्थलाकृति, सिंचाई सुविधा तथा जल संसाधन शामिल है। भारत के योजना आयोग (1989) ने कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन के लिए निम्नलिखित चार उद्देश्य निर्धारित किये–

(I) राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य मदों की मांग पूर्ति का संतुलन स्थापित करना, जो क्षेत्रों के विभव तथा सम्भावनाओं के सावधानीपूर्वक किये गये विश्लेषण पर आधारित हो।

(II) उत्पादकों की शुद्ध आय का अधिकतम करना।

(III) अतिरिक्त रोजगार, विशेषतः भूमि हीन श्रमिकों के लिए उत्पन्न करना तथा

(IV) राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधनों (जल, जंगल, जमीन) के वैज्ञानिक तथा वहनीय प्रयोग के लिए रूपरेखा तैयार करना।

उपर्युक्त उद्दश्यों की पूर्ति हेतु योजना आयोग तथा NRSA (राष्ट्रीय दूरस्थ सवेदंन एजेन्सी) ने देश को 15 कृषि जलवायु प्रदेशों में बाटा–

(I) पश्चिमी हिमालयी प्रदेश

- इसका फैलाव जम्मूकश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश व उत्तराखंड राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश में है।
- स्थालिकृतिक विशेषताये प्रभावी है।
- लद्दाख (20 सेमी0 से कम) को छोड़कर समस्त प्रदेश में औसत वार्षिक वर्षा 75 सेमी0 से 150 सेमी होती है।

- इस प्रदेश में सदावाहिनी नदिया स्थित हैं जिनमें से कुछ का उपयोग सिंचाई तथा विद्युत उत्पादन के लिये किया जाता हैं।
- फलोत्पादन, किसानों के लिए नकदी का एक प्रमुख स्रोत हैं।
- धान इस क्षेत्र की प्रमुख फसल हैं जिसे ढालों के सहारे सीढीनुमा खेतों में उगाया जाता हैं मक्का, गेहूँ, आलू, जौ, अन्य प्रमुख फसले है।
- इस प्रदेश के लिए विवेकपूर्ण भूमि उपयोग नियोजन की अवश्यकता हैं।

(II) पूर्वी हिमालय प्रदेश

- इसका विस्तार अरूणांचल प्रदेश, असम की पहाडियों, नागालैण्ड, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, सिक्किम तथा पश्चिम बंगाल के दर्जालिंग जिले में हैं।
- इसके अन्तर्गत कुल कृषि भूमि का लगभग 33 प्रतिशत क्षेत्र स्थानांतरित कृषि या झूम कृषि के तहत आता हैं।
- इस प्रदेश में भी आसमान स्थलाकृति देखी जाती हैं।
- मृदा अपरदन एक अन्य चिंताजनक समस्या हैं, जिस पर नियोजकों का ध्यान आकर्षण करना अनिवार्य हैं।
- इस क्षेत्र में लाल–भूरी किस्म की मिट्टी पाई जाती है जो कम उपजाऊ होती हैं।

(III) सतलज–यमुना मैदान

- यह क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, चण्डीगढ, दिल्ली तथा राजस्थान के गंगानगर जिले में फैला हुआ हैं।
- यहाँ की जलवायु की अर्द्धशुष्क विशेषताएँ हैं।
- इस प्रदेश में कृषि की सघनता (16.5प्रतिशत) देश भर में सबसे अधिक हैं।
- कृषि के परिप्रेक्ष्य में यह क्षेत्र देश भर में सबसे उन्नत कृषि प्रदेश हैं।

(IV) गंगा का ऊपरी मैदान

- इसका विस्तार पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के हरिद्वार एवं उधमसिंह नगर जिले तथा प्रयागराज तक फैला हुआ हैं।
- मृदा बलुई से मृढमय दोमट प्रकार की हैं।
- इस प्रदेश मे कृषि विकसित हैं तथा यहाँ भी हरित क्रांति सफल हैं।

(V) मध्यगंगा मैदान

- इसका विस्तार उत्तर प्रदेश तथा बिहार के अधिकांश भाग में हैं।
- यहाँ जलोढ़ किस्म की मृदा हैं तथा भूमिगत जल की बहुतायत हैं।

(VI) गंगा का निचला मैदान

- इसका विस्तार ब्रह्मपुत्र घाटी, पश्चिम बंगाल (दार्जिलिंग जिले को छोड़कर) तथा पूर्वी बिहार में हैं।
- मृदा जलोढ़ तथा उपजाऊ हैं।
- चावल इस क्षेत्र की प्रमुख फसल हैं। एक ही खेत से किसानों द्वारा हर वर्ष दो या तीन लगातार चावल की फसले (अमन, बोरा, असु) प्राप्त की जाती हैं।

(VII) पूर्वी पठार तथा पहाडियाँ

- इस कृषि जलवायु प्रदेश में छोटानागपुर का पठार शामिल हैं, जिसका विस्तार झारखण्ड, छत्तीसगढ, तथा दण्डकारण्य (ओडिशा) में हैं।
- मृदा लाल तथा पीले किस्म की होती हैं।
- इस क्षेत्र की कृषि मुख्यतः वर्षा आधारित होती हैं।
- जल एकत्रण तथा जलविभाजक का विकास तथा मृदा संरक्षण कृषि को अधिक लाभकारी बना सकते हैं।

(VIII) अरावली—मालवा उच्चभूमि

- इसका विस्तार बुंदेलखण्ड, बघेलखण्ड, महाभारत पठार, मालवा पठार, विंध्याचल पहाड़ शामिल हैं।
- इस प्रदेश की विशेषता अर्द्ध शुष्क जलवायु स्थिती हैं।
- मृदा मिश्रित पीले, लाल तथा काले रंग की होती है।
- यहाँ जलाभाव देखने को मिलता हैं।

(IX) महाराष्ट्र के पठार

- इसका विस्तार मुख्यतः दक्कन के पठार में है।
- यह क्षेत्र काली कपासी या रेगुर मिट्टी का क्षेत्र है।
- इस क्षेत्र में डेरी उद्योग के विकास, मुर्गीपालन तथा सामाजिक वानकी पर अधिक ध्यान किया जाना चाहिये।

(X) दक्कन का भीतरी प्रदेश

- यह क्षेत्र कर्नाटक, आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडू के उच्च भूमि (उत्तर में अदिलाबाद जिले से लेकर द0 में मदुरई जिले तक) में फैला हुआ हैं।
- यह शुष्क कृषि का क्षेत्र हैं।

(XI) पूर्वी तटीय मैदान

- इस प्रदेश का विस्तार ओडिशा और आन्ध्रप्रदेश, के कोरोमण्डल तथा उत्तरी सरकार तट में हैं।

(XII) पश्चिमी तटीय मैदान

- इस क्षेत्र का विस्तार महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा केरल के सीमान्त क्षेत्रों में हैं।

- उत्तर में इसे कोकंण तटीय मैदान तथा दक्षिण में इसे मालावार तटीय मैदान कहा जाता हैं।

(XIII) गुजरात के मैदान तथा पहाडियां

- इस प्रदेश में काढियावाड़ के मैदान एवं पहाडियों तथा माही व साबरमती नादियों की उर्वर घाटिया शामिल हैं।
- यह एक शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्र हैं।

(XIV) पश्चिमी राजस्थान

- इस प्रदेश का विस्तार राजस्थान (अरावली के पश्चिम में) तथा उत्तरी गुजरात में हैं।
- बाजरा, दलहन व चारा महत्त्वपूर्ण फसल हैं जिससे इस मरूस्थलीय पारिस्थतिकी में पशुधन महत्त्वपूर्ण हो जाता हैं।

(XV) द्वीपीय प्रदेश

- इस क्षेत्र में अडंमान व निकोबार तथा लक्षद्वीप सम्मलित हैं।
- यह भूमध्यरेखीय एवं उष्ण कटिबंधीय जलवायु होती हैं।
- हल्दी तथा 'कसावा' इस प्रदेश की मुख्य फसले है।

सारणी–1

प्राकारिकी के रूप में प्रादेशिक विशेषता

क्र0सं0	प्रकारिकी	प्रदेश
1	काफी मात्रा में जल एवं मृदा संसाधन, उच्च भूमि उत्पादकता (उपज फसले) भूमि पर समान्य जन दबाव	III
2	काफी मात्रा में जल एवं मृदा संसाधन, मध्यम उत्पादकता स्तर, भूमि पर सामान्य जन भार, भूमि गुणवत्ता के संदर्भ में पर्यावरण अध्ययन।	IV
3	काफी मात्रा में जल एवं मृदा संसाधन, निम्न उत्पादकता स्तर, भूमि पर भारी जनसंख्या दबाव, मृदा समस्याओं में वृद्धि।	V, VI
4	जल एवं भूमि संसाधन की पिपुलता, निर्वाहक कृषि की प्रधानता सहित भूमि की बहुत कम उत्पादकता कम जनसंख्या दबाव, समस्याग्रस्त	VII, VIII

	मृदाओं का भारी अनुपात	
5	जल एवं मृदा संसाधनों की कम अनुकूलता, कम उत्पादकता, कम से मध्यम जनसंख्या दबाव, मृदा अपरदन एवं जल गुणवत्ता के संबंध में बिगड़ता पर्यावरण।	IX,X
6	काफी मात्रा में जल संसाधन परन्तु अपेक्षतया विपल भूमि, मध्यम उत्पादकता मध्यम से	XI,XII,XV
7	कम अनूकूल जल एवं भूमि संसाधन, निम्न उत्पादकता, कम जनसंख्या दबाव, कमजोर पारिस्थितिक तंत्र।	I, II
8	अर्द्ध शुष्क से शुष्क मौसमी दशाये, मामूली अच्छी भूमि गुणवत्ता एवं भूमि उत्पादकता साधारण जनसंख्या दबाव।	XIII
9	शुष्क मौसमी दशाये, वृहत परन्तु कम उपजाऊ मृदा संसाधन, अल्पल्प भूमि उत्पादकता कम जनसंख्या दबाव, कमजोर परिस्थितिक तंत्र।	XIV

सारणी–2

कृषि जलवायु प्रदेशों में शस्य समुह प्रमुख विशिष्टता

क्र0सं0	**शस्य समूह**	**प्रदेश**
1	चावल	V,VI,VII,IX
2	गेहूँ	III,IV,V,VIII
3	ज्वार	VIII,IX,X
4	दलहन	III,VIII,IX
5	तिलहन	VIII, IX,X,XIII
6	कपास	III,IX,X,XII
7	गन्ना	IV,V,IX,X
8	फल व सब्जिया	IV,V,VI,VII

12.4 कृषि जलवायु प्रदेश का नियोजन–

कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन हेतु भारतीय योजना आयोन ने हर एक प्रदेश के

लिए एक टीम का गठन किया है। इन टीमों का अध्यक्ष उस प्रदेश के कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति बनाया जाता है। इसके साथ ही राज्य वन एवं कृषि विभागों के वरिष्ठ अधिकारी, योजना आयोग, केन्द्र के कृषि और जल संसाधन मंत्रालयों के प्रतिनिधि भी टीम के सदस्य होंगे। पर्यावरण, वित्त, सहकारिता विभागों तथा स्वयं सेवी संगठन तथा राष्ट्रीय सुदूर संवेदी अभिकरण का कम से कम एक सदस्य को परामर्श के लिए टीम में स्थान दिया गया है। यह टीम कृषि जलवायु प्रदेश से सम्बन्धित तत्वों के लिए नीति तथा योजनाओं का निर्माण करेगी। इस नियोजन में कुछ बिन्दुओं पर विशेष बल दिया जायेगा।

मृदा इंतिजाम–

कुछ प्रदेशों की मृदा में प्राकृतिक तथा मानवीय क्रिया–कलाप से लवणता, क्षारीयता तथा अम्लता में वृद्धि होने से समस्याग्रस्त क्षेत्र का विकास हो रहा है। जहां की मृदा कृषि के लिए अनुपयुक्त होती जा रही है। प्रदेश संख्या V, VII, XI, XII तथा XIII में कुछ ऐसे भाग हैं जहां संरक्षण तथा पुनरुद्धार के लिए प्रादेशिक योजना टीम ने अपना सुझाव प्रस्तुत किया है। क्षारीय व लवणीय मृदा हेतु 5t/ हेक्टेयर जिप्सम तथा अम्लीय मृदा हेतु 3t प्रति हेक्टेयर चूने का उपयोग करके मृदा में सुधार करके उपजाऊ बनाया जा सकता है। योजना आयोग द्वारा प्रदेश संख्या V के 8 जनपदों में उत्तर प्रदेश सरकार के बंजर भूमि सुधार कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान की है। इस कार्यक्रम का निर्वहन जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत किया जायेगा।

सिंचाई विकास–

प्रदेश संख्या एक (I) भूमिगत जब सिंचाई व्यवस्था के मामले में सम्पन्न हैं। इस प्रदेश में प्रति घण्टा 5 से 20 क्यूमेक जल का इस्तेमाल किया जा सकता है। प्रदेश संख्या (II) में 50 क्यूमेक प्रति घण्टा है एवं ब्रह्मपुत्र मैदान में 150 क्यूमेक प्रति घण्टा है। प्रदेश संख्या II, IV, V एवं VI में भूमिगत का विस्तृत भण्डार पाया जाता है। इस प्रदेश से 20 से 150 क्यूमेक प्रति घण्टा की दर से जल का इस्तेमाल किया जा सकता हैं इस प्रदेश के कुछ भाग में अधिक सिंचाई होने के कारण वहां की भूमि लवणीय हो रही है। प्रदेश संख्या VI में जल का इतना इस्तेमाल किया गया है कि वह अपने चरम सीमा पर पहुंच चुका है। प्रदेश संख्या VII, VIII एवं IX के पठारी भाग में भूमिगत जली की मात्रा बहुत कम पायी जाती है। मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा में भूमिगत जल क्षमता का मात्रा 4 से 8 प्रतिशत तथा महाराष्ट्र में 19 प्रतिशत है। आन्ध्र प्रदेश में 20 प्रतिशत तथा तमिलनाडु में 40 प्रतिशत भूमिगत जल का सिंचाई के कार्यों में इस्तेमाल किया जाता है। प्रदेश संख्या XI, XII एवं XIII तटवर्ती क्षेत्र का भाग हैं जहां भुमिगत जल विकास 12 से 25 प्रतिशत के मध्य पाया जाता है। प्रदेश संख्या XIV राजस्थान में भूमिगत जल की कमी पायी जाती है इस क्षेत्र में वर्षा के कमी के कारण 30 प्रतिशत भूमिगत जल का इस्तेमाल किया जा चुका है। प्रदेश संख्या III, VII, X तथा XI में तालाबों की मरम्मत, तालाब के बंधको को मजबूत, चारों ओर वृक्षरोपण करने तथा अवसदों की सफाई एवंज ल निकासी कि व्यवस्था शामिल हैं। लघु सिंचाई परियोजनाओं के अन्तर्गत प्रदेश संख्या VII, VIII, IX में 2 लाख, प्रदेश संख्या X, XI, XII एवं XIII में एक लाख तथा प्रदेश संख्या I, II एवं XIV में 25 हजार नया कुआं प्रति वर्ष

बनाने की संस्तुति की गई है।

जल विभाजन विकास–

कृषि क्रिया–कलाप के विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। जल विकास के लिए आठवीं पंचवर्षीय योजना में एक समेकित जल–संभर क्षेत्र विकास कार्यक्रम का शुरुआत किया गया है जिसका मुख्य उद्देश्य जल विभाजन क्षेत्र में मृदा संरक्षण, चारागाह विकास, कृषि वानिकी, उद्यान कृषि तथा फसल उत्पादन का बढ़ावा करना है। सम्पूर्ण मध्यवर्ती तथा दक्षिणी पठारी भाग एवं पहाडियां अर्द्ध–शुष्क जलवायु प्रदेश है जहां वर्षा 60 से 80 सेमी0 के मध्य पाया जाता है। यही कारण है कि इस क्षेत्र या प्रदेश में वर्षा जल का संग्रहण और भूमिगत जल के आपूरण की परम आवश्यकता हैं इसी भांति अधिक वर्षा वाले प्रदेश में मृदा क्षरण तथा नदियों में रेत के लमाव को कम किया जा सकता है। प्रदेश संख्या I तथा II जो हिमालय का पर्वतीय प्रदेश है इसमें भूमि तथा जल संरक्षण हेतु विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। मृदा अपरदन का नियन्त्रण तथा विभिन्न पर्वतीय ऊँचाई के लिए भिन्न–भिन्न शस्य प्रतिरूप को निश्चित करना, ये प्रमुख समस्या है। संतुलित जल निकास एवं जल नियोजन के माध्यम से मृदा अपरदन को रोका जा सकता है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हिमालय क्षेत्र के दो कृषि जलवायु प्रदेशों हेतु 1 लाख हेक्टेयर भू भाग के विकास का लक्ष्य बनाया गया है। जल विभाजन क्षेत्र विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 20 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में विकास की योजना है।

फसल नियोजन–

प्रदेश नियोजन टीम ने फसल विविधता और शस्य उत्पादकता के संवर्द्धन के लिए सुझाव प्रस्तुत किया है। इस समय देश के 125 मिलियन हेक्टेयर पर खाद्य फसलें हो रही है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वर्तमान सदी के अन्त तक 105 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में 250 मिलियन टन खाद्यान्नों का उत्पादन करना होगा। 70 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर द्विफसली तथा त्रिफसली विधि द्वारा उत्पादकता में वृद्धि करने की आवश्यकता है। बढ़ती जनसंख्या के कारण आने वाले दिनों में खाद्य तेलों की मांग में बहुत वृद्धि की सम्भावना है जिसकी आपूर्ति के लिए उच्च किस्म के तिलहन बीजों का प्रयोग, सिंचाई, द्विफसली एवं अन्तर्फसली पद्धति, कम समय वाली उपज का उत्पादन तथा कम खाद्यान्न उत्पादक क्षेत्र में तिलहन की खेती द्वारा किया जा सकता हैं। जबकि भारत गन्ना तथा कपास के उत्पादन में आत्म निर्भर हैं। इस फसल की और वृद्धि के लिए क्षेत्र में वृद्धि न करके इसकी उत्पादकता में वृद्धि को महत्व दिया जाना चाहिए।

बागवानी कृषि–

जहां पर खाद्यानों का उत्पादन कम होता है वहां की मृदा तथा सिंचाई सुविधा के आधार पर फलोत्पादन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि खाद्यान्न की अपेक्षा फलों का अधिक उत्पादन किया जा सकता है। जैसे– प्रदेश संख्या IV, VII एवं VIII के ऊँचे वाले क्षेत्र में चावल के स्थान पर फलों के उत्पादन में वृद्धि किया जाना चाहिए। प्रदेश संख्या IX, X, XI एवं XII जो पठारी भाग है वहां फल उत्पादन हेतु उपयुक्त स्थान पाया

जाता है। शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में फल उत्पादन अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकती है। प्रादेशिक नियोजन टीम ने बागवानी के विकास के लिए निम्न प्रदेशों अधिक उपयुक्त बताया है जिसमें प्रदेश संख्या I, II, III, IV, V, VII, VIII, X तथा XII शामिल है। प्रदेश संख्या I एवं II जो पहाड़ी भाग है यह जलवायु की भिन्नता पायी जाती है जिसके कारण यह उष्ण कटिबन्ध से लेकर शीतोष्ण कटिबन्ध तक के फल को उत्पादित किया जा सकता है। प्रदेश संख्या III, एवं IV में आम, प्रदेश संख्या V में आम, अमरूद तथा आंवला, प्रदेश संख्या IX, X एवं XII में संतरा अंगूर, नींबू का अधिक उत्पादन की सम्भावना है। बागवानी कृषि के अधिक विकास के लिए उन्नतशील बीज, शोध कार्य, डिब्बा बन्दी, परिसंस्करण, विपणन, भण्डारण तथा उच्च तकनीक को आधार बनाया जाये।

मत्स्य विकास–

मत्स्य विकास की अधिक सम्भावना उत्तर प्रदेश, हिमांचल प्रदेश तथा जम्मू कश्मीर की पहाड़ी वाले भाग में है जो प्रदेश संख्या I शामिल है। उत्तर–पूर्व के राज्य जो प्रदेश संख्या 11 में शामिल है वहां अन्तर स्थलीय मत्स्य विकास की अधिक सम्भावना है। अन्तर स्थलीय मत्स्य विकास तथा मत्स्य क्षेत्र में रोजगार को प्रदेश संख्या IV, V, VI, VII, VIII, IX, X में बढ़ाया जा सकता है। खारा जल क्षेत्र में उच्च तकनीक का विकास करके झींगा मत्स्य की वृद्धि किया जा सकता है। जैसे प्रदेश संख्या III, XI, XII, XIII है जो तटवर्ती क्षेत्र है। इसके अलावा द्वीपीय तथा तटवर्ती क्षेत्र में टूना तथा शार्क जैसी मछली का पालन किया जा सकता है। मछली उत्पादन के विकास के लिए उन्नत जलाशय, आहार, प्रजाति, परिसंस्करण, संग्रहण तथा व्यापार का विकास करके आशानुरूप मत्स्य उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

सारणी संख्या–1

क्र0सं0	प्रदेश	प्रदेश संख्या
1.	उत्तर–पश्चिम हिमालय	I
2.	उत्तर पूर्वी हिमालय	II
3.	निम्न गंगा मैदान	III
4.	मध्य गंगा मैदान	IV
5.	ऊपरी गंगा मैदान	V
6.	सतलज–यमुना मैदान	VI
7.	पूर्वी पठार	VII
8.	मध्यवर्ती पठार	VIII
9.	अरावली–मालवा पठार	IX

10.	दक्षिणी अन्तर्वतीय प्रदेश	X
11.	पूर्वी तट	XI
12.	पश्चिमी तट	XII
13	गुजरात	XIII
14.	पश्चिमी राजस्थान	XIV
15.	अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह व अन्य द्वीय	XV

यह जलवायु प्रदेश योजना आयोग तथा राष्ट्रीय दूर संवेदन संस्थान द्वारा किया गया है। जिनको 15 जलवायु प्रदेश में बांटा गया है।

रोपण फसल–

इस फसल में रबड़, ताड़–तेल, कपास, चाय, कहवा, कोको, अन्नास, केला, गन्ना, जूट वह सन शामिल है।

कहवा– प्रदेश संख्या X एवं XII जो कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल के पहाड़ी का हिस्सा है। इस क्षेत्र में कहवा का क्षेत्र तथा कहवा उत्पादन दोनों में वृद्धि कि जाने की आवश्यकता है।

रबड़– प्रादेशिक नियोजन टीम के द्वारा वर्तमान में रबड़ उत्पादन करने वाले प्रदेशों जैसे केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा त्रिपुरा आदि में नई–नई तकनीक का इस्तेमाल करके आशानुरूप रबड़ की वृद्धि की जानी चाहिए। प्रदेश संख्या X, XI और XII में रबड़ कृषि का बड़े पैमाने पर प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए।

चाय–प्रदेश संख्याI एवं II जो क्रमशः पश्चिमी हिमालय एवं पूर्वी हिमालय है तथा प्रदेश संख्या X जो दक्षिण का पठार है। जहां चाय की खेती की जाती है। इन क्षेत्रों के अलावा प्रादेशिक नियोजन टीम अन्य क्षेत्रों में इसके फैलाने की सिफारिश करती है। यह प्रादेशिक नियोजन टीम वर्तमान के चाय बगानों का रख–रखाव तथा अधिक उत्पादन पर बल देता है।

मसाला–भारत विश्व में एक प्रमुख मसाला उत्पादक तथा निर्यात करने वाला देश है। प्रदेश संख्या X, XI एवं XII काली मिर्च, प्रदेश संख्या II, X, XII इलायची, प्रदेश संख्या XII अदरक, प्रदेश संख्या I केसर तथा प्रदेश संख्या XIII लाल मिर्च, जीरा, सौंफ आदि प्रमुख उपज तथा उत्पादक क्षेत्र हैं नये–नये शोधों के द्वारा नये–नये विधियों का प्रयोग करके इनकी गुणवत्ता तथा उत्पादकता को बढ़ाने की आवश्यकता है।

पशुपालन–

पशुपालन का विकास करके प्रति व्यक्ति दुग्ध की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है जिससे लोगों के आधार में गुणवत्ता लाया जा सकता है। इसलिए चारा विकास के लिए प्रादेशिक जलवायु के अनुकूल किया जाना चाहिए। इससे चारा फसल में वृद्धि हागी। कृषि जलवायु प्रदेश के अनुसार पशुपालन क्रिया वहां पर किया जाना चाहिए जहां पर उनका विकास तथा उनसे अधिक मात्रा में उत्पादन किया जा सके। प्रदेश संख्या XIV एवं XIII में दुग्ध का अधिक उत्पादन के लिए देशी नस्ल के पशुओं में सुधार किया जाना चाहिए, पश्चिमी एवं पूर्वी हिमालय में भैसों और भेड़ों तथा सुअरों की नस्ल में सुधार किया जाना चाहिए, प्रदेश संख्या III, IV एवं VII में शंकर नस्ल के पशुओं का विकास किया जानाा चाहिए। गंगा मैदान तथा गंगा पार के क्षेत्रों में गाय, भैंस के पालन के साथ–साथ कुक्कुट पालन के लिए प्रोत्साहन, प्रदेश संख्या X एवं XI में तथा भैस तथा भेड़ पालन का विकास, पूर्वी क्षेत्र में डेरी विकास के लिए आपरेशन फ्लड के साथ जोड़ा जाना चाहिए, प्रदेश संख्या VIII एवं IX में कृषि कार्य के लिए पशुओं का उपयोग किया जाना चाहिए।

रोजगार आयाम–

नियोजन के विभिन्न आयामों में रोजगार का विस्तार किया जाना भी शामिल है। नियोजन तब–तक अपूर्ण माना जाता हैं जब तक बेरोजगारी को दून न कर दे, विशेषकर के कृषि कार्यों में लगे गरीब निर्धन तथा भूमिहीन परिवार। कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन का मुख्य उद्देश्य रोजगार का अधिकाधिक अवसर उत्पन्न कराना ताकि लोगों के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर में सुधार हो सके। रोजगार का सृजन के लिए प्रदेश संख्या V, VII और XIV का अध्ययन करके अन्य प्रदेशों को रोजगार के लिए सुझाव दिया गया है।

12.5 सारांश–

आपने इस इकाई में कृषि जलवायु प्रदेशों का नियोजन का अध्ययन किया है। आप समझ गये होंगे कि कृषि जलवायु प्रदेश कितने प्रकार के हैं। योजना आयोग द्वारा तथा राष्ट्रीय सुदूर संवेदन संस्थान द्वारा कृषि प्रदेशों का अध्ययन किया है। कृषि जलवायु प्रदेशों का नियोजन में मृदा इंतिजाम, जल विभाजन विकास, सिंचाई विकास, फसल नियोजन, बागवानी कृषि, मत्स्य विकास, रोपण फसल, पशुपालन तथा रोजगार आयाम आदि है। कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों को नियोजित करके तथा उस प्रदेश में अधिक क्रियाशील एवं विकास कर सके।

12.6 शब्द सूची–

Acidity-अम्लता,	Aquifer-जलभृत,
Animjal Husandry-पशुपालन,	Salinity–लवणता,
Soil management-मृदा प्रबन्धन,	Irrigationसिंचाई,
Crop Planning- शस्य नियोजन,	Horticulture-बागवानी,

Plantation-बागानी, Alkalinity-क्षारीयता,

Agro-Climatic Regions- कृषि जलवायु प्रदेश

Wathershed development-जल–संभर विकास,

12.7 परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. भारतीय कृषि जलवायु प्रदेश को योजना आयोग ने कितने भाग वर्गीकृत किया है?

(क) 10 (ख) 13 (ग) 15 (घ) 17

2. कृषि जलवायु प्रदेश को राष्ट्रीय सुदूर संवेदन संस्थान ने कितने भाग में बांटा है?

(क) 10 (ख) 14 (ग) 19 (घ) 15

3. कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन में किसका नियोजन किया जा सकता है–

(क) मृदा (ख) सिंचाई (ग) बागानी फसल (घ) सभी का

4. राजस्थान के थार मरुस्थल भौमजल कमी को कैसे दूर किया जा सकता है?

(क) वृक्ष लगाकर (ख) जल के दोहन पर रोक

(ग) वर्षा जल का संचयन करके (घ) सभी से

5. किस पंचवर्षीय योजना में समेकितन जल विभाजन क्षेत्र विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ किया गया–

(क) आठवीं (ख) पांचवीं (ग) तीसरी (घ) दसवीं

उत्तर–1–ग, 2–घ, 3–घ, 4–घ, 5–क

12.8 उपयोगी पुस्तकें–

8 प्रो0 रामचन्द्र तिवारी, बी0एन0 सिंह, कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।

9 अलका गौतम, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

10 माजिद हुसैन, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

11 हरेन्द्र कुमार सिंह, कृषि भूगोल के मूलतत्व, राजेश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

12.9 अभ्यास प्रश्न–

7. कृषि जलवायु प्रदेश के अनुरूप जल विभाजक तथा मृदा प्रबन्धन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

8. कृषि जलवायु प्रदेश के अनुरूप सिंचाई, विकास एवं बागवानी कृषि का नियोजन

कीजिए।

9. पशुपालन तथा मत्स्य विकास के लिए कृषि जलवायु प्रदेश के अनुरूप नियोजन कीजिए।

10. रोपण फसल एवं रोजगार विस्तार के लिए कृषि जलवायु प्रदेश के अनुरूप नियोजन।

11. कृषि जलवायु प्रादेशिक नियोजन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

MAGO- 104 कृषि भूगोल

इकाई 13– कृषि भूमि उपयोग के सर्वेक्षण पद्धतियाँ

इकाई की रुप रेखा–

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 कृषि भूमि उपयोग की संकल्पना

13.4 विश्व में कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण

13.5 कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धतियाँ

13.5.1 ब्रिटेन में भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति

13.5.2 पोलैंड में भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति

13.5.3 अमेरिकी में भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति

13.5.4 चीनी में भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति

13.5.5 रूसी में भूमि–उपयोग सर्वेक्षण पद्धति

13.5.6 भारत की भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति

13.6 सारांश

13.7 शब्द सूची

13.8 स्वमूल्यांकन बहुविकल्पी प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

13.9 संदर्भ या उपयोगी पुस्तके

13.10 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावन–

कृषि भूगोल से संबंधित इस इकाई के माध्यम से आप कृषि भूमि उपयोग से संबंधित विशद जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई के माध्यम से आप सीखेंगे कि किस प्रकार कृषि भूमि या भूमि को उसके विकसित अवस्था के आधार पर कृषि भूमि प्रयोग, कृषि भूमि उपयोग व कृषि भूमि संसाधन उपयोग की संकल्पना विकसित की गई है। इस इकाई के सामान्य भूमि उपयोग की आधारभूत सरंचना को अंतर्निहित किया गया है, साथ ही साथ वैश्विक संदर्भ में कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण व उससे संबंधित सर्वेक्षण पद्धतियों जैसे ब्रिटेन, पोलैंड, चीनी, रूसी, भारतीय, अमेरिकी आदि का सरलीकृत करके समावेश किया गया है।

13.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई विश्व में ही नहीं वरन भारत में भी कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण व उससे संबंधित सर्वेक्षण पद्धतियों का एक महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है। इसके अध्ययन से आप –

8. कृषि भूमि उपयोग से संबंधित महत्वपूर्ण संकल्पनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
9. भूमि उपयोग से संबंधित विश्व में हुए अब तक के सर्वेक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
10. विभिन्न देशों में प्रचलित कृषि भूमि उपयोग से संबंधित महत्वपूर्ण सर्वेक्षण पद्धतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
11. उपर्युक्त सभी तथ्यों का अध्ययन भारत के संदर्भ में कर सकेंगे,
12. कृषि के क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग के महत्व को समझ सकेंगे,
13. कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीको के विकास से संबंधित अपनी विचारधारा प्रस्तुत कर सकेंगे,
14. विषय–वस्तु से संबंधित प्रश्नों का हल दे सकेंगे ।

13.3 कृषि भूमि उपयोग की संकल्पना–

कृषि भूमि भौगोलिक अध्ययन का एक प्रमुख पक्ष है अतः कृषि भूमि उपयोग से संबंधित तार्किक ज्ञान प्राप्त करना जरूरी हो जाता है। जब भी हम कृषि भूमि का अध्ययन करने चलते है तो उससे संबंधित तीन महत्वपूर्ण शब्दों का उल्लेख होता है, यथा– कृषि भूमि प्रयोग, कृषि भूमि उपयोग व कृषि भूमि संसाधन उपयोग। वैसे तो ये शब्द समानार्थी होते है किन्तु ये तीनों शब्द एक दूसरे से विकसित अवस्था के द्योतक है जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

कृषि भूमि– सामान्य तौर पर भूमि का तात्पर्य धरातल के ऊपरी सतह से लिया जाता है, इस ऊपरी सतह पर हम रुक सकते है, टहल सकते है, मकान बना सकते है, बाग–बगीचे लगाने जैसे आदि क्रियाओं को सम्पन्न कर सकते है। परंतु कृषि भूगोल की दृष्टि से भूमि का तात्पर्य उसके व्यापक स्वरूप से होता है, दूसरे शब्दों में कहें तो भूमि का संबंध खेतों, चारागाहों, जंगलों, खनिज संसाधनों के दोहन आदि से रहा है। वर्तमान समय में कृषि भूमि का तात्पर्य उसके त्रिविमीय विकास से हो गया है अर्थात इसके अंतर्गत धरातल के भूगर्भ से लेकर ऊपरी वायुमंडल तक, मैदानों से लेकर पठारों, मरुस्थलों, पर्वतों, सागरों, द्वीपों को शामिल किया जा रहा है।

कृषि भूमि प्रयोग– भूमि का तात्पर्य भूमि के उस भाग से होता है जिसका प्रयोग मानवीय प्रभावों से सदा वंचित रहता है, अर्थात इसका प्रयोग प्राकृतिक तरीके से हो रहा होता है इसमें मानव का कृत्रिम तरीके से कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

कृषि भूमि उपयोग– जब भूमि का उपयोग मानव अपने अनुसार करके भूमि की प्रकृति में बदलाव करने लगता है तो भूमि का प्राकृतिक स्वरूप खतम होने लगता है तथा मानवीय क्रियाएं अधिक प्रभावी हो जाती है तो इसे भूमि उपयोग की संज्ञा प्रदान किया जाता है।

कृषि भूमि संसाधन उपयोग– कुछ विद्वानों ने कृषि भूमि के उपयोग के स्थान पर कृषि भूमि संसाधन उपयोग शब्द का प्रयोग किया। इसका तात्पर्य यह है कि जब मानव भूमि का उपयोग अपनी आवश्यकताओं के व इच्छा के अनुसार करना करना प्रारंभ कर देता है तो उस समय भूमि की प्रकृति, संसाधन के रूप में हो जाती है, अर्थात जब किसी भूमि का उपयोग क्षेत्र विशेष की आर्थिक व सामाजिक विकास को ध्यान में रखते हुए किया जाता है तो वह भूमि संसाधन की संज्ञा से अभिनिहित किया जाता है। जिस प्रकार से अन्य विषयों में कुछ विशिष्ट मौलिक संकल्पनाएं होती है ठीक उसी तरह इस इकाई की भी है जों इसके विषय वस्तु को स्पष्ट करती है। कुछ प्रमुख मौलिक संकल्पनाएं निम्न लिखित है–

1. कृषि भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना,
2. कृषि भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना,
3. सर्वोत्तम एवं अनुकूलतम कृषि भूमि उपयोग की संकल्पना,
4. कृषि–भूमि–उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना,
5. कृषि भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना,
6. व्यवहारिक संकल्पना,
7. क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना,
8. भूमि उपयोग अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान और प्रतिबिंम्ब संकल्पना।

13.4 विश्व में कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण–

भूमि उपयोग का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कृषि व्यवसाय तथा भूमि के विभिन्न उपयोग से कर वसूली प्राप्त करना आरम्भ हुआ। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण इंगलैण्ड में नोरमेन डोम्सडे का सर्वेक्षण है। पश्चिमी देशों में कृषि क्रान्ति के समय से कृषि तकनीक तथा भूमि उपयोग के तथ्यों की जानकारी के लिए सर्वेक्षण प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार के प्रथम सर्वेक्षण का आलेख 1791 में स्काटलैण्ड का सांख्यिकी ब्यौरा से मिलता है। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ऐसा ही उल्लेख आयरलैंड क्षेत्र के सांख्यिकी सर्वेक्षणि का में मिलता है। लेकिन 1919 से पूर्व, मानचित्र द्वारा भूमि उपयोग को दर्शाकर सर्वेक्षण का उल्लेख नहीं मिलता है। सम्पूर्ण ब्रिटेन का नक्शों की सहायता से सही सर्वेक्षण 1930 से ही प्रारम्भ हुआ तथा 1931 से क्षेत्रीय अध्ययन प्रारम्भ हुआ।

वास्तविक रूप से प्रथम भूमि सर्वेक्षण की योजना 1949 में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ के तत्वावधान में गठित आयोग द्वारा प्रारम्भ की गयी जिसके अन्तर्गत समस्त विश्व में भूमि उपयोग सर्वेक्षण की सम्भावनाओं पर विचार– विमर्श हुआ। इसके अन्तर्गत विभिन्न देशों के भूमि उपयोग को मानचित्र पर 1 : 1000000 के पैमाने पर तैयार करना था। इस प्रकार इनमें अनेक बाधाओं व समस्याओं के उपरान्त कुछ पैमाने में परिवर्तन कर वृहद मापक पर

मानचित्र तैयार किये गये । लेकिन इसी समय कुछ देशों में भूमि उपयोग सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ हो चुका था जिसका वर्णन आगे कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धतियाँ नामक उपशीर्षक में दिया गया है।

13.5 कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धतियाँ—

कृषि भूमि उपयोग पद्धतियों के अध्ययनों से संबंधित ज्ञान को विकसित करने का श्रेय जी पी मार्श (1864), कार्ल ओ सावर (1919), डब्ल्यू डी जोन्स तथा वी0 सी0 फिंच (1925) जैसे विद्वानों को जाता है। इन अर्थशास्त्रियों ने अपने अनेक लेखों को प्रकाशित कर भूमि उपयोग संबंधी अपने अध्ययन की आधारशिला रखी। किन्तु भूमि उपयोग संबंधी विस्तृत योजना एल0 डी0 स्टाम्प व बॅक जैसे विद्वानों द्वारा ही तैयार की गई।

कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण में अब तक प्रयोग की गई प्रमुख पद्धतियों को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया गया है —

13.5.1 ब्रिटेन की कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति—

ब्रिटेन में भूमि सर्वेक्षण का कार्य 1930—31 से ही आरम्भ हो गया तथा इससे पहले विभिन्न पैमाने पर मानचित्रों पर अंकन का कार्य हुआ पर सही अंकन अभी नहीं हो पाया था। कम खर्च एवं जनसाधारण की समझ में आने वाले तथ्यों को ध्यान में रखकर सम्पूर्ण देश के विविध मानचित्र तैयार किये गये। आर्डिनेन्स सर्वेक्षण द्वारा 1 मील बराबर 6 इंच (1 : 10560) पर मानचित्र तैयार किए गए। बाद में इन्हें 1 इंच = 1 मील (1 : 63360) पर तैयार किया गया। इस प्रकार इन पत्रकों को कुछ समय बाद प्रकाशित किया गया। प्रारम्भ में जो पत्रक तैयार किये गए थे उनमें कृषि युक्त भूमि व अन्य भूमि को निम्न तरीकों द्वारा प्रदर्शित किया गया—

(1) जंगल व लकड़ी वाले वन — गहरे हरे रंग।

(2) स्थाई चरागाह— हल्के हरे रंग।

(3) जोत योग्य परती— भूरे रंग।

(4) अस्थाई चरागाह, पहाड़ी व दलदल— पीले रंग द्य

(5) बाग—बगीचे— बैगनी रंग।

(6) बस्तियों, कृषि अनुपयुक्त भूमि— लाल रंग।

(7) तालाब, झीलें, खड्ड आदि— नीले रंग।

उपरोक्त रंग विधि से भूमि का उपयोग का और भी विभाजित कर अनेक रंग छाया विधियों को सामंजस्य के साथ दिखाना प्रारंभ होने लगा। कुछ समय बाद प्रो. एल0 डी0 स्टाम्प के निर्देशन में पूरे ब्रिटेन के भूमि उपयोग के सर्वेक्षण का कार्य आरंभ हुआ। यह

कार्य ब्रिटेन की योजनाओं के लिए एक आधार ही नहीं बना बल्कि भूमि के सही उपयोग का एक पथ–प्रदर्शक बना जो आगे चलकर अनेक देशों में भी इसी कार्य पद्धति के रूप में उपयोग में लाया जाने लगा। ब्रिटेन में स्टाम्प महोदय ने 1930 से यह कार्य प्रारम्भ किया तथा जिसकी सम्पूर्ण रिपोर्ट 1939 में तैयार होकर 1946 में प्रकाशित हुई। इन्होंने विभिन्न भूमि उपयोग के अलग–अलग मानचित्र तैयार कराए तथा इन्हें विभिन्न रंग विधि द्वारा दिखाया गया। अनेक प्रकार की भूमि का विभाजन कर उन्हें भी अलग–अलग रूप से प्रदर्शित किया गया। इसमें जंगल, स्थाई चरागाह, जोत भूमि, जोत योग्य भूमि, परती भूमि तथा बाग–बगीचे आदि के साथ तालाबों, नदियों, झीलों व बाँधों को विविध प्रकार के रंगों के साथ दिखाया गया। इस प्रकार के विस्तृत कार्य की रिपोर्ट 92 भागों में 1936 व 1946 के मध्य प्रकाशित हुई इसके पश्चात् स्टाम्प की देख–रेख में उनकी पुस्तक "The Land of Britain Its Use and Misuse" 1961 में प्रकाशित की गयी। इस पुस्तक में इंगलैण्ड तथा वेल्स के भूमि उपयोग को पुराने क्षेत्रों के साथ तुलना के साथ दिखाया गया है। अलग–अलग भू भागों को रंगों व कार्यों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है जिससे एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से अलग–अलग समझा जा सके। इसी प्रकार खेतिहर भूमि के प्रत्येक भू–भाग को भी अलग–अलग रूप से दिखाया गया है। बाद में अनेक राष्ट्रों ने विभिन्न पैमानों पर अनेक मानचित्र तैयार किए गए। इनमें सर्वमान्य आयाम निश्चित नहीं होने से कुछ दिक्कतें हुई। कुछ निजी कम्पनियों द्वारा सरकारी मानचित्र आदि तैयार करने का कार्य भी हुआ । इस समय तक भूमि उपयोग के कुछ नये मानचित्र 1रू25,000 के पैमाने पर बनाकर प्रकाशित किये गये जो काफी विस्तृत विवरण के साथ थे। इन्हें 13 प्रमुख समूहो में अपनाये गये जिनमें निश्चित नम्बरों का उपयोग किया गया जिससे कोई भ्रम न हो। यह समूह निम्न थे ।

कॉलेमान और मैग्स, 1961

क0स0	समूहों	रंग	क0स0	समूहों	रंग
1	बस्ती (आवासीय व व्यवसायिक)	स्लेटी(ग्रे)	8	बाजार बागवानी	बैंगनी
2	उद्योग	लाल	9	बगीचा	बैंगनी धारियाँ
3	परिवहन	नरंगी	10	वुडलैंड	गहरा हरा
4	परित्यक्त भूमि	काला स्टिपल	11	हीथ और खुरदरी भूमि	पीला रंग
5	खुली जगह	पीला हरा रंग	12	पानी और दलदल	हल्का नीला
6	घास क्षेत्र	हल्का हरा	13	असिंचित भूमि	सफेद
7	कृषि योग्य भूमि	हल्का भूरा			

उपरोक्त समूहों के 3,4,5 तथा13 को छोड़कर अन्य के उपविभाग किये गये। जैसे– जोत योग्य भूमि को 6 उपविभागों में विभक्त किया गया जिसके अंतर्गत फलीदार, खाद्यान, जड़ीय फसलें, पशुओं का दाना, औद्योगिक फसलें आदि को लेकर आगे और भी फसलों के उप–विभाजन अक्षरों के माध्यम से व्यक्त किये गये। इसी प्रकार बाजार के महत्व की फसलोंके अन्तर्गत मिश्रित फसलें, आलू आदि को लिया गया। इनके साथ बगीचों का वर्गीकरण, फल–फूल तथा पशुचारण के क्षेत्रों का भी विभाजन कर अलग–अलग दिखाये गये। इन सभी उप–भागों को प्रमुख रंगों के अन्तत विभिन्न रंग आभाओं के साथ प्रदर्शित किये गये। इस प्रकार भूमि उपयोग सर्वेक्षण का यह कार्य अपने आप में योजना की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण माना गया। इस प्रकार भूमि उपयोग सर्वेक्षण के औचित्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता जहाँ प्राकृतिक साधनों का नियोजन व योजनाएं एवं आर्थिक संसाधनों की राष्ट्रीय योजनाएँ सम्भव हो सकी।

13.5.2 पोलैंड की कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति–

पोलैण्ड में भूमि उपयोग सर्वेक्षण के विकास में पोलैण्ड के भूगोलवेत्ताओं का प्रमुख योगदान रहा है। सर्वेक्षण के इतिहास में पोलिश भूगोलवेताओं ने अपने देश का नेतृत्व ही नहीं किया बल्कि संसार में इस दिशा में किये जाने वाले कार्यों को नेतृत्व प्रदान कर नया मोड़ भी दिया। यह योगदान अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ के माध्यम से हुआ है जिसके अन्तर्गत समय समय पर होने वाली गोष्ठियों सेमिनारों आदि आयोजित कर इस विषय पर विस्तृत रूप से कार्य प्रणाली तैयार की। इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ के तत्वाधान में संसार में भूमि उपयोग सर्वेक्षण (1952) दौरान ब्रिटेन में भूमि उपयोग पर बने मानचित्रों को 1 : 625,000 मापक पर तैयार कर छोटे से छोटे क्षेत्र (100 एकड़) को भी प्रदर्शित करने का प्रावधान निकाला। इस प्रकार प्रथम चरण में 1 : 1000,000 मापक पर या 200 एकड़ (100 हेक्टेयर) को प्रदर्शित किया गया। पोलैण्ड में (1947) प्रो० जीवोनसकी के निर्देशन में यह कार्य प्रारम्भ हुआ तथा 1953–54 में 1 : 25000 के पैमाने पर विस्तृत मानचित्र तैयार किये गये उसके बाद 1956 में भूगोल विभाग के प्रो० कोस्ट्रोविस्की की देख रेख में आगे कार्य प्रारम्भ हुआ। पोलिश विज्ञान अकादमी के अन्तर्गत भूगोल विज्ञान संस्थान में कृषि भूगोल को विशेष आयाम मिला। 1964 में कोस्ट्रोविस्की की अध्यक्षता में (IGU) विश्व में कृषि के प्रकारिकी आयोग गठित कर इस क्षेत्र में एक नया मोड़ देकर महान योगदान दिया। इसमें कृषि प्रकारिकी की सर्वमान्य पद्धति का निर्माण किया गया जो संसार के कृषि प्रकारों को निश्चित करने व कृषि प्रदेश निर्धारित करने में महत्वपूर्ण साबित हुई। इस आयोग की पूर्ण रिपोर्ट 1976 में तैयार हुई। यह कार्य अपने आप में बहुत ही उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है जिसके आधार पर संसार के विभिन्न कृषि क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर एक ही स्तर पर सामान्य कृषि प्रदेशों को सीमाबद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार भूमि उपयोग की समस्याओं को एंग्लो– पोलिश जो पोलैण्ड की विज्ञान अकादमी (1961) ने आयोजित कर सुनियोजित आर्थिक योजनाओं पर भूमि उपयोग के मानचित्र तैयार किये गये तथा कुछ आधारयुक्त उद्देश्य तय किये गये। मुख्य उद्देश्य निम्न थे–

(1) वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन।

(2) प्रयोगात्मक रूप।

इन उद्देश्यों के साथ मानचित्रों में चार प्रमुख तथ्यों को बताया गया है।

(अ) भूमि उपयोग के रूप में।

(ब) भूमि उपयोग का प्रमुख आशय जैसे भूमि के आकार, विस्तार तथा जोत।

(स) भूमि उपयोग के तरीके जैसे फसलों के क्रम, खाद, मशीनें आदि का प्रयोग।

(द) भूमि उपयोग का झुकाव या दिशा जैसे वाणिज्य महत्व का उत्पादन, मुख्यतया खाद्यान्न फसलें, पशुओं पर आधारित कृषि कार्य ।

इस प्रकार पोलैण्ड में किये गये सर्वेक्षण का उद्देश्य व विस्तृत अवलोकन मिलता है। कुछ अलग अलग कार्यों के अन्तर्गत कृषि उपयोग का वृत चित्रण के साथ यातायात, व्यापार, मण्डी एवं मूल्यों आदि का अलग–अलग विवरण दिखाया गया है। इस प्रकार वास्तविक एवं व्यावहारिक योजना की रूपरेखा तैयार की गयी। लेकिन इनकी अपनी सीमाओं के वावजूद कुछ आधारभूत कमियाँ इस अध्ययन में भी थीं। जैसे एक वर्ष जिस भूमि पर घास थी दूसरे वर्ष उस पर फसल बोई गयी हो। इसका विवरण लम्बे समय तक के लिए नक्शों पर दिया जा सकता था । ब्रिटेन में किये गये सर्वेक्षण में कुछ मूल बातों को ध्यान में रखा गया परन्तु जिससे आने वाले समय में भी यह मानचित्र सही तथ्यों को प्रकट कर सके। लेकिन पोट में इस प्रकार का कार्य कृषि योजनाओं की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण रहा है।यह कार्य समय–समय पर ज्योग्राफिया पोलोनीका में प्रकाशित होता रहा है।

13.5.3 अमेरिकी कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति–

भूमि उपयोग सर्वेक्षण के महत्व को कुछ अमरीकी भूगोलवेत्ताओं ने भी समझकर उपयुक्त कृषि योजनाएं एवं अन्य भूमि के उचित उपयोग के लिए सर्वेक्षण प्रारम्भ किया। इस प्रकार के सर्वेक्षण का महत्व यहाँ की सरकार ने भी समझा और इस क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। भूमि उपयोग सर्वेक्षण के तीन प्रमुख क्षेत्रों को चुना गया जिनमें अलग–अलग उद्देश्य रखे गये। यह क्षेत्र निम्न थे–

(1) टेनसी घाटी।

(2) मिशिगन क्षेत्र।

(3) प्यूर्टोरिको।

इन क्षेत्रों में सर्वेक्षण के निम्न उद्देश्य से

(1) टेनेसी घाटी का भूमि उपयोग सर्वेक्षण।

(2) मिशिगन क्षेत्र का आर्थिक नियोजन।

(3) प्यूर्टोरिको में ग्रामीण भूमि वर्गीकरण के साथ बस्तियों का सर्वेक्षण।

इस प्रकार टेनेसी घाटी योजना में भूमि के वर्गीकरण के लिए जिला स्तर को अध्ययन की इकाई के रूप में चुना गया। विभिन्न भौतिक दशाओं को एक–दूसरे से अलग–अलग बढ़ाने के लिए अंक इकाइयों पद्धति का उपयोग किया गया जैसे– 56322 या 121113 आदि अंकों का उपयोग विभिन्न वर्गों के विभाजक सूचक 'अ', 'ब' या 'स' आदि के साथ दिखाया गया। यह अंक भूमि के गुणों व विशेषताओं के मूल्य को दर्शाते है जो कम, अधिक या मध्यम रूप में पाये जाते हैं। इस प्रकार की प्रणाली का बहुत उपयोग हाल ही में कृषि प्रकारिकी पद्धति में विशेष रूप से किया गया है जो कृषि के विभिन्न प्रकारों की स्थिति को बताने में सहायक सिद्ध हुई है। 1932 में मिशिगन क्षेत्र का आर्थिक सर्वेक्षण प्रारम्भ हुआ। इसमें मिशिगन क्षेत्र के कृषि भूमि क्षमता व मनोरंजन के उपयोग आदि का सर्वेक्षण किया गया। इस सर्वेक्षण में उन सभी प्राकृतिक साधनों के बारे में जानकारी प्राप्त की गयी जैसे मिट्टियाँ, भूमि का ढाल, वनस्पति आदि तथा सभी के मानचित्र तैयार किये गये। इसी प्रकार ग्रामीण भूमि वर्गीकरण का अध्ययन प्यूर्टोरिको में भी किया गया जिसमें कृषि भूमि की क्षमता एवं इसका वर्गीकरण निर्धारित किया गया। ग्रामीणांचल के क्षेत्रों का विभाजन व बस्तियों का वर्गीकरण इस सर्वेक्षण का प्रमुख काम था। इन सभी के उपयुक्त अध्ययन व सर्वेक्षण के लिए उत्तरी–पश्चिमी विश्वविद्यालय का योगदान प्रमुख था। इन सर्वेक्षणों के अतिरिक्त समय–समय पर अन्य सर्वेक्षण विभिन्न क्षेत्रों में किये गये जिसमें भौतिक विशेषताओं, भूमि क्षमता, भूमि संरक्षण आदि समस्याएँ प्रमुख रूप से थीं। संयुक्त राज्य का कृषि विभाग इस दिशा में विशेष सक्रिय रहा तथा विभिन्न कार्य सर्वेक्षण के आधार पर सम्पन्न किये। इस विभाग ने समस्त भूमि को 8 प्रमुख श्रेणियों में बाँटा जिसमें चार श्रेणियाँ फसलों व जोत के लिए महत्व पूर्ण थी।इस प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका की राष्ट्रीय योजनाओं में भूगोलवेत्ताओं को भूमिका सर्वोपरि रही है।

13.5.4 चीनी कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति–

चीन में भू–उपयोग सर्वेक्षण सर्वप्रथम कृषि भूमि सर्वेक्षण का विचार ओ0ई0 बेकर द्वारा सुझाया गया जो चीन के भूमि उपयोग पर एक प्रोजेक्ट के रूप में था। तत्पश्चात भूमि सर्वेक्षण का कार्य जॉन लूसिंग बकने तीन प्रमुख उद्देश्यों को लेकर प्रारम्भ किया। ये उद्देश्य निम्न थे–

(1) भूमि उपयोग के तरीकों के बारे में विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करना।

(2) चीन में कृषि की वास्तविक स्थिति को जानना।

(3) भूमि सर्वेक्षण के द्वारा चीन की जनसंख्या व भोजन आदि के बारे में सही स्थिति को जानकर समाधान खोजना।

इस प्रकार इस सर्वेक्षण में सैम्पलिंग पद्धति का उपयोग किया गया, जिसमें प्रादेशिक स्तर पर खोजकर्ता की नियुक्ति की गयी तथा स्थानीय व्यक्तियों की भी मदद ली गयी। इस प्रकार करीब 16,786 फार्म जो 168 स्थानीय समूह एवं 22 प्रान्तों में विभक्त थे, लिया गया। स्थानीय गाँव को एक प्रतिनिधि के रूप में चुना गया जिसमें करीब 100 किसानों का अध्ययन किया गया। इसके अलावा 250 किसान परिवारों को उसी गाँव से या पास के गाँव से जनसंख्या के अनुमान के लिए चुना गया। स्थानीय इकाई के करीब 20 परिवारों को भोजन के सर्वेक्षण के लिए लिया गया। इस प्रकार चीन का यह भूमि सर्वेक्षण अपने आप में एक महत्वपूर्ण तथा अनोखा था जबकि अनेक बाधाओं का सामना यहाँ भी करना पड़ा। जैसे, देश की विशालता, जनसंख्या की समानता एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों के अभाव में इतने बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण चीन के लिए बहुत हो महत्वपूर्ण साबित हुआ। यह कार्य चीन की राष्ट्रीय योजनाओं का भी आधार बना।

13.5.5 रूसी कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति–

इस क्षेत्र का भूमि उपयोग सर्वेक्षण तकनीकी अभी नई है। यहाँ अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु संबंधी अध्ययन के लिए नई विचारधाराओं का समावेश हुआ है। के0वी0 ज्वॉरकिन ने विभिन्न भूमि की क्षमताओं का अध्ययन किया गया। इनके द्वारा सर्वप्रथम भूमि के गुणों तथा कृषि करने के प्रकारों के आधार पर मानचित्रण किया गया। रूस के विद्वानों ने अपने भूमि उपयोग से संबंधित सर्वेक्षणों मे निम्न शब्दावलियों का प्रयोग किया है, यथा–

1. उच्चावच एवं ढाल,
2. मृदा के प्रकार,
3. वनस्पति,
4. भूमि–उपयोग का स्वरूप,
5. भूमि की जोत की स्थिति,
6. भूमि गत जल की दशा।

ये सभी कार्य पहली अवस्था के थे जिसमें कार्यों का सूक्ष्म निरीक्षण तथा उनका मानचित्रण भी शामिल था। तत्पश्चात दूसरी अवस्था के दौरान विद्वानों ने शस्य उत्पादन प्रणाली, उर्वरक, सिंचाई, आदि से संबंधित गहन अध्ययन किया। कृषि विकास के तृतीय अवस्था के दौरान फसलों के आकड़ों का संग्रहण एवं विश्लेषण किया गया, इस तरह आर्थिकी रूप से भूमि के क्षमता के आकलन में मदद ,मिली। अंतिम अर्थात चौथी अवस्था के साथ भूमि से संबंधित महत्वपूर्ण शोध कार्यों को करने पर ध्यान दिया जाने लगा। उपर्युक्त सभी अवस्थाओं के आधार पे हम कह सकते हैं कि अंतिम चरण में वास्तविक भूमि उपयोग का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

13.5.6 भारत की कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति–

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ–साथ विकसित औद्योगीकरण ने मनुष्यों के भोजन व वृद्धि के बीच असामंजस्य उत्पन्न कर दिया जिससे भूमि उपयोग व दुरुपयोग की समस्याएं खड़ी हो गयीं। इनके निवारण के लिए भूमि उपयोग सर्वेक्षण अति आवश्यक समझा जाने लगा। भूमि उपयोग का विभिन्न कार्यों के बीच असन्तुलन को समाप्त करने व भूमि क्षमता के आधार पर उपयोग व वर्गीकरण के लिए इस प्रकार के सर्वेक्षण की आवश्यकता को महत्वपूर्ण समझा जाने लगा। व्यक्ति और भूमि के मध्य अनुपात को घटाना एक महत्वपूर्ण समस्या थी। क्योंकि एक तरफ बहुत अधिक जनसंख्या कुछ भागों पर केन्द्रित होती जा रही थी, वहीं दूसरी तरफ बहुत बड़े क्षेत्र बहुत कम जनसंख्या के केन्द्र बन गये थे। ऐसी स्थिति में कृषि के लिए आर्थिक महत्व की भूमि प्राप्त करना और उत्पादन को बढ़ाने की समस्या उग्र थी तथा उस भूमि को फिर प्राप्त करना था जो औद्योगिक क्षेत्रों ने अनधिकृत रूप रूप से हथिया ली थी। इसके साथ उत्पादन क्षमता को बढ़ाना, भूमि को उर्वरा बनाना, तथा मानव व भूमि के उचित अनुपात को बनाये रखना आदि के लिए भूमि सर्वेक्षण की आवश्यकता को अति महत्वपूर्ण समझा जाने लगा। लेकिन कौन–सी पद्धति व तरीके से यह कार्य सम्पन्न किया जाय यह एक मूल प्रश्न था। प्रथम चरण में जो भी भूमि उपलब्ध थी और जिस कार्य में ली जा रही थी उसका सही अंकन व सर्वेक्षण कर चित्रों पर लाने की जटिल समस्या थी जिससे उसकी क्षमता तथा भूमि उपयोग का पता लगाया जा सके। क्योंकि ग्रामीण भारत के करीब 5,67,000 ग्रामों को अलग–अलग यूनिट द्वारा मानचित्र पर दिखाना आसान कार्य नहीं था ।

ग्रेट ब्रिटेन में स्टाम्प द्वारा किये गये भूमि सर्वेक्षण के आधार पर व उनसे प्रेरित होकर भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने भी महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया । 1938 में आयोजित इण्डियन साइन्स कांग्रेस एसोसिएशन के अधिवेशन में जिसमें स्टाम्प महोदय ने ओवरसीज प्रतिविधान के सदस्य के रूप में भाग लिया था, भारत में भूमि उपयोग सर्वेक्षण के शुरू किये जाने की राय थी। तत्पश्चात् एस० पी० चटर्जी (1941) ने भारतीय भूगोलवेत्ताओं का भूमि सर्वेक्षण के लिए ध्यान आकर्षित किया। 1951 में मोहम्मद शफी ने भूमि उपयोग के सर्वेक्षण पर जोर देते हुए भूमि के अधिकतम उपयोग व इसके लाभों का पता लगाने के लिए एक अभियान छेड़ा तथा इन्होंने एक वृहत पैमाने पर कार्य विधि तैयार कर सामने रखी। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग ने इस ओर विशेष कार्य किया तथा प्रति वर्ष देश के एक हिस्से का सर्वेक्षण प्रारम्भ किया।

सम्पूर्ण भारत के सर्वेक्षण को पूर्ण करने के लिए चटर्जी ने (1953, 1956 तथा 1962) सैम्पल सर्वेक्षण करके भौतिक दशाओं की भिन्नता एवं अनेक तथ्यों की शिथिलता को देखते हुए पूर्ण आधार पर सर्वेक्षण किये जाने पर जोर दिया। बी०एन०एस० प्रकाश राव (1959) ने इस बात पर जोर देते हुए भूगोलवेत्ता भूमि उपयोग के कार्य में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं कुछ भूमि वर्गीकरण के मानचित्र तैयार कर कार्य विधि बतायी। परन्तु अब तक ऐसा कोई महत्व पूर्ण कार्य नहीं हो सका। शफी (1956) ने इस समय तक उत्तर प्रदेश के 12 प्रमुख गाँवों का सर्वेक्षण किया जो अपने समय में एक पहला कदम कहा जा

सकता है इस प्रकार शफी के कार्य ने भारत में सुनियोजित शोध कर पथ प्रदर्शक का मार्ग प्रशस्त किया। बाद में विभिन्न क्षेत्रों में इन्हीं आधारों पर सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ। शफी का कार्य पूर्वी उत्तर प्रदेश का भूमि सर्वेक्षण (1960) कर विभिन्न प्राकृतिक दशाओं को मानवीय कार्यों से अलग कर जनसंख्या के विभिन्न आयामों, रीति–रिवाज, खान–पान एवं प्रतिदिन भोजन को मात्रा आदि को समझ कर बताया। इस कार्य को बाद में स्टाम्प महोदय ने भी महत्वपूर्ण कार्य बताया। शफी ने 1966 में लन्दन में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ के 20वें अधिवेशन के अवसर पर सर्वेक्षण की निश्चित पद्धतियों को बताया और कहा कि भारत जैसे देश के लिए ही नहीं, दुनियाँ के अन्य भागों के लिए भी इस प्रकार का ग्रामीण भूमि सर्वेक्षण किया जाना महत्वपूर्ण होगा।

हाल ही के कुछ वर्षों में अध्ययन की नयी पद्धति के विकसित होने से सर्वेक्षण में नये आयाम जुड़ गये हैं। यह पद्धतियाँ सांख्यिकी व गुणात्मक हैं। इनके आधार पर भी शफी साहब ने 1964 में गंगा–यमुना दोआब क्षेत्र पर विस्तृत अध्ययन किया जो अपने आप में महत्वपूर्ण अध्ययन कहा जा सकता है। कृषि भूमि सर्वेक्षण एवं कृषि की विभिन्न स्थितियों पर विभिन्न भूगोलवेत्ताओं के कार्य भी सामने आये है जिनमें बी०एम० गांगुली (1933), के०जैड० अमानी (1964), एस. एन. मिश्रा (1964), एम०एफ० सिद्दीकी (1967), ए० अहमद (1967), मूनिस रजा (1968), एम०एन० मुकुर्नी (1968) एन०पी० अम्बर (1968), माजिद हुसैन (1979), बी०के० शय (1961), मो०पी० भारद्वाज (1961), एस०एल० कायस्था (1964), आदि प्रमुख भूगोलवेत्ताओं के अलावा अनेक भूगोलवेत्ता विभिन्न विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में कार्यरत हैं। प्रो० जसवीर सिंह (1974–75) की पुस्तकें **"An Agricultural Atlas of India" and "An Agricultural Geography of Haryana"**(1976) इस दशक का महत्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है। इनमें कृषि भूमि के विभिन्न पहलुओं के साथ सम्पूर्ण भारत में फसलों के प्रादेशिक क्षेत्र व फसली भूमि की क्षमता एवं वितरण की दशाओं को लिया गया है। हरियाणा में कृषि की विभिन्न स्थितियों के साथ अध्ययन कर नये विकास के आयाम भी सुझाये गये हैं। जिनके आधार पर हरियाणा सरकार ने लागू कर विकास का नया रिकार्ड भी स्थापित किया है और दूसरी ओर भौगोलिक कार्य की उपादेयता को भी बताया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के स्तर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग व भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद आदि राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा आर्थिक सहयोग किया जा रहा है। इस क्षेत्र में भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद भी सक्रिय रूप से कृषि के विकास हेतु प्रयत्नशील है। अच्छे बीजों का विकास, फसलों की विभिन्न बीमारियों का पता लगाना, फसलों के उचित वितरण, कृषि की क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करना, उत्पादन बढ़ाना आदि महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र हैं जिनके अध्ययन से सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। इस प्रकार सरकारी स्तर पर किये जाने वाले भौगोलिक सर्वेक्षण एवं विभिन्न सामाजिक पहलुओं का भौगोलिक सन्दर्भ में अध्ययन, आने वाले समय

के लिए महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि सुनियोजित योजनाओं के लिए भी पथ प्रदर्शक का काम कर सकेगा।

जर्मन जनवादी गणतन्त्र ,चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, यूगोस्लोवाकिया, हंगरी, रूस आदि के साथ जापान, कनाडा, बर्मा, सुडान, युगान्डा, केन्या, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देशों में इसी प्रकार के कार्य प्रारम्भ हुए तथा समय– समय पर इनकी विस्तृत रिपोर्ट तैयार कर प्रस्तुत की जाने लगी। वर्तमान में सभी विकसित व विकासशील राष्ट्रों में भौगोलिक अध्ययन को राष्ट्रीय योजना की दृष्टि से महत्वपूर्ण आयाम मिला है तथा इसके महत्व को समझा जाने लगा है। इस दृष्टि से जो कुछ भी कार्य अब तक हुआ है वह अधूरा व एक शुरुआत मात्र ही है। इस कार्य को पूरा करना भूगोलवेत्ताओं की ही जिम्मेदारी है। उपरोक्त देशों के अलावा संसार के अन्य देशों में भी इस प्रकार का कार्य प्रारम्भ किया गया तथा वृहत रूप से भूमि उपयोग को मानचित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाने लगा। इस कार्य को आगे बढ़ाने का प्रमुख श्रेय अन्तरर्राष्ट्रीय भूगोल संघ को ही जाता है जिसके तत्वावधान में गठित आयोगों द्वारा समय–समय पर व्यवहारिक व नयी तकनीकी सिद्धान्तों व प्रणालियों का विकास कर विभिन्न देशों में इन पद्धतियों के आधार पर अध्ययन किया गया ।

भूमि उपयोग सर्वेक्षण का महत्व

- भूमि उपयोग सर्वेक्षणके माध्यम से सभी प्रकार के भूमि के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- भूमि की आर्थिक उपयोगिता या देश में अर्थव्यवस्था की उपयोगिता को आंका जा सकता ळें
- भूमि की उत्पादन क्षमता को आंका जा सकता है।
- भूमि की क्षमता के आधार पर भूमि का उपयोग किया जा सकता हैं।
- जनसंख्या का कृषि पर दबाव को आंका जा सकता है तथा जिसमें आवश्यकतानुसार बदलाव भी किया जा सकता है।
- भूमि की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए उचित प्राविधियों का प्रयोग किया जा सकता है।
- नये–नये भूमि उपयोग क्षेत्रों का पहचान किया जा सकता।
- सर्वेक्षण के माध्यम से भूमि दुरुपयोग को रोका जा सकता है।
- भूमि उपयोग सर्वेक्षणके मध्यम से जोतों के आकार की पहचन करना।

13.6 सारांश–

इस इकाई के माध्यम से आपने देखा कि किस प्रकार कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण की विभिन्न पद्धतियों के द्वारा विभिन्न देशो ने किस प्रकार अपने कृषि की उत्पादकता को

बढ़ाने पर बल दिया तथा ये भी देखा कि वे किस प्रकार अपने प्रयासों में सफल भी रहे। संक्षेप में ये कहा जा सकता कि किसी देश के विकास में कृषि को विकसित करके जनमानस की आवश्यकताओं कि पूर्ति की जा सकती है।आपने यह भी देखा कि किस प्रकार समय के बदलते संदर्भ में भारत की कृषि पद्धति में महत्वपूर्ण बदलाव हुए जिससे कृषि के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त हुई।

13.7 शब्द सूची–

अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ International Union of Geography

भूमिउपयोग सर्वेक्षण Land &use Survey

कृषि प्रकारिकी Agricultural Typology

सैम्पलिगं पद्धति Sampling Method

औद्योगिक फसलें Industrial Crops

पशुओं का दाना Green Fodder

जड़ीय फसलें Root Crops

खाद्यान Cereals

फलीदार Ley Legumes

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद Indian Agricultural Research Institute

कृषि प्रकारिकी का आयोग CommissionOn Agricultural Typology

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद Indian Council of Social Science Research

13.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. वह भूमि जिसे 5 साल से अधिक समय तक परती छोड़ दिया जाता है तथा इसमें सुधार के बाद खेती के तहत उपयोग में लाया जा सकता है–

   अ– स्थाई चारागाह ब– वर्तमान परती

   स– कृषि बंजर भूमि द– वन भूमि

2. भारत में सबसे बड़ा भूमि क्षेत्र निम्नलिखित में से किस श्रेणी में आता हैरू–

अ– फसल भूमि ब– वन भूमि

स– बंजर भूमि द– चारागाह भूमि

3. "The Land of Britain Its Use and Misuse"किस भूगोलवत्ता की बुक हैं ?
   अ– बक ब–एस० पी० चटर्जी
   स– स्टाम्प द– मोहम्मद शफी
4. चीन में भू–उपयोग सर्वेक्षण सर्वप्रथम कृषि भूमि सर्वेक्षण का विचार किसके द्वारा सुझाया गया
   अ– ओ0ई0 बेकर ब– बक
   स– डी0 जोन्स द– वी0 सी0 फिंच
5. ब्रिटेन में भूमि सर्वेक्षण का कार्य कब आरम्भ हुआ था ?
   अ– 1939–31 ब– 1921–22
   स– 1940–41 द– 1950–51

आदर्श उत्तर– 1.(स), 2.(अ), 3.(स), 4.(अ), 5.(अ),

13.9 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तके

4 Bansil, P.C., Agricultral Problems of India, New Delhi : Vikas Publication 1974
5 Bhatiya. S.S., “A New Method of Agricultral Eifficiency in UP.” In Economic Geography 1967
6 तिवारी.आर.सी., कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।
7 तिवारी एवं सिंह, भारत का भूगोल, प्रवालिका पाब्लिकेशन, प्रयागराज।
8 गौतम, अल्का, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
9 हुसैन, माजिद, कृषि भूगोल, रावत पाब्लिकेशन, नई दिल्ली।

13.10 अभ्यास प्रश्न

1 कृषि भूमि उपयोग की संकल्पना से आप क्या समझते हैं तथा इनकी कुछ प्रमुख मौलिक संकल्पनाएँ क्या है?

2 विश्व में कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पर एक संक्षिप्त प्रकाश डालिए?

3 ब्रिटेन की भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति पर टिप्पणी कीजिए।

3 पोलैंड की कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति पर प्रकाश डालिए।

4 भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्धति का अमेरिका के संदर्भ में टिप्पणी कीजिए।

5 भारत के संदर्भ में कृषि भूमि उपयोग की सर्वेक्षण पद्धति का व्याख्या कीजिए।

6 कृषि भूमि उपयोग के सर्वेक्षण पद्धतियों से संबंधित अध्याय में आपने क्या

इकाई 14 –यू.एस.ए. के कृषि प्रदेश, चीन के कृषि प्रदेश एवं नवीनतम वैज्ञानिक कृषि प्रदेश

इकाई संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 **उद्देश्य**
14.2 संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेश
14.3 कृषि प्रादेशीकरण
14.3.1मक्का पेटी
14.3.2 तंबाकू पेटी
14.3. 3. गेहूँ पेटी
14.4.4. कपास पेटी
14.3.5. घास एवं दुग्ध पेटी
14.4 चीन का कृषि प्रदेश
14.5 कृषि प्रादेशीकरण
14.6.0.चीनी वैज्ञानिक अकादमी द्वारा कृषि प्रादेशिकरण
14.7. जापान का कृषि प्रदेश
14.8. साराश
14.9.बोध प्रश्न

14.10.बोध प्रश्न के उत्तर

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.12 अभ्यास के प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

इकाई 12 में संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के कृषि प्रदेश का वर्णन किया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में वहां उस संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन दोनों का क्षेत्रफल अधिक है। दोनों विशाल और विषम आप आकृति वाले देश हैं धरातलीय क्षमता जलवायु इतनी क्षमता के कारण से धरातलीय विषमता और जन्म स्थान यहां पर यहां पर अनेक प्रदेश पाए जाते हैं क्योंकि कृषि जलवायु और धरातल मूल रूप से प्रभावित करते हैं इसके साथ साथ चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका का विकास के लिए आधारभूत संरचना सरकारी नीति वहां के लोगों का कर्तव्य निष्ठा वहां की परंपरा लोगों के आर्थिक समृद्धि की भावना ऋषि को परंपरागत तरीके से उद्योग की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया है संयुक्त राज्य अमेरिका में कृषि का कार्य न केवल उत्पादन के लिए किया जाता है बल्कि कृषि से

हमकैसे हम अधिक आय का आयोजन कर सकते हैं संयुक्त राज्य अमेरिका में औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप विकास के कारण कृषि कार्य में मशीनों का प्रयोग तेजी से बढ़ा है यहां पर कृषि वैज्ञानिक विधि द्वारा संपन्न की जाती हैयहां पर कीटनाशक दवाएं खरपतवार नाशक दवाएं रासायनिक उर्वरक सरकारी प्रोत्साहनआदि के कारण कृषि समुन्नत दशा में है यहां पर गेहूं कपास मक्का तंबाकू दूध दूध से निर्मित अनेक प्रकार के पदार्थ मान का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता हैसंयुक्त राज्य अमेरिका आज कृषि के क्षेत्र में खाद्य खाद्य फसलों के उत्पादन में पशु उत्पाद के उत्पादन मेंविश्व में सर्वोपरि स्थान पर है संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह चीन भी कृषि के क्षेत्र में विकास के पथ पर अग्रसर है चीन मिनी भी कृषि वैज्ञानिक आधार पर की जाती है यह क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से विश्व का तीसरा सबसे बड़ा राष्ट्र है यहां पर गेहूं चावल सोयाबीन और कॉलिंग ज्वार बाजरा आलू मक्का चाहे रवाद की खेती अत्यंत कुशलतापूर्वक की जाती है चीन की कृषि प्रदेश में चावल और गेहूं की प्रधानता पाई जाती है चीन के कृषि प्रदेश को विभाजित करने में विद्वान प्ले स्टोर प्रोफेसर यलबक डेडली स्टांप जेल पक का महत्वपूर्ण योगदान है चीनी वैज्ञानिक अकादमी ने भी वहां कृषि प्रादेशिक का कार्य किया है विषम जलवायु धरातलीय क्षमता के कारण चीन के कृषि उत्पाद में भी विषमता पाई जाती है चीन की प्रमुख फसल चावल है क्योंकि मानसूनी जलवायु के कारण चावल की खेती सफलतापूर्वक की जा रही है इसकी जनसंख्या विश्व में सर्वाधिक है इसलिए यहां पर जीवन यापन का निर्वाहन गण जीवन निर्वहन खेती का महत्व अधिक है किसान अपनी जमीन पर वर्ष में अधिक से अधिक फसल का उत्पादन करने के लिए तत्पर रहता है चीन में वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति के कारण से की खरपतवार नाशी रसायन का प्रयोग बीज का प्रयोग और सुधरे हुए कृषि यंत्रों का प्रयोग के साथ रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग वृद्धि हुई है चीन में इन्हीं वैज्ञानिक प्रयोग के कारण से श्रम खेती तीव्र होने लगी है और आज चीन मक्का चावल गेहूं आदि सब्जी फल आदि के उत्पादन में विश्व में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है

14.1.उद्देश्य

प्रस्तुति इकाई के अध्ययन का उद्देश्य निम्नवत है

1 आप यह जान सकेंगे कि संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेश का निर्धारण किन आधारों पर किया गया है

2 इस इकाई में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका को किन–किन विद्वानों ने किस कितने कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है

3 संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेशों को समझ सकेंगे

4 इस इकाई के अध्ययन से चीन के समस्त कृषि प्रदेशों का विशद वर्णन किया जा सकेगा

5 चीन को किन–किन विद्वानों ने कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है और कितने प्रदेश बनाए हैं इसकी जानकारी होगी

6 संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के कृषि प्रदेश की तुलना भी कर सकेंगे

14.2.संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेश

संयुक्त राज्य अमेरिका में कृषि कार्य को व्यवस्थित ढंग से प्रारंभ करने का श्रेय यूरोप से आने वाले प्रवासियों को दिया जाता है यूरोपीय प्रवासियों के आने से पहले संयुक्त राज्य अमेरिका का कृषि स्वरूप केवल जीवन निर्वाहन प्रकार का ही था, यहाँ पर कृषि कार्य से अनाज, भेड़ों के ऊन से बनाए गए वस्त्र, सूअर से मांस एवं अन्य पशुओं से दूध प्राप्त किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रारंभिक समय में जीवन निर्वाह कृषि सम्पन्न की जाती थी धीरे–धीरे यहाँ के कृषि पर उद्योग धन्धों का प्रभाव पड़ा, यातायात के साधनों का विकास हुआ, कृषि कार्य में उन्नत किस्म के मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा। संयुक्त राज्य अमेरिका में नवीन प्रौद्योगिकी के विकास के कारण कृषि प्रतिरूप में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देने लगा। यहाँ पर बड़े–बड़े कृषि फार्म पर बड़े पैमाने पर कृषि कार्य यूरोपीय लोगों द्वारा किया जाने लगा। संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग द्वारा नवीनतम शोध उन्नत कृषि यंत्र, अधिक उत्पादन देने वाले उन्नतशील बीज, कीटनाशक दवाई, रासायनिक उर्वरक आदि के द्वारा कृषि विकास को विशेष प्रोत्साहन मिला। परिणामतः संयुक्त राज्य अमेरिका में दूध, दूध से बने उत्पादन एवं मक्का, गेहूँ, तंबाकू व पशुओं के उत्पाद, मांस आदि का उत्पादन आज बड़े पैमाने पर हो रहा है और इसी कारण से संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में प्रथम और द्वितीय स्थान पर कृषि उत्पादन के प्रत्येक उत्पाद में अपना स्थान बनाए हुए है। यहाँ पर 48 करोड़ हेक्टेयर भूमि कृषि योग्य है जिसमें 14 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर खाद्य व अखाद्य फसलों को उगाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका क्षेत्रफल की दृष्टि से रूस, कनाडा, चीन, के बाद चौथा सबसे बड़ा देश है किन्तु कृषि योग्य भूमि के मामले में यह सोवियत रूस के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है। यहाँ प्रति व्यक्ति कृषि भूमि की उपलब्धता अधिक पाई जाती है। आस्ट्रेलिया और सोवियत रूस के बाद चरागाह की दृष्टि से यह तीसरा बड़ा देश है यहाँ के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 45% भूभाग फार्म के अन्तर्गत शामिल है इस कृषि फार्म के अन्तर्गत 17% क्षेत्रफल शस्य व 25% क्षेत्रफल कृषि फार्म, 7% क्षेत्र पर वनस्पति का उत्पादन किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका का 27% क्षेत्र वनाच्छादित है और 14% खुला क्षेत्र या चरागाह के रूप में है 2% क्षेत्र पर जल का विस्तार है 8% भाग पर अन्य प्रकार की क्रिया संपादित की जाती है। भूमि उपयोग के संदर्भ में क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती है जैसे इयोवा

प्रांत में 63% भूभाग पर कृषि की जाती है, 31% भूभाग पर चरागाह है, 5% भूभाग अकृष्य क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल है। न्यू इंग्लैंड राज्य में केवल 6% भाग पर खेती की जाती है। 13% भाग पर चरागाह है, 78% भूभाग पर गैर कृषि कार्य के रूप में शामिल है यहाँ पर क्षेत्रीय भिन्नता अधिक पाई जाती है। इन्हीं क्षेत्रीय विषमताओं के आधार पर विद्वान ड्यूरी महोदय ने 1979ई0 में संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि भूमि उपयोग को 9 प्रदेशों में विभाजित किया था। आपने भूमि उपयोग के विभाजन का आधार प्राकृतिक कारकों को चुना था आपके विभाजन के आधार में उच्चावच, मिट्टी, जलवायु, वनस्पति और भूमि की सक्षमता प्रमुख है–

1. फसल उत्पादन एवं चरागाह प्रदेश
2. फसल उत्पादन चरागाह एवं वनस्पति प्रदेश
3. घास चरागाही प्रदेश
4. वन एवं चरागाह प्रदेश
5. झाड़ी चरागाह प्रदेश
6. दक्षिणी पश्चिमी झाड़ी चरागाही प्रदेश
7. वन प्रदेश
8. उत्तरी टुंड्रा प्रदेश
9. दलदल प्रदेश

कृषि उत्पादकता के दृष्टिकोण से, प्रदेश फसल उत्पादन, चरागाह एवं वनस्पति प्रदेश सभी कृषि प्रदेशों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है आपके दृष्टिकोण से तीसरा, चौथा और पांचवां भूमि उपयोग का प्रकार आर्थिक दृष्टिकोण से गौण है और शेष छठा, सातवाँ, आठवाँ, नवाँ भूमि उपयोग के दृष्टिकोण से अनुपयुक्त प्रदेश के रूप में पाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका को कृषि प्रदेशों में विभाजित करने का प्रथम प्रयास विद्वान बेकर महोदय ने किया था आपने 1926 से 33ई0 के मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेशों पर अनेक सारगर्भित लेख लिखे थे वह ''इकोनॉमिक ज्योग्राफी'' नामक पत्रिका में प्रकाशित होता रहा। वहीं बेकर महोदय ने संयुक्त राज्य अमेरिका को निम्नलिखित कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है–

1. मध्य अंध महासागर तटीय ट्रक कृषि प्रदेश
2. मक्का एवं शीतकालीन गेहूँ कृषि प्रदेश
3. मक्का कृषि प्रदेश
4. कठोर शीतकालीन गेहूँ की पेटी

5. बसंत कालीन गेहूँ की पेटी

6. घास एवं डेयरी कृषि प्रदेश

7. पशुचारण एवं सिंचित कृषि प्रदेश

8. कोलंबिया पठार का गेहूँ उत्पादक प्रदेश

9. प्रशांत तटीय उपोष्ण कृषि प्रदेश

10. उत्तरी प्रशांत घास, चरागाहों और वनों का प्रदेश

11. उत्तरी वन एवं घास प्रदेश

इस तरह से आपने 12 कृषि प्रदेश बनाया है।

विद्वान हार्टशोर्न एवं डिकेन ने बेकर के कृषि प्रदेश के बाद उत्तरी अमेरिका को कृषि प्रदेशों में विभाजित करने का प्रयास किया। विद्वान हार्टशोर्न और डिकेंस का कृषि प्रदेश मुख्य रूप से सांख्यिकीय विधियों पर आधारित है। इन्होंने अपने कृषि प्रदेश के सीमांकन में प्रमुख फसलों के साथ–साथ अन्य फसलों को भी ध्यान में रखा है और उन्हें शामिल किया है। प्रदेश के निर्धारण में फसलों के क्षेत्र के प्रतिशत को मूल आधार माना है। इनके द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेश बताए गए जो इस प्रकार से हैं–

1. भूमध्यसागरीय प्रकार की कृषि

2. मक्का, गेहूँ, पशु प्रकार की कृषि

3. छोटे अन्न एवं पशु प्रकार की कृषि

4. घास, चरागाह, पशु प्रकार की कृषि

5. विस्तृत व्यापारिक अन्न प्रकार की कृषि

6. व्यापारिक फलोद्यान एवं ट्रक फार्मिंग कृषि

विद्वान डिकेन और हार्टशोर्न का कृषि प्रादेशीकरण का सीमांकन सांख्यिकीय विधियों पर आधारित है इसलिए कृषि प्रदेशों का आकार अधिक बड़ा है। इन वृहद प्रदेशों को सूक्ष्म कृषि प्रदेशों में विभाजित करके व्यवस्थित अध्ययन किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में नवीन प्रौद्योगिकी के विकास में सरकारी प्रोत्साहन के कारण भूमि उपयोग प्रतिरूप में तेजी से परिवर्तन देखा गया है। कृषि की नवीनतम प्रवृत्तियों के आधार पर संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग ने देश को 12 कृषि प्रदेशों में विभाजित करने का प्रयास किया जो निम्नवत् है–

1. दक्षिणी–पूर्वी अंध महासागर तट और खाड़ी तट के ट्रक फार्मिंग कृषि प्रदेश

2. कपास पेटी

3. गेहूँ एवं छोटे अनाज के क्षेत्र

4. मिश्रित कृषि पेटी

5. मध्य अटलांटिक महासागरीय तटीय ट्रक फार्मिंग कृषि पेटी

6. चारे वाले और पशुओं का प्रदेश अथवा मक्का पेटी

7. डेरी प्रदेश

8. सिंचित फल और साग सब्जी का कृषि प्रदेश

9. डेरी और फलों का कृषि प्रदेश

10. पशुचारण कृषि प्रदेश

11. सिंचित कृषि

12. तंबाकू और सामान्य कृषि प्रदेश

इस तरह से संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग ने अपने प्रदेश को कुल 12 कृषि प्रदेश में बाँटा। संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि मानचित्र से भी स्पष्ट है कि इसके पूर्वी और पश्चिमी भागों में तलीय विषमता पाई जाती है जलवायुगत भी विषमता पाई जाती है, पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी क्षेत्र में आर्द्रता के कारण चारा खाद्यान्न फसलें घास और पशुपालन का कार्य प्रमुख रूप से किया जाता है जबकि पश्चिमी भाग में जलवायु अर्द्ध शुष्क एवं शुष्क है इसलिए घास के लिए बड़े–बड़े चारागाह, पशुचारण, सिंचित एवं शुष्क कृषि का कार्य संपादित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी और पश्चिमी भाग में 100 डिग्री पश्चिमी देशांतर रेखा एक विभाजक रेखा के रूप में कृषि प्रदेशों को विभाजित करती है इसके साथ ही साथ संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेशों के निर्धारण में 62.5 सेंटीमीटर दक्षिण में एवं उत्तर में 37.5 सेंटीमीटर वर्षा रेखा द्वारा भी कृषि प्रदेश का निर्धारण किया जाता है। तापमान और वर्धन काल का प्रभाव यहाँ पर अक्षांशीय विस्तार पर स्पष्ट देखा जाता है उत्तर से दक्षिण जाने पर तापमान क्रमशः बढ़ता जाता है और पौधों के विकास का समय भी बड़ा हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी भाग में लगभग 85% फसल क्षेत्र एवं 85% उत्पादन भी प्राप्त होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कृषि प्रदेश का विस्तार दक्षिण उत्तर दिशा में है इसका मुख्य कारण यहाँ की प्राकृतिक दशाएँ हैं इस भाग का अधिकांश भाग पर्वतीय और पठारी भी है यहाँ पर फसल उत्पादन और पशुपालन दोनों प्रमुख रूप से किया जाता है। मुद्रा दायिनी फसलों में कपास, तंबाकू, साग–सब्जी, फल इसके साथ तिलहन एवं खाद्यान्न फसलें प्रमुख रूप से उगाई जाती हैं। कुल कृषि भूमि के लगभग एक चौथाई भाग पर खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जाता है। यहाँ पर गेहूँ सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र पर उगाया जाता है खाद्यान्न फसलों के लगभग आधे भाग पर मक्का की खेती की जाती है पशुओं को खिलाने के लिए मक्का का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है विश्व का लगभग 10% गेहूँ और 44% मक्का का उत्पादन

संयुक्त राज्य अमेरिका में किया जाता है। फसल उत्पादन की तरह पशुपालन को भी यहाँ पर कृषि क्षेत्र में अधिक महत्व दिया गया है विश्व का लगभग 50% मांस पशु संयुक्त राज्य अमेरिका में पाले जाते हैं यहाँ पर दुग्ध पशु तथा सूअर और भेड़ पालन का कार्य कृषि के साथ किया जाता है पशुपालन और फसल उत्पादन दोनों व्यवस्थाएँ एक साथ की जाती हैं और देश की अर्थव्यवस्था में दोनों का अपना महत्वपूर्ण योगदान है देश के कुछ विशेष भागों में महत्वपूर्ण फसलें उगाई जाती हैं इसीलिए उन फसलों के नाम पर उनके विस्तृत क्षेत्र को पेटी कहा जाता है जैसे गेहूँ पेटी, मक्का पेटी, कपास पेटी इत्यादि इन कृषि पेटी में प्रमुख फसलों के साथ–साथ अन्य फसलों की भी खेती की जाती है। आर्थिक दृष्टिकोण से सर्वाधिक लाभ वाली फसलों के आधार पर संयुक्त राज्य अमेरिका में निम्नलिखित 5 कृषि पेटियाँ भी पाई जाती हैं जैसे–

1. मक्का पेटी
2. तंबाकू पेटी
3. गेहूँ पेटी
4. कपास पेटी
5. घास एवं दुग्ध पेटी

1. मक्का पेटीः–

संयुक्त राज्य अमेरिका की मक्का पेटी सबसे ज्यादा उपजाऊ और विकसित है मक्का पेटी का विस्तार मध्य पश्चिमी तथा महान झीलो वाले प्रदेश के दक्षिणी भाग में पाई जाती है मक्का पेटी का विस्तार मिशिगन, विस्कांसिन, मिनीसोटा, डकोटा, उत्तरी मिसौरी, नेब्रास्का, ओहियो, इंडियाना, इयोवा आदि राज्य में सफलतापूर्वक की जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका की मक्का पेटी का विस्तार पश्चिम से पूर्व 1450 किलोमीटर और उत्तर से दक्षिण 250 किलोमीटर से 500 किलोमीटर के लगभग है। यह पेटी सामान्य रूप से आयताकार आकृति में पाई जाती है यहाँ पर कृषि फार्म लगभग 80 हेक्टेयर के आसपास होते हैं। फार्मस्टेड के कृषि फार्म पर ही वहां के प्रबंधक या मालिक का आवास, वहां पर श्रमिक आवास, उसका कार्यालय और अन्नागार, डेयरी, पशुगृह, कुक्कुट का उद्यम, सुअरबाड़ा आदि बनाया जाता है। मक्का कृषि के अन्तर्गत देश का 80% क्षेत्र शामिल है यह मक्का संयुक्त राज्य अमेरिका के समस्त कृषि उत्पाद का 28% और समस्त कृषि आय का 25% योगदान देता है। यहाँ पर पशुपालन और फसल की सघनता विश्व में सबसे अधिक पाई जाती है यहाँ पर 65% मक्का, 25% से अधिक गाय तथा भेड़ें, 80% से अधिक सूअर, 20% मुर्गी व अन्य पक्षी, गेहूँ अल्फाल्फा उत्पादन समस्त संयुक्त राज्य अमेरिका का किया जाता है। विद्वान बेकर महोदय ने इससे प्रदेश की विशिष्टता को देखकर कहा ''द हर्ट ऑफ अमेरिकन एग्रीकल्चर एंड द मोस्ट इंपोर्टेंट एग्रीकल्चर रीजन इन द वर्ल्ड फार इट्स साइज'' मक्का उत्पादन के लिए इस कृषि पेटी में आदर्श भौतिक दशाएं पाई जाती

हैं। इस भाग में वर्षा 50 से 100 सेंटीमीटर और ग्रीष्मकाल का तापमान 21 से 27 डिग्री सेंटीग्रेड तक रहता है। वर्षा अधिकांशतः बसंत और ग्रीष्म ऋतु में होती है, 140 दिन पाला युक्त रेखा मक्का पेटी की उत्तरी सीमा का निर्धारण करती है जबकि 60 सेंटीमीटर की वर्षा रेखा मक्का पेटी की पश्चिमी सीमा का निर्धारण करती है। मक्का का वृद्धि और विकास के लिए लगभग 120 से 170 दिन का समय यहाँ पर आसानी से उपलब्ध हो जाता है। मक्का पेटी की पूर्वी सीमा अप्लेशियन पर्वत द्वारा निर्धारित की जाती है मक्का उत्पादन तथा सूअर पालन पर मक्का कृषि प्रदेश की अर्थव्यवस्था निर्धारित है। मक्का क्षेत्र में मक्का उत्पादन चारा की उपलब्धता, पशुओं की न्यूनतम देखभाल, सूअर का जल्दी से तैयार होना, उन्नत किस्म की मशीनों आदि की सुविधा विद्यमान है। मांस वाले पशु और मक्का का उत्पादन यहाँ की मिश्रित कृषि की सबसे प्रमुख विशेषता है। गौण रूप से यहाँ पर घास, गेहूँ, जई, राई, सोयाबीन की फसलें भी उगाई जाती हैं। प्रादेशिक स्तर पर इन फसलों के क्षेत्रों में विविधता पाई जाती है। मक्का के बाद द्वितीय स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण फसल सोयाबीन की खेती है। इलिनॉइस क्षेत्र में मक्का से अधिक क्षेत्र पर सोयाबीन की खेती की जाती है इसीलिए इसे 'मक्का सोयाबीन पेटी' के नाम से भी जाना जाता है। मक्का पेटी के फसल सम्मिश्रण को तीन प्रकार में रखा गया है जो निम्नलिखित है– 1. दक्षिणी पश्चिमी भाग में मक्का, घास, गेहूँ क्षेत्र, 2. दक्षिणी पूर्वी भाग में मक्का, सोयाबीन क्षेत्र, 3. उत्तरी भाग में मक्का, जई, घास क्षेत्र इन तीन क्षेत्र फसल सम्मिश्रण का मूल आधार यहाँ की प्राकृतिक विभिन्नता, जलवायु की विविधता है। मक्का उत्पाद पर यहाँ का पशुपालन आधारित है मक्का को गायों, सूअरों, कुक्कुट के चारे के रूप में खिलाया जाता है सूअर पालन यहाँ का सबसे लाभदायक पशुपालन है सभी पशुओं में सूअर का प्रतिशत 60% तक है। आय का प्रमुख स्रोत सूअर ही है यहाँ पर पशु सम्मिश्रण और शस्य सम्मिश्रण में क्षेत्रीय विभिन्नता पाई जाती है। क्षेत्रीय विभिन्नता के आधार पर पशु सम्मिश्रण को निम्नलिखित चार भागों में रखा गया है। पहला मिलवाउकी नगर के निकटस्थ भाग में कुक्कुट की प्रधानता, दूसरा मध्य आहियो में भेंड़, तीसरा दक्षिणी पश्चिमी भाग में गाय–मांस पशु, चौथा उत्तरी सीमान्तीय भाग में सूअर के साथ दूध पालन पशु मिश्रण की तरह मक्का पेटी को फसल एवं पशु मिश्रण के आधार पर चार भागों में रखा गया है–

1. मक्का, गेहूँ, घास, सूअर, मांस पशु
2. मक्का, सोयाबीन, सूअर, दुधारू पशु
3. मक्का, जई, घास, सूअर, डेयरी पशु
4. मक्का, सोयाबीन, सूअर, गाय

इस तरह से 4 वर्गों में विभाजित किया गया है।

प्रथम सम्मिश्रण दक्षिणी पश्चिमी शुष्क भाग में पाया जाता है। जिसके अन्तर्गत उत्तरी पूर्वी कंसास, उत्तरी मिसौरी, दक्षिणी पूर्वी नेब्रास्का राज्य में विस्तृत है। द्वितीय

फसल पेटी या सम्मिश्रण पेटी का विस्तार उस दक्षिण मध्य भाग में है इसके अन्तर्गत आहियो, पश्चिमी इंडियाना, मध्य इलीनोइस, आदि राज्य शामिल हैं। तीसरे वर्ग के अन्तर्गत दक्षिणी विस्कांसिन, मिशिगन, उत्तरी इंडियाना आदि शामिल हैं। चतुर्थ सम्मिश्रण का विस्तार पूरब में प0 ओहियो राज्य से लेकर के प0 में इओवा तक पाया जाता है। विश्व का चौथा सबसे बड़ा मक्का उत्पादक राज्य संयुक्त राज्य अमेरिका है। विश्व का लगभग 46% मक्का का उत्पादन यहाँ पर होता है। प्रति हेक्टेयर उपज 250 बसल से अधिक है। यहाँ का अधिक उत्पादन का मूल कारण उन्नत तकनीक, ट्रैक्टर, कंबाइन हार्वेस्टर, ट्रक, वायुयान, कीटनाशक दवा, खरपतवार नाशक, दवा छिड़कने की मशीन अनेक तरह के जल पंप, पवनचक्की, उन्नतिशील बीज, रासायनिक उर्वरक, कृषक प्रशिक्षण, सरकारी प्रोत्साहन आदि महत्वपूर्ण हैं। कुल उत्पादन का लगभग 98% भाग पशुओं को खिलाने के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इस तरह से 2% शेष मक्का विदेशों को निर्यात किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका अपने समस्त मक्का उत्पादन का अधिकांश भाग स्वयं उपभोग कर लेता है, मक्का पेटी में ही सूअर का पालन होता है और समस्त मक्का उत्पादन का 42% भाग सूअर को खिलाया जाता है। मक्का खाने से सुअर शीघ्र मांसल हो जाते हैं और वहां से बूचड़खाने में इनको भेज दिया जाता है, मांस का डिब्बाबंदी की जाती है और सूअर के मांस का निर्यात संयुक्त राज्य अमेरिका विभिन्न देशों को करता है। मक्का अप्रत्यक्ष रूप से मांस के रूप में निर्यात किया जाता है इसके लिए "Corn travels on hogs" जैसे वाक्य प्रासंगिक हैं। शिकागो 'विश्व की सबसे बड़ी मांस मंडी' इसी पेटी में स्थित है। कंसास, ओमाह, सैंट लुइ यहाँ के महत्वपूर्ण मक्का इकट्ठा करने वाले केन्द्र बने हुए हैं और यह मांस के केन्द्र भी हैं यहाँ पर बड़े–बड़े बूचड़खाने पाए जाते हैं। मक्का को मॉन्ट्रियल, शिकागो, नारकोफ आदि बंदरगाहों से अनेक देशों को निर्यात किया जाता है।

2. तंबाकू की पेटीः–

तंबाकू के उत्पादन, उपभोक्ता और निर्यातक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका शीर्षस्थ है। यहाँ के तम्बाकू उत्कृष्ट कोटि की पाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में संयुक्त राज्य अमेरिका के तंबाकू की सर्वाधिक मांग रहती है, संयुक्त राज्य अमेरिका में तंबाकू की खेती अटलांटिक तट पर लगभग 400 साल पहले प्रारंभ की गयी थी। वर्जीनिया और मैरीलैंड राज्य में मांग की अधिकता के कारण इसका कृषि उपनिवेश इस दौर में प्रारंभ किया गया था। दिन प्रतिदिन तंबाकू की मांग बढ़ती गई, सिगरेट, पाइप के उत्पादन में मांग बढ़ने के साथ तंबाकू के उत्पादन के लिए भूमि बढ़ाई गई, तंबाकू यहाँ के प्रमुख फसलों में शामिल है तंबाकू उत्पादन के तीन महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं।

1. मैरीलैंड वर्जीनियां कैरोलीना प्रदेश
2. कनेक्टीकट घाटी प्रदेश
3. केंटकी टेनेसी प्रदेश

1. मैरीलैंड वर्जीनियां कैरोलिना प्रदेशः–

इस प्रदेश का विस्तार दक्षिणी कैरोलिना से लेकर दक्षिणी मैरीलैंड तक फैला है। यह प्रदेश पूरी तरह से पर्वतपदीय और सागर तट तक है। संयुक्त राज्य अमेरिका का लगभग 40% से अधिक उत्पादन इन्हीं राज्यों में होता है। यहाँ का प्रमुख उत्पादक राज्य उत्तरी कैरोलिना है जहां पर तंबाकू के अनेक विश्व प्रसिद्ध केन्द्र भी हैं। यहाँ पर तम्बाकू की प्रमुख मण्डियों में पिट्सबर्ग, विल्सन, डरहम, सेलम, रिचमंड आदि हैं।

2. कनेक्टीकट घाटी प्रदेशः–

इंग्लैंड में फैला है यहाँ पर सिगार बांधने वाली और सुमात्रा किस्म की लपेटने वाली तंबाकू पैदा की जाती है।

3. केंटकी टेनेसी प्रदेशः–

केंटकी टेनेसी प्रदेश अप्लेशियन पर्वत के पश्चिम में फैला है इस प्रदेश का विस्तार नेशविल बेसिन, ब्लूग्रास क्षेत्र में है यहाँ की मिट्टी उपजाऊ है मिट्टी में फास्फोरस और चूना विद्यमान है। यहाँ पर तंबाकू की खेती आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त लाभदायक है। वर्ली किस्म की तंबाकू का उत्पादन किया जाता है कृषि का उत्पादन बटाईदार व्यवस्था के अन्तर्गत भी किया जा रहा है यहाँ की महत्वपूर्ण राष्ट्रीय स्तर की मंडियों में लेक्सिंगटन, लुइसविले प्रमुख हैं।

4. उत्तरी फ्लोरिडा व जार्जिया प्रदेश

5. लुइसियाना प्रदेश

6. दक्षिणी विस्कांसिन प्रदेश

3. कपास पेटीः–

कपास पेटी संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी भाग में फैली है इस पेटी का विस्तार मैक्सिको की खाड़ी के तटवर्ती क्षेत्रों में हैं कपास पेटी का सीमांकन भी मक्का पेटी की तरह जलवायु पर और अक्षांश रेखाओं पर निर्भर है कपास पेटी की उत्तरी सीमा का निर्धारण 200 दिन पाला रहित अथवा 37 डिग्री अक्षांश द्वारा होता है पश्चिमी सीमा का निर्धारण 100 डिग्री पश्चिमी देशांतर द्वारा किया जाता है जबकि पूर्वी और दक्षिणी सीमा का निर्धारण अटलांटिक महासागर व मेक्सिको की खाड़ी के द्वारा किया गया है। बीसवीं सदी के सातवें दशक से संयुक्त राज्य अमेरिका की कपास पेटी में अत्यन्त विविधता और जटिलता आई, कपास का महत्व अत्यधिक बढ़ गया जिसके कारण कपास की खेती के लिए वर्तमान समय में संयुक्त राज्य अमेरिका में कपास पेटी शब्द प्रासंगिक नहीं रहा है। सन् 1945 ईस्वी तक संयुक्त राज्य अमेरिका के कपास पेटी में लगभग 40% कृषि भाग शामिल था रोजगार में भी इसका आधा हिस्सा था लेकिन धीरे–धीरे 1967 ईस्वी में इसमें काफी परिवर्तन आया आज कपास पेटी कृषि प्रदेश का 30% और रोजगार का 40% का ही

अंशदान हो गया। यह कपास पेटी बीसवीं सदी के प्रथम दो–तीन दशकों तक कैरोलिना, जार्जिया, अल्बामा, मिसीसिपी, लुजियाना, अरकंसास 6 राज्यों में फैली थी और लगभग 40% भाग कृषि क्षेत्र का कपास कार्य में लगा था, 1970 के बाद इसमें तेजी से कमी आई और यह घटकर 16% से भी कम हो गया। कपास की खेती का महत्व दिन प्रतिदिन ह्रास बढ़ता जा रहा है इसके लिए कोई एक कारण जिम्मेदार नहीं है बल्कि इसके लिए अनेक कारक उत्तरदाई हैं यहाँ पर मिट्टी की उर्वरता में दिन प्रतिदिन कमी आई है, मशीनीकरण बढ़ा है और अन्य फसलों से यहाँ पर कड़ी प्रतिस्पर्धा भी कपास को करनी पड़ रही है इस कारण से यहाँ पर कपास की खेती में कमी आई। आज इस क्षेत्र में कपास के अलावा तंबाकू, गन्ना, चावल, सोयाबीन, अखरोट की खेती का महत्व बढ़ गया है संयुक्त राज्य अमेरिका की कपास पेटी को परंपरागत प्रदेशों में विभक्त किया गया है जो निम्नलिखित हैं–

पूर्वी प्रदेश

दक्षिणी प्रदेश

पश्चिमी प्रदेश

पूर्वी प्रदेशः–

इस प्रदेश के अन्तर्गत कैरोलिना राज्य का उत्तरी और दक्षिणी भाग, अलबामा, जार्जिया आदि को शामिल किया गया है। इस पूरे क्षेत्र में कपास के उत्पादन में लगातार गिरावट अंकित की गई है। 1939 के पहले यह क्षेत्र कपास उत्पादन में पूरे संयुक्त राज्य अमेरिका का 27% अंशदान देता था लेकिन धीरे–धीरे इसका अंशदान घटता चला या और आज इसका अंशदान 10% से भी कम है। कैरोलिना के उत्तरी और दक्षिणी भाग में कपास 'किंग क्रॉप' (फसलों का राजा) कहा जाता था लेकिन आज स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत है।

दक्षिणी प्रदेशः–

दक्षिणी प्रदेश के अन्तर्गत अरकंसास, मिसीसिपी का क्षेत्र, टेनेसी, लूसियाना आदि राज्यों के भाग को शामिल किया गया है। कपास की सबसे बड़ी मंडी मैफिस नगर है जहां पर कपास फाउण्डेशन और राष्ट्रीय कपास परिषद का कार्यालय स्थापित किया गया है इस क्षेत्र में कपास की खेती के स्थान पर सोयाबीन और चावल की खेती का महत्व बढ़ा है जिससे लोग कपास की खेती से अब दूरी बना रहे हैं। अरकंसास आज संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रमुख चावल उत्पादक राज्य के रूप में वर्तमान समय में देखा जा रहा है।

पश्चिमी प्रदेशः–

पश्चिमी प्रदेश के अन्तर्गत ओकलाहोमा, एरीजोना, न्यू मैक्सिको, कैलिफोर्निया, टैक्सास आदि राज्यों को शामिल किया गया है। वर्तमान समय में अनेक अनुकूल भौगोलिक

व अन्य कारणों से यह कृषि क्षेत्र कपास के लिए अत्यन्त अनुकूल माना जा रहा है। यहाँ पर कपास का अंशदान अनवरत् बढ़ता जा रहा है और वर्तमान समय में संयुक्त राज्य अमेरिका के समस्त कपास उत्पादन में इसका अंशदान 40% से अधिक अंकित किया गया है। यहाँ पर सिंचाई की सुविधा की उपलब्धता के कारण टेक्सास में कपास की भूमि का विस्तार अनवरत् हुआ है लेकिन सिंचाई के एक नकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं अधिक भूगर्भ जल के दोहन से जल तल में गिरावट अंकित की जा रही है और इस कारण से दिन प्रतिदिन यहाँ पर सिंचाई लागत बढ़ती जा रही है और इसका परिणाम कपास से प्राप्त होने वाले लाभ पर नकारात्मक हो रहा है क्योंकि धीरे–धीरे लागत बढ़ने से उसका लाभ घट रहा है।

कपास पेटी का सीमांकनः–

कपास की कृषि मुख्य रूप से मृदा, आर्द्रता, जलवायु, पाला रहित दिन, तापमान के कारण निर्धारित की जा सकती है कपास मूलतः उष्णकटिबंधीय पौधा है इसके लिए खुली धूप, मध्यम औसत वर्षा की आवश्यकता होती है। कपास की अच्छी खेती के लिए 200 दिन पाला मुक्त होना चाहिए और सामान्य औसत वार्षिक वर्षा 75 से 100 सेंटीमीटर होनी चाहिए। ग्रीष्म काल का तापमान लगभग 22 डिग्री सेंटीग्रेड तक होना चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह सीमा लगभग 70 डिग्री उत्तरी अक्षांश से समायोजित हो जाती है इसलिए इस पेटी की हम लोग व्याख्या करते हैं। तटवर्ती क्षेत्रों में औसतन वार्षिक वर्षा 150 सेंटीमीटर से अधिक होती है जो कपास की खेती के लिए हानिकारक मानी जाती है जहां कहीं भी 100 सेंटीमीटर से अधिक वर्षा होती है वहां पर कपास की खेती का उत्पादन का कार्य अत्यन्त मुश्किल होता है इसी कारण से इस पेटी की दक्षिणी सीमा का निर्धारण अत्यन्त कठिन कार्य है। प्रत्येक वर्ष मौसमी परिवर्तन होता रहता है और इस कारण से कपास पेटी में कभी विस्तार और कभी संकुचन क्षेत्र में कमी आने लगती हैं। कपास मेखला की उत्तरी सीमा मेसाबी की उत्तरी सीमा की खाड़ी से शुरू होती है और यहीं से दक्षिण पश्चिम की ओर बढ़ती जाती है और इस तरह से ब्लूरिज तथा रिचमाण्ड से दक्षिण की ओर होते हुए आगे बढ़ती है तथा अप्लेशियन के दक्षिणी सिरे से होती हुई उत्तर दक्षिण की ओर मुड़ जाती है पर्वत श्रेणी के दक्षिण से आगे बढ़ने के बाद यह कृषि पेटी ओहियो और मिसीसिपी अमेरिका के दो महत्वपूर्ण नदियों के संगम स्थल तक पहुंचती है यहाँ से यह ओजार्क के दक्षिणी भाग से उत्तर पश्चिम की ओर मुड़ती है और ओकलाहोमा सीमा तक पहुंचने के बाद पुनः दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ जाती है।

कपास उत्पादक क्षेत्रः–

कपास उत्पादक क्षेत्र के अन्तर्गत ऑक्लाहोमा, कैरोलिना और अरकंसास राज्य महत्वपूर्ण हैं, कपास उत्पादन और उसकी गहनता में प्रायः परिवर्तन देखने को मिलता है। कपास उत्पादन में विभिन्नता पाई गई है, उसके गहन क्षेत्र में परिवर्तन आया है। वर्तमान समय में संयुक्त राज्य अमेरिका में कपास उत्पादन के पाँच क्षेत्र निम्नलिखित हैंः–

1. मिसीसिपी घाटी
2. टैक्सास का तटीय मैदान प्रदेश
3. उत्तरी पश्चिमी टैक्सास का रेड प्रेयरी प्रदेश
4. टैक्सास का ब्लैक प्रेयरी प्रदेश
5. उत्तरी दक्षिणी कैरोलिना का आंतरिक प्रदेश

इस तरह से कुल 5 कपास क्षेत्र हैं।

4.संयुक्त राज्य अमेरिका का घास और डेयरी (दुग्ध) पेटीः–

वर्तमान समय में संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश के रूप में जाना जाता है, यहाँ प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध और दूध से बनी सामग्री का उपभोग विश्व में शीर्ष स्थान पर है संयुक्त राज्य अमेरिका के डेयरी प्रदेश में लगभग 500000 डेरी फार्म शामिल हैं, यहाँ पर डेयरी फार्म का औसत आकार 40 से लेकर 80 हेक्टेयर के मध्य है। डेयरी फार्म का कुल क्षेत्रफल 38 करोड़ हेक्टेयर है लेकिन नगरीय क्षेत्रों के आसपास डेयरी फार्म के आकार छोटे और नगर से जैसे–जैसे दूरी बढ़ती जाती है डेयरी फार्म के आकार प्रायः बड़े होते जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में डेयरी प्रदेश का विस्तार ओहियो से पूरब में मेन राज्य से लेकर मिशिगन मिनेसोटा तक विस्तृत है। मिनेसोटा से लेकर मेन राज्य तक के प्रदेश को दूध उत्पादक प्रदेश के नाम से जाना जाता है। यहाँ पर बसने वाली अधिकांश जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय कृषि के साथ–साथ पशुपालन और दूध उत्पादन है, इससे यहाँ पर बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं। इस पेटी की उत्तरी सीमा का निर्धारण 110 दिन पाला मुक्त रेखा तथा ग्रीष्म ऋतु के 17 डिग्री सेंटीग्रेड के समताप रेखा द्वारा निर्धारित होती है जबकि दक्षिणी सीमा का निर्धारण बलुई मिट्टी, उर्वर दोमट मिट्टी और देश में ग्रीष्म ऋतु 21 डिग्री सेंटीग्रेड के समताप रेखा द्वारा होता है इसके पूर्वी सीमा कृषि व्यवसाय अटलांटिक महासागर तक विस्तृत हैं जबकि पश्चिमी सीमा का सीमांकन 50 सेंटीमीटर औसत वार्षिक वर्षा रेखा द्वारा की जाती है। यहाँ पर वर्षा की मात्रा 50 से 125 सेंटीमीटर के मध्य पाई जाती है। दुग्ध उत्पादन व्यवसाय के लिए यहाँ पर अनेक भौगोलिक कारक उत्तरदायी हैं जो निम्नलिखित हैंः–

प्रथम– इस प्रदेश में सड़कों और रेल मार्गों का जाल पाया जाता है, दूध को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए रेलगाड़ी और ट्रक का प्रयोग किया जाता है। दूध और दूध के उत्पाद को रखने के लिए इस क्षेत्र में प्रशीतक की अच्छी व्यवस्था पाई जाती है, दूध का वितरण 150 से 200 किलोमीटर तक आसानी से किया जाता है, यहाँ पर दूध की खपत के लिए डेट्रायट, क्लीवलैंड, फिलाडेल्फिया, न्यूयॉर्क, शिकागो जैसे बड़े नगर स्थापित हैं। इन नगरों में दूध के आपूर्ति 200 से लेकर के 300 किलोमीटर तक के दूर दराज के क्षेत्रों से की जाती

है। बंदरगाह के निकट स्थापित होने से दूध और दूध से बनाए गए सामग्री के निर्यात के लिए उत्तम व्यवस्था भी प्राप्त है। इस क्षेत्र में प्रशीतन, पास्तुरीकरण, संग्रह, वितरण की अच्छी सुविधा है जिससे डेयरी उद्योग को प्रोत्साहन मिलता है।

द्वितीय– संयुक्त राज्य अमेरिका में इस समय दो लाख से अधिक डेयरी फार्म स्थापित किए गए हैं प्रत्येक फार्म पर सैकड़ों दूध देने वाली गाय पाली जाती हैं यहाँ पर पाई जाने वाली गाय अधिक दूध प्रदान करती हैं औसतन प्रत्येक गाय 1 वर्ष में 15000 पौंड से अधिक दूध प्रदान करती है डेयरी फार्म पर अधिकांश कार्य उत्तम स्तर के मशीनों से संपादित किया जाता है। गाय पालन और आसपास के क्षेत्रों में गेहूँ, मक्का और घास की खेती की जाती है।

तृतीय– संयुक्त राज्य अमेरिका की परंपरा का भी अधिक प्रभाव है जो कि दूध, पशुपालन उद्योग पर देखा जाता है। यूरोप के प्रवासी संयुक्त राज्य अमेरिका की डेयरी फार्म पर आते समय अपने साथ यूरोप से अनेक उत्तम नस्ल की गाय भी साथ लाए तथा वे कुशल श्रमिक भी थे, अपने निर्माण कार्य में निपुण थे। प्राकृतिक दृष्टि से यहाँ की जलवायु और मिट्टी भी अनुकूल पाई गई इस कारण से यहाँ पर दुग्ध उत्पादन का व्यवसाय तीव्र गति से विकास के पथ पर अग्रसर हुआ।

चतुर्थ– संयुक्त राज्य अमेरिका में झीलें, नदियाँ और झरने चरागाह के साथ पाए जाते हैं जिस कारण से दूध और पशुपालन पेटी के लिए स्वच्छ जल की समस्या नहीं होती हैं। अनुकूल मौसमी वातावरण में चरने और स्वच्छ जल पीने से गाय अधिक दूध प्रदान करती है। यहाँ पर शीत ऋतु नम और ठंडी होती है जिस कारण से डेयरी उद्योग अधिक प्रभावी रहता है। डेयरी उद्योग के विकास के लिए एक और अनुकूल स्थिति यह है कि यहाँ पर मौसम के कारण उद्यम विकसित नहीं हो पा रहे हैं यहाँ की दूध देने वाली गायों में उत्पादकता भी अधिक पाई जाती है विस्कांसिन राज्य की प्रति गाय लगभग 32 क्विंटल से अधिक दूध प्रतिवर्ष प्रदान करती है।

पाचवाँ– घास और डेयरी प्रदेश में गर्मी कम होती है जिस कारण से पशुपालन के लिए उपयुक्त मौसम पाया जाता है। यहाँ का तापमान ग्रीष्म काल में 17 डिग्री सेंटीग्रेड से लेकर 22 डिग्री सेंटीग्रेड तक पाया जाता है, ग्रीष्म ऋतु के कारण ग्रीष्मकालीन वर्षा काफी प्रभावशाली होती है, यहाँ पर वाष्पीकरण भी कम पाया जाता है, गायें अधिक दूध देती हैं।

छठवाँ– घास और डेयरी प्रदेश में अधिकांश वर्षा अप्रैल से सितंबर के माह में पाई जाती है, यह वर्षा घास के वृद्धि और विकास के लिए अत्यन्त अनुकूल होती है क्योंकि यही समय यहाँ पर ग्रीष्मकाल का होता है और ग्रीष्मकाल की वर्षा का वितरण समान होने के कारण चरागाह में घास का विकास अच्छी तरह से होता है जिससे पशुओं के लिए हरे चारे की कोई समस्या नहीं होती है।

सातवाँ– यहाँ धरातल में विषमता व्याप्त है, उच्चावच के दृष्टिकोण से असमान है, मिट्टी भी उपजाऊ नहीं है, खेती का कार्य करना अत्यन्त मुश्किल है इसलिए भूमि का सर्वोत्तम उपयोग दूध उत्पादन और पशुपालन है।

आठवाँ– यह एक प्रधान औद्योगिक प्रदेश के रूप में जाना जाता है। यहाँ पर अनेक प्रकार के उद्योग स्थापित हैं जहां पर देश की लगभग अधिकांश जनसंख्या निवास करती है इसलिए दूध और दूध से बनाए गए उत्पाद की खपत भी आसानी से हो जाती है। दूध की खपत के लिए स्थानीय बाजार भी उपलब्ध हैं जो दूध व्यवसाय के लिए सर्वोत्तम कारक माना जाता है इससे दूध के रखरखाव और परिवहन में खर्च कम पड़ता है परिणामतः दूध उत्पादक को अधिक लाभ प्राप्त हो जाता है, स्थानीय खपत होने से दूध पशुपालन क्षेत्र का विकास होता है।

इस तरह से डेयरी विकास और दूध उत्पादन उद्योग के विकास के लिए अनेक भौगोलिक कारक हैं जो प्रोत्साहित करते हैं, अनुकूल परिस्थितियों के कारण से इस पेटी का विकास हुआ है इसके बारे में विद्वान रसेल स्मिथ ने भी अपना विचार व्यक्त किया था।

5.गेहूँ की पेटीः–

संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का चीन के बाद दूसरा गेहूँ उत्पादक देश है यहाँ पर 35 डिग्री उत्तरी अक्षांश से लेकर 49 डिग्री उत्तरी अक्षांश के बीच गेहूँ की खेती की जाती है, 1980 में दो लाख 87 हजार हेक्टेयर पर गेहूँ की खेती की गई थी, जिससे 645 लाख टन गेहूँ का उत्पादन किया गया था, यह उत्पादन विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 15% से अधिक था जैसे–जैसे उपनिवेश पश्चिम दिशा की ओर बढ़ते गए वैसे–वैसे गेहूँ की खेती भी पश्चिम दिशा की ओर विस्तृत होती गई, गेहूँ की खेती औद्योगिक क्रांति से सम्बन्धित है जैसे–जैसे आंतरिक मैदानी भाग में यातायात के साधनों से पूर्वी भाग आपस में जुड़ते गए वैसे वैसे गेहूँ की खेती पश्चिम दिशा में स्थानांतरित होती चली गई और गेहूँ का विस्तार पश्चिम मध्य प्रदेश, उत्तर के प्रेयरी प्रदेश, मिसीसिपी के पश्चिमी दक्षिण क्षेत्र में फैल गया आंतरिक जलमार्ग, रेलमार्ग, उत्तम सुविधा के कारण गेहूँ की खेती व्यापारिक दृष्टिकोण से की जाने लगी और यह एक महत्वपूर्ण व्यापारिक खाद्यान्न बना और उत्पादन क्षेत्र में तेजी से विस्तार हुआ यह विस्तार अनेक कारणों से हुआ जिसमें उच्च क्षमता की मशीन का प्रयोग, रासायनिक उर्वरक, उत्कृष्ट बीज, प्राविधिक एवं वैज्ञानिक विधियों, सुविधाओं का उपयोग, आयात निर्यात की सुविधा जिसके कारण उत्पादन अन्य देशों की तुलना में बहुत अधिक होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में गेहूँ की खेती का लगभग समस्त कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है गेहूँ की खेती पर जलवायु कारकों का महत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है। जलवायु के कारण से गेहूँ की खेती भिन्न–भिन्न क्षेत्र में भिन्न– भिन्न क्रियाओं द्वारा की जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका गेहूँ के गुणवत्ता पर वहां के जलवायु का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यहाँ पर सफेद, कठोर, लाल बसंत कालीन; कठोर

और लाल शीतकालीन; मुलायम लाल शीतकालीन गेहूँ की खेती की जाती है यहाँ के कुल गेहूँ के उत्पादन में 57% कठोर लाल शीतकालीन गेहूँ, 12% शीतकालीन गेहूँ, 21% कठोर लाल बसंत कालीन गेहूँ, 10% सफेद गेहूँ का उत्पादन होता है गेहूँ के उत्पादक क्षेत्रों को 5 भागों में बांटा गया है।

1. बसंत कालीन गेहूँ की खेती
2. शीतकालीन गेहूँ की खेती
3. शीतकालीन मुलायम गेहूँ की खेती
4. कोलंबिया पठार की पेटी
5. कैलिफोर्निया गेहूँ की पेटी

1. बसंत कालीन गेहूँ की पेटी:–

बसंतकालीन गेहूँ की खेती का विस्तार उत्तरी डकोटा, मोंटाना, नेब्रास्का, मिनेसोटा राज्यों में की जाती है। यहाँ पर व्यापारिक तथा मशीनीकृत खेती की जाती है इस गेहूँ पेटी का विस्तार पश्चिम में राकी पर्वत प्रदेश से लेकर रेड नदी घाटी तक विस्तृत है जो लगभग 4000 किलोमीटर लंबाई में और 160 किलोमीटर की चौड़ाई में विस्तृत है। इस पेटी को विश्व की 'रोटी की टोकरी' के नाम से जाना जाता है। 'ब्रेड बास्केट ऑफ द वर्ल्ड' बसंत कालीन गेहूँ की पेटी के क्षेत्र में चेस्टनट मिट्टी, काली मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी गेहूँ की खेती के लिए उत्तम है लेकिन जलवायु दशायें अनिश्चित एवं अविश्वसनीय हैं। यहाँ पर आर्द्रता कभी–कभी अधिक होती है जिस कारण बसंत काल में खेत की जुताई देर से प्रारंभ हो जाती है लेकिन कभी–कभी ग्रीष्मकाल जल्दी आ जाता है जिससे फसलें सूख जाती है। यहाँ की फसलें ओला से नष्ट भी होती रहती हैं इस प्रकार स्पष्ट है कि यहाँ की फसलें मौसमी दशाओं पर पूरी तरह से निर्भर होती हैं। इस पेटी की सीमा 90 दिन की फसल रेखा अथवा 13.8 डिग्री सेंटीग्रेड की जुलाई की समताप रेखा द्वारा और पश्चिमी रेखा राक पर्वत द्वारा, पूर्वी सीमा रेखा 98 डिग्री पश्चिमी देशांतर द्वारा निर्धारित होती है। यहाँ पर मिनियोपोलिस, बफेलो महत्वपूर्ण आटा मिल केन्द्र हैं। आटा मिल का निर्यातक प्रमुख बंदरगाह डुलुथ और सुपीरियर है यहाँ से गेहूँ आटा का निर्यात बड़ी मात्रा में किया जाता है। बसंत कालीन गेहूँ की पेटी क्षेत्र से लगभग 26% गेहूँ का उत्पादन किया जाता है।

2. शीतकालीन कठोर गेहूँ की पेटी:–

शीतकालीन कठोर गेहूँ की पेटी संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्यवर्ती समतल उपजाऊ भाग में विस्तृत है इस पेटी के अन्तर्गत नेब्रास्का, ओकलाहोमा, टैक्सास, पश्चिमी कोलारेडो, अरकंसास के राज्य के अधिकांश भाग शामिल हैं। राकी पर्वत पदीय क्षेत्र के मिसीसिपी नदी के भाग में लगभग 125 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में शीतकालीन कठोर गेहू

की पेटी का विस्तार पाया जाता है। बृहद मैदान क्षेत्र का भाग है उपज के दृष्टिकोण से अत्यन्त उपजाऊ मिट्टी, काली मिट्टी पाई जाती है यहाँ पर तापमान अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है और ग्रीष्मकाल आने के पूर्व ही गेहूँ की फसल लगभग तैयार हो जाती है। इस पेटी की पश्चिमी सीमा का निर्धारण 25 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा रेखा द्वारा किया जाता है। दक्षिणी सीमा का निर्धारण 75 सेंटीमीटर की अधिक वर्षा द्वारा होती है वहां पर तापमान भी ऊँचा पाया जाता है जिस कारण से गेहूँ के स्थान पर लोग कपास की खेती करना अत्यधिक उपयुक्त समझते हैं और धीरे–धीरे पूर्व की ओर बढ़ने पर मक्का फसल अधिक प्रभावी रहती है। शीतकालीन कठोर गेहूँ की पेटी का उत्पादन में योगदान पूरे राष्ट्र का 40% है। यहाँ पर गेहूँ के भण्डार के लिए बड़े–बड़े गोदाम निर्मित हैं। यहाँ के प्रमुख निर्यातक बंदरगाह गालवेस्टन, न्यूआर्लियन्स एवं मोबाइल हैं।

3. शीतकालीन मुलायम गेहूँ की पेटीः–

शीतकालीन मुलायम गेहूँ की पेटी का विस्तार इलीनोइस, मिशिगन, पेंसिलवेनिया, आहियो, इंडियाना आदि राज्यों में है। सबसे पहले खेती का विकास इसी राज्य में कृषि की शुरूआत से हुई। इस कृषि पेटी में कपास और गेहूँ की खेती में प्रतिस्पर्धा थी। कपास का क्षेत्र दक्षिण की ओर स्थानांतरित होता गया और इस भाग में कपास का गेहूँ के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और गेहूँ के उत्पादन को प्रमुखता मिलती गई। आज गेहूँ की कृषि पश्चिमी मैदान में केन्द्रित होने के कारण तथा औद्योगिक विस्तार के कारण इससे प्रदेश में गेहूँ का महत्व घटता जा रहा है यहाँ पर संयुक्त राज्य अमेरिका का मात्र 13% गेहूँ का उत्पादन किया जाता है। बफेलो एवं शिकागो इस प्रदेश की प्रमुख गेहूँ की मंडियाँ हैं।

4. कोलंबिया पठार की गेहूँ पेटीः–

कोलंबिया पठार गेहूँ की पेटी का विस्तार प्रशांत महासागर के तटवर्ती क्षेत्रों में पाया जाता है। कोलंबिया पठार पर काली मिट्टी पाई जाती है यह मिट्टी ज्वालामुखी से निकले मैग्मा के ठंडा होने से बनी हुई है। यहाँ अर्धचंद्राकार रूप में पहाड़ियाँ पाई जाती हैं, जिनके एक और हल्के ढाल पर गेहूँ की खेती की जाती है, यहाँ पर बसंतकालीन, शीतकालीन दोनों प्रकार की खेती का कार्य होता है। कोलंबिया पठार गेहूँ प्रदेश अत्यन्त छोटा गेहूँ प्रदेश है इसमें औरेगन, वांशिंगटन आदि राज्य शामिल हैं देश का लगभग 8% गेहूँ का उत्पादन कोलंबिया पठार पर किया जाता है।

5. कैलिफोर्निया गेहूँ पेटीः–

कैलिफोर्निया गेहूँ पेटी का विस्तार कैलिफोर्निया राज्य की कैलिफोर्निया घाटी में पाया जाता है यहाँ पर सोन्जीक्विन एवं सैक्रामेंटो की घाटी में गेहूँ की खेती सफलतापूर्वक की जाती है यहाँ की जलवायु भूमध्यसागरीय है, भूमध्यसागरीय जलवायु के कारण शीतकालीन गेहूँ उत्पन्न होता है। सैनफ्रांसिस्को यहाँ का प्रमुख निर्यातक बंदरगाह है। यहाँ

पर शीतकाल में वर्षा होती है ग्रीष्मकाल शुष्क होता है इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कृषिकार्य सम्पन्न करता ळें

14.4.चीन का कृषि प्रदेश

चीन पूर्वी एशिया का सबसे प्रमुख कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है यहां की लगभग 75 परतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से अपनी जीविका के लिए कृषि संसाधन पर ही आधारित है कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 10 % से भी कम ही भाग पर खेती की जाती है जहां पर साम्यवादी सरकार और किसानों के परिश्रम के कारण 2% कृषि भूमि का विस्तार एक विस्तार वादी योजना के द्वारा किया गया है यहां पर कुल कृषि भूमि का क्षेत्रफल लगभग 13 करोड हेक्टेयर पाया जाता है प्रति व्यक्ति कृषि भूमि की उपलब्धता ऑस्ट्रेलिया और कनाडा के तुलना में अत्यंत कम है यहां पर प्रति व्यक्ति कृषि भूमि लगभग 0.2 हेक्टेयर ही उपलब्ध हो पाई है और 5 लोगों के परिवार में मिला देने पर मात्र 1 हेक्टेयर से कम` ही उपलब्ध हो पाती है चीन में किसानों के पास भूमि की उपलब्धता कम है इसलिए किसान अपनी फसलों के उत्पादन के लिए एक साथ अनेक फसलों का उत्पादन करते हैं जैसे उनके इच्छा अनुसार अनाज की आपूर्ति हो सके तथा खाद्यान्न के लिए भारी जनसंख्या को खाद्यान्न संकट का सामना न करना हो यह चीनी कृषि की अपनी एक विशेषता है चीनी कृषि की विशेषताएं निम्नलिखित हैं

1. चीनी कृषक एक ही फार्म पर अनेक फसलों को एक समय सात सात उगाता है जैसे एक समय गेहूं जौ हरी सब्जी सोयाबीन आदि फसलों की खेती करता है
2. यहां पर गहन कृषि की जाती है कम से कम भूमि पर अधिक से अधिक उत्पादन को प्राप्त करना इनका प्रमुख उद्देश्य होता है
3. यहां पर कृषि भूमि की उर्वरता बनी रहे इसलिए ये लोग कंपोस्ट की खादों का अधिक प्रयोग करते हैं रासायनिक खादों पर उनकी निर्भरता कम होती है
4. इनकी सबसे बड़ी और प्रमुख विशेषता यह है कि वर्ष में तीन फसलों की खेती करते हैं और एक फसली समय में या मौसम में एक साथ कई फसलों को उगाते हैं यह इनकी एक बड़ी विशेषता है
5. वृक्ष परती भूमि बंजर भूमि पर लगाए जाते हैं और शहतूत की खेती भी यहीं पर की जाती . है
6. कृषि भूमि के विस्तार की भावना से और मृदा संरक्षण के उपायों के कारण से चीन के किसान ढालू भूभाग में सीढ़ीनुमा खेत बनाकर अपनी खेती करते हैं जिससे उनको कुछ अतिरिक्त भूमि भी प्राप्त हो जाती है

7 . चीनी कृषक अनउपजाउे क्षेत्रों में जैसे दलदली भूमि हो या अन्य कोई अनऊपजाउे या बंजर परती उसर आदि भूमि पर उपजाऊ मिट्टी फैला देते हैं जिससे उस पर भी कृषि कार्य सफलता पूर्वक किया जा सके

8. मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए चीनी किसान आज भी प्राचीन कृषि प्रणाली को अपनाता है मशीनों के साथ–साथ मानवीय श्रम एवं हल बैल का प्रयोग प्रमुखता से करता है क्योंकि यहां पर गहन कृषि की जाती है।

14.5.चीन का कृषि प्रादेशीकरण

चीन विस्तृत भू–भाग का देश है इसलिए भौगोलिक परिस्थितियां भी प्रत्येक प्रांत में अलग–अलग पाई जाती है फसलों में क्षेत्रीय विभिन्नता मिलती है दक्षिण में चावल की प्रधानता होती है उत्तर में गेहूं की प्रधानता है यहां पर खाद्यान्न फसलों के साथ–साथ कपास चाय तंबाकू रेशम जैसे व्यापारिक फसलों की भी खेती की जाती है चीन की कृषि का प्रादेशिकरण के अध्ययन का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहां पर दो फसलों की प्रमुखता है गेहूं की फसल और चावल की फसल यह दोनों फसलें चीन के अधिकांश भूभाग पर उगाई जाती हैं इसलिए सामान्य रूप से फसलों के आधार को ध्यान में रखकर चावल कृषि प्रदेश और गेहूं कृषि प्रदेश वर्गीकृत किया जा सकता है लेकिन चीन के कृषि की एक प्रमुख विशेषता है कि एक साथ एक ही फसल क्षेत्र में कई फसलों को उग़ाया जाता है इसलिए सोयाबीन ज्वार बाजरा कपास चाय तंबाकू की फसलों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है

विद्वान डडले स्टांप ने सबसे पहले 1918 में चीन को फसलों के वितरण के आधार पर निम्नलिखित 4 कृषि प्रदेशों में विभाजित किया था

1 सोयाबीन प्रदेश

2 चावल प्रदेश

3 गेहूं तथा चावल प्रदेश

4 गेहूं तथा ज्वार बाजरा प्रदेश

विद्वान स्टाम्प महोदय के द्वारा किया गया उपरोक्त वर्गीकरण में चीन के कृषि प्रदेश की विशेषताओं और उसके वितरण की स्पष्ट प्रतिनिधित्व नहीं होता है सन 1929 से 33 में प्रमुख विद्वान प्रोफेसर जे एल बक ने चीन को 168 क्षेत्रों के 15786 कृषि फार्म का

विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण किया जे एल बक ने भौतिक सांस्कृतिक आधार पर चीन को दो बृहद आठ उप कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है

1. गेहूं प्रदेश

2. चावल प्रदेश

1.गेहूं प्रदेश

उत्तरी चीन की प्रमुख फसल गेहूं है उत्तरी चीन की लगभग 39% भूमि कृषि योग्य है यह भूमि चीन देश के कुल कृषि भूमि की लगभग 51% है उत्तरी चीन में लगभग 68 % भूभाग पर खाद्यान्न फसलों को सफलतापूर्वक उगाया जाता है यहां पर गेहूं के अंतर्गत 40.2ः% कॉयोलिंग के अंतर्गत 15ः% मक्का के अंतर्गत 13.4ः% उत्पादन शामिल है अर्थात कुल फसलों के खाद्यान्नों के उत्पादन में गेहूं कायोलिंग मक्का तीन फसलें प्रमुखता से उगाई जाती है दाल और अन्य फसल के अंतर्गत कृषि भूमि मात्र 13ः% ही शामिल है उत्तरी क्षेत्र में चावल की खेती नगण्य है चावल और रेशेदार फसलों के अंतर्गत बहुत ही कम भूभाग शामिल है प्रोफेसर जे एल बक ने उत्तरी गेहू प्रदेश को 3 उप प्रदेशों में विभाजित करने का प्रयास किया है जो निम्नलिखित है

1.शीतकालीन गेहूं एवं कॉयोलिंग प्रदेश

2.बसंत कालीन गेहूं एवं ज्वार बाजरा प्रदेश

3.बसंत कालीन गेहूं

2.चावल प्रदेश

चीन के दक्षिणी क्षेत्र में चावल की प्रमुखता से खेती की जाती है चीन के दक्षिणी भाग की मात्र 18ः% भूमि कृषि योग्य है यह 18ः% भूमि चीन के कुल कृषि भूमि का लगभग 49%ः है यहां पर खाद्यान्न फसलों की प्रधानता है दक्षिणी चीन के कृषि योग्य भूमि के 69ः% भाग पर चावल की खेती की जाती है उत्तरी और दक्षिणी चीन के कुल खाद्यान्न फसलों की खेती 68.7ः% कृषि भूमि पर की जाती है यहां पर चावल के साथ गेहूं जो फली आदि महत्वपूर्ण फसलें भी हैं गेहूं की खेती 17.1ः% जौ 11.7ः भूभाग पर उगाई जाती है

विद्वान प्रोफेसर वर्क महोदय ने चावल के वृहद प्रदेश को अध्ययन की सुविधा हेतु 5 भागों में विभाजित किया है

1. दक्षिणी पश्चिमी चावल प्रदेश

2.. दो फसली चावल प्रदेश

3.. जेचवान बेसिन चावल प्रदेश

4.चावल चाय प्रदेश

5.. यांग्टिसीक्याग घाटी चावल गेहूं प्रदेश

प्रोफेसर जे एल बक महोदय द्वारा प्रस्तावित 8 उप कृषि प्रदेश के विशेषताएं निम्नलिखित हैं

1.दक्षिणी पश्चिमी चावल प्रदेश

दक्षिण पश्चिमी चावल प्रदेश के अधिकांश भूभाग उबड़ खाबड़ है कहीं पर धरातल 300 मीटर से अधिक ऊंचा भी पाया जाता है यहां पर कृषि योग्य भूमि अत्यंत सीमित क्षेत्र में फैली है यहा केवल नदी घाटियों में ही कृषि योग्य भूमि पाई जाती है यहां के समस्त क्षेत्र का 7%: भाग कृषि योग्य है चीन के समस्त कृषि भूमि का मात्र 5:% भाग दक्षिणी पश्चिमी चावल प्रदेश में विस्तृत है यहां पर खाद्यान्न फसलों को प्रमुखता से उगाया जाता है खाद्यान्न फसलों की खेती कुल फसल की खेती के पास 65%: भाग पर की जाती है इस कृषि प्रदेश में चावल की प्रमुखता है इसीलिए इसका नाम दक्षिणी पश्चिमी चावल प्रदेश रखा गया है खाद्यान्न फसलों के समस्त क्षेत्रफल के 58.7:% भूभाग पर चावल की खेती की जाती है दूसरी महत्वपूर्ण फसल मक्का है जो 13.6:% भाग पर उगाया जाता है तीसरे महत्वपूर्ण फसल जौ है जो 23% भाग पर उगाया जाता है

2.दो फसली चावल प्रदेश

दो फसली चावल प्रदेश का विस्तार दक्षिणी पूर्वी चीन मैं और उसकी सहायक नदियों के मैदानी क्षेत्र में विस्तृत है यहां पर औसत वार्षिक वर्षा 150 सेंटीमीटर से अधिक होती है दो फसलें चावल प्रदेश में वर्ष भर वर्षा प्राप्त होती है चावल की खेती के लिए दीर्घकाल तक बना रहता है इसलिए यहां पर वर्ष में चावल के दो फसलों की खेती आसानी से की जा सकती जाती है दो फसलें चावल प्रदेश के समस्त भूभाग का मात्र 13%: भाग कृषि योग्य जो संपूर्ण चीन देश के सकल कृषि क्षेत्र का 6:% है दो फसलें चावल प्रदेश के अधिकांश भूमि कृषि के कार्य करने के लिए उपयुक्त नहीं है

यहां पर वर्ष भर वर्षा होती रहती है जिस कारण से मिट्टी का अपरदन अधिक होता है किसान यहां पर सघन खेती करते हैं इस क्षेत्र में जनसंख्या का भार अधिक है संपूर्ण फसलों के क्षेत्र में खाद्यान्न फसलों के अंतर्गत चावल की खेती लगभग 59ः% भूभाग पर की जाती है यहां पर गन्ना तंबाकू चाय शकरकंद शहतूत आलू आदि फसलों की खेती सफलतापूर्वक की जाती है

3.जेचवान चावल प्रदेश

जेचवान बेसिन में चावल की खेती प्रमुखता से की जाती है जिसमें चावल शकरकंद वाला क्षेत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है यहा पर चावल और शकरकंद की खेती ग्रीष्मकाल में सफलतापूर्वक की जाती है यह अत्यंत प्रसिद्ध फसल है जेचवान चावल प्रदेश में यांग्टिसीक्याग बेसिन या लाल बेसिन मूल रूप से शामिल है इस प्रदेश का 32%ः भूभाग कृषि योग्य है जो चीन के कुल कृषि भूमि का 14ः% है जेचवान चावल प्रदेश की जलवायु सामान्य है यहां पर औसत वार्षिक वर्षा 100 सेंटीमीटर से अधिक पाई जाती है यहां पर चावल फसल के अंतर्गत सर्वाधिक क्षेत्र लगभग 41−37% संलग्न है जेचवान बेसिन में शीतकालीन गेहूं मक्का सोयाबीन आलू तंबाकू अन्य फसलों की खेती भी सफलतापूर्वक की जाती है इस बेसिन में सिंचाई की सुविधा भी उपलब्ध है लेकिन अभी तक चीन के विकास तथा विकास के बावजूद भी 100 % सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाई है यहां पर लगभग 75ः% से अधिक भूभाग सिंचित हैं

4. चावल चाय प्रदेश

चीन का अधिकांश भूभाग उबड खाबड पर्वती पठारी है पर्वती पठारी क्षेत्र में चाय की खेती के लिए अनुकूल परिस्थितियां पाई जाती है दक्षिणी पूर्वी एशिया के प्रति और पठारी भाग में फैले चीन में चावल चाय का संयोजन अच्छा पाया जाता है इस प्रदेश में पहाड़ियां उबड़ खाबड़ लगभग 1500 से 1800 मीटर तक ऊंची पाई जाती है पहाड़ी क्षेत्रों के समतल भूमि का अभाव पाया जाता है यहां की समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल के मात्र 18ः% भूमि पर कृषि का कार्य किया जाता है जो सकल कृषि भूमि का मात्र 12%ः है यहां पर क्यागसी फूकाइन और हुनान राज्य के तटीय भागों में चावल की

खेती 67.7% भाग पर चावल की खेती की जाती है क्योंकि जनसंख्या का भार यहां पर अधिक पाया जाता है पहाड़ी भागों में सभी जगह पर चावल चाय की खेती के लिए अनुकूल परिस्थितियां होने से चाय उगाया जाता है यह चाय निर्यात के लिए भी प्रसिद्ध है तुंग वक्ष हुनान प्रांत के पश्चिमी और उत्तरी क्षेत्र में पहाड़ी विभागों में लगाया गया है तुग वृक्ष का तेल उद्योग अत्यंत प्रसिद्ध है चावल चाय प्रदेश में औसत वार्षिक वर्षा 150 सेंटीमीटर से अधिक अंकित की जाती है

5.यांगटीसीक्याग घाटी चावल गेहूं प्रदेश

घाटी चावल गेहूं प्रदेश उत्तरी और दक्षिणी चीन के मध्य एक संक्रमणीय पेटी के रूप में प्रसिद्ध है इस कृषि प्रदेश के अंतर्गत हुपेइ आनहुई चयांशु आदि प्रमुख प्रांत शामिल हैं यहां के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल के मात्र 35ः% भूभाग कृषि योग के रूप में पाया जाता है यहां पर चीन के संपूर्ण कृषि क्षेत्र का मात्र 12%ः भूभाग ही उपलब्ध हो पाता है यहां की मिट्टी अत्यंत उर्वर और जलोढ़ है सिंचाई की विशेष सुविधा उपलब्ध है औसत वार्षिक वर्षा 150सेंटीमीटर अंकित की जाती है यहां पर ग्रीष्म काल में चावल और शीतकाल में गेहूं को प्रमुखता से उगाया जाता है अन्य महत्वपूर्ण फसलों में जौ और सोयाबीन है कपास और रेशम की खेती वस्त्र उद्योग के लिए सफलतापूर्वक की जा रही है

6.**शीतकालीन गेहूं एवं कॉयोलिंग प्रदेश**

इस प्रांतों में शीतकालीन गेहूं एवं कालीन खेती की जाती है यहां पर संपूर्ण चीन की कुल कृषि भूमि का 35% भाग कृषि भूमि के रूप में उपलब्ध है शीतकालीन गेहू कायोलिग प्रदेश के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल का 68ः% भाग कृषि भूमि के रूप में पाया जाता है यहां पर वर्षा मध्यम स्तरीय होती है लगभग 50 से 60 सेंटीमीटर वर्षा पाई जाती है यहां की मिट्टी चुना प्रधान है पीली पाडजोल मिट्टी की प्रमुखता है यहां पर ग्रीष्म काल में कॉयोलिंग और शीतकाल में गेहूं प्रमुख रूप से उगाया जाता है अन्य फसलों में सोयाबीन आलू मक्का शकरकंद की खेती भी की जाती है इस प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है जनसंख्या का कृषि पर भार अधिक है यहां अनेक प्रकार के प्राकृतिक आपदाएं भी आती रहती हैं इसलिए इन प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़ अकाल आदि का सामना भी यहां के किसानों को करना होता है यहां पर भी जीवन निर्वाह सघन कृषि कार्य की जाती है

7.शीतकालीन गेहूं एवं ज्वार बाजरा प्रदेश

शीतकालीन गेहूं ज्वार बाजरा प्रदेश लोयस मिट्टी प्रदेश के क्षेत्र में विस्तृत है लोएस मिट्टी प्रदेश के लगभग 80 लाख हेक्टेयर क्षेत्र पर इस कृषि प्रदेश का विस्तार पाया जाता है यहां पर फेन वाई दो नदियां प्रमुख रूप से प्रवाहित होती है इस कारण से इस कषाी प्रदेश का विस्तार इन नदी घाटियों में है यहां के संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल के 22:% भूभाग पर खेती की जाती है यह चीन के कुल कृषि भूमि का मात्र 9:% भूभाग है यहां की मिट्टी उपजाऊ है क्योंकि नदियों द्वारा लाए गए जलोढ़ से निर्मित है सिंचाई की सुविधा भी यहां पर सुलभ है शीतकाल में गेहूं और ग्रीष्म काल में ज्वार बाजरा मक्का यहां की प्रमुख फसल है इसकी खेती की जाती है व्यापारिक फसलों में कपास की खेती प्रमुखता से की जाती है इस कृषि प्रदेश में शांसी शेंसी उत्तरी पूर्वी कांसू प्रांत में खेती का विस्तार कृषि का विस्तार पाया जाता है

8.बसंत कालीन गेहूं प्रदेश

बसंत कालीन गेहूं प्रदेश का विस्तार मंचूरिया राज्य में मूल रूप से है यहां पर

लिआओ और सुंगारी नदी बेसिन में लगभग 50 हजार हेक्टेयर खेत पर क्षेत्रफल पर बसंत कालीन गेहूं की खेती की जाती है यहां पर भूमि अधिक विस्तृत है संपूर्ण चीन यहां के संपूर्ण क्षेत्रफल के लगभग 18% पर खेती की जाती है चीन के कुल कृषि भूमि का 7% भाग यहां पर पाया जाता है बसंत कालीन गेहूं प्रदेश में गेहूं सोयाबीन कॉयालिंग प्रमुख रूप से पाया जाता है इससे प्रदेश की मिट्टी चरनोजम में और चेस्टनट प्रकार की है गेहूं की वृद्धि और विकास के लिए 200 दिन मिल जाते हैं अन्य महत्वपूर्ण कृषि फसलों में मक्का और जौ की खेती की जाती है

प्रोफेसर बुचानन महोदय 1956 मे चीन के कृषि प्रदेश का विश्लेषण करते हुए कृषि प्रदेश का एक व्यवस्थित मानचित्र बनाया विद्वान बुचानन महोदय का कृषि प्रदेश का निर्धारण फसल संयोजन के आधार पर किया गया है इन्होंने चीन को 22 कृषि प्रदेशों में वर्गीकृत किया है

1. सोयाबीन कॉलिंग प्रदेश
2. पश्चिमी चीनी नखलिस्तान कृषि प्रदेश
3. पर्वतीय चरागाह प्रदेश

4. मरू चरागाही कृषि प्रदेश
5. अर्ध कृषि पशुपालन कृषि प्रदेश
6. रबर उष्णकटिबंधीय फसल प्रदेश
7. चावल गन्ना उष्णकटिबंधीय फसल प्रदेश
8. चाय कृषि प्रदेश
9. चावल गेहूं रेशम कृषि प्रदेश
10. कपास कृषि प्रदेश
11. चावल कपास कृषि प्रदेश
12. चावल कृषि प्रदेश
13. चावल मक्का लकड़ी कृषि प्रदेश
14. चावल गेहूं कृषि प्रदेश
15. आलू खाद्यान्न कृषि प्रदेश
16. मक्का ज्वार बाजरा कृषि प्रदेश
17. मक्का कृषि प्रदेश

18 कपास गेहूं कृषि प्रदेश

19 गेहूं विविध खाद्यान्न कृषि प्रदेश

20 गेहूं तिलहन प्रदेश

21 कॉयोलिंग प्रदेश

22. कपास का कायोलिंग कृषि प्रदेश

विद्वान जी बी केसी महोदय ने जे एल बक के आधार पर चीन को कृषि प्रदेशों में विभाजित करने का प्रयास किया है विद्वान जी बी केसी ने विद्वान जीबी महोदय के उत्तरी पूर्वी मंचूरिया प्रांत के सोयाबीन प्रदेश को एक अलग कृषि प्रदेश के रूप में विभाजित किया जिस कारण से विद्वान जे एल बक के 8 कृषि प्रदेश 9 कृषि प्रदेश में बन गए

1 दक्षिणी पश्चिमी चावल प्रदेश

2. दो फसली चावल प्रदेश

3. चावल चाय प्रदेश

1 .जेचवान चावल प्रदेश
2 यांगटीसीकियांग चावल गेहूं प्रदेश
6शरद कालीन गेहूं तथा कॉयोलिंग प्रदेश

7. शरद कालीन गेहूं तथा ज्वार बाजरा प्रदेश

8. बसंत कालीन गेहूं प्रदेश मंचूरिया सोयाबीन प्रदेश

14.6.0.चीनी वैज्ञानिक अकादमी द्वारा कृषि प्रादेशिक करण

चीनी वैज्ञानिक अकादमी ने संपूर्ण चीन के कृषि को चार स्तरीय प्रादेशिकरण वर्ष 1962 में किया था जिन की विशेषताएं सारिणी में दी गई है चीनी वैज्ञानिक अकादमी द्वारा प्रस्तुत कृषि प्राधिकरण के लिए निम्न तत्वों को आधार स्वरूप माना गया है

1. प्रादेशिक भूमि उपयोग एवं कृषि उत्पादन विशिष्टता

2 .प्राकृतिक आर्थिक विशेषताएं

3. भावी कृषि विकास प्रतिरूप

प्रादेशिक भूमि उपयोग एवं कृषि उत्पादन विशेषताएं

इस वर्ग के अंतर्गत निम्नलिखित महत्वपूर्ण तत्वों को समाहित किया गया है

1.प्राकृतिक तत्व जैसे धरातलीय स्वरूप उच्चावच मृदा मौसम तापमान आर्द्रता वर्षा का संपूर्ण प्रभाव

2.राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान

3.पशुपालन और फसल उत्पादन की प्रमुख विधियां

4.प्रति हेक्टेयर उत्पादन

प्राकृतिक आर्थिक विशेषताये

प्राकृतिक आर्थिक विशेषताएं निम्नलिखित है जिसके आधार पर कृषि प्रादेशिकरण करने का प्रयास किया गया इसके अंतर्गत निम्न तत्व शामिल हैं

1.वर्षा और भूमिगत जल की उपलब्धि और फसलों का वर्धन काल

2. धरातल मृदा तथा वनस्पति आदि भूमि संसाधन

3. मानव श्रम जातीय समूह आर्थिक विकास कृषि का उद्भव और विकास तथा जनसंख्या विशेषताएं

भावी कृषि विकास प्रतिरूप

इस वर्ग के अंतर्गत निम्नलिखित तत्व शामिल है

1. वर्तमान भूमि उपयोग की क्षमता
2. ऐतिहासिक विकास कार्यक्रम
3. भविष्य में विकास की रूपरेखा

चीनी वैज्ञानिक अकादमी ने उपरोक्त तथ्यों के आधार पर चीन को 4 वृहद स्तर 12 द्वितीय स्तरीय 51 तृतीय श्रेणी और 129 चतुर्थ श्रेणी के कृषि प्रदेश में चीन को विभाजित किया है

चीनी वैज्ञानिक अकादमी द्वारा प्रस्तावित वृहद स्तरीय कृषि प्रदेश चीनी वैज्ञानिक अकादमी ने वृहद स्तरीय 4 कृषि प्रदेश का निर्धारण किया है

1.उत्तरी पूर्वी कृषि प्रदेश

2. दक्षिणी पूर्वी कृषि प्रदेश

3. उत्तरी पश्चिमी कृषि प्रदेश

4 तिब्बत शंघाई कृषि प्रदेश

चीनी वैज्ञानिक अकादमी ने उपरोक्त कृषि प्रदेशों का निर्धारण इन को प्रभावित करने वाले कारकों जैसे कृषि गहनता ऐतिहासिक विकास उत्पादन का प्रतिरूप गहनता प्राकृतिक सांस्कृतिक परिस्थितियां आदि को आधार मानते हुए 2 श्रेणीं 12 उप .कृषि प्रदेश का निर्धारण किया है

1.दक्षिणी पूर्वी तिब्बत पठार का तुलनात्मक दृष्टि से गर्म और आर्द कृषि एवं वन उद्योग प्रदेश

2. शंघाई तिब्बत पठार का मिश्रित कृषि प्रदेश

3. उत्तरी तिब्बत का उच्च भूमि कृषि प्रदेश

4.. दक्षिणी सियांग बहु फसली कृषि प्रदेश

5..उत्तरी सिक्याग का एक फसली प्रदेश

6. आंतरिक मंगोलिया सिक्याग का पशुपालन और एक फसली कृषि प्रदेश

7. दक्षिणी चीन का तीन फसली कृषि प्रदेश

8. दक्षिणी पश्चिमी उच्च भूमि कर दो फसली प्रदेश

9. मध्य और पूर्वी चीन का दो फसली चावल प्रदेश

10.उत्तरी चीन का शुष्क कृषि प्रदेश

11. मंगोलिया शुष्क कृषि एवं पशुपालन प्रदेश

12 उत्तरी पूर्वी चीन का शुष्क कृषि प्रदेश

चीनी वैज्ञानिक अकादमी तृतीय स्तरी कृषि प्रदेश के निर्धारण में कृषि पद्धति शस्य संयोजन फसल पशुपालन साहचर्य उद्योग फसल पशु संयोजन के आधार पर कृषि प्रदेश का निर्धारण करने का प्रयास किया है

इस प्रकार चीनी वैज्ञानिक अकादमी ने प्रस्तावित कृषि प्रदेश योजना चीन के वर्तमान कृषि समस्या के समाधान तथा विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में चीन के कृ षि के विकास में अधिक उत्पादन की प्राप्ति में क्षेत्र की समस्याओं के निराकरण में विशेष लाभदाई रही है चीनी वैज्ञानिको ने अपने प्राधिकरण का स्वरूप अत्यधिक वैज्ञानिक गत्यात्मक एवं प्रासंगिक बनाया है संपूर्ण सामाजिक आर्थिक राजनीतिक प्राकृतिक आघार का कृषि प्रदेश के निर्धारण में विशेष ध्यान दिया

14.7.जापान के कृषि प्रदेश

जापान देश मे जलवायु ,स्थल आदि मे   अत्यधिक विषमता पाई जाती इस कारण से कृषि प्रदेशों में बांटना एक कठिन कार्य है यहां पर उत्पादन में भी विविधता पाई जाती है जापान देश में अत्यंत लोकप्रिय धान जो दक्षिणी क्षेत्रो में उगाया जाता है होकैड़ो उत्तर में है जो अत्यंत ठंडा प्रदेश है यहॉ धान की फसलें उगाई जाती है जापान में भी संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह पश्चिम में पर्वत और मध्यवर्ती मैदानी भाग की तरह कोई विभेद नहीं पाया जाता है जापान में फसलों के उत्पादन में क्षेत्रीय विभिन्नता पाई जाती है क्षेत्रीय विभिन्नता कारण यह अंतर तीन भागों में पाया जाता है

प्रथम भाग पर्वती ढलान क्षेत्र जो जंगली वनस्पतियों से ढके हुए

द्वितीय क्षेत्र शुष्क नदी घाटियां और ऊंचे भाग जहां पर जौ, गेहूं, फल, सब्जी की खेती की जाती है

तृतीय क्षेत्र मैदान और घाटियों की जलोढ़ मिट्टी का भाग जहां पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है

जापान के प्रत्येक भाग में धान क्षेत्र ,उच्च कृषि क्षेत्र और जंगल पाया जाना एक सामान्य बातहै इै कृषि प्रदेश में विभाजित करने के लिए तीन आधार हो सकते है खेतों का आकार, फसल गहनता, फसलों के प्रकार, इस आधार पर जापान को कृषि प्रदेशों में बांटा जा सकता है विद्वान गिन्सवर्ग ने कृषि प्रदेश को जंगल , धान क्षेत्र आदि के आधार पर कृषि प्रदेशों में बांटा है विद्वान गिन्सवर्ग ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि भूमि उपयोग किस प्रकार से भौतिक स्वरूप के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर अलग–अलग पाया जाता विद्वान गिन्सवर्ग में जापान को 6 प्रधान कृषि प्रदेशों में बाटा है

1. **निम्नवर्ती धान प्रधान कृषि प्रदेश**
2. **उच्च प्रदेशीय धान प्रधान कृषि प्रदेश**
3. **उच्च कृषि प्रदेश**
4. **उच्चतर भूमि प्रधान कृषि प्रदेश**
5. **वन प्रदेश**
6. **वन प्रधान कृषि प्रदेश**

विद्वान गिन्सवर्ग का यह वर्गीकरण स्थानीय फसलों एवं वनस्पतियों पर आधारित है यह बड़े स्तर पर नहीं बनाया गया है इन्होंने कृषि प्रदेश बनाने में केवल उच्चावच को ही आधार मान लिया है यह वर्गीकरण कृषि प्रदेश के लिए उपयुक्त ना होकर भूमि उपयोग के लिए उपयुक्त हो गया है जापान को कृषि प्रदेशों में बांटने के लिए कृषि की सफलता , आधिवासो की स्थापना, खेतों के आकार आदि को आधार बनाना होगा जैसे 36 डिग्री उत्तरी अक्षांश के उत्तर में ठंडी अधिक पड़ती है और दक्षिण में गर्म जलवायु है इस कारण से दो तरह की परिस्थितियां उत्पन्न होती है दक्षिणी भाग में दो तरह की जलवायु के कारण दो फसलें उगाई जाती है ग्रीष्म ऋतु की धान की खेती के बाद शीतकाल में गेहूं जौ तथा सब्जियों को उगाया जाता है यहां के अधिकांश भूभाग पर सातवीं सदी से ही मानव का निवास पाया जाता है जहां औद्योगिक इकाइयां स्थापित है वहां अधिकांश किसान नगरों में काम करने चले जाते है दो फसलों के उत्पादन के कारण छोटे–छोटे खेतों से भी एक परिवार का भरण पोषण हो जाता है 36 डिग्री उत्तरी अक्षांश के उत्तर भूभाग में ग्रीष्म काल होता है शीतकाल लघु होता है शीतकाल के बाद अन्य फसलों को उगाया जाना मुश्किल होता है इसलिए उत्तरी भाग में एक परिवार के गुजारा करने के लिए बड़े–बड़े भूभाग की जरूरत होती है होकैडो में शीतकाल कठोर होती है सघन खेती का अभाव होता है

इन विश्लेषण के आधार पर जापान को ओगासावरा महोदय ने 2 बड़े तथा अनेक छोटे प्रदेशों में जापान के कृषि प्रदेश को बांटा है

प्रथम प्राचीन जापान अथवा मुख्य जापान
दूसरा होकैडो

1. प्राचीन जापान

जापान में जलवायु विविधता पाई जाती है खेतों का आकार, फसलों की गहनता एवं उत्पादन के आधार पर इसे तीन मंडलों और अनेक उप प्रदेशों में बांटा गया है

अ केंद्रीय मंडल
ब परिधीय मंडल
स सीमांत मंडल

केंद्रीय मंडल

जापान के केंद्रीय मंडल को जापान का हृदय स्थल कहते हैं यह हृदय स्थल सातवीं सदी में आबाद हुआ था धीरे–धीरे जनसंख्या बढ़ती गई और खेत छोटे होते गयें औसत खेत का आकार 1.25 एकड़ है अतः जनसंख्या का दबाव अन्य क्षेत्रों की तुलना में यहां अधिकतम है इसलिए केंद्रीय मंडल में सघन खेती किया जाता है यहां पर एक साल में दो या तीन फसलें उगाई जाती है यहां की प्रमुख फसल धान है अन्य फसलों में जौ, गेहूं, फल, सब्जियां प्रमुख है जनसंख्या का दबाव अधिक होने के कारण पर्वतीय ढलानों पर सीढ़ीदार खेती भी की जाती है इस भाग में जनसंख्या का दबाव अधिक है इसलिए लोग अपने जीवन यापन के लिए पर्वतीय ढलानों के सीढ़ीदार खेती पर भी खेती का कार्य करते है कृषि कार्य समाप्त हो जाने के उपरांत शहरों में अपने काम करने के लिए चले जाते है इसलिए इस भाग में रहने वाले किसानों की आमदनी अन्य भाग में रहने वाले किसानों की तुलना में अधिक होती है केंद्रीय मंडल को जलवायु, भूमि की बनावट, आकार, कृषि गहनता व अन्य कारकों के आधार पर 7। उप प्रदेशों में बांटा गया है

1.सेतोयूंची.किनकी   प्रदेश
2.उत्तरी किंयूशू प्रदेश
3 चुक्यों कृषि   प्रदेश
4. टोकाई कृषि प्रदेश
5.प0 कान्टों कृषि प्रदेश
6. टोशान कृषि प्रदेश
7. होकूरिकू कृषि प्रदेश

1.सेतोयूंची– किनकी प्रदेश

इस कृषि प्रदेश के अंतर्गत प्राचीन जापान का क्षेत्र शामिल है यह आंतरिक सागर का निकटवर्ती भाग है यह कृषि प्रदेश हिरोशिमा, ओकायामा, किनकी प्रदेश के उत्तरी वाकायामा, नारा, ओसाका, क्यूटो, सीगा, चीकोकू, कगावा, टोकुशिमा क्षेत्र में फैला है यहां पर जनसंख्या का दबाव अधिक है परिणामत खेतों का आकार अत्यंत छोटा है इसीलिए यहां पर सघन खेती की जाती है यहां के छोटे–छोटे मैदानों और वेसिनों में खेत फैले हुए है शीतकाल में जलवायु के अनुकूल होने के कारण 80ः भूभाग पर धान का उत्पादन होता है फलों और सब्जियों का उत्पादन आसपास के शहरी क्षेत्रों

की आवश्यकताओं की आपूर्ति को दृष्टिगत रखते हुए निर्यात किया जाता है ऊंचे वाले क्षेत्रों में जहां पर समुद्री प्रभाव कम होता है ग्रीष्म ऋतु शुष्क होती वहां पर फलों की खेती सरलता से हो जाती है मांस वाले पशुओं के लिए आंतरिक सागर का उत्तरी तट अत्यंत प्रसिद्ध है इस क्षेत्र में 1 इंच भूमि बेकार नहीं है पर्वतीय ढालो पर नारंगी व अन्य फलों की खेती की जाती उवाजिमा के पास सीढ़ीदार खेत पर गर्मी के दिनों में शकरकंद का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है सीढ़ीदार खेती अत्यंत श्रमसाध्य होी है क्योंकि चौड़ाई कम होती है ऊंचाई 2 मीटर होती है और ठंडी के दिनों में यहां पर गेहूं की खेती की जाती है उत्तरी शिकोकू मे किसानों के मैदान में कागावा का विस्तार है कागावा में गहन खेती प्रसिद्ध है यहां पर मशीनों का प्रयोग अधिक होता है बहु फसली खेती की जाती है कृषि की सघनता 200% से अधिक जापान में कृषि गहनता है यहां के खेत जोरी पद्धति पर आधारित है सिंचाई का दो तिहाई जल की आपूर्ति नदियों से होती है क्योंकि सीढ़ीदार खेती में ढाल अधिक होता है वर्षा ऋतु में उपलब्ध जल तेजी से बह जाता है इस जल का उपयोग सिंचाई के लिए हो पाना अत्यंत मुश्किल है इसलिए किसान पर्वतीय क्षेत्रों में छोटे–छोटे बाध बनाकर धान की खेती के लिए जल एकत्र कर लेते हैं अनेक स्थानों पर पाताल तोड़ कुएं का निर्माण किया गया है जिनका उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता है कगावा में 90ः खेतों का क्षेत्रफल 2 एकड़ से अधिक है कगावा क्षेत्र में गेहूं, धान, तंबाकू ,तरबूज की खेती की जाती है बोचों के लोगों में यह एक सामान्य विचार है कि जीवन यापन के लिए परिवार में धान की खेती जरूर करना चाहिए यहां पर मशीनों के कारण खेती उत्तम स्तर पर की जाती है वर्ष में कई फसलें ली जाती है कृषि पूरी तरह से यंत्रीकृत है नीके बुराकू क्षेत्र में गर्मी और ठंडी में उगाई जाने वाली फसलों के प्रारूप में अंतर पाया जाता है गर्मी के दिनों में निचले भाग में धान की खेती सब्जी और फल की खेती सुगमता पूर्वक की जाती है परंतु ठंडी के दिनों में ऊंचे भाग में गेहूं जौ सब्जियों की खेती की जाती है

2.उत्तरी किंयूशू कृषि प्रदेश

इस कृषि प्रदेश के अंतर्गत सेगा तथा पुकूओ क्षेत्र शामिल है यहां पर **सेतोयूंची– किनकी** प्रदेश की तरह कृषि में अंतर कम पाया जाता है खेतों का आकार बड़ा होता है यहां धान का उत्पादन अधिक होता है लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती परंतु खेती कार्य के समापन के उपरांत मिलने वाले समय में किसान बेकार नहीं बैठे रहते हैं किसान कीटाक्यूशू के औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने चले जाते है जिससे किसानों की आय में बढ़ोतरी हो जाती है यहां पर खेतों का औसत आकार 0.7 एकड़ पाया जाता है

3 चुक्यों कृषि प्रदेश

इस कृषि प्रदेश के अंतर्गत किनंकी प्रदेश का उत्तरी और पूर्वी एवं टोकाई प्रदेश का आईची क्षेत्र शामिल है यह कृषि प्रदेश नोवी मैदान में फैला है अन्य प्रदेशों की तुलना में यहां कृषि की विशेषताएं अलग है यहां पर धान के खेतों का आकार अत्यंत बड़ा है पश्चिमी प्रदेश में कृषि गहनता लगभग 150% से अधिक है जबकि पूर्वी भाग में यह प्रतिशत पश्चिम की तुलना में अधिक पाया जाता है पश्चिमी क्षेत्रों में खेतों का

आकार औसतन 0.7 से 0.9 एकड़ है परंतु पूर्वी भाग में खेतों का आकार पश्चिम की तुलना में छोटा है

4 टोकाई कृषि प्रदेश

यह कृषि प्रदेश के क्योटो और टोक्यो परिवहन मार्ग के सहारे विस्तृत है इसे फ्यूजी पहाड़ी और तेनुरिउ नदी ने कई भागों में बांटा है इस कृषि प्रदेश के अंतर्गत टोकाई प्रदेश का दक्षिणी भाग स्थित है यहां पर भूमि उपयोग 150% से अधिक है यहां मैदानी क्षेत्र है जिससे जनसंख्या का भार अधिक है इसलिए खेतों का आकार छोटा है कृषि गहनता अधिक पाई जाती है शीतकाल में क्युरोशियो गर्म धारा के कारण कृषि प्रभावित होता है ा तापमान घटने नहीं पाता है जिससे नारंगी की खेती सफलतापूर्वक की जाती है इस प्रदेश की नदी घाटियां अत्यंत सकरी है यहां की 45% कृषि उच्च भूमि पर की जाती है यहां बलुई मिट्टी पाई जाती है रोपण खेती अधिक होती है बाग बगीचे अधिक पाए जाते यहां आड़ू अंगूर झरवेरी आदि की खेती सफलतापूर्वक की जाती है सब्जियों की खेती और चाय के बागान भी पाए जाते है।

5.प0 कान्टों कृषि प्रदेश

यह कृषि प्रदेश क्वान्टों प्रदेश में फैला है पूर्वी तट का सबसे बड़ा मैदानी कृषि प्रदेश है इस के मध्य से टोन नदी पश्चिम से पूर्व प्रवाहित होकर इस कृषि प्रदेश को दो भागों में बांटती है भूमि गहनता 160% तक पाया जाता है यहां पर कृषि भूमि का अधिकांश भाग नीचे निक्षेपित्त वेदिका पर फैला है यहां पर दो फसलें उगाई जाती है इस प्रदेश मे उच्च भूमि का क्षेत्र अधिक पाया जाता है साल भर में 2 फसलें उगाई जाती है यहां पर जापान का 50% जौ 33% गेहूं उगाया जाता है गेहूं और जौ की खेती के लिए अधिक जल की आवश्यकता नहीं पड़ती है इसलिए जबकि दूसरी फसलों को अधिक जल की आवश्यकता होती है इसी कारण उगाया जाना कठिन होता है यहां पर प्रायः तीसरे साल सूखे का प्रभाव रहता है मिट्टी के नीचे अभद संस्तर पाया जाता है जिससे जल का रिसाव भूमिगत क्षेत्र में सरलता पूर्वक नहीं हो पाता है इस कारण से जलजमाव की समस्या यहां अधिक होती है यहां की भूमि में शहतूत, सोयाबीन, सब्जियों की खेती अधिक की जाती है उच्च भूमि पर धान का उत्पादन भी किया जाता है यहां छोटे–छोटे खेतों में सघन खेती का कार्य सफलतापूर्वक संपादित करते हैं इस भाग में खेतों का औसत आकार छोटा है खेत छोटे होते हैं

6.टोशान कृषि प्रदेश

टोसान कृषि प्रदेश के अंतर्गत टोकाई प्रदेश के अधिकांश हिस्से शामिल है यह पर्वती क्षेत्र है यहां पर कौन–सी नानू तोड़ दे निरहू की शो आज नदियां प्रवाहित होती अधिकांश भाग वनस्पतियों से ढका हुआ है थोड़े भाग पर खेती की जाती है पर्वती क्षेत्रों की विशेषताएं अधिक पाई जाती हैं पर्वतों के जटिलता के कारण कृषि गहनता 120 से 140 प्रतिशत तक पाई जाती है नदियों द्वारा निर्मित तंग घाटियों में धान की खेती की जाती है जहां पर कृषि क्षेत्र में पहुंच आसान है कुछ भागों पर भी धान की खेती विक्रय

रूप में की जाती है टोक्यो बड़ा नगर पास में होने के कारण फल और सब्जी का निर्यात आसानी से किया जाता है यहां रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं जो मेथी आलू राई का उत्पादन किया जाता है यहां पर जापान का सबसे ज्यादा रेशम का उत्पादन होता है ऊंचे वाले क्षेत्र निचले वाले क्षेत्र की तुलना में कम सघन है यहां पर उगाई जाने वाली फसलों में मक्का सोयाबीन आलू गेहूं जौ जई प्रमुख कहीं–कहीं पर चरा गांव का भी विस्तार पाया जाता है जरा गांव का भी विस्तार पाया जाता है चारागाह का भी विस्तार पाया जाता है

सातवां कृषि प्रदेश यह कृषि प्रदेश गोकू रिकी रिकी प्रदेश में शामिल है इसकी चौड़ाई कम है उत्तर से दक्षिण लंबाई अधिक पाई जाती है यहां की प्रमुख फसल धान यहां की उत्पादकता अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक पाया जाता है खेतों का आकार अधिक बड़ा है पूर्वी क्षेत्र में खेत का आकार पश्चिम की तुलना में अधिक बड़ा पाया जाता है भूमि उपयोग 125ः सर्च गहनता पाई जाती है यहां पर यंत्री कृत खेती की जाती है शीतकाल में ठंडक अधिक होती है कठोर ठंड के बावजूद 50ः क्षेत्र पर चावल का उत्पादन किया जाता है

परिधि मंडल

इस कटिबंध के अंतर्गत काई पर्वती क्षेत्र, जापान सागर का तटवर्ती भाग, क्यूशू, शिकोकू का भाग शामिल है तोकूगावा के प्रारंभिक समय में इस क्षेत्र का विकास हुआ था खेत का आकार बड़ा है सधन कृषि नहीं की जाती है उत्पादन प्रति हेक्टेयर कम होता है कहीं–कहीं साल में केवल एक फसल ली जाती है मक्का, ज्वार, मोथी की खेती होती है किसान अन्य समय में कारखानों में काम करने नहीं जाते है किसानों की आय केंद्रीय कटिबंध की तुलना में बहुत कम है पर्वतीय भागों में पशुपालन का कार्य होता है यहां पर फर्नीचर उद्योग भी सफलतापूर्वक होता है इस मंडल पर 4 उप कृषि प्रदेश

1.मध्य कृषि प्रदेश

इस कृषि प्रदेश के अंतर्गत नागासाकी, सेगा ,कुमामोटो, ओईटा तथा उत्तरी पश्चिमी मियाजाकी शामिल है इस मंडल का संपन्न भाग आशु की पर्वती क्षेत्र में विस्तृत चरागाह है चारागाह की अधिकता के कारण पशुपालन उद्योग विकसित है भूमि गहनता 150ः से अधिक है नागासाकी तथा ओईटा खेत का आकार बड़ा है

1. सैन इन कृषि प्रदेश

दक्षिणी पश्चिमी मानसून तथा के सागरी 30 भाग में फैला यह एक सकरी पत्ती में फैला है इसके अंतर्गत चूहों को प्रदेश पिंकी प्रदेश आदि शामिल यह कृषि प्रदेश दक्षिणी भाग में शामिल यहां शीतकाल में बारिश अधिक होती कृषि प्रदेश में बादलों का आच्छादन 70ः से अधिक पाया जाता है शीतकाल में खेती नहीं हो पाती है पशुपालन का उद्देश्य मांस का उत्पादन होता है भूमि उपयोग 140 से 160 प्रतिशत है खेतों के आकार बड़े होते हैं

3. शिकोकू एवम काई कृषि प्रदेश

यह कृषि प्रदेश . शिकोकू प्रदेश के वाकायामा नारा कोच्चि टोको सीमा आदिश्री कोको सीकोकू प्रदेश में विस्तृत है पर्वत श्रेणियां कृषि कार्य में बाधक है यहां पर जंगलों को काट कर, आग लगाकर स्थानांतरित खेती भी की जाती है मोथी, मक्का, सेम की खेती की जाती है प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम होता है कृषि की उर्वरता कम है यहां भूमि उपयोग 140 से 160 प्रतिशत होता है पूर्वी भाग में भूमि उपयोग का प्रतिशत अधिक है खेतों का आकार बहुत छोटा है जनसंख्या का भार अधिक है दक्षिणी भाग में खेतों का आकार अपेक्षाकृत बड़ा है ।

4. हिडा कृषि प्रदेश

इस कृषि प्रदेश मे रितु रितु प्रदेश पिंकी प्रदेश तोशाम प्रदेश में फैला है यह पर्वती क्षेत्र है यहां पर आल्पस पर्वत श्रेणियां है पर्वत श्रेणियों के कारण कृषि प्रदेश दो भागो में बंटा है पूर्वी और पश्चिमी भागों में भूमि उपयोग का प्रतिशत कम है मध्यवर्ती भाग में भूमि उपयोग का प्रतिशत अधिक पाई जाती है पूर्वी और पश्चिमी भागों में खेतों का आकार बड़ा है पर्वतीय विषमता के कारण जनसंख्या का निवास अपेक्षाकृत कम है यहां जीवन निर्वाहक कृषि कार्य किया जाता है फर्नीचर उद्योग भी सफलतापूर्वक संपादित होता है।

स. सीमांत मंडल

सीमांत मंडल का विकास तोकुगावा के शासनकाल में हुआ है यहां पर अपेक्षाकृत विकास कम हुआ है कृषि कार्यक्रम सघन है यह एक पिछड़ा क्षेत्र है यहां प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादन अपेक्षाकृत कम होता है यहां किसानों की आय कम होती है किसान कृषि कार्य के बाद शेष समय में अन्य कार्य के लिए अन्यत्र चले जाते है इसके दो उप भाग है

1.दक्षिणी क्यूशू कृषि प्रदेश
2.तोहोकू कृषि प्रदेश

1.दक्षिणी क्यूशू कृषि प्रदेश

यह कृषि प्रदेश क्यूशू प्रदेश क्षेत्र में फैला है यहां की जलवायु उपोष्ण है कृषि सघन की जाति है कृषि भूमि की गहनता 170 प्रतिशत से अधिक है यहां पर खेत छोटे होते हैं। ग्रेनाइट शैल पर ज्वालामुखी की राख के जमाव से मृदा का निर्माण हुआ है कार्यशील जनसंख्या का आधी जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है। यहां पर नारंगी, नींबू, गन्ना, सब्जियॉ विविध फसलें उगाई जाती है फूलों और फलों की खेती की जाती है यहॉ लागत अधिक है ऊंचे क्षेत्रों में चुकंदर और दाल की भी खेती की जाती है। यहां सब्जी, पशुपालन, कृषि आदि का विकास हो रहा है। नगरी क्षेत्र की दूरी अधिक होने से कृषि का तकनीकी विकास अधिक है ऊंचे क्षेत्रों में कृषि दयनीय स्थिति में है चुकंदर, धान ,मूंगफली, नारंगी, जौ, चारे का उत्पादन किया जाता है।

2.तोहोकू कृषि प्रदेश

इस कृषि प्रदेश कां तोहोकू प्रदेश के आओमोरी तथा अन्य क्षेत्रों में इसका विस्तार है। यह अपेक्षाकृत कम तापमान का प्रदेश है यहां पर शीत ऋतु लंबी है गहन खेती अधिक होती है। यहॉ खेत का आकार पहले वाले प्रदेश की तुलना में बड़े होते हैं। वर्ष में केवल एक ही फसल की खेती हो पाती है । भूमि उपयोग की दर कम है। इसके पूर्वी भाग में भूमि उपयोग दर अधिक है। यह जापान का सबसे गरीब कृषि प्रदेश के रूप में माना जाता है। ग्रीष्म काल में चावल की खेती मुश्किल होती है क्योंकि तापमान कम रहता है यहां के निर्धन कृषक जीवन निर्वाह कृषि करते हैं। यहां पर आलू, जौ, मेथी, ज्वार, आदि कृषि कार्य किया जाता है । यहां स्थानांतरित कृषि का भी प्रचलन था वर्तमान में दूध उत्पादन का तेजी से वृद्धि देखी जा रही है। इससे प्रदेश के तीन उपभाग है

1.देवा उपकृषि प्रदेश
2.पूर्वी कांटो कृषि प्रदेश
3.मुत्सू उप कृषि प्रदेश

कृषि प्रदेश जापान का हो गए दो जापान का सबसे उत्तरकाशी प्रदेश जहां पर कृषि का विकास 19वीं सदी के उत्तरार्ध में प्रारंभ हुआ यहां का मुख्य व्यवसाय अध्ययन है फैन मछली पकड़ना है जीवन निर्वाह खेती की जाती है यहां पर रूस के प्रभाव को कम करने के लिए सड़कों के किनारे सैन्य बस्तियां बसाई गई यहां फार्म हाउस बनाए गए खेत के आकार बड़े–बड़े हैं मछली मारना प्रमुख व्यवसाय धान की खेती भी की जाती है शीतल जलवायु के बावजूद धान की खेती अधिक होती है यहां पर जापान का 90 प्रतिशत चारागाह पाया जाता है घोड़े के भोजन की आपूर्ति प्रमुख रूप से की जाती है जापान का सर्वाधिक दुग्ध उत्पादन यहां से होता है यहां पर घोड़े सूअर गाय भेड़े पाली जाति है उपजाऊ मिट्टी का अभाव है यत्र तत्र उपजाऊ मिट्टी पाई जाती है यहां की मिट्टी में नीमच की कमी है ज्वालामुखी प्रधान मिट्टी है नदी घाटियों के सहारे पीठ मृदा पाई जाती है इस मिट्टी के इस कृषि प्रदेश के आधार पर तीन उप कृषि प्रदेशों में विभाजित किया गया है

प्रथम पूर्वी होकैडो, दूसरा मध्य , तीसरा पश्चिमी होकैडो दो प्रदेश पूर्वी हो कदमों में प्रदेश में कृषि का विकास सबसे बाद में हुआ जंगलों को साफ करके कृषि क्षेत्र बनाए गए । कुछ भागों में आज भी यही प्रक्रिया अपनाई जा रही है कृषि जीवन यापन के लिए ही संपादित हो रही कोई वाणिज्यिक उत्पादन नहीं । यहां पर पशुपालन कृषि कार्य दोनों साथ–साथ होता है यहां पर कृषि गहनता सबसे कम 100 प्रतिशत से कम है ग्रीष्म ऋतु भी शीतल होती है फसलों के उत्पादन में बाधक है अधिकांश भूमि पर जंगल का विस्तार है। पशु चारण अधिक है गुणकारी वृक्ष अधिक है।

मध्य प्रदेश मे आयताकार ऊंचे क्षेत्र में ज्वालामुखी राख के जमाव से मृदा का निर्माण हुआ है यहां पर अमेरिका की तरह फार्म हाउस पाए जाते यहां पर प्राचीन जापान से आए हुए किसान आलू, गेहूं ,जौ , मक्का, का उत्पादन करते हैं प्रथम

विश्व युद्ध के बाद खाद्यान्न के संकट को समाप्त करने के उद्देश्य से यहां के किसान व्यापारिक स्तर पर उत्पादन करने लगे, उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि देखी गई, सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक कारण से किसानों के फसल उत्पादन की प्रकृति में परिवर्तन हुआ है यहां के लोग फसल चक्र अपनाते है जिसेस अपरदन में रुकावट आती है पशुचारण का भी विकास हुआ है । जौ, मक्का, आलू, आधार फसलें उगाई जाती है । यहां पर मुद्रादायिनी फसलें उगाई जाती है यहां पर प्रत्येक किसान के पास गाय भी पाली जाती है । सोयाबीन का प्रयोग जापानी लोग भोजन में अधिक करते हैं । इसका सूप भी बनाया जाता है। इसे मीसो सूप कहते हैं इसका उपयोग मांस, मछली के विकल्प के रूप में भी करते है

पश्चिमी होकैडो क्षेत्र का विकास विभाग की तुलना में अधिक हुआ यहां पर आदिवासी विकास अधिक हुआ है जलवायु अत्यधिक कष्ट दाई नहीं है जीवन निर्वाह खेती की जाती है अधिक ठंड के कारण उत्तरी भाग में खेती का कार्य करना मुश्किल है खेतों का आकार छोटा है समुद्री प्रभाव और अक्षांश प्रभाव के कारण ग्रीष्म काल में तापमान कुछ अधिक होता है जो चावल के अनुकूल होता है यहां पर काम ही काबा में सिंचाई के साधन के विकास के कारण खेती का विकास हुआ चावल की नई प्रजातियों को खोज के कारण धान का उत्पादन बढ़ रहा यहां पर फलों की खेती भी की जाती है सेव केरी अंगूर फूल फल व अन्य सब्जियों की खेती सुगमता पूर्वक की जाती है

14.8.सारांश

इकाई 14 में संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और चीन के कृषि प्रदेश का वर्णन किया गया है इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेशों के निर्धारण करने में संयुक्त राज्य अमेरिका के पास कृषि प्रदेश गेहूं की पेटी मक्का की पेटी कपास की पेटी तंबाकू की खेती घास एवं कृषि घास एवं दूध पेटी का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है संयुक्त राज्य अमेरिका में गेहूं की खेती मैं अत्यंत विविधता पाई जाती है यहां पर बसंतकालीन गेहू शीतकालीन गेहूं में भी शीतकालीन मुलायम मे कोलंबिया पठार की कैलिफोर्निया जैसी अनेक प्रजातियों की खेती की जाती है संयुक्त राज्य अमेरिका की जलवायु गेहूं के लिए अधिक अनुकूल है इसीलिए यहां पर वर्ष में दो बार गेहूं की खेती सफलतापूर्वक की जाती है यहां पर मक्का की पेटी विश्व प्रसिद्ध है यहां पर मक्का का उत्पादन विशेष करके पशुओं को खिलाने के लिए किया जाता है इससे पशु तेजी से मांसल युक्त हो जाते हैं और फिर इन पशुओं को बूचड़खाने में भेज दिया जाता है वहां से मांस की पैकेजिंग की जाती है और उसको निर्यात भी किया जाता है कपास की खेती भी अत्यंत उन्नत , दशा में है यहां पर कपास की खेती के पूर्वी क्षेत्र और पश्चिमी क्षेत्र क्षेत्र की अलग–अलग विशेषता है कपास की खेती के साथ यहां पर तंबाकू की पेटी के भी दो महत्वपूर्ण क्षेत्र है मैरीलैंड वर्जीनिया कैलिफोर्निया तंबाकू क्षेत्र कनेक्टीकट क्षेत्र महत्वपूर्ण है घास एवं डेयरी यहां की अत्यंत महत्वपूर्ण कृषि पेटी है चीन में गेहूं के बजाय चावल की प्रधानता पाई जाती है चीन की कृषि में चावल के 5 पेटियां पाई जाती हैं जिसमें जेचवान चावल प्रदेश चावल चाय प्रदेश दो फसली चावल प्रदेश यागटीसीक्याग घाटी चावल प्रदेश दक्षिणी पश्चिमी चावल

प्रदेश प्रमुख है चीन में गेहूं के तीन प्रदेश मौसम के कारण विकसित हुए हैं बसंत कालीन गेहूं प्रदेश बसंत कालीन गेहूं ज्वार बाजरा प्रदेश शीतकालीन गेहूं एवं कॉयोलिंग प्रदेश महत्वपूर्ण है चीन में विद्वान बुचानन ने 22 कृषि प्रदेश बताएं प्रोफेसर॰केसी महोदय ने 8 प्रदेशों में विभाजित किया है चीन को कृषि प्रदेशों में विभाजित करने का एक आधुनिक प्रयास चीनी वैज्ञानिक अकादमी द्वारा भी किया गया है चीन में आधुनिक वैज्ञानिक अकादमी ने 1962 में चीन को कृषि प्रदेशों में विभाजित किया 4 कृषि प्रथम स्तर के बनाएं चीनी वैज्ञानिक अकादमी ने कृषि पशु संपदा और को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक आर्थिक सांस्कृतिक ऐतिहासिक समग्र पक्षो को आधार के रूप में स्वीकार किया इस तरह से संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन का कृषि प्रदेश कोई एक दिन का प्रयास नहीं रहा बल्कि यह अनेक विद्वानों का सतत प्रयास जारी रहा कि उसे उन लोगों ने प्रदेश में विभाजित किया चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि प्रदेश पर प्राकृतिक मानवीय कारकों के साथ सरकारी नीति वहां की परंपरा वहां की विरासत वहां की भारी–भरकम जनसंख्या का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है

14.9.बोध प्रश्न

1.विद्वान डयूरी ने भूमि उपयोग के आधार संयुक्त राज्य अमेरिका को कितने प्रदेशों में विभाजित किया

क. 8 ख. 9 ग. 10 घ. 11

2. विद्वान बेकर ने संयुक्त राज्य अमेरिका कितने प्रदेशों में विभाजित किया

क. 4 ख. 7 ग. 12 घ. 3

3. विद्वान हार्टशोर्न और डिकेन संयुक्त राज्य अमेरिका कितने कृषि प्रकार में विभाजित किया है

क. 3 ख. 6 ग. 8 घ. 11

4 संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग ने अभिनव प्रवृत्तियों के आधार पर संयुक्त राज्य अमेरिका कितने कृषि प्रदेश में विभाजित किया

क. 11 ख. 12 ग. 13 घ. 14

5.कैरोलिना में किस फसल को किंग क्राफ्ट कहा जाता है

क. कपास ख. जौ ग. गेहू घ. चावल

6.कपास की पेटी का निर्धारण कितने दिन पाला रहित दिनों से किया जाता है

क. 200 ख. 150 ग. 300 घ. 400

7..विद्वान बक ने चीन को मूल रूप से भौतिक एवं सांस्कृतिक कारकों के आधार पर चीन को कितने प्रमुख कृषि प्रदेश में विभाजित किया

क. 1 ख. 2 ग.5 घ. 3

8 केसी महोदय ने चीन कितने कृषि प्रदेशों में विभाजित किया था

क. 9 ख. 3 ग. 8 घ. 11

9.बुचानन महोदय ने चीन को फसल संयोजन के आधार पर कितने उप प्रदेश बनाएं

क. 45 ख. 48 ग. 90 घ. 22

10.चीनी वैज्ञानिक अकादमी ने वृहद स्तर पर चीन को कितने कृषि प्रदेश में विभाजित किया था

क. 11 ख. 12 ग. 14 घ. 4

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

3 प्रो० आर०सी० तिवारी, प्रो० बी०एन० सिंह : कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद।

4 ब्रज भूषण सिंह : कृषि भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।

5 Symon, L. : Agricultural Geography, Bell & Sons, London, 1967.

6 Kostrowicki, J : World Types of Agricuture, Polish Academy, Warsaw, Poland.

7 Noor Mohd. : New Dimensions in Agriculture, Concept, New Delhi, 1991.

8 Singh & Dhillon : Agricultural Geography, TATA Mc Graw Hill, New Delhi.

9 Whittlesey, D. : Major Agricultural Regions of the Earth, A.A.A.G. Vol 26.

बोध प्रश्न के उत्तर

1.ख 2.ग 3.ख 4.ख 5.क 6.क 7.ख 8.क 9.घ 10.घ

14.11.अभ्यास के लिए प्रश्न

1 .संयुक्त राज्य अमेरिका को कृषि प्रदेशों में विभाजित करते हुए किसी एक कृषि प्रदेश का सविस्तार वर्णन कीजिए

2. संयुक्त राज्य अमेरिका को कृषि विभाग में कितने कृषि प्रदेश में विभाजित किया है उसमें से किसी दो कृषि प्रदेश का वर्णन कीजिए

3. संयुक्त राज्य अमेरिका की बेटी का सविस्तार वर्णन कीजिए

4 संयुक्त राज्य अमेरिका की कपास बेटी का सविस्तार वर्णन कीजिए

5 संयुक्त राज्य अमेरिका की मक्का पेटी के आर्थिक महत्व को बताते हुए सविस्तार वर्णन कीजिए

6 .चीन के कृषि प्राधिकरण की योजना को समझाते हुए किसी एक ऋषि प्रदेश का वर्णन कीजिए

7. चीन के कृषि प्रदेश का वर्गीकरण करते हुए दो कृषि प्रदेश का वर्णन करिए

8. चीन के कृषि प्रदेश के वर्गीकरण की योजना को समझाइए

9. चीनी वैज्ञानिक अकादमी द्वारा प्रस्तावित चीन के कृषि प्रदेश की योजना और उसके आधार को समझाइए

MAGO- 104 कृषि भूगोल

इकाई 15– भारत के कृषि प्रदेश

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 कृषि प्रदेश

15.3.1एम0एस0 रंधावा का कृषि प्रदेश (1958)

15.3.2 पी0सेन गुप्ता एवं गलिना सदास्युक का कृषि प्रदेश (1968)

15.3.3 ओ0स्लाम्पा का कृषि प्रदेश (1968)

15.3.4बी0एल0सी0 जानसन (1979)

15.3.5आर0एल0 सिंह का कृषि प्रदेश (1971)

15.3.6जसबीर सिंह का कृषि प्रदेश (1975)

15.4 सारांश

15.5 शब्द सूची

15.6 परीक्षोपयोगी प्रश्न

15.7 महत्वपूर्ण पुस्तके

15.8 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

भारत भूगोल के इस तृतीय इकाई आाप भारत के कृषि प्रदेश का विस्तृत अध्ययन किया है। भारत के कृषि प्रदेश से संबंधित कई विद्वानों का वर्गीकरण का अध्ययन करेंगे जिसमे पी० सेन गुप्ता एवं गलिना सदास्युक, ओ० स्लाम्पा, वी०एल०सी० जानसन, आर०एल० सिंह, जसवीर सिंह आदि विद्वानों के कृषि प्रदेशों का अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

भारत भूगोल के अन्तर्गत आने वाले इस इकाई को पढने के बाद आप–

- एम0एस0 रंधावा का कृषि प्रदेश की व्याख्या कर सकेगे,
- पी0सेन गुप्ता एवं गलिना सदास्युक का कृषि प्रदेश की व्याख्या कर सकेगे,
- ओटोकर स्लाम्पा का कृषि प्रदेश की व्याख्या कर सकेगे,
- बी0एल0सी0 जानसन का कृषि प्रदेश की व्याख्या कर सकेगे,
- आर0एल0 सिंह का कृषि प्रदेश का कृषि प्रदेश की व्याख्या कर सकेगे,

- जसबीर सिंह का कृषि प्रदेश का कृषि प्रदेश की व्याख्या कर सकेगे,

15.3 कृषि प्रदेश

'प्रदेश' भूगोल की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है, व्हीटलसी (1936) के अनुसार' ''प्रदेश भू–पटल का एक भेदीकृत खण्ड हैं''। कृषि प्रदेश का तात्पर्य एक ऐसे समरूप प्रदेश से हैं जिसमें एक प्रकार के भूमि उपयोग तथा कृषि प्रणाली मिलती हैं अर्थात कृषि भूमि उपयोग एवं शस्य प्रतिरूप में एकरूपता पायी जाती हैं। कृषीय प्रदेश एक गतिशील धारणा हैं, जो स्थान एवं समय के साथ बदलती रहती हैं।अनेक विद्वानों ने भारत को विभिन्न कृषि प्रदेशों में वर्गीकरण का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया हैं– यथा– ई सिमकिन्स (1926), डी थार्नस (1956), एल0डी0 स्टाम्प (1956), एम0एस0 रंधावा (1958), चेहान सोग (1959), ओ0एच0के स्पेट व लियरमंथ (1960), रामचन्द्रन (1963), एफ सिद्दीकी (1967), ओ स्लाम्पा (1968), पी0सेन गुप्ता एवं जी सदास्पुक (1968), बी0एल0सी0 जानसन (1989 एवं 1979), आर0एल0 सिंह (1971) एवं जसबीर सिंह (1975) का नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकतर विद्वानों ने त्रिस्तरीय तंत्र का प्रस्ताव किया हैं–

अ. वृहत कृषि प्रदेश (कृषि मेखला)

ब. मध्यम प्रदेश (कृषि प्रदेश)

स. लघु प्रदेश (शस्य–संयोजन प्रदेश)

15.3.1एम0एस0 रंधांवा का कृषि प्रदेश (1958)

इन्होने भू–जलवायु विविधता, फसलों की विशेषता तथा पशुधनों के आधार पर भारत को पाँच प्रमुख कृषि प्रदेशों में बांटा हैं यथा–

(1) दक्षिणी कृषि प्रदेश

दक्षिणी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी गुजरात, पश्चिमी आन्ध्र प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र, दक्षिण–पश्चिम मध्य प्रदेश,पश्चिमी तमिलनाडु तथा पूर्वी कर्नाटक क्षेत्र इस प्रदेश में शामिल हैं। इस प्रदेश में वार्षिक वर्षा 50 से 100 सेमी होती है। यहाँ तथा काली मिट्टी प्रमुख रूप से पाई जाती है। इस प्रदेश की कपास, मूंगफली, ज्वार, बाजरा प्रमुख फसलें है।

(2) पश्चिमी आर्द्र कृषि प्रदेश

इस प्रदेश में महाराष्ट्र से केरल का पश्चिमी तटीय प्रदेश शामिल हैं। इस प्रदेश में 250 सेमी से अधिक वार्षिक वर्षा होती है जिसकी परिणामस्वरूप लेटेराइट मृदा की प्रधानता है। यहाँ चावल नारियल काजू मसाला कहवा तथा रबड़ आदि फसल पैदा की होती है।

(3) शीतोष्ण हिमालय कृषि प्रदेश

यह प्रदेश हिमालय क्षेत्र में कश्मीर से अरुणाचल प्रदेश तक फैला है। इसके दो उप क्षेत्र है–

(क) पश्चिमी हिमालय कृषि प्रदेश– इस प्रदेश की जलवायु शुष्क है लेकिन उत्तरी भाग में जाड़े के दिनों में वर्षा भी होती है। यहाँ फलों, आलू, मक्का की खेती की जाती है। इसमें उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, तथा जम्मू कश्मीर का क्षेत्र शामिल हैं।

(ख) पूर्वी हिमालय कृषि प्रदेश–यहाँ वर्षा की मात्रा 250 सेमी से अधिक होती है जिसके कारण घने साल के वृक्ष पाए जाते हैं चावल तथा चाय यहाँ की प्रमुख फसलें हैं। इस प्रदेश में अरुणाचल प्रदेश, असम, सिक्किम, तथा भूटान शामिल है।

(4) पूर्वी आर्द्र कृषि प्रदेश

इस प्रदेश में वार्षिक वर्षा 150 सेमी से अधिक तथा जलोढ मृदा विस्तृत होती है। इस प्रदेश में मणिपुर, मेघालय, असम, मिजोरम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, बिहार, छत्तीसगढ़, ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश को शामिल किया जाता है जहाँ चावल, जूट, गन्ना तथा चाय की प्रमुख फसलों के साथ भैंस पालन किया जाता है।

(5) उत्तरी शुष्क कृषि प्रदेश–यहाँ वार्षिक वर्षा की मात्रा 75 सेमी से कम होती है जिसमें हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, एवं उत्तर–पश्चिम मध्य प्रदेश का क्षेत्र शामिल हैं। इस प्रदेश में मक्का, गेहूं, चना,ज्वार, बाजरा की प्रमुख फसल है। ऊंट, भेड़, बकरी तथा घोड़ा का भी पालन किया जाता है।

15.3.2 पी0सेन गुप्ता एवं गलिना सदास्युक का कृषि प्रदेश (1968)

इनके वर्गीकरण का प्रमुख आधार जलवायु विशेषताए, भू–आकृतिक विशेषताए व फसल संयोजन था। जिसके आधार पर क्रमशः 4 वृहद प्रदेशो, 11 मध्य प्रदेश व 60 सूक्ष्म प्रदेश में विभाजित किया। ये सभी प्रदेश आपस में अर्न्तम्बन्धित थे।
इनके अनुसार कृषि प्रदेश निम्नलिखित हैं–

(I) उपार्द मेखला

इस बृहद मेखला को तीन मध्यम प्रदेश ऊपरी एवं मध्य गंगा मैदान, उपार्द्र प्रायद्वीपीय तथा उपार्द्र तटीय मैदान में विभक्त किया। पुनः ऊपरी एवं मध्य गंगा मैदान को 8 सूक्ष्म प्रदेशों ऊपरी गंगा–यमुना दोआब, निचली गंगा यमुना दोआबा, रुहेलखंड, ऊपरी गंगा मैदान, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं चंपारन, मध्य गंगा का मैदान, दक्षिण गंगा का मैदान एवं अवध का मैदान, उपार्द्र प्रायद्वीपीय पठार को 10 से सूक्ष्म प्रदेशों उत्तरी बुंदेलखंड, दक्षिणी बुंदेलखंड, मालवा का पठार एवं निकटस्थ राजस्थान मैदान, वर्धा बेसिन एवं उपरी तापी घाटी, तापी घाटी, दक्षिण– पश्चिम महाराष्ट्र पठार, उत्तरी तेलंगाना पठान, दक्षिणी तेलंगाना एवं कर्नाटक पठार, तमिलनाडु पठार तथा दक्षिणी मलनाड एवं मैदान तथा उपार्द्र तटीय मैदान को 6 सूक्ष्म में प्रदेशों उत्तरी आंध्र तट, कृष्णा गोदावरी डेल्टा, दक्षिणी आंध्र तट,

तमिलनाडु तट, दक्षिणी पूर्वी तमिलनाडु तथा गुजरात तट में विभक्त किया। इस प्रदेश में वार्षिक वर्षा 75 से मी से 100 सेमी तक पाया जाता है। गेहूं, चावल, मक्का, गन्ना, मोटा अनाज, तिलहन, मूंगफली एवं तंबाकू यहाँ की प्रमुख फसलें हैं।

(II) आर्द्र मेखला

इस वृहद मेखला को 4 मध्यम प्रदेश पूर्वी मैदान, प्रायदीप पठार, पूर्वी पहाड़ी पठार तथा पश्चिमी तट में विभक्त किया। पुनः पूर्वी मैदान को 6 सूक्ष्म प्रदेशों ऊपरी ब्रह्मपुत्र घाटी, निचली ब्रह्मपुत्र घाटी, त्रिपुरा–बिहार–दीनाजपुर, जलपाईगुड़ी, भागीरथी डेल्टा, ओडिशा तट एवं पश्चिमी भागीरथी डेल्टा, प्रायद्वीपीय पठार को 4 सूक्ष्म में प्रदेशों छोटानागपुर एवं उड़ीसा पठार, ऊपरी महानदी बेसिन एवं कैमूर पहाड़ियां, ओडिशा पहाड़ियां एवं बस्तर का पठार, मध्यवर्ती मध्य प्रदेश, पूर्वी पहाड़ी पठार को पांच सूक्ष्म प्रदेशों मणिपुर एवं मिजो पहाड़ियाँ, गारो पहाड़िया, नागालैंड मिकिर एवं उत्तरी कछार, कछार घाटी एवं खासी जयंतियां पहाड़ियां तथा पश्चिमी तट को छः सुक्ष्म प्रदेशों खंभात तट, उत्तरी कोंकण तट, दक्षिणी कोंकण तट, कर्नाटक तट, उतरीं मालाबार तट, दक्षिणी मालाबार तट में विभक्त किया। इस प्रदेश में 100 से 200 सेमी वार्षिक वर्षा पाया जाता है। चावल, जूट, चाय, नारियल, रबड़ तथा मोटे अनाज इस प्रदेश में उत्पादित किए जाते हैं।

(III) हिमालय मेखला

इस मेंखला को इन्होने दो मध्यम प्रदेश पश्चिमी हिमालय तथा पूर्वी हिमालय में वर्गीकृत किया। इनको फिर सुक्ष्म प्रदेश पश्चिमी हिमालय को कश्मीर घाटी एवं हिमाचल–कुमायू तथा पूर्वी हिमालय को सिक्किम–दार्जिलिंग एवं अरुणाचल प्रदेश में बाँटा हैं।इस प्रदेश में औसत वार्षिक वर्षा 125 से 250 सेमी तक होती है जो पश्चिम से पूरब की ओर बढ़ती जाती है। इसका अधिकांश भाग उबड़ खाबड़ तथा कृषि के लिए आयोग्य है। चावल और गेहूं इस प्रदेश की प्रमुख फसले है।

(IV) शुष्क मेखला

इस बृहद मेखला को दो मध्यम प्रदेश शुष्क उत्तरी–पश्चिमी मैदान तथा शुष्क प्रायद्वीपीय पठारे में विभक्त किया। पुनः शुष्क उत्तरी पश्चिमी मैदान को 6 सूक्ष्म प्रदेशों राजस्थान शुष्क मैदान, राजस्थान अर्धशुष्क, दक्षिण पंजाब एवं दक्षिण पश्चिम उत्तर प्रदेश, उत्तरी पंजाब मैदान, अरावली पहाड़ियाँ सौराष्ट्र एवं कच्छ तथा शुष्क प्रायद्वीपीय पठान को 5 सूक्ष्म प्रदेश ताप्ती–नर्मदा दोआब, ऊपरी गोदावरी बेसिन, ऊपरी भीमा–कृष्णा बेसिन, तुंगभद्रा बेसन तथा रॉयल सीमा में विभक्त किया है। इस मेखला में औसत वार्षिक वर्षा 75 सेमी होती है। कुछ भागों को छोड़कर अधिकांश भागों में जल का अभाव पाया जाता है। चना, ज्वार बाजरा, तिलहन, मूंगफली तथा कपास इस प्रदेश की प्रमुख फसल है।

15.3.3 ओ0 स्लाम्पा का कृषि प्रदेश (1968)

इनके वर्गीकरण का प्रमुख आधार कृषि तथा प्रादेशिक विशेषताओं, सघनता तथा विकास के स्तर को प्रभावित करने वाले भौतिक, आर्थिक तथा प्रविधिक कारकों का अन्तर रहा। इसके आधार पर इन्होने भारत को कुल 13 कृषि
प्रदेशों में बाँटा–

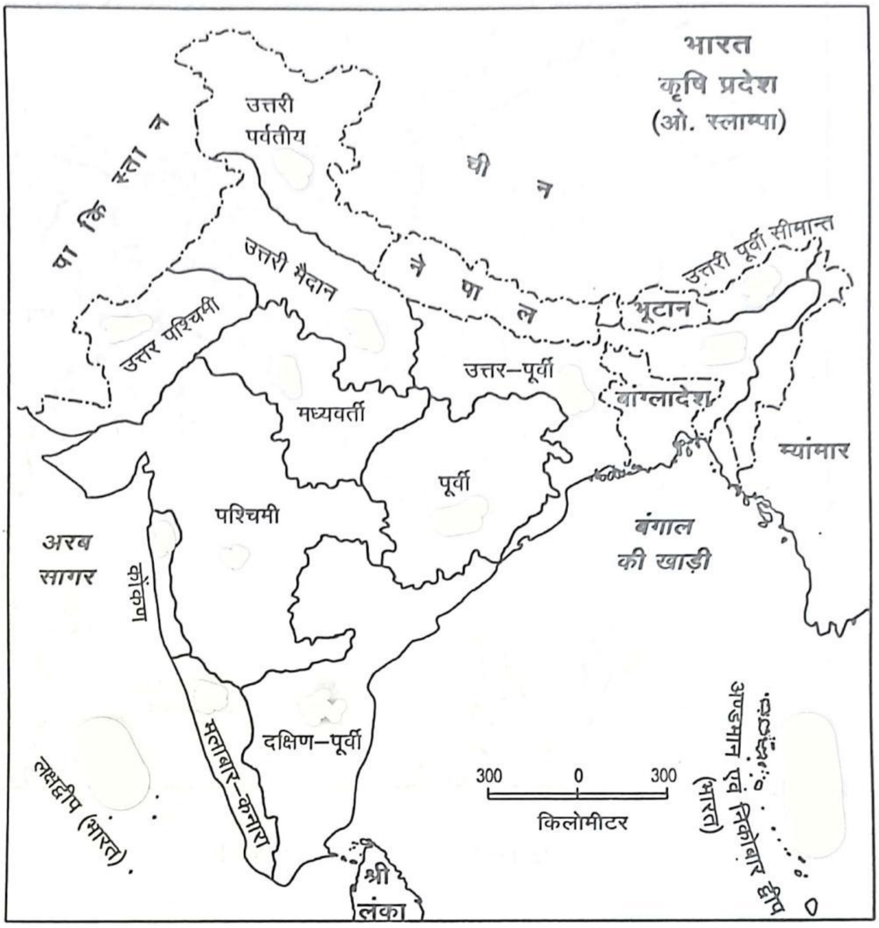

चित्र–1

(I) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश (II) उत्तरी मैदान (III) उत्तर पश्चिमी प्रदेश (IV) उत्तरी पूर्वी प्रदेश(V) उत्तर–पूर्वी सीमान्त प्रदेश (VI) मध्यवर्ती प्रदेश (VII) पश्चिमी प्रदेश (VIII) पूर्वी प्रदेश(IX) कोकंण प्रदेश (X) मालाबार एवं कनारा (XI) दक्षिण पूर्वी प्रदेश(XII) लक्षद्वीप (XIII) अण्डमान निकोबार द्वीप।

15.3.4बी0एल0सी0 जानसन (1979)

इन्होने शस्य संयोजन तथा प्रमुख फसलों के आधार पर भारत को 15 प्रमुख शस्य संयोजन प्रदेशों में विभाजित किया हैं। इसके अलावा इन्होने स्थानान्तरी कृषि एवं बागाती फसलों की दो अन्य प्रदेश बतलाये हैं।

1.चावल एकल कृषि–यह प्रदेश देश का सबसे बड़ा कृषि प्रदेश है जहाँ वार्षिक वर्षा 120 सेमी से अधिक पाया जाती है। इसमें असम, झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, कर्नाटक, केरल का तटीय मैदान, गोवा, महाराष्ट्र, पूर्वी छत्तीसगढ़ तथा उत्तर पूर्वी आन्ध्र प्रदेश शामिल है। इस प्रदेश में चावल की कृषि की प्रधानता पाई जाती है।

2. चावल–गेंहू प्रदेश–इस प्रदेश में संपूर्ण गंगा मैदान को शामिल किया जाता है। यहाँ चावल तथा गेहूं अधिक पैदा की जाती है।

3. चावल–मक्का प्रदेश–इस प्रदेश में मक्का के साथ चावल का भी पैदावार किया जाता है। इसमें दार्जिलिंग तथा कश्मीर घाटी शामिल है।

4..खरीफ–मिलेट प्रदेश–बाजरा इस प्रदेश की प्रमुख फसल है तथा रागी दूसरी प्रमुख फसल है। इस प्रदेश में राजस्थान तथा कच्छ के अधिकांश भाग शामिल है।

5.गेहूं–मिलेट प्रदेश– गेहूं, चावल तथा बाजरा यहाँ की प्रमुख फसल है जो पूर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्र के संक्रमण के कारण है।

6.गेहूं–मक्का प्रदेश–इस प्रदेश में गेहूं तथा मक्का की प्रधानता पाई जाती है। गेहूं तथा मक्का के बाद चावल को उत्पादित किया जाता है। पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू इस प्रदेश में शामिल हैं।

7.मक्का एवं गेहूं या चावल प्रदेश–इसका विस्तार दक्षिणी राजस्थान से पश्चिमी गुजरात तक है कुछ भागों में मक्का के साथ जौ तथा कुछ भाग में मक्का के साथ चावल की फसलें की जाती है।

8. ज्वार प्रदेश–इसमें महाराष्ट्र तथा कर्नाटक का भाग शामिल हैं ज्वार प्रमुख फसल तथा चावल, गेहूं, गन्ना, दाल, तिलहन गौण फसलें हैं।

9. कपास–मिलेट प्रदेश– इसमें उत्तरी कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र को शामिल किया जाता है। जहाँ मिलेट प्रमुख खाद्य फसल है। इसके अलावा गेहूं, चावल तथा कपास का भी उत्पादन किया जाता है।

10. ज्वार–चावल प्रदेश–गोदावरी के डेल्टाई भाग, विशाखापत्तनम का सागर तटीय तथा खम्मम क्षेत्र इसमें शामिल हैं। इस प्रदेश में ज्वार तथा चावल उनकी फसलें पैदा की जाती है।

11. कसावा–चावल प्रदेश–इसमें कोल्लम तथा तिरुवनंतपुरम का क्षेत्र शामिल हैं। यहाँ नारियल, सुपारी, कहवा, इलायची, रबड़ तथा चाय की खेती की जाती है।

12.मिलेट–चावल प्रदेश–इस प्रदेश का विस्तार कर्नाटक से तमिल नाडु तट तक है। खरीफ के समय मिलेट और चावल का साहचर्य पाया जाता है।

13. आलू–चावल प्रदेश– इसमें नीलगिरी प्रदेश शामिल हैं जहाँ आलू और गेहूं की खेती की जाती है। आलू गेहूं की अपेक्षा अधिक बोई जाती है।

14. ज्वार–तिलहन प्रदेश–हैदराबाद के दक्षिण में ज्वार और तिलहन को प्रमुख फसल के रूप में बोया जाता है। कुछ क्षेत्रों में सिंचाई की मदद से चावल, गेहूं, दाल,तिलहन तथा गन्ना को भी पैदा किया जाता है।

15.नारियल प्रदेश–इसको में लक्षद्वीप प्रदेश शामिल है।

बागाती कृषि–इस कृषि में चाय, रबड़, कहवा जैसी निर्यात वाली नगदी फसल शामिल है जो बड़े बड़े बागानों में पैदा की जाती है। इस फसल की शुरुआत यूरोपीय लोगों द्वारा की गई थी।

झूम कृषि– असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड, तथा मेघालय की जनजातियों द्वारा झूम कृषि की जाती है। इन क्षेत्रों में वनों को काटकर या फिर जलाकर खाली भूमि पर खेती करते हैं जिसमे अकेला मोटा अनाज मक्का चावल तथा सब्जियों उगाते हैं ।इसी प्रकार की कृषि कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, ओडिशा में भी की जाती है। इस कृषि पद्धति से पर्यावरण को काफी नुकसान होता है तथा कृषि की उतनी मात्रा में उत्पादन भी नहीं होता है।

15.3.5आर0एल0 सिंह का कृषि प्रदेश (1971)

इन्होने प्रमुख फसलों के आधार पर 10 शस्य साहचर्य प्रदेशों की पहचान की तथा इन साहचर्य प्रदेशों को द्वितीय एवं तृतीय कोटि की फसलों के आधार पर पुनः उपविभाजित किया इस प्रकार 8 प्रथम क्रम के प्रदेश कोटि की फसलों (चावल, गेहूँ, चना, मोटे अनाज मिलेट, कपास, मूँगफली, मक्का, नारियल) के आधार पर 27 द्वितीय क्रम के प्रदेश, दो कोटि की फसलों के आधार पर 48 तृतीय क्रम के प्रदेश प्रथम तीन कोटि की फसलों के आधार पर सीमांकित किये गये। आर0एल0 सिंह के अनुसार वृहद प्रदेश निम्नवत हैं–

चावल प्रदेश–पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश का तटीय क्षेत्र, तमिलनाडु का तटीय क्षेत्र, पश्चिमी तटीय मैदान तथा उत्तर–पूर्व का

अधिकांश क्षेत्र इस प्रदेश में शामिल हैं। इस प्रदेश मे सूक्ष्मस्तरीय भौगोलिक दशाओं में बदलाव के आधार पर 21 तृतीय स्तर के प्रदेश उपभाग किया जाता हैं– •चावल, गेहूं, गन्ना •चावल, गेहूं, मक्का •चावल, चना, जूट •चावल, तिलहन, •चावल, गेहूं, चना, •चावल, गेहूं, तिलहन •चावल, मक्का या मीलेट, तिलहन •चावल, तिलहन, मिलेट •चावल, मिलेट, मक्का •चावल, मिलेट, तिलहन •चावल, मिलेट, चना •चावल, तिलहन, जेट या मक्का •चावल, जूट, तिलहन •चावल, कपास, मक्का •चावल, चाय, तिलहन •चावल, मिलेट, मूंगफली •चावल, मिलेट, कपास •चावल, नारियल, मसाला •चावल, तिलहन, गन्ना •चावल, मक्का, कपास •चावल, मक्का, गेहूं आदि है।

गेहूं प्रदेश–उत्तरी–पश्चिमी भारत में इस प्रदेश का सर्वाधिक विस्तार पाया जाता है जिसमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पूर्वी हरियाणा एवं जम्मू कश्मीर शामिल है। इस प्रदेश को तृतीय स्तरीय 7 उपभागों में बांटा जा सकता है– •गेहूं, मक्का, चावल •गेहूं, गन्ना, चावल •गेहूं, चावल, चना •गेहूं, मिलेट, चना •गेहूं, चावल, मक्का •गेहूं, चना, मिलेट •गेहूं, मिलेट, चना आदि है।

चना प्रदेश–पंजाब, उत्तर राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में इस प्रदेश का विस्तार पाया जाता है। इस प्रदेश में तृतीय स्तर के तीन उपविभाग शामिल है– •चना, गेहूं, मक्का •चना, मिलेट, गेहूं •चना, गेहूं, मक्का आदि है।

मोटा अनाज प्रदेश– इसका विस्तार राजस्थान का अधिकांश क्षेत्र, प्रायदीप भारत के पश्चिमी एवं दक्षिणी अर्द्ध–शुष्क तथा शुष्क क्षेत्र शामिल है। इस प्रदेश को 12 तृतीय स्तरी उपभागों में विभाजित किया जाता है– •मिलेट, तिलहन •मिलेट, गेहूं, तिलहन •मिलेट, कपास, गेहूं •मिलेट, कपास, मूंगफली •मिलेट, कपास, मूंगफली •मिलेट, गेहूं, तिलहन •मिलेट, कपास, तिलहन •मिलेट, चावल, तिलहन या चना •मिलेट, मूंगफली, तिलहन •मिलेट, मूंगफली, कपास •मिलेट, मूंगफली, चावल •मिलेट, चावल, तंबाकू, तिलहन आदि है।

मक्का प्रदेश–राजस्थान का पूर्वी अर्द्ध शुष्क भाग मक्का का प्रथम कोटि किस का फसल है जो चना और गेहूं के साथ मिलकर एक तृतीय स्तरीय प्रदेश का निर्माण करते हैं।

कपास प्रदेश–गुजरात का दक्षिणी भाग तथा महाराष्ट्र का पूर्वी भाग इस प्रदेश में शामिल हैं। इस प्रदेश के दो तृतीय स्तरी उपविभाग है– •कपास, मिलेट, चावल •कपास, मिलेट, गेहूं आदि है।

मूंगफली प्रदेश– प्रदेश में काठियावाड़ तथा कच्छ का भाग शामिल है। इस प्रदेश में मूंगफली, मिलेट तथा कपास तृतीय स्तरी प्रदेश का निर्माण करते हैं।

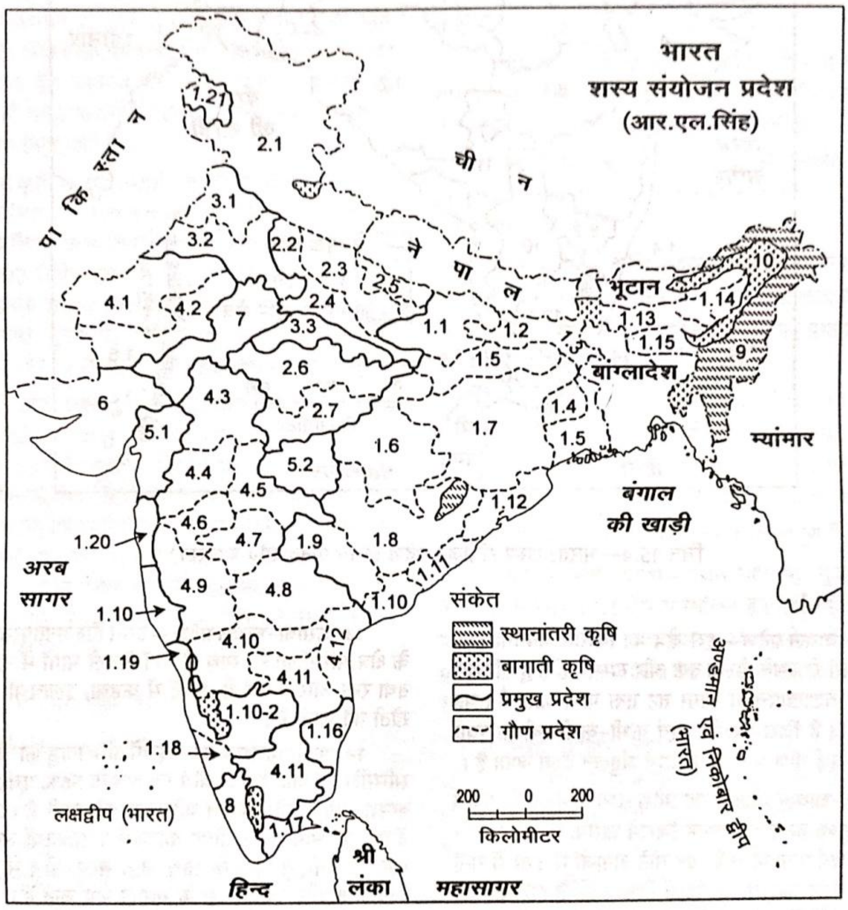

चित्र–2

नारियल प्रदेश– इसका विस्तार केरल के दक्षिणी और मध्यवर्ती भागो में है। इस प्रदेश का नारियल प्रमुख फसल है। नारियल, चावल,मसाला एक तृतीय स्तरीय प्रदेश का निर्माण होता है।

बागाती कृषि– इस कृषि का विस्तार हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड दक्षिणी सह्याद्री तथा उत्तर पूरब के पहाड़ी भागों में है जहाँ रबड़, कहवा तथा चाय की फसल उगाई जाती है। यह फसल नकदी कृषि के रूप में की जाती है।

झूम कृषि–मणिपुर, त्रिपुर, नागालैंड, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, ओडिशा, मध्य प्रदेश, पश्चिमी घाट के क्षेत्र में जनजातियों द्वारा स्थानांतरित या झूम कृषि की जाती है।

15.3.6 जसबीर सिंह का कृषि प्रदेश (1975)

इन्होने प्रमुख तथा गौण फसलों के आधार पर क्रमशः 12 प्रधान व 60 गौण शस्य संयोजन प्रदेशों में विभाजित किया हैं।

12 प्रमुख कृषि प्रदेश निम्नवत हैं–

1.ज्वार कृषि प्रदेश–कर्नाटक का आंतरिक क्षेत्र, पश्चिमी आन्ध्र प्रदेश, दक्षिण पूरब महाराष्ट्र तथा पश्चिमी मध्य प्रदेश इस प्रदेश में शामिल हैं जहाँ वार्षिक वर्षा 50 सेमी से 100 सेमी तक पाया जाता है। इस प्रदेश को नौ उपभागों में भी बांटा जा सकता है।

2.चावल कृषि प्रदेश–प्रदेश में पूर्वी भारत का अधिकांश क्षेत्र, कश्मीर घाटी तथा पूर्वी एवं पश्चिमी तटीय मैदान आदि शामिल हैं। इस प्रदेश में औसत वार्षिक वर्षा 100 से 200 सेमी तक पाई जाती है। इस प्रदेश को 21 गौण शस्य संयोजन प्रदेश विभाजित किया जा सकता है।

3.बाजरा कृषि प्रदेश– इस प्रदेश का विस्तार देश का पश्चिमी शुष्क भाग मे हैं। तिलहन, दलहन, रागी तथा ज्वार गौण फसल है। इस प्रदेश को पांच शस्य संयोजन में विभाजित किया जाता है।

4.कपास कृषि प्रदेश–महाराष्ट्र, गुजरात एवं मालवा पठार के काली मिट्टी के क्षेत्रों मैं इसका विस्तार पाया जाता है। इस प्रदेश में चार गौण शस्य संयोजनों का निर्माण किया जाता है।

5.गेहूं कृषि प्रदेश–इस प्रदेश में पूर्वी मालवा का पठार, पश्चिमी विंध्य प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब का क्षेत्र शामिल हैं। इस देश को आठ गौण सदस्य शस्य संयोजनों में विभाजित किया जा सकता है।

6.तिलहन कृषि प्रदेश– इस प्रदेश में काठियावाड़, तमिलनाडु का सलीम एवं कोयम्बटूर तथा दक्षिणी आंध्र प्रदेश शामिल है। मूंगफली–चारा–बाजरा (काठियावाड़) तथा मूंगफली–ज्वार– चावल–दलहन (रॉयलसीमा पठार, तमिलनाडु उच्च भूमि तथा ऊपरी कावेरी बेसिन) दो गौण शस्य संयोजन प्रदेश पाए जाते हैं।

7.मक्का कृषि प्रदेश–इसमें पूर्वी राजस्थान पठान, हिमाचल प्रदेश, तथा जम्मू कश्मीर का क्षेत्र शामिल हैं। इस प्रदेश में तीन शस्य संयोजन प्रथम मक्का–गेंहू–चावल दूसरा मक्का–चावल–मिलेट, तथा तीसरा मक्का–गेहूं–तिलहन–कपास है।

8.रागी कृषि प्रदेश–इस प्रदेश में दक्षिणी कर्नाटक का वर्षा छाया क्षेत्र एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस प्रदेश में दो शस्य संयोजन प्रथम एकल फसल रागी, तथा दूसरा रागी–तिलहन–चावल –दलहन है।

9.चना कृषि प्रदेश–इस प्रदेश में उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड तथा पंजाब एवं राजस्थान का गंगानगर, हिसार, भटिंडा क्षेत्र शामिल है। जहाँ चना–गेहूं–मिलेट का शस्य से साहचर्य बनता है तथा दूसरे में चना–तिलहन–ज्वार–चारा–मक्का और चना–बाजरा–चारा–गेहूं के दो गौण शस्य संयोजन पाए जाते हैं।

10.जौ कृषि प्रदेश–हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश के कुछ भागों जौ एक प्रमुख फसल है। इस प्रदेश में जौ–गेहूं–दलहन एक शस्य संयोजन का निर्माण होता है।

11.चाय कृषि प्रदेश–भारत के उत्तर–पूर्वी तथा नीलगिरि के क्षेत्रों में चाय की फसल की जाती है। कुछ क्षेत्रों में चाय–कहवा शस्य साहचर्य का निर्माण होता है।

12.फलोंद्यान कृषि प्रदेश–भारत में दक्षिणी केरल में इस फसल की प्रधानता पाई जाती है ये बागाती फसलों–नारियल–चावल के साथ शस्य संयोजन बनाती है।

15.4सारांश

आपने इस तृतीय इकाई में भारत के कृषि प्रदेश का विस्तृत अध्ययन किया है। भारत के कृषि प्रदेश से संबंधित कई विद्वानों का वर्गीकरण का अध्ययन किया है जिसमे पी० सेन गुप्ता एवं गलिना सदास्युक, ओ० स्लाम्पा, बी०एल०सी० जानसन, आर०एल० सिंह, जसवीर सिंह आदि विद्वानों का विस्तृत अध्ययन किया है। अब आप इन विद्वानो का कृषि प्रदेश को भली भाँति समझ गए होंगे।

15.5 शब्द सूची

भूमि उपयोग	Land Use
कृषि प्रदेश	Agriculture region
कृषि शाख	Agriculture credit
कृषि आदान	Agriculture input
कृषि उत्पादकता	Agriculture productvity
कृषि जलवायु प्रदेश	Agro climatic region
कृषि वानिकी	Agroforestry
कृषि पारिस्थितिक प्रदेश	Agro ecological region

15.6 स्वमुल्याकंन प्रश्न

1. जसवीर सिंह द्वारा भारत को कितने प्रमुख कृषि प्रदेशों में बाँटा गया हैं।
   (अ) 12 (ब) 13 (स) 14 (द) 15
2. किस विद्वान ने भारत को 4 वृहद 11 मध्य व 60 सूक्ष्म स्तरीय कृषि प्रदेशों में वर्गीकृत किया।
   (अ) पी0सेन गुप्ता (ब) गालिना सदास्युक (स) अ और ब (द) रन्धावा ने
3. राष्ट्रीय कृषि नीति की घोषणा कब की गई
   (अ) 2003 (ब) 2004 (स) 2005 (द) 2006
4. भारत में भूमि उपयोग संबंधी आँकडो को कितने वर्गों में उपलब्ध कराया गया हैं।
   (अ) 9 (ब) 5 (स) 4 (द) 10
5. आर0एल0 सिंह द्वारा भारत को प्रथम कोटि की फसलों आधार पर कितने कृषि प्रदेशों में बाँटा गया हैं।
   (अ) 10 (ब) 12 (स) 8 (द) 15

आदर्श उत्तर

1. अ   2. स   3. ब   4. अ   5. स

15.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तके

1. Bansil, P.C., Agricultral Problems of India, New Delhi : Vikas Publication 1974

2. Bhatiya. S.S., “A New Method of Agricultral Eifficiency in UP.” In Economic Geography 1967

3. तिवारी.आर.सी., कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।

4. तिवारी एवं सिंह, भारत का भूगोल, प्रवालिका पाब्लिकेशन, प्रयागराज।

5. गौतम, अल्का, कृषि भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

6. हुसैन, माजिद, कृषि भूगोल, रावत पाब्लिकेशन।

15.8 अभ्यास प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु)

1. आर0एल0 सिंह के कृषि प्रदेश का विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. जसवीर सिंह के कृषि प्रदेश का विस्तृत चर्चा कीजिए।
3. बी0एल0सी0 जानसन के कृषि प्रदेश का विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. कृषि प्रदेश क्या होते है तथा इनके वर्गीकरण की रूप रेखा प्रस्तुत कीजिए।
5. एम0एस0 रंधावा तथा पी0 सेनगुप्ता एवं स्दास्युक के कृषि प्रदेश का विस्तृत व्याख्या कीजिए।

नोटः– इस इकाई का अध्ययन कर अभ्यास प्रश्नों के उत्तर स्वयं लिखिये।

इकाई 16 – कृषि विकास एवं भारत की पंचवर्षीय योजना

इकाई की रुपरेखा :

16.0. प्रस्तावना

16.1. उद्देश्य

16.2. कृषि विकास

16.3. भारतीय कृषि की विशेषता

16.4. भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास

16.5. योजना के दौरान भारतीय कृषि

16.6. भारतीय कृषि समस्या पर भानु कमेटी की रिपोर्ट

16.7. सारांश

16.8. स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

16.9. सन्दर्भ सूची

16.10. अभ्यास प्रश्न (सश्रांत परीक्ष की तैयारी हेतु)

16.0. प्रस्तावना :–

कृषि विकास शब्दावली का प्रयोग प्रधानतः दो संदर्भो में किया जाता है, प्रथम देश या प्रदेश की आवश्यकता के अनुरूप विविध फसलों का उत्पादन ताकि किसी उत्पादन का अभाव न हो तथा दूसरा पर्यावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कृषि विकास कार्यक्रमों की रचना एवं क्रियान्वयन ताकि प्रकृति से समायोजन बना रहे। उल्लेखनीय है कि व्यावसायिक कृषि में लाभ विकास का लक्ष्य होता है। फलतः उन्हीं फसलों का उत्पादन किया जाता है जो अधिक लाभप्रद होती है। इससे क्षेत्रीय आवश्यकता गौण हो जाती है। कुछ अन्य परिस्थितियों में भी उत्पादन असंतुलित होता है जिससे कठिनाइयाँ उठ खड़ी होती हैं। भारत में स्वतंत्रता के बाद खाद्यान्न समस्या विकट होने के कारण कृषि विकास का अर्थ मात्र अधिक खाद्यान्न उत्पादन तक सीमित हो गया जिसके कारण क्षेत्रीय पारस्थितिकी तंत्र को त्याग कर कृषि विकास के कार्यक्रम बनाये गये। जिसमें पंचवर्षीय योजनाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही। भारत के आर्थिक आयोजना का युग की

तरफ पहला कदम 1950 में उठाया गया जब सरकार ने योजना आयोग का गठन किया। भारतीय अर्थव्यवस्था को पाँच वर्ष में संस्थापित कार्य हेतु योजना आयोग द्वारा तैयार की गयी विकास योजनाओं को पंचवर्षीय योजना कहते है। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के बौद्धिक आधार के रुप मॉडलों का प्रयोग किया जिससे कृषि विकास के साथ–साथ औद्योगिक विकास के नये प्रतिमानो की अवधारणा को स्पष्ट करती है।

16.1. उद्देश्य :–यह कृषि भूगोल की सोलहवीं इकाई है इस इकाई को पढ़ने के आप

- कृषि विकास के बारे में आप ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कृषि के विकास में नीतियों एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- भारत की कृषि की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- कृषि के विकास में पंचवर्षीय योजनाओं की भूमिका को जान जायेगें।

16.2. कृषि विकास :– आधुनिक के नाम पर पर्यावरणीय समायोजन को कृषि विकास के संदर्भ में महत्वहीन बना दिया गया है। फलतः संसाधनों को दोहन गलत ढंग से किया जाने लगा है जिससे कृषि विकास का मार्ग संकटमय बनता जा रहा है। मृदा के गहनतम उपयोग के नाम पर उसकी नैसर्गिक गुणवत्ता को नष्ट किया जा रहा है। अधिक उत्पादन के लिये रासायनिक खादों और कीटनाशकों के लगातार उपयोग एवं अनुचित रख–रखाव के कारण मृदा बांझपन की ओर अग्रसर होने लगी है जो चिन्ता का विषय है। अतः संतुलित विकास के लिये यह आवश्यक है कि मृदा की नैसर्गिक गुणवत्ता की रक्षा कर उसे लम्बी अवधि तक उत्पादन देने लायक बने रहने दिया जाय। उल्लेखनीय है कि भारत में गंगा मैदान की मृदा हजारों साल उपयोग के बावजूद आज भी उत्पादन देने में सक्षम है।

आधुनिकता की दौड़ में भूमि का गहनतम उपयोग कर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करना कृषि विकास का प्रतीक बन गया है। यही कारण है कि प्रति हेक्टेयर उत्पादन कृषि विकास मानदण्ड मान लिया गया है। इस उद्देश्य की पूति के लिये भूमि की अधिक जुताई, अधिकाधिक रासायनिक खाद, सिंचाई, उन्नत बीज, कीटनाशक दवाओं और यथासम्भव प्राकृतिक आपदाओं से फसल सुरक्षा का मार्ग अपनाया गया। स्पष्ट है कि इन सुविधाओं के लिये आधुनिक प्राविधिकी के साथ पर्याप्त पूंजी निवेश आवश्यक हो गया है। सम्पन्न देशों द्वारा ये सुविधाएं आसानी से जुटा ली जाती हैं परन्तु विकासशील देशों में इनमें से कुछ ही सुविधायें जुट पाती हैं। फलस्वरुप अधिक उत्पादन के लिये ऐसे देशों में

असंतुलित सुविधाओं का प्रयोग होता है जिसके कारण उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन हो जाता है। साथ ही अनेक आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक कारक अवरोध बन जाते हैं।

भारत में स्वतंत्रता के बाद खाद्यान्न समस्या विकट होने के कारण कृषि विकास का अर्थ मात्र अधिक खाद्यान्न उत्पादन तक सीमित हो गया जिसके कारण क्षेत्रीय पारिस्थैतिकी तंत्र को त्याग कर कृषि विकास के कार्यक्रम बनाये गये। पंचवर्षीय योजनाओं में मात्र कुछ पक्षों के विकास पर ध्यान दिया गया जैसे रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवायें, उन्नत बीज, सिंचाई सुविधा आदि जिसके फलस्वरूप देश में हरित क्रान्ति का आगमन हुआ और भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया। लेकिन इस प्रगति के कारण कृषि सम्बन्धी अनेक समस्यायें उत्पन्न होने लगीं जैसे–भूमिक्षरण, भूमि प्रदूषण, जल प्रदूषण, भण्डारण की समस्या, क्षेत्रीय विकास में असंतुलन आदि। हरित क्रान्ति के चलते पंजाब, हरियाणा आदि अनेक राज्य कृषि उत्पादन में अग्रणी राज्य बन गये वहीं जनसंख्या बोझिल राज्य जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश आदि समस्या राज्य बन गये। पूर्वांचल के राज्य अपनी पिछड़ी कृषि के कारण विद्रोह के मार्ग पर चल पड़े। फलतः भारत के लिये उचित कार्यक्रम के अभाव में कृषि विकास असंतुलित हो गया। कुछ राज्यों की गलत नीतियों के कारण अधिक उत्पादन वाले राज्यों और कम उत्पादन वाले राज्यों के मध्य समायोजन के अभाव में केन्द्रीय सरकार को अनेक अवांछनीय प्रतिबन्धों का सृजन करना पड़ा। यह सत्य है कि भारत के संघात्मक स्वरुप को बनाये रखने के लिये राज्यों को अधिक अधिकार देना आवश्यक है, लेकिन कृषि जैसी आधारभूत आर्थिक क्रिया के लिये सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ समान व्यवहार भी आवश्यक है। उल्लेखनीय है कि भूमि का असमान वितरण भारत के कृषि विकास में एक बड़ी समस्या है। जो काम करने वाले हैं उनके पास भूमि नहीं है और जिनके पास श्रमबल नहीं है वे सबसे अधिक भूमि के मालिक हैं।

भारत सरकार की पहल पर देश में कृषि विकास के लिये भानु प्रताप समिति का गठन किया गया ताकि भारतीय कृषि के विकास के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली समस्याओं से निजात पाया जा सके। लेकिन समिति के सुझावों पर कार्य योजना बनाना अब भी विचाराधीन है। समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नवत् हैं–

1. भारतीय कृषि को ठोस आधार प्रदान करने के लिये इसे भी उद्योगों के समान सुविधायें मिलनी चाहिये।

2. समिति के अनुसार देश में कृषि विकास का स्तर संतोषप्रद नहीं है। इससे सम्बन्धित वर्गो यथा किसान, सीमान्त किसान और खेतीहर मजदूरों की दशा में सुधार लाना आवश्यक है ताकि अगले 15 सालों में कृषि उत्पादन को दो गुना बढ़ाया जा सके। इसके लिये छोटी और मझोली सिंचाई परियोजनाओं और बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।
3. कृषि भूमि से अभी आधा लाभ ही मिल पा रहा है क्योंकि सिंचाई के अभाव, बाढ़, सूखा और मृदा सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण भूमि उपयोग से उचित लाभ नहीं मिल पा रहा है।
4. भारत में कृषि विकास के लिये संसाधनों का समुचित दोहन नहीं हो पा रहा हैं जिसके कारण कृषि के आनुषंगिक पक्षों यथा पशुपालन, मत्स्य पालन, रेशम कीटपालन, कृषि वानिकी, कृषि आधारित लघु एवं गृह उद्योग आदि की दयनीय दशा के कारण कृषक वर्ग की माली हालत ठीक नहीं है। इन स्रोतों से विशेष आय सम्भव हो सकती है जिससे कृषक अपनी दशा में सुधार कर सकते हैं।
5. उत्पादन वृद्धि के साथ उत्पादित सामग्री की सुरक्षा भी उतनी ही जरूरी है। अतः उचित भण्डारण के अभाव में उचित मूल्य प्राप्त करना कठिन है। अतः क्षेत्रीय स्तर पर भण्डारण सुविधा आवश्यक है।
6. कृषि भूमि के उचित वितरण के लिये कानूनी और सामाजिक व्यवस्था आवश्यक है। कानून के अनुपालन में अनेक राज्यों की सामाजिक व्यवस्था व्यवधान बन जाती है जिसके कारण वर्ग संघर्ष जन्म लेता है। अतः कानून के अनुपालन में कड़ाई आवश्यक है।
7. समिति का सुझाव है कि राज्यों के भूमि हदबन्दी कानूनों में आवश्यक परिवर्तन कर अधिक से अधिक भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाना जरूरी है। भूमि के संतुलित वितरण के लिये भूमिहीनों को भूमि देने के साथ बटाईदारों को आधी भूमि का मालिकाना अधिकार दिया जाना चाहिये।
8. समिति का स्पष्ट मत है कि जब तक भूमि सुधार कानूनों के क्रियान्वयन का मार्ग प्रशस्त नहीं किया जाता, कृषि में संतुलित और अपेक्षित विकास कठिन है।

समिति के सुझावों से स्पष्ट है कि अधिकांश सिफारिशें कृषि सम्बन्धी आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक पक्षों से सम्बन्धित हैं। इन समस्याओं की जड़ें सदियों

पुरानी परम्पराओं से जुड़ी हैं। भारत में कृषि मात्र व्यवसाय न होकर जीवन पद्धति बन गई है जिसके कारण विदेशी चिंतन आधारित निदान उपयोगी प्रमाणित नहीं हो पा रहा है। ब्रितानी काल में भी इसी कठिनाई के कारण कोई सार्वभौम राष्ट्रीय नीति नहीं अपनाई गई। स्वतंत्रता के पचास वर्ष गुजर जाने के बाद भी पूरे राष्ट्र के लिये ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बन पाई है। भारत की प्रान्तीय सरकारें भूमि सम्बन्धी कानूनों के निर्माण और क्रियान्वयन में शिथिलता अपनाती रही हैं जिसके कारण राष्ट्रीय स्तर पर कृषि विकास स्तर समान नहीं है। एक ही प्रान्त में कृषि विकास की बहुरूपता देखने को मिलती है।

भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान एवं कृषि विश्वविद्यालयों की भूमिका भी उत्साहवर्धक नहीं है क्योंकि अनेकानेक कारणों से इनका सीधा सम्बन्ध कृषि कार्य से सम्बन्धित समाज से नहीं जुड़ पाया है। भूमि के उचित ढंग से प्रयोग हेतु योजना बनाने के लिये राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग ब्यूरों तथा राज्यों की मृदा सर्वेक्षण इकाइयों ने भारत का मृदा मानचित्र बनाने का काम अपने हाथ में लिया है लेकिन अभी तक केवल पं0 बंगाल, हरियाणा, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, तमिलनाडु, गुजरात और पांडिचेरी के मानचित्र बन पाये हैं। स्पष्ट है कि इस आधारभूत संसाधन का आंकलन अब भी अधूरा है। इसी प्रकार कृषि के लिये जल संसाधन के उचित प्रयोग का राष्ट्रीय लेखा कुछ रिपोर्टों तक सिमट कर रह गया है। यही कारण है कि भारतीय कृषि अपनी पुश्तैनी समस्याओं से उबर नहीं पा रही है जिसके कारण क्षेत्रीय विषमता घटने के स्थान पर बढ़ती जा रही है। यह जानते हुए कि परिवर्तनशील कृषि के कारण मृदा की अपार क्षति होती है, अनेक प्रान्तों में आदिवासी ऐसी कृषि में संलग्न हैं। कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिक जानकारी घर–घर पहुंचाने के लिये अब भी काई सुगम मार्ग नहीं बन पाया है। शिक्षा के अभाव में ऐसी जानकारी एक सीमित वर्ग को ही प्राप्त हो पा रही है।

भारत के कृषि के विकास में क्षेत्रीय असंतुलन का एक कारण पर्यावरणीय तत्वों की अनदेखी भी है। भारत में हजारों वर्ष से सूक्ष्म जलवायु आधारित कृषि का प्रचलन रहा है। आज अनेकानेक कारणों से जलवायु में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी किसानों को नहीं हो पा रही है जिसके कारण कठिनाई बढ़ती जा रही है। किसी उन्नत बीज के प्रयोग के पूर्व यह आवश्यक है कि क्षेत्रीय पारिस्थैतिकी तंत्र से समायोजन सम्बन्धी सभी पक्षों से किसानों को अवगत कराया जाय ताकि वे सतत विकास की ओर बढ़ सकें। लेकिन आधा–अधूरा ज्ञान के कारण दो–चार फसलों के बाद उन्हें निराशा नजर आने

लगती है क्योंकि पर्यावरणीय समायोजन बिगड़ने लगता हैं। हरित क्रान्ति के अन्तर्गत अधिक रासायनिक खादो के उपयोग का परिणाम अब प्रकट होने लगे हैं। अब जैविक खादों पर अधिक बल दिया जाने लगा है कि ताकि मृदा की घटती गुणवत्ता को बचाया जा सके। रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाओं के अधिक प्रयोग से मानव शरीर भी प्रभावित होने लगा है क्योंकि घातक रसायन खाद्यान्नों के माध्यम से शरीर में पहुंच कर अनेक बीममारियों को सृजित करने लगे हैं।

अतः वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक है कि कृषि जलवायु प्रदेशों को आधार मानकर कृषि विकास की योजना बनाई जाय जिससे सतत विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके। अतः पिछले अनुभवों और वर्तमान वैज्ञानिक उपलब्धियों को समायोजित कर कृषि विकास की योजना भारत जैसे कृषि प्रधान देश में बनाने की अनिवार्यता है ताकि उपयोग, उत्पादन और खपत में संतुलन स्थापित हो सके।

भारतीय कृषि के विकास के मार्ग में एक नई समस्या **डंकेल प्रस्ताव** के रूप में उपस्थित हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय सहायता पर निर्भर रहने के कारण भारत को बाध्य किया जा रहा है कि वह पश्चिमी देशों के मानकों के अनुसार अपने देश के किसानों को कृषि सम्बन्धी सहायता प्रदान करे। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा विकसित बीजों का उपयोग कर कृषि विकास की दिशा तय करे। इसके लिये ऐसे प्रतिबन्धों का उल्लेख किया गया है जो भारत जैसे देश के लिये ग्राह्य नहीं है। बीजों का पेटेन्ट पश्चिमी देशों में प्रचलित है, लेकिन भारत अब तक इस स्थिति तक नहीं पहुंच पाया है। भारतीय कृषि के विकास के मार्ग में इस प्रस्ताव से अनेक उलझनें उत्पन्न होने लगी हैं क्योंकि भारत अपने पैरों पर खड़ा होने का मार्ग नहीं ढूढ़ रहा है। इस लिये अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में आकर भारत कहीं अपने लक्ष्य से भटक न जाय, यह खतरा बना हुआ है। उल्लेखनीय है कि सारे प्रयासों के बावजूद अभी भारतीय कृषि का कोई राष्ट्रीय परिदृश्य नहीं बन पाया है, और ऐसी दशा में पश्चिमी देशों के दबाव में आकर इसके गरीब किसानों पर अतिरिक्त बोझ लादना न्यायसंगत नहीं है।

16.3. भारतीय कृषि की विशेषताएं :— भारत में कृषि देश की अर्थ व्यवस्था का आधार है। कृषि राष्ट्रीय उत्पादन का 40% भाग प्रदान करती है एवं इसमें देश की 60% कार्यकारी जनसंख्या लगी है। इससे देश का 35% निर्यात निर्तित है। साथ ही कृषि से ही अकृषि क्षेत्रों के विभिन्न सामानों की आपूर्ति होती है तथा इससे विभन्नि उद्योगों को कच्चे माल की

प्राप्ति होती है। संक्षेप में भारतीय कृषि की विशेषताओं को निम्न प्रकार से सहाहित किया जा सकता है।

1. **जनसंख्या की निर्भरता** –देश की 70% जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि पर अनेक उद्योग आधारित हैं तथा कृषि पदार्थो का परिवहन एवं व्यापार प्रमुख व्यवसाय हैं।
2. **जलवायु का प्रभाव**– भारत की जलवायु वर्ष भर कृषि के अनुकूल है। परन्तु वर्षा के मौसमी एवं असंयत वितरण तथा अनिश्चितता के कारण देश के विभिन्न भागों में कृषि हेतु सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।
3. **फसलों की विविधता** –अनुकूल जलवायु, उच्चावच एवं मृदा सम्बन्धी विशेषताओं के कारण यहाँ उष्ण, उपोष्ण एवं शीतोष्ण कटिबन्धीय कृषि फसलों का उत्पादन किया जा सकता है।
4. **राष्ट्रीय आय में योगदान** –सकल राष्ट्रीय आय का लगभग 45% भाग कृषि से प्राप्त होता है।
5. **खाद्यान्नों की प्रधानता** – कुल कृषित भूमि के 70% भाग पर खाद्यान्नों की खेती की जाती है। केवल 30% क्षेत्र पर ही व्यापारिक फसलें उगायी जाती हैं।
6. **कृषित भूमि का प्रतिशत** – देश के 46.7% क्षेत्र पर कृषि की जाती है (रूस 10.8%, अमेरिका 16.3%, चीन 11.8%, जापान 14.9%, कनाडा 4.3%) जो विश्व के अन्य देशों की तुलना में सर्वाधिक है।
7. **सिंचित भूमि** – देश की 37.5% कृषित भूमि पर सिंचाई की जाती है। सिंचाई की जाती है। सिंचाई की दृष्टि से चीन के बाद भारत का विश्व में दूसरा सर्वोपरि स्थान है।
8. **रबी, खरीफ एवं जायद फसलें** – देश के अधिकांश भाग में दो फसलें और कहीं–कहीं तो तीन फसलें तक उगाई जाती हैं। रबी की फसलों में गेहूँ, चना, जौ, सरसों अलसी, खरीफ में धान, ज्वार–बाजरा, मक्का, कपास, तिल, मूँगफली एवम् जायद में फल, सब्जियाँ आदि प्रमुख हैं।
9. **प्रति व्यक्ति कृषित भूमि का औसत** – भारत में प्रति व्यक्ति कृषित भूमि का औसत बहुत कम पाया जात है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण इसमें उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है। उदाहरणार्थ, 1951 में प्रति व्यक्ति कृषित भूमि का औसत 0.75

हेक्टेयर था जो 1981 में घटकर मात्र 0.18 हेक्टेयर रह गया (आस्ट्रेलिया 3.39, कनाडा 2.12, अर्जेन्टाइना 1.23, रूस 1.03, संयुक्त राज्य 0.89 हेक्टेयर)

10. **चारा फसलों की कमी** – भारतीय कृषि में आज भी पशुओं का बड़ा महत्व है फिर भी यहाँ केवल 4% कृषि भूमि पर ही चारा फसलें उगाई जाती है।

11. **कृषि के प्राचीन ढंग** – कृषि कार्य में पुरानी एवम् पिछड़ी विधियों का प्रयोग किया जाता है जिसमें अधिकांश कार्य मानव श्रम पर आधारित है। आज भी बैलों एवम् लकड़ी के हल से जुताई करते किसान दिखाई पड़ते हैं। इस कृषि में उर्वरकों, कीटनाशकों आदि का भी कम प्रयोग होता है।

16.4. भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास –भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त योजना आयोग के गठन के समय भारतीय कृषि की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। कृषि–क्षेत्र छोटे एवं बिखरे हुए थे तथा कृषि मुख्यतः वर्षा पर आधारित थी। कृषि में नवीन उपकरणों, उन्नत बीजों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों का प्रयोग नगण्य था। खाद्य फसलों के कृषि के प्रधानता थी। कृषि का उद्देश्य भरण–पोषण का होने के बावजूद वह देश की आवश्यकता के लिये समूचे अनाज को नहीं उत्पन्न कर पाती थी। अतः देश को विदेशों से खाद्यान्न मँगाना पड़ता था। चूँकि खाद्यान्न उत्पादन हमारी आवश्यकता ही नहीं अपितु बाध्यता थी अतः योजना आयोग ने पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को प्राथमिकता देने की संस्तुति की। देश की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1950–51 से 1955–56)– इसके अन्तर्गत कुल योजन परिव्यय (1960 करोड़ रूपये) का 31% (610 करोड़ रूपये) कृषि एवं सिंचाई के विकास पर खर्च किया गया जिसमें सर्वाधिक प्राथमिकता सिंचाई के विकास को दिया गया (व्यय 310 करोड़ रूपये)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1955–56 से 1960–61) – यह मुख्यतः एक उद्योग प्रधान योजना थी, परन्तु इसमें कृषि की उपेक्षा नहीं की गयी। कुल योजना परिव्यय (4600 करोड़ रूपये) में से 950 करोड़ रूपये (20.6%) कृषि विकास कार्यक्रमों में खर्च किया गया जिसमें 420 करोड़ रुपये सिंचाई विकास कार्यक्रमों पर व्यय हुआ। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत देश के विभिन्न भागों में बहुउद्देशीय प्रायोजनाओं, नहरों एवं नलकूपों द्वारा सिंचाई का प्रसार प्रारंभ हुआ। परन्तु योजना के निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किये जा सके।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1960–61 से 1965–66) – इस योना के पाँच आधारभूत उद्देश्यों में से एक खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता भी थी। कृषि विकास पर इस दौरान कुल 1754 करोड़ रुपये खर्च (20% योजना परिव्यय) का प्रस्ताव रखा गया जिसका लक्ष्य कृषि उत्पादन में 30% वृद्धि का था। यद्यपि कृषि उत्पादन में वृद्धि की दर 1964–65 तक संतोष जनक रही परन्तु वर्ष 1965–66 में 17% के ास से विकास कार्यक्रमों को गंभीर आघात लगा।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1968–69 से 1973–74) – इस दौरान कृषि विकास पर कुल 3814 करोड़ रूपये (कुल योजना परिव्यय का 24%) ही रहा। इस योजना के अंतर्गत कृषि विकास के साथ–साथ अदान उद्योगों, उर्वरक, कृषि मशीनरी आदि के क्षेत्रों में भी प्रगति की गयी। योजना में 156 लाख हेक्टेयर भूमि को सिंचाई की सुविधा प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। साथ ही गहन कृषि पर जोर दिया गया और उत्तम बीज, रासायनिक उर्वरकक, बहुफसल कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के प्रयास किये गये।

पंचम पंचवर्षीय योजना (1973–74 से 1977–78) – इस योजना में कृषि एवं सिंचाई के विकास हेतु 7411 करोड़ रुपये (कुल योजना परिव्यय का 20%) निर्धारित किये गये, परन्तु योजना की समाप्ति पर यह खर्च बढ़कर 8084 करोड़ रुपये पहुँच गया। इस दौरान खाद्यान्न में न केवल आत्म–निर्भर बनने में सफलता मिली वरन् आपात काल के लिये प्रतिरोधक भण्डार बनाया गया। इसके सथ ही साथ व्यापारिक फसलों को प्रोत्साहित करने के लिए कार्यक्रम बनाये गये।

चल योजना (1978–79 से 1979–80) – इस योजना की शुरुआत जनता सरकार के शासन के दौरान है।। इसमें कृषि हेतु सिंचाई के विकास पर विशेष बल दिया गया। इन कार्यक्रमों के कारण ही वर्ष 1978–79 में भयंकर सूखे के बावजूद भी कृषि उत्पादन में वृद्धि देखी गयी। बाद में यह योजना 2 वर्ष बाद कांग्रेस सरकार द्वारा संशोधित कर लागू की गयी।

षठी पंचवर्षीय योजना (1979–80 से 1984–85) – इस योजना के दौरान कृषि एवं क्षेत्र आयोजन को वरीयता प्रदान की गई। इसमें पाँचवीं योजना की तुलना में खर्च में 112% वृद्धि की गयी (कुल परिव्यय का 25.6 प्रतिशत)। इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण विकास पर विशेष बल दिया गया जिसमें सीमान्त कृषक, भूमिहीन श्रमिक, अनुसूचित जाति, जन

जाति की दशा सुधारने हेतु कई कार्यक्रम बनाये गये। इसके लिए उर्वरक, कीट नाशक दवाओं, ऊर्जा, परिवहन, जल सम्भरण, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण शिक्षा आदि से संबंधित कई कार्यक्रम शुरू किये गये।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1984–85 से 1989–90) – इस योजना का मुख्य उद्देश्य भोजन, रोजगार, उत्पादकता आदि रखा गया जिसके अन्तर्गत विकास, समानता, सामाजिक न्याय, एवं गरीबी के निराकरण पर बल दिया गया। इस योजना के अन्तर्गत कृषि एवं ग्रामीण विकास पर जोर दिया गया। योजना के अन्तर्गत कृषि एवं ग्रामीण विकास पर कुल योजना परिव्यय का 12.7% खर्च किया गया जिसके परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र में 4% प्रतिवर्ष वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित रखा गया। इसके अंतर्गत चावल की कृषि के विकास के साथ–साथ मोटे अनाजों की खेती पर बल देने के कार्यक्रम बनाये गये।

आठवी–पंचवर्षीय योजना (1991–92 से 1996–97) – अष्टम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि विकास हेतु पैदावार संबंधी प्रौद्योगिकी के लाभों को स्थायी व सुदृढ़ करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है ताकि न केवल बढ़ती हुई घरेलू माँगों को पूरा किया जा सके अपित् निर्यात के लिये अतिरिक्त पैदावार की जा सके। इस दौरान कृषि में निवेश की धनराशि 96167 करोड़ रुपये निर्धारित की गयी। इस दौरान शुष्क भूमि विकास, पूर्वी क्षेत्र में त्वरित कृषि विकास, खेती में विविधीकरण, खेतिहर वस्तुओं को सहायता, फसल के बाद की प्रौद्योगिकी, आदान पर ऋण, बागबानी, मत्स्य पालन, पशुपालन व डेरी उद्योग, तिलहन उत्पादन संबंधी कई कार्यक्रम लागू किये जा रहे हैं। आठवीं योजना में वार्षिक औसत वृद्धि को 27 लाख हेक्टेयर तक ले जाने का लक्ष्य है। संक्षेप में आठवीं योजना में कृषि कार्यक्रमों के प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार हैं–

1. कृषि में विविधता लाना तथा बागवानी, पशुधन, मत्स्यपालन आदि का विकास करना।
2. पूर्वोत्तर क्षेत्र में उत्पादकता वृद्धि करके कृषि विकास की गति बढ़ाना।
3. वर्षा सिंचित क्षेत्रों का विकास करना।
4. तिलहन एवं दालों का उत्पादन बढ़ाना।
5. सहकारी समितियों और कृषि ऋण संस्थाओं को फिर से सक्रिय बनाना तथा कृषि उत्पादों के विपणन को सुधारना।
6. फसल कटाई के बाद के कार्य की प्रौद्योगिक विकसित करना।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1977–2000) –नौवीं योजना में त्वरित आर्थिक विकास और लोगों के जीवन स्तर में सुधार बल दिया गया। इसका फोकस ''सामाजिक न्याय और समानता के साथ विकास'' सामाजिक न्याय और समानता के साथ विकास'' के रुप में की जा सकीत है इसका उद्देश्य निम्न था – (1) कृषि व ग्राम को प्राथमिकताताकि पर्याप्त रोजगार सृजित हो। (2) खाद्य व पौषिणक सुरक्षा सभी के सुनिश्चित करना विशेषकर समाज के निचले तवके के लिए (3) स्थिर मूल्यों के साथ अर्थव्यता था की विकास पर को बढ़ाना (4) आत्म निर्भरता के प्रयासों को सुदृढ़ करना। (5) स्वस हायता समूहो जैसे जन भागीदार वाले संस्थानों को प्रोत्साहन देना विाकस करना। आदि

केन्द्र द्वारा योजना के लिए उपलब्ध करवाई गयी 2,05,290 करोड़ रूपयें की सकल बजटीय सहायता में 8% की कमी रहीं

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) – 21 दिसम्बर 2002 को दंसवी पंचवर्षीय को अनुमोदन किया। दसवीं योजना के सामाजिक व आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए 8% विकास दर जरुरी समझी गयी। दसवीं योजना का मुख्य घटक कृषि था।

मात्र आर्थिक विकास ही योजना का लक्ष्य नहीं होता, अपितु विकास से लाभ उठाना और जन जीवन स्तर को सुधारना भी इसका मुख्य लक्ष्य होता है। केन्द्र द्वारा 8,93,183 में अर्थात 58.5% हिस्सा केन्द्र का 6,32,450 में 41.5 राज्य के आधीन था। तीव्र आर्थिक विकास की भिन्न रणनीति, शासन नीति में सुधार इसकी प्रमुख उपलाब्धियाँ थी।

ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना (2007–2012) –अधिक समावेशी विकास, बुनियादी सुविधाओं को आसान बनाना स्वास्थ्य व शिक्षा में 10% विकास वाले सभी स्तर के बीच असमानाताओं में कमी तथा तीव्र रोजगार सृजन की आवश्यकता पर बल दिया गया।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2016) –मूल उद्देश्य तीव्र अधिक सम्रग ओर सतत वृद्धि (9 से 9.5%) का लक्ष्य जिस हेतु सख्त नीति निर्णयों की आवश्यकता होगी। मुख्य चुनौतियों ऊर्जा, पानी और पर्यावरण जिसका विकास वृद्धि को त्या किए बिना करने की आवश्यकता है। देश में विश्व–स्तरीय अब सरचना निर्मित करने के लिलए संसाधन खोजना, वृद्धि को और अधिक समग्र करने के लिए कृषि में बेहतर निस्पादन की आवश्यकता होती है। इसके साथ नौकरियों का तीव्र सजृन विशेषकर विनिर्माण में, और स्वास्थ्य शिक्षा में अधिक सशक्त प्रयास और क्षमता विकास को महता दी जाएगी। यह पूर्ण नही हो पायी इसको बीच में ही बदल कर नया रूप रेखातैयार की गयी।

नीति आयोग भारत सरकार द्वारा गढ़ित संस्थान है जिसे योजना आयोग के स्थान पर बनाया गया। और यह 1 जनवरी 2015 से लागू किया गया। योजना आयोग और नीति आयोग में मूल भूत अन्तर है कि इससे केन्द्र से राज्यों की तरफ चलने वाले एक पक्षीय नीतिक्रम को एक महत्वपूर्ण विकासवादी परिवर्तन के रूप में राज्यों की वास्तविक और सतत भागीदारी से बदल दिया जायेगा। नीति आयोग ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजना तैयार करने के लिए तंत्र विकासित करेगा और इसे उत्तरोत्तर उच्च स्तर तक पहुँचायेगा। इसके अतरिक्त आयोग कार्यक्रमों और नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन और क्षमता निर्माण पर बल देगा।

16.5. योजनाओं के दौरान भारतीय कृषि –पहली और दूसरी योजना में बड़ी और मध्यम सिंचाई योजनाओं के माध्यम से सिंचाई सुविधाओं के प्रसार पर काफी जोर दिया गया। कृषि संबंधों के पुनर्गठन के लिए तथा ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय स्तर पर भूमि सुधार कार्यक्रम और सामुदायिक विकास कार्यक्रम को शुरु किया गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण विकास का एक अत्यन्त व्यापक कार्यक्रम था जो ग्रामीण जीवन के सभी पहुलओं से जुड़ा था। कृषि संवृद्धि इस कार्यक्रम का मात्र एक हिस्सा थां कार्यक्रम के अन्य पहलू थे – ग्रामीण साक्षरता, स्वास्थ्य व चिकित्सा, ग्रामीण परिवहन व संचार सुविधाओं का विकास, ग्रामीण आवास, ग्रामीण उद्योग, पशुपालन इत्यादि। सहाकरी खेती पर भी काफी जोर किदया गया। बड़ी व मध्यम सिंचाई परियोजनाओं, सामुदायिक विकास तथा सहकारी खेती पर जोर लगभग तीसरी योजना के अन्त तक जारी रहाा। 1965–66 तथा 1966–67 में देश में भयंकर सूखा पड़ा और भुखमरी से बचने के लिए। करोड़ 90 लाख टन खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा। इस प्रकार की परिस्थितियों के कारण कृषि विकास युक्ति पर पुनर्विचार करने की जरूरत महसूस की गई तथा कृषि उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाने के महत्व को स्वीकार कियाजाने लगा। इस प्रकार, कृषि नीति का रुख संस्थागत सुधारों से हट कर प्रौद्योगिक व तकनीकों की तरफ हो गया। कृषि उत्पादन को बढ़ाने के दृष्टिकोण से देश के चुनिंदा क्षेत्रों में नई कृषि युक्ति को अपनाया गया। अब कृषि नीति का ध्यान बड़ी और मध्यम सिंचाई परियोजनाओं से हट कर लघु सिंचाई योजनाओं की तरफ हो गया। इसके अलावा, कृषकों को सस्ती कीमतों पर सात व अन्य कृषि आगत उपलब्ध कराना, फसलों के लिए लाभकारी कीमतें उपलब्ध कराना, कृषि विपणन सुविधाओं का विकास करना, जैसे मुद्दों पर भी जोर दिया जाने लगा।

योजनाओं के दौरान अपनाई गई भारतीय कृषि नीति के मुख्य तत्व निम्नलिखित है :

तकनीकी कदम – बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्नों के लिए बढ़ती हुई मांग को पूरा करने हेतु तथा औद्योगिक विकास का आधार तैयार करने के लिए, कृषि अधीन क्षेत्र को बढ़ने के लिए, तथा गहन खेती करने के लिए कई कदम उठाए गए। कृषि अधीन क्षेत्र को बढ़ाने के लिए सिंचाई सुविधाओं के विकास के कार्यक्रम बनाए गए। जहां तक गहन खेती का संबंध है, एक पैकज कार्यक्रम के रुप में 1966 में देश के चुने हुए क्षेत्रों में नई कृषि युक्ति लागू की गई। देश के अन्य क्षेत्रों में इस कार्यक्रम के प्रसार हेतु उच्च उत्पादकता वाले बीजों के उत्पादन कार्यक्रमों पर तथा उर्वरकों व कीटनाशक दवाईयों की आपूर्ति पर विशेष ध्यान दिया गया। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप, कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई।

भूमि सुधार – भूमि सुधार कार्यक्रमों का उद्देश्य मध्यस्थों (यथा जमींदारों, जागीरदारों इत्यादि) का उन्मूलन तथा काश्तकारों को भूमि का अन्तरण था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाए गए। (i) मध्यस्थाों का उन्मूलन, (ii) काश्तकरी सुधार (जिसमें लगान नियमन, काश्त अधिकार की सरुक्षा, तथा काश्तकारों को मालिकना अधिकार देने के लिए कदम उठाने की व्यवस्था थी), (iii) जोतों पर सीमाबन्दी (ताकि बड़े किसानों व जमींदारों से अतिरिक्त जमीन लेकर उसका वितरण भूमिहीन श्रमिकों तथा सीमान्त किसानों के बीच कियाजा सके)। वस्तुतः भूमि सुधारों का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों की कृषि व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना थां

सहकारिता तथा चकबन्दी – कृषि के पुनर्गठन के लिए तथा जोतों के उपविभाजन एवं विखंडन को रोकने के दृष्टिकोण से भारतीय कृषि नीति में सहकारित तथा चकबन्दी के कार्यक्रम अपनाए गए। चकबन्दी का उद्देश्य याह था कि किसान को गांव में मौजूद उसके अलग–अलग छोटे–छोटे भूखंडों के स्थान पर एक ही जगह पर भूमि दे दी जाए ताकि समय, धन व भूमि का अपव्यय रोका जा सके और किसान नई तकनीकों का सही प्रयोग कर सके। सहकारिता का उद्देश्य यह था कि छोटे एवं सीमांत किसान अपनी भूमि व अन्य साधनों का मिलजुल कर इस्तेमाल करें ताकि सब संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सके।

योजनाओं में जनता की भागीदारी के लिए संस्थाएं – आयोजकों ने महसूस किया कि आर्थिक विकास व प्रगति का कोई भी कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि लोग स्वयं उस कार्यक्रम को अपना समझ कर उसमें बढ़ चढ़कर हिस्सा न लें। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर 1952 में देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ किया गया। यह कार्यक्रम लोगों का अपना कार्यक्रम था जिसका उद्देश्य उनका अपना उत्थान करना था और सरकार एवं प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिका केवल इतनी थी कि वे लोगों की केवल मदद करें ताकि वे अपनी मदद खुद कर सकें। परन्तु सामुदायिक विकास कार्यक्रम का अनुभव अच्छा नहीं रहा । यह कभी भी नजता का अपना कार्यक्रम नहीं बन पाया और सरकारी सहायता पर निर्भर बना रहा। योजना प्रक्रिया में लोगों की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित करने के लिए विकेन्द्रीकरण का एक और कार्यक्रम अपनाया गया जिसे 'पंचायती राज' कहा गया। यह कार्यक्रम भी सामुदायिक विकास कार्यक्रम की तरह असपल रहा।

कृषि आगतों पर आर्थिक सहायता – सरकार ने सिंचाई, बिजली तथा उर्वरक इत्यादि पर काफी आर्थिक सहायता प्रदान की है। इस सहायता का उद्देश्य यह है कि किसानों को कीमतों पर कृषि आगत उपलब्ध कराए जा सकें ताकि कृषि में इनका उपयोग बढ़े जिससे कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता को बढत्राया जा सके। समय के साथ आर्थिक सहायता का भार अब बहुत बढ़ चुका है परन्तु इन्हें हटाने या कम करने में सरकार को बहुत कठिनाई आ रही है।

खाद्य सुरक्षा व्यवस्था – उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न व अन्य अनिवार्य उपभोग वस्तुएं उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से सरकार ने योजनाओं के दौरान एक व्यापक सार्वजनिक वितरण प्रणाली का पूरे देश भर में जाल बिछाया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली न केवल उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराती है बल्कि खाद्यान्नों का बड़ी मात्रा में भंडारण के जरिए एक 'सुरक्षा व्यवस्था' का भी काम करती है ताकि विभिन्न वर्षो में (या देश के विभिन्न क्षेत्रों में) होने वाली खाद्यान्न उत्पादन में कमी की समस्या का समाधान किया जा सके।

ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम – सार्वजनिक वितरण प्रणाली अकेले ही प्रभावी सुरक्षा व्यवस्था का काम नहीं कर सकती। इसका कारण यह है कि जब तक गरीब लोगों के पास उचित मात्रा में धन न हो वे सार्वजनिक वितरण प्रणाली से अनाज नहीं खरीद सकते। इसलिए

निर्धनों को क्रय शक्ति उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि बड़े पैमाने पर ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम जैसे गरीब उन्मूलन कार्यक्रम शुरु किए जाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए सरकार ने विभिन्न योजनाओं में कई ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम शुरु किए हैं जैसे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना इत्यादि।

ऊपर व्यक्त तत्वों के अतिरिक्त, भारतीय कृषि नीति के अन्य महत्वपूर्ण तत्व निम्नलिखित हैं :

1. बड़ी, मध्यम व लघु सिंचाई परियोजनाओं के माध्यम से सिंचाई व्यवस्था को विस्तार तथा ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण।
2. नियमित मंडियों के गठन के द्वारा तथा अन्य कदमों द्वारा (जैसे मानक बाटों की अनिवार्यता, श्रेणी विभाजन एवं मानवीकरण, किसानों को उत्पाद कीमतों की सूचना देना इत्यादि) कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार लाना।
3. कृषि उत्पाद के भंडार इकट्ठा करने के लिए गोदामों व भंडारण व्यवस्था का वैज्ञानिक विस्तार करना।
4. कृषि श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार लाने के लिए न्यूनतम वेतन को लागू करना, बंधुआ मजदूर प्रथा को समाप्त करना, भूमिहीन श्रमिकों को भूमि देना, ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम लागू करना, इत्यादि।
5. देश के पूर्वी क्षेत्र तथा शुष्क क्षेत्रों में हरित क्रान्ति के प्रसार के लिए सातवीं योजना में दो विशिष्ट कार्यक्रम शुरू किए गए : (i) विशेष चावल उत्पादन कार्यक्रम तथा (ii) वर्षा–आश्रित क्षेत्रों में राष्ट्रीय जलसंभर विकास कार्यक्रम। पहला कार्यक्रम देश के पूर्वी क्षेत्र (असम, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पूर्वी मध्य प्रदेश) में शुरु किया गया। दूसरा कार्यक्रम 1986–87 में शुरु किया गया और इसका उद्देश्य शुष्क क्षेत्रों में भूमि व जल संसाधनों के अनुकुलतम उपयोग द्वारा कृषि उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि करना है।
6. कृषि निर्यातां को प्रोत्साहित करने के लिए हाल के वर्षों में कई कदम उठाए गए हैं। उदाहरण के लिए कृषि वस्तुओं के निर्यात पर अधिकतर प्रतिबंध हटा लिए गए हैं, पुष्पोत्पादन क्षेत्र में निर्यात उन्मुख इकाइयां स्थापित की जा रही हैं तथा खाद्य

परिष्करण इकाइयों की स्थापना के लिए पूंजीगत वस्तुओं व मशीनरी के आयात की शर्तो को आसान बनाया जा रहा है।

7. योजनाओं के आरंभ से ही कई सिंचाई परियोजनाओं को शुरु किया गया है। परन्तु राज्यों के पास उपयुक्त मात्रा में वित्तीय साधन न होने के कारण कई परियोजनाएं अधर में ही लटकी हुई हैं। इन योजनाओं को पूरा करने के लिए 1996–97 में राज्यों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने हेतु एक त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम लागू किया गया।

8. सूखे, बाढ़, ओलावृष्टि, चक्रवात, आग जैसी प्राकृतिक विपदाओं और कीटों व बीमारियों के कारण फसलों को होने वाली क्षति से किसानों का संरक्षण करने के लिए 1999–2000 से राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना शुरु की गई। इन योजना ने अब 1985 में आरंभ की गई व्यापक फसल बीमा योजना का स्थान के लिया है।

9. गरीब लोगों के पास गिरवी रखने के लिए अक्सर कुछ नहीं होता इसलिए परंरागत वाणिज्यिक बैंकों से उन्हें ऋण प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इसके अलावा, बहुत से छोटे–छोटे खातों का हिसाब रखना काफी महंगा पड़ता है इसलिए वाणिज्यिक बैंक गरीब लोगों की ओर अधिक ध्यान नहीं देते। बंग्लादेश में सर्वप्रथम अपनाए गई 'ग्रामीण बैंक' योजना के आधार पर भारत के कृषि और ग्रामीण विकास के राष्ट्रीय बैंक ने 1991–92 से स्व–सहायता संगठनों को औपचारिक कृषि संस्थाओं से जोड़ने के प्रयास किए हैं।

10. ग्रामीण आधारिक संरचना की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करते हुए 1995–96 में कृषि एवं ग्रामीण विकास के राष्ट्रीय बैंक के तत्त्वावधान में एक स्वतंत्र फंड की स्थापना की गई जिसका नाम ग्रामीण आधारित विकास फंड रखा गया।

16.6. भारतीय कृषि समस्याओं पर भानु प्रताप कमेटी की रिपोर्ट – कृषि नीति और कृषि क्षेत्र में विकास से संबन्धित समस्याओं पर विचार के लिये गठित उच्चस्तरीय समिति ने 30 जुलाई 1990 की अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की। यह समिति कर्नाटक के राज्यपाल भानुप्रताप सिंह की अध्यक्षता में गठित की गई थी। समिति की सिफारिशें निम्नवत हैं –

1. कृषि को वे सभी सुविधायें मिलनी चाहिये जो उद्योग को मिलती रही हैं।
2. समिति के अनुसार अगले 15 वर्षों में कृषि उत्पादन को दो गुना बढ़ाना होगा तभी गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता दूर करने की दिशा में ठोस प्रगति हो

सकती हैं समिति के अनुसार देश में कृषि विकास सन्तोषप्रद नहीं है। हरित क्रान्ति के बाद तो इसमें शिथिलता आ गई है। अतः एक तरफ कृषि क्षेत्र में काम करने वाले लोगों की दशा सुधारना जरूरी है और दूसरी ओर किसानों को ऋण की सुविधा उपलब्ध कराने एवं छोटी एवं मझली सिंचाई योजनाओं पर विशेष ध्यान देना जरूरी है।

3. रिपोर्ट के अनुसार कृषि क्षेत्र से जितना लाभ उठाया जा सकता है उसका हम 50% लाभ नहीं उठा पा रहे हैं, क्योंकि अभी भी भारी मात्रा में कृषि योग्य भूमि बेकार पड़ी हुई है। यदि कुछ क्षेत्र असिंचित हैं तो कुछ हर वर्ष बाढ़ों से ग्रस्त हैं जिससे हजारों हेक्टेयर क्षेत्र की फसलें नष्ट हो जाती हैं।

4. प्राकृतिकों साधनों का हम दोहन नहीं कर पाते हैं। अनाज उत्पादन के साथ–साथ श्वेतक्रान्ति और मत्स्य पालन, रेशम, उद्योग, लकड़ी उद्योग तथा कृषि पर आधारित अन्य उद्योगों को भी ग्रामीण क्षेत्र में प्रोत्साहित किया जा सकता है। इससे कृषि क्षेत्र में लगे लोगों को पूरक आय का साधन मिल जायेगा।

5. रिपोर्ट में खाद्य सुरक्षा प्रणाली विकसित करने की सिफारिश की गई है। इस हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डारण की सुविधा उपलब्ध कराने तथा समर्थन मूल्य पर कृषि उत्पादों की सरकारी खरीद का तन्त्र विकसित करने का सुझाव है।

6. रिपोर्ट में भूमि सुधार सम्बन्धी कार्यक्रमों को तेजी से लागू करने पर बल दिया है। इसके लिए बन्जर भूमि को कृषि उपयोग में लाने एवं भूमिहीनों में बाँटने की आवश्यकता है।

7. रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि राज्यों के भूमि हदबन्दी कानूनों में आवश्यक परिवर्तन किये जाएँ ताकि ज्याद से ज्यादा भूमि खेती के अन्तर्गत लाई जा सके और बटाई पर खेती करने वालों को उस भूमि के आधे भाग का मालिकाना हक दिया जाये जिस पर वे खेती करते हैं। शेष 50% भूमि भूमिहीनों को बांट दी जाये।

8. समिति के अनुसार कृषि में क्रान्ति की दिशा में सबसे बड़ी बाधा भूमि सुधार कानूनों पर अमल न होने से है। यह अच्छी बात है कि सरकार ने भूमि सुधार कानूनों को संविधान की 9 वीं अनुसूची में डालने का प्रावधान कर लिया है।

आज जरूरत है कि हर गाँव को विकास की एक इकाई के रूप में मान लिया जाये और वहीं से कृषि विकास के कार्यक्रमों पर अमल की शुरुआत की जाये। खेती

करने वाले हर किसान के पास उन्नत तकनीक, खाद–बीज, और सिंचाई सुविधा के साथ–साथ भण्डारण और विक्रय की सुविधा उपलब्ध हो। बेरोजगारी को दूर करने का सबसे बड़ा उपाय कृषि क्षेत्र की तरक्की ही है।

अतः यदि सरकार द्वारा भानु प्रताप सिंह कमेटी की सिफारिशों को लागू नहीं किया गया तो कृषि क्षेत्र से जुड़े लोगों को काफी निराशा होगी।

16.7. सारांश – पंचवर्षीय योजनाओं का आदर्श वाक्य कृषि विकास जिसका उद्देश्य देश या प्रदेश की आवश्यकता के अनरुप कृषि विकास कार्यक्रमों को बनाया गया जिससे प्रकृति के साथ समायोजना बना रहे आप ने यह भी जाना कि कैसे भारत की कृषि देश की अर्थ व्यवस्था रही तथा इससे विभिन्न उद्योगों के कच्चे मालों की उपलब्धता सुनिश्चित होती है। आप समझ गये होगें कि योजना आयोग ने पंचवर्षीय योजनाओं में कृषिकों कैसे प्राथमिकता सुनिश्चित करती है तथा पंचवर्षीय योजनाओं के इतिहास को समझ गये होंगे।

16.8. स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

1. पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत मानी जाती है।

(अ) 1950 (ब) 1955 (स) 1957 (द) 1957

2. भारत में सूखा और अकाल पड़ा –

(अ) 1960–65 (ब) 1966–67 (स) 1960–62 (द) 1970–73

3. भारतीय कृषि आधारित है –

(अ) योजना पर (ब) उद्योग पर (स) मानसून पर (द) जोतो पर

4. भारतीय कृषि विकास में नई समस्या है –

(अ) योजना (ब) डकेल प्रस्ताव (स) हार्वट प्रस्ताव (द) बंसल प्रस्ताव

आदर्श उत्तर –(1) अ, (2) ब , (3) स, (4) ब

16.9. सन्दर्भ सूची –

- सिंह, ब्रज भूषण (1979) कृषि भूगोल, तारा पब्लिकेशन्स वाराणसी
- तिवारी आर0सी0 एवं सिंह बी0एन0 (1994) कृषि भूगोल प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद
- पाण्डेय जे0एन0, कमलेश एस0आर0, कृषि भूगोल वसुन्धरा प्रकाशन
- Thiwari, P.S. (1988) Agricutural Geography New Delhi.

➢ मिश्र, एस0के0, पुरी वी0के0 (2003) भारतीय अर्थ व्यवस्था, हिमालया पब्लिक हाउस

16.10. अभ्यास प्रश्न संभ्रात परीक्षा की तैयारी हेतु

1. कृषि विकास की अवधारण को स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय कृषि की विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।
3. भारत की पंचवर्षीय योजनाओं पर प्रकाश डीालिए।
4. भारतीय कृषि के विकास में पंचवर्षीय योजनाओं के योगदान को स्पष्ट करें।

इकाई 17- जनसंख्या और कृषि, खाद्य सुरक्षा

इकाई संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 जनसंख्या वितरण
17.3 जनसंख्या घनत्व
17.4 कृषि और जनसंख्या
17.5 भारत में खाद्य सुरक्षा
17.6 भारत में खाद्य समस्या का स्वरूप
17.7 भारत में खाद्य समस्या के कारण
17.8 खाद्य समस्या को दूर करने के सरकारी प्रयास
17.9 खाद समस्या के के निराकरण के उपाय
17.10 सारांश
17.11- स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर
17.12-संदर्भ-ग्रंथ-सूची
17.13.अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

17-0 प्रस्तावना –

भारत में 2 करोड़ 27 लाख लोग भूख और कुपोषण के शिकार हैं । प्रख्यात अर्थशास्त्री डॉ 0 अमर्त्यसेन का मानना है कि - "गरीबी और भुखमरी को जोड़कर देखना चाहिये |" भारत में संकट यह नहीं है कि यहाँ अनाज का संकट या उत्पादन न्यूनतम स्तर पर आ गया है। असली संकट यह है कि यहाँ एक तिहाई से अधिक जनसंख्या के पास पैसा नहीं है कि वे अनाज खरीद क्रय कर भोजन कर सकें ।जो गरीबी , भुखमरी और कुपोषण को बढ़ाते है। ये दोनों शारीरिक व मानसिक शक्तिहीनता को बढ़ाते हैं जिससे श्रम को सकल मात्रा व क्षमता दोनों कम हो जाती हैं यह स्थिति उत्पादन को घटाती है और न्यून उत्पादन गरीबी और बढ़ा देता है। इस प्रकार गरीबी और भुखमरी की कुचक्र आरम्भ हो जाता है।

भारत में जनसंख्या का तीव्रगति से बढ़ना सबसे बढ़ी समस्या जिससे यहाँ के लोगों को बेरोजगारी बढ़ी है। तथा क्रय शक्ति घट गयी है जिससे एक बहुत बड़ा भाग पोषण युक्त भोजन से वंचित हो रहा है। "यह सचमुच राष्ट्रीय शर्म की बात है कि दुनिया की दूसरी सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्था वाले देश में 42 प्रतिशत नौनिहालों (0-6 वर्ष) का वजन सामान्य से कम है और 59 प्रतिशत बच्चों की ऊँचाई भी निर्धारित पैमाने से कम है। कुपोषित बच्चों की यह संख्या तब और शर्मशार नजर आने लगती है कि दुनिया के हर तीन कुपोषित बच्चों में एक भारतीय है | जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति आज एक विश्वव्यापी ज्वलन्त समस्या है। जनसंख्या किसी भी राष्ट्र के लिए अमूल्य पूंजी है जो वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन , वितरण एवं उपभोग करके आर्थिक विकास का संव्दन करती है। इसलिए जनसंख्या को देश के लिए साधन एवं साध्य दोनों माना गया है परन्तु यदि जनसंख्या वृद्धि एक सीमा से अधिक हो जाती है तो विकास एवं जनसंख्या का संतुलन बिगड़ जाता है। सन् 1830 की जनगणना के अनुसार विश्व की कुल जनसंख्या केवल । अरब थी किन्तु अगले 100 वर्षों में अर्थात् सन् 1930 तक जनसंख्या दोगुनी हो गई। संयुक्त राष्ट्र की वर्ल्ड पोप्यूलेशन प्रोस्पेक्ट्स 2015 के अनुसार वर्तमान में विश्व की जनसंख्या 73 अरब है जो यर्ष 2030 तक बढ़कर 65 अरब हो जायेगी। इसी प्रकार सन् 1969।

में भारत की कुल जनसंख्या 23. 6 करोड थी जो सन् 2001 को 121.02 करोड़ हो गई। जनगणना 2011 के आकडों के अनुसार 2000-47 के दशक में देश में कुल जनसंख्या 18.196 करोड (17.7 प्रतिशत) की वृद्धि हुई । इससे पूर्व 1991-2001 के दशक में जनसंख्या में द्दद्धि 21.54 प्रतिशत रही थी। अत्तः आज जनसंख्या निरन्तर गुणात्मक रूप रो बढ़ रही है। इस परिप्रेश्य में प्रसिद्ध जनांकिकी वेत्ता माल्थस के विचार सत्य सिद्ध हो रही है। उनका कथन था कि खाद्य सामग्री में वृद्धि सदैव अंकगणितीय क्रम 1,2,3,4, ... में होती हैं तथा जनसंख्या वृद्धि ज्यामितीय क्रम 2,4,6,8,16,32,....... में बढ़ती आबादी ने आज देश, सरकार तथा प्रशासन के सम्मुख गम्भीर चुनौतियां प्रस्तुत कर दी है कि इस विशाल जनसंख्या के लिए रोटी , कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य रोयाएं, रोजगार व शिक्षा आदि कैसे उपलब्ध कराया जाये। जनसंख्या वृद्धि ने हमारे आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पक्षों को बहुत अधिक प्रभावित किया है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण देश के संसाधनों जैसे खाद्य पदार्थ , स्वास्थ्य सुविधिाओं की मांग में भारी बढोत्तरी हुई है परन्तु मांग के अनुरूप संसाधनों का न बढ़ पाना एक गम्भीर समस्या बन गई है। प्रकृतिजन्य और मानय निर्मित जो घटनाएं पनप रही है उनमें अकाल , बाढ़, भूकम्प, ओलापृष्टि, जलवायु परिवर्तन आदि है। इन सबका असर आज खाद्य उपलब्धता पर पड़ रहा है 'तथा जनसंख्या पृद्धि तथा खाद्यान्न उत्पादन में ठहराव तथा बढ़ती खाद्य स्फीति के चलते भारत में खाद्य सुरक्षा बढ़ी चुनौती के रूप में सामने आ गईं है।

खाद सुरक्षा से हमारा तात्पर्य है सभी लोगों को सक्रिय और स्वस्थ जीवन बिताने के लिए भोजन का अभाव न होने देना तथा लोगों के पास इन खायाननों को खरीदने की क्षमता का होना। विश्व विकास रिपोर्ट ने खाद्य सुरक्षा की परिभाषा “सभी व्यक्तियों के लिए राभी समय पर एक सक्रिय, स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त भोजन की उपलब्धि के रूप में की है। ” इसी प्रकार खाद्य एवं कृषि संस्था ने खाद्य सुरक्षा को राभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए दस पट आदी भोजन के लिए भौतिक एवं आर्थिक दोनों रूप में उपलब्धि के आश्यासन के रूप में किया है। अतः खाद सुरक्षा के लिए किसी देश की समग्र जनसंख्या को खाद्य की भौतिक उपलब्धि आवश्यक है तथा सभी को पर्याप्त खाद्य उपलब्ध कराने के लिए यह जरुरी है कि लोगों के पास पर्याप्त क्रय शक्ति हो ताकि वे अपनी जरूरत के लिए खाद्य पदार्थ हासिल कर सकें। अतः खाद्य सुरक्षा की अवधारणा इस बात पर बल देती है कि किसी राष्ट्र में खाघ -संमरण /ध्ययक*नचचसलद्ध की इतनी वृद्धि दर आश्वस्त करनी होगी कि इससे न केवल जनसंख्या की वृद्धि का ध्यान रखा जा सकें बल्कि इसके साथ-साथ लोगों की आय मैं वृद्धि के परिणामस्वरूप खाद्य की मांग में वृद्धि की भी पूर्ति की जा सकें।

17.1 उद्देश्य -

खाद्य सुरक्षा अब आर्थिक और सामाजिक रूप से सन्तुलित आहार प्राप्त कर सकने , पेयजल की उपलब्धता, पर्यावरण और प्रारम्भिक स्वास्थ्य चर्चा के रूप में परिभाषित की जाती है। कृषि वैज्ञानिक , प्रो0. एम0एस0 स्वामीनाथन ने “ग्रामीण भारत में खाद्य असुरक्षा की स्थिति ” नामक रिपोर्ट में खाद्य सुरक्षा के तीन तत्व बताए - पहला खाद्य उपलब्धता जोकि खाद्य उत्पादन और आयात पर निर्भर करता है। दूसरा खाद्य पहुँच जोकि लोगों की क्रयशक्ति पर निर्भर करती है। तीसरा खाद्य अवशोषण जो सुरक्षित पेयजल, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि पर निर्भर करता है” जनसंख्या व आय में वृद्धि होने से एक तरफ खाद्याननों की मांग तीव्र गति से बढ़ती है तो दूसरी तरफ खाद्याननों की पूर्ति में अपेक्षित वृद्धि नही होने से खाद्याननों की मांग व पूर्ति में अंतराल निरन्तर बढता जाता है परिणामस्वरूप खाद्यान्नों की कीमतों में वृद्धि से खाद्यान्न गरीब लोगों की पहुँच से बाहर होता जाता है। अतः यह आवश्यक है कि देश की जनसंख्या को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु सर्वप्रथम खाद्यान्नों की भौतिक उपलब्धता को बढाया जाये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने अनेक योजनाओं , नीतियों व कार्यक्रमों जैसे भूमि सुधार कार्यक्रमों, हरित क्रान्ति, न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति , फसल बीमा योजना , सार्वजनिक वितरण प्रणाली

आदि के माध्यम से कृषि उत्पादन को बढ़ाने की दिशा में प्रभावी प्रयास किये। आज भारत विकास के पथ पर अग्रसर है लेकिन सभी व्यक्तियों को यदि भोजन न मिले तो इससे विकास की महत्ता कम हो जाती है। मानव जाति की सबसे बड़ी जरूरत है भोजन , यही कारण है कि बढ़ती जनसंख्या वृद्धि व खाद्य सुरक्षा पर ध्यान दिया जाना जरुरी है। स्वतन्त्रता के बाद दो वर्षों में खाद्यान्नों की अत्याधिक कमी के कारण सरकार की खाद्य नीति का उददेश्य खाद्याननों के क्षेत्र में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना था।

17.2 भारत में जनसंख्या वितरण -

भारत एक विशाल देश है जिसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 32.88 लाख वर्ग किलोमीटर है। जनगणना 207 के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 121.06 करोड़ थी। भारत विविधताओं का देश है। देश के विभिन्न भागों में जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने बाली दशाओं - स्थलाकृति, भिट्टी की उर्वरता, जलवायु, खनिज संसाधनों की प्राप्ति, परिवहन की सुविधा, आर्थिक विकास, नगरीकरण आदि में पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है जिसके के परिणामस्वरूप जनसंख्या के वितरण में अधिक असमानता मिलती है। भारत की अधिकांश जनसंख्या उत्तरी भारत के विशाल मैदान और समुद्र तटीय भागों में संकेन्द्रित है जबकि उत्तय एवं उत्तरी -पूर्वी पहाड़ी प्रदेशों में सबसे कम जनसंख्या का निवास है। भारत में जनसंख्या वितरण के अध्ययन से भूगोल के विद्यार्थी को कई रोचक तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है जो मानव -भूमि सम्बन्ध को प्रकट करते हैं। भारत एक विकासशील देश है जहाँ जनांकिकीय, आर्थिक, सासाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा है जिसके फलस्वरूप जनसंख्या के विकास एवं दिशा में परिवर्तन के सांथ ही जनसंख्या पुनर्वितरण की प्रवृत्ति भी क्रियाशील है। महत्वपूर्ण विषय होते हुए भी भारत की जनसंख्या के वितरण और घनत्व के सम्बन्ध में राष्ट्रीय स्तर पर कम अध्ययन किये गये हैं। सन् 1947 में के०एस० अहमद ने , 1942 में पैट्रिक गेडिस ने , 1995 में किंग्सले डेविस ने और 1962 में एस०पी० चटर्जी ने भारत में जनसंख्या वितरण का विश्लेषण प्रस्तुत किया था। कुछ भूगोलवेत्ताओं ने प्रादेशिक स्तर पर जनसंख्या के वितरण का विश्लेषण करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है जिसमें एस०डी० वर्मा (1956), बी०एन० सिन्हा (1958), एस०पी० चटर्जी (1964), गोपाल कृशन (1966), घोष (1970) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतीय जनगणना विभाग द्वारा भी भारत की जनसंख्या के वितरण , घनत्व तथा अन्य जनांकिकीय विशेषताओं का विश्लेषण किया जाता है जिसका प्रकाशन प्रतिवेदनों तथा बुलेटिनों के रूप . में किया जाता है। राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्र संगठन , कलकत्ता द्वारा भी भारतीय जनगणना के आंकड़ों के आधार पर विभिन्न प्रकार के जनसंख्या मानचित्र तैयार किये जाते हैं जिनके अनुसार जनसंख्या विशेषताओं का विश्लेषण किया जाता है।

1.जनसंख्या का वितरण

जनगणना 2011 के अनुसार भारत की लगभग दो -तिहाई (68.84 प्रतिशत) जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। नगरीकरण में वृद्धि के परिणामस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः कम होता जा रहा है। ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत 1995' में 82.7 था जो घटकर 1981 में 76.66 और 20 में 98.84 हो गया। देश में छोटे -बड़े कुल 5 लाख से अधिक ग्राम हैं। ग्रामीण जनसंख्या का सर्वाधिक केन्द्रीकरण उपजाऊ मिट्टी वाले समतल मैदानी भागों में हुआ है जहाँ पर्याप्त वर्षा , सिंचाई तथा यातायात की सुविधाएँ विद्यमान हैं। अधिकांश नगरीय जनसंख्या बड़े नगों में संकेन्द्रित है जो उद्योग , व्यापार, प्रशासन, यातायात, सेवाओं आदि के केद्र हैं। कृषि तथा ग्राम प्रधान होने के कारण भारत की जनसंख्या के वितरण पर उन प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों का प्रभाव अधिक पाया जांता है जो कृषि उत्पादन को प्रभावित करे हैं।

भारतीय जनसंख्या की दूसरी प्रमुख विशेषत्ता उसका असमान वितरण है। उत्तरी विशाल मैदान में तथा समुद्रतटीय भागों (मुख्यतः नदियों के डेल्टाओं) में अधिक जनसंख्या का निवास है क्योंकि ये भाग कृषि तथा आवास के लिए उपयुक्त हैं। दकन के पठार की काली मिट्टी वाले प्रदेश में भी जनसंख्या अधिक है। औद्योगिक क्षेत्रों में अधिक नगरीकरण के फलस्वरूप जनसंख्या का केद्धीकरण हुआ है। इसके

विपरीत उत्तर में हिमालय तथा उत्तर -पूर्व में अन्य पहाड़ियों के दुर्गम तथा अनुपयुकत होने के कारण वहाँ जनसंख्या बहुत कम पायी जाती है। राजस्थान के परिचमी भाग में स्थित मरस्थली भाग में भी अत्यल्प जनसंख्या मिलती है।

तालिका 17-1 प्रदर्शित करती है कि उत्तर प्रदेश (1998 लाख) भारत का सर्वाधिक जनसंख्या बाला राज्य है जिसके अन्तर्गत देश की 16.49 प्रतिशत जनसंख्या पायी जाती है। दूसरा स्थान महाराष्ट्र (1123.7 लाख) है जहाँ 9.29 प्रतिशत ज़नसंख्या रहती है। जनसंख्या आकोर के अनुसार तीसरे से दसवें स्थान वाले राज्य हैं - बिहार, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, कर्नाटक और गुजरात। उड़ीसा , केरल, झारखंड, असम, पंजाब, हरियाणा, और छत्तीसगढ़ अधिक जनसंख्या वाले अन्य राज्य हैं। राज्यों में सबसे कम जनसंख्या सिक्किम (6.08 लाख) की है जहाँ देश की 0.05 प्रतिशत से भी कम जनसंख्या पायी जाती है। देश की राजधानी दिल्ली एक लघु प्रदेश होते हुए भी यहाँ 67.9 लाख लोगों का निवास है जो देश की कुल जनसंख्या का .39 प्रतिशत है। सभी पहाड़ी राज्य - ज़म्मू एवं कश्मीर , हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम और सिक्किम अल्प जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं जिनमें देश की एक प्रतिशत से भी कम जनसंख्या मिलती है। अत्यंत लघु आकार वाले केन्द्र शासित राज्यों में अत्यल्प जनसंख्या का निवास है। लक्ष्यद्वीप में लगभग 64 हजार और दमन एवं दिव में 2.43 रू व्यक्ति ही निवास करते हैं।

भारत में राज्यानुसार जनसंख्या का वितरण (2011)

	राज्य/केन्द्र शासित राज्य	जनसंख्या (लाख में)	देश का प्रतिशत
1.	उत्तर प्रदेश	1998.12	16.50
2.	महाराष्ट्र	1123.74	9.28
3.	बिहार	1040.99	8.60
4.	पश्चिम बंगाल	912.76	7.54
5.	आंध्र प्रदेश	845.81	6.99
6.	मध्य प्रदेश	726.27	6.00
7.	तामिलनाडु	721.47	5.96
8.	राजस्थान	685.48	5.66
9.	कर्नाटक	610.95	5.05
10.	गुजरात	604.40	4.99
11.	उड़ीसा	419.74	3.47
12.	केरल	334.06	2.76
13.	झारखण्ड	329.88	2.72
14.	असम	312.05	2.58
15.	पंजाब	277.43	2.29
16.	छत्तीसगढ़	555.45	2.11
17.	हरियाणा	253.51	2.09
18.	दिल्ली	167.88	1.39
19.	जम्मू एवं कश्मीर	125.41	1.03
20.	उत्तराखण्ड	100.86	0.83
21.	हिमाचल प्रदेश	68.65	0.57
22.	त्रिपुरा	36.74	0.30
23.	मेघालय	29.67	0.24
24.	मणिपुर	25.70	0.21
25.	नागालैंड	19.78	0.16
26.	गोवा	14.58	0.12
27.	अरुणाचल प्रदेश	13.84	0.11
28.	पंडुचेरी	12.48	0.10
29.	मिजोरम	10.97	0.09
30.	चंडीगढ़	10.55	0.09
31.	सिक्किम	6.10	0.05
32.	अंडमान एवं निकोबार द्वी.स.	3.80	0.03
33.	दादर एवं नगर हवेली	3.44	0.03
34.	दमन एवं दिव	2.43	0.02
35.	लक्षद्वीप	0.64	0.005
	भारत	12,105.69	100.0

Source: census of India, 2011, Series 1, India: Primary Census Abstract

जनसंख्या वितरण के क्षेत्रीय प्रतिरूप को बिन्दुकित मानचित्र सर्वाधिक स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। इसमें अधिवासों की स्थिति के अनुसार जनसंख्या के वितरण को दिखाया जाता है। इससे जिस क्षेत्र में जनसंख्या अधिक है वहाँ अधिक बिन्दु और जहाँ कम जनसंख्या है वहाँ कम बिन्दु अंकित होते हैं। इस प्रकार ऐसे मानचित्र से जनसंख्या आकार के साथ ही उसकी सघनता की भी जानकारी प्राप्त होती है।

किन्तु अधिवासों की स्थिति से सम्बन्धित भारत के मानचित्र की उपलब्धता की कठिनाई के कारण बिन्दुकित मानचित्र का निर्माण और उपयोग सामान्यतः नहीं हो पाता है। राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण संगठन , कलकत्ता ने जनसंख्या वितरण को प्रदर्शित करने के लिए बिन्दुकित मानचित्रों की रचना किया है।

अनेक लेखकों ने बिन्दुकित मानचित्र के अभाव में उसके स्थानापन्न के रूप में संकेन्द्रण सूचकांक की गणना करके उसके आधार पर जनसंख्या वितरण प्रतिरूप को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। किसी क्षेत्र या जनपद के जनसंख्या सकेन्द्रण सूचकांक की गणना का सूत्र निम्नलिखित है-

जनसंख्या संकेन्द्रण सूचकांक – **Ap/Mp**

जबकि **Ap** = किसी वर्ष में क्षेत्र की वास्तविक जनसंख्या
Mp = उसी वर्ष में क्षेत्र की औसत जनसंख्या

जनंसंख्या संकेन्द्रण की गणना के लिए उपर्युक्त सूत्र के लिए सभी क्षेत्रीय इकाइयों को एक समान आकार का मान लिया जाता है। उदाहणार्थ , यदि भारत में प्रत्येक राज्य में जनसंख्या संकेन्द्रण सूचकांक की गणना करनी हो तो , उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, केरल, त्रिपुरा आदि सभी राज्यों को समान महत्व द्यि जाता है जिसके कारण सूचकांक बहुत त्रुटिपूर्ण है। इससे बड़े आकार वाले राज्यों का संकेन्द्रण सूचकांक अधिक और लघु राज्यों का सूचकांक स्वत : कम आता है। इससे जनसंख्या की सघनता करा हो पाती है। इस जुटि को दूर करने के लिए इस सूत्र में संशोधन करना आवश्यक है। संकेन्द्रण लिए निम्नलिखित सृत्र अधिक सार्थक तथा उपयोगी है –

जनसंख्या संकेन्द्रण सूचकांक – **Pa/Pe**

जबकि **Pa** = किसी वर्ष में क्षेत्र की वास्तविक जनसंख्या
Pe = प्रतिशत क्षेत्रफल के अनुसार उस क्षेत्र की प्रत्याशित जनरसं

17-3- जनसंख्या घनत्व

भारत विश्व में सगन बसे हुए देशों में से एक है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत में जनसंख्या का घनत्व 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है। पिछली जनगणना (2001) में यह 325 व्यक्ति / किमी० था। इस का एक दशक में 57 अंकों की वृद्धि अंकित की गयी है। स्वतंत्र भारत में हुई प्रथम जनगणना 1951 के समय भारत की जनसंख्या का घनत्व 117 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० था जो बढ़कर अब तक न गुना से अधिक हो गया है। यदि देश के समस्त राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों को एक साथ देखा जाये तो दिल्ली (11,320) सबसे अधिक घनत्व वाला राज्य है जिसके पश्चात् दूसरा स्थान चण्डीगढ़ (9258) का है। सबसे कम घनत्व (17) अरुणाचल प्रदेश का है। बड़े राज्यों में बिहार (1106) सर्वाधिक सघन प्रदेश है। जनसंख्या घनत्व के आधार पर देश के समस्त राज्यों और केन्द्रशासित क्षेत्रों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है - -
(1) अत्यधिक सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र (2000 से अधिक / किमी0)
(2) अधिक सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र (50-2000 / किमी०)
(3) सामान्य सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र (20-500 / किमी०)
(4) अल्प सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र (200 या कम / किमी०)

Population Concentration Index = Pa/Pe

While Pa = Actual Population of a region.

Pe = Expected Population of that region according to area to percentage area.

(1) अत्यधिक सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र -तालिका 3.12 प्रदर्शित करती है कि सर्वाधिक सघन जनसंख्या वाला राज्य दिल्ली है जहाँ जनसंख्या का घनत्व 11320 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी, है। इसके पश्चात् दूसरा स्थान केन्द्र शासित क्षेत्र चण्डीगढ़ (9258) का है। दोनों ही उच्च नगरीकृत प्रदेश है| दिल्ली सम्पूर्ण देश की और चण्ढीगढ़ पंजाब तथा हरियाणा प्रदेशों की और केन्द्र शासित क्षेत्र चण्डीगढ़ की राजघानी है। बढ़ते राजनीतिक महत्व के कारण इन दोनों क्षेत्रों में भारी संख्या में आगन्तुकों के बसाव से स्वतंत्रता के पश्चात् जनसंख्या में अत्यंत तीव्र वृद्धि हुई है। अत्यधिक सघन जनसंख्या वाले तीन अन्य केन्द्रशासित क्षेत्र हैं - पुडुचेरी (2547), दमन दीव (2497) और लक्षद्वीप (2149) जहाँ सन् 2011 में जनसंख्या का घनत्व 2000 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० से अधिक पाया गया। यहाँ जनसंख्या के अधिक होने का कारण हनके लघु आकार का होना तथा सुरक्षा की दृष्टि से सैनिकों की भारी संख्या में नियुक्ति है। यहाँ नगरीकरण के स्तर का उच्च होना भी जनसंख्या घनत्व के अधिक होने का प्रबल कारक है।

(2) अधिक सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र -इसके अन्तर्गत वे राज्य और केन्द्रशासित क्षेत्र सम्पिलित हैं जहाँ जनसंख्या का घनत्व 501 से 2000 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० तक पाया जाता है। इस वर्ग में विहार, पश्चिम बंगाल, केरल, उत्तर प्रदेश दादर एवं नगर हवेली, हरियाणा, पंजाब और तमिलनाडु सम्मिलित हैं। पश्चिम बंगाल के उत्तरी भाग में जनसंख्या का घनत्व अधिक नहीं है किन्तु दक्षिणी भाग में जनसंख्या अधिक सघन है। प्रदेश की लगभग दो -तिहाई जनसंख्या इसके दक्षिणी भाग में रहती है। प्रदेश के उत्तरी भाग में जनसंख्या घनत्व 300 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० से कम है किन्तु दक्षिणी भाग में 1000 से भी अधिक है। उत्तरी भाग में जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि है और इसी कारण लगभग 90 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है। दक्षिण के उपजाऊ डेल्टाई भाग में मुख्यतः चावल और जूट की खेती की जाती है। सघन जनसंख्या के पोषण के लिए यहाँ चावल का पर्याप्त उत्पादन होता है। जूट की कृषि व्यापारिक फसल के रूप में की जाती है। हुगली नदी के दोनों किनारों पर जूट , सूती वस्त्र, कागज आदि उद्योगों का खूब विकास हुआ है और औद्योगिक नगरों की श्रृंखला पायी जाती है। डेल्टाई क्षेत्र में कुल जनसंख्या का 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या नगरों में रहती है तथा यहाँ पाये जाने वाले ग्राम भी अपेक्षाकृत् पुंजित और बड़े आकार के होते हैं। भारत का विशालतम नगर कोलकाता (141 लाख) इस प्रदेश की राजधानी और विशाल औद्योगिक-

व्यापारिक नगर होने के साथ ही एक विशाल बन्दरगाह भी है। गंगा के डेल्टा के ऊपर स्थित आसनसोल क्षेत्र 'एक प्रमख औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ लोहा -इस्पात और इंजीनियरिंग उद्योग अधिक विकसित हैं। है। हुगली नदी के दोनों किनारों पर जूट , सूती वस्त्र, कागज आदि उद्योगों का खूब विकास हुआ हैं आर औद्योगिक नगरों की श्रृंखला पायी जाती है। डेल्टाई क्षेत्र में कुल जनसंख्या का 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या नगरों में रहती है तथा यहाँ पाये जाने वाले ग्राम भी अपेक्षाकृत् पुंजित और बड़े आकार के होते हैं। भारत का विशालतम नगर कोलकाता (4 लाख) इस प्रदेश की राजधानी और विशाल औद्योगिक - व्यापारिक नगर होने के साथ ही एक विशाल बन्दरगाह भी है। गंगा के डेल्टा के ऊपर स्थित आसनसोल क्षेत्र एक प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ लोहा -इस्पात और इंजीनियरिंग उद्योग अधिक विकसित हैं। भारत के दक्षिणी - पश्चिमी समुद्रतंट पर स्थित केरल राज्य देश का अधिक सघन बसा हुआ राज्य है। इस तटीय भूमि को मालाबार तट के नाम से जाना जाता है। यह नदियों के जमाव से निर्मित उपजाऊ

जलोढ़ मैदान है जहाँ चावल अधिक उगाया जाता है। टैपिओका यहाँ उत्पादित अन्य प्रमुख खाद्यान्न है। प्रदेश की लगभग 56 प्रतिशत भूमि पर कृषि की जाती है जिसमें प्रदेश की लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या संलग्न है। तटीय भाग में नारियल , जूट, केला आदि फसलें भी बहुतायत से उगाई जाती हैं। पहाड़ी ढालों पर चाय , रबड़, कहवा, इलायची, काजू, कालीमिर्च, सुपारी आदि उगाई जाती है। केरल की लगभग 52 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है और मुख्यतः कृषि और मत्स्य पालन में लगी हुई है। अलप्पी , तिरुवनन्तपुरम, क्वीलोन और एनाकुलम जनपदों में जनसंख्या का घनत्व 000 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० से अधिक है। मालाबार क्षेत्र में बृहत् उद्योगों का विकास कम हुआ है और अधिकतर लघु उद्योग ही पाये जाते हैं जो स्थानीय कच्चेमालों पर आधारित हैं। केरल के नगर भी प्राय: मध्यम और लघु आकार के हैं।

भारत में जनसंख्या घनत्व का वितरण (2001 एवं 2011)

	राज्य/केन्द्र शासित राज्य	जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किमी० (2001)	(2011)	दशकीय अंतर (2001-2011)
1.	दिल्ली	9340	11320	1980
2.	चंडीगढ़	7900	9258	1358
3.	पंडुचेरी	2034	2547	513
4.	दमन एवं दिव	1413	2191	778
5.	लक्षद्वीप	1895	2149	254
6.	बिहार	881	1106	225
7.	पश्चिम बंगाल	903	1028	125
8.	केरल	819	860	41
9.	उत्तर प्रदेश	690	829	139
10.	दादर एवं नगर हवेली	449	700	251
11.	हरियाणा	478	573	95
12.	तमिलनाडु	480	555	75
13.	पंजाब	484	551	67
14.	झारखण्ड	338	414	76
15.	असम	340	398	58
16.	गोआ	364	394	30
17.	महाराष्ट्र	315	365	50
18.	त्रिपुरा	305	350	45
19.	कर्नाटक	276	319	43
20.	आंध्र प्रदेश	277	308	31
21.	गुजरात	258	308	50
22.	उड़ीसा	236	269	33
23.	मध्य प्रदेश	196	236	40
24.	राजस्थान	165	200	35
25.	उत्तराखण्ड	159	189	30
26.	छत्तीसगढ़	154	189	35
27.	मेघालय	103	132	29
28.	जम्मू एवं कश्मीर	100	124	24
29.	हिमाचल प्रदेश	109	123	14
30.	नागालैण्ड	120	119	−01
31.	मणिपुर	97	115	18
32.	सिक्किम	76	86	10
33.	मिजोरम	42	52	10
34.	अंडमान एवं निकोबार द्वी.स.	43	46	3
35.	अरुणाचल प्रदेश	13	17	4
	भारत	325	382	57

Source: census of India, 2011, Series 1, India: Primary Census Abstract

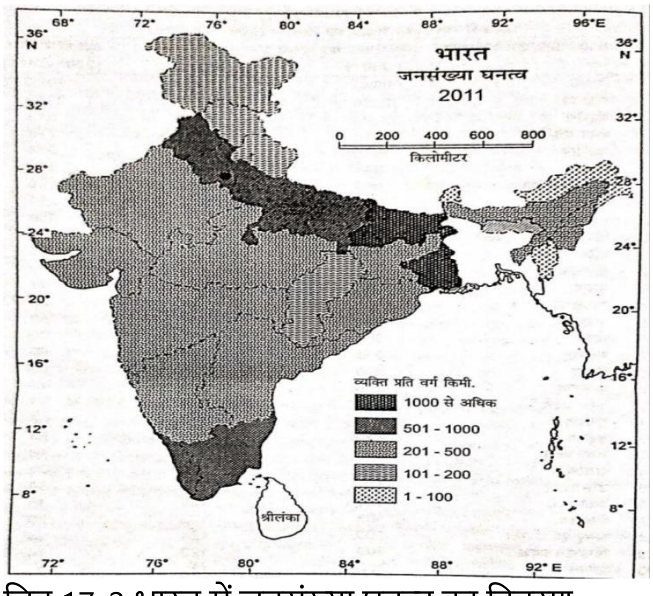

चित्र 17-2 भारत में जनसंख्या घनत्त्व का वितरण

3- सामान्य सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र –इसके अन्तर्गत सम्मिलित राज्यों में जनसंख्या का घनत्व 201 से 500 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० पाया जाता है।

देश के कुल 4 राज्य और केन्द्रशासित क्षेत्र इसी श्रेणी में आते हैं। यद्यपि इन प्रदेशों में कछ क्षेत्र बहुत अधिक सघन आबाद हैं किन्तु सम्पूर्ण प्रदेश की दृष्टि से उन पर ध्यान नहीं दिया गया है। इस श्रेणी के अन्तर्गत अवरोही क्रम में झारखण्ड , असम, गोवा, महाराष्ट्र त्रिपुरा, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गुजरात, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान सम्मिलित हैं।

तमिलनाडु और केरल के अतिरिक्त दक्षिणी भारत के अन्य राज्यों में सामान्य जनसंख्या घनत्व पाया जाता है। सामान्य सघन राज्यों में झारखण्ड (44), असम (398), गोवा (394), महाराष्ट्र (365) और त्रिपुरा (350) सर्वाधिक सघन राज्य हैं। सामान्य जनसंख्या घनत्व का मुख्य क्षेत्र दक्षिणी भारत है। दक्षिणी भारत में तमिलनाडु , गोवा, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश सभी सामान्य सघन राज्य हैं। महाराष्ट्र और गुजरात के काली मिट्टी वाले भागों में कपास , गन्ना, मूंगफली, तम्बाकू आदि की व्यापारिक कृषि की जाती है और यहाँ इन फसलों का प्रतिहेक्टेयर उत्पादन अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है। किन्तु दक्षिणी भारत के अन्य क्षेत्रों में कम उपजाऊ पठारी भूमि, सिंचाई के साधनों की कमी आदि के कारण कृषि उत्पादन कम मिलता है। महाराष्ट्र और गुजरात में सूती वस्त्र उद्योग का विकास अनेक नगरीय केन्द्रों पर हुआ है जिससे उनके जनसंख्या आकार में तीव्र वृद्धि हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्थानीय रूप से उपलब्ध खनिज पदार्थों के विदोहन और उद्योग -धंधों के विकास से दक्षिण भारत में अनेक खनन नगरों और औद्योगिक केन्द्रों का उल्लेखनीय विकास हुआ है जिसके परिणामस्वरूप बाहरी राज्यों और ग्रामीण क्षेत्रों से ऐसे नगरों के लिए उल्लेखनीय मात्रा में जनसंख्या का प्रवास भी होता रहा है। मुम्बई , चेन्नई, बंगलौर, अहमदाबाद, पुणे, नागपुर जैसे महानगरों तथा उनके समीपवर्ती भागों में जनसंख्या का घनत्व सामान्य से अधिक पाया जाता है।

पूर्वोत्तर राज्यों - असम श्र त्रिपुरा में भी सामान्य जनसंख्या घनत्व है। असम में ब्रह्मपुत्र की घाटी में कृषि पर आधारित ग्रामीण जनसंख्या का बाहुल्य है और सम्पूर्ण राज्य की दो -तिहाई जनसंख्या इसी घाटी में रहती है। त्रिपुरा की अधिकांश जनसंख्या निचले मैदान में पायी जाती है और मुख्यत: कृषि तथा घरेलू उद्योगों से जीविका प्राप्त करती है। यहाँ लगभग 84 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है।

4.अल्प सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र -इसके अन्तर्गत सम्मिलित राज्यों में जनसंख्या का घनत्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० या इससे कम पाया जाता है। ऐसे प्रदेश हिमालय की पहाड़ियों (जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और सिक्किम) तथा पूर्वोत्तर पहाड़ियों (अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड और मणिपुर) में स्थित हैं और ऊँचे -नीचे धरातल तथा कृषि भूमि एवं अन्य मानवोपयोगी सुविधाओं की कमी के कारण बहुत बिररे बसे हुए हैं। मुख्य भूमि से बहुत दूर हिन्द महासागर में स्थित अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह सघन वनों से आच्छादित होने के कारण अत्यल्प घनत्व वाला क्षेत्र है। अरुणाचल प्रदेश देश का सबसे कम घनत्व (7) वाला राज्य है। इसके पश्चात् क्रमश: अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, मिजोरम, सिक्किम, नागालैंड, मणिपुर, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, और मेघालय आते हैं।

उत्तराखण्ड (89) और छत्तीसगढ़ (89) में भी जनसंख्या घनत्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० से कम है। प्राकृतिक दशाओं के उपयुक्त न होने तथा आर्थिक पिछड़ेपन के कारण छत्तीसगढ़ में विशेषत : इनके जनजातीय क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व कम है। पहाड़ी प्रदेश उत्तराखण्ड (59) में भी जनसंख्या घनत्व कम है।

टपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि भारत में जनसंख्या के घनत्व में अत्यधिक विषमता पायी जाती है जिसके लिए अनेक प्राकृतिक तथा मानवीय कारक उत्तरदायी हैं। यहाँ जनसंख्या घनत्व को प्रभावित

करने वाले कारकों में स्थलाकृति (भूमि की बनावट) , वर्षा की मात्रा, मिट्टी की उर्वरता, खनिज पदार्थों तथा शक्ति के साधनों की प्राप्यता , यातायात के साधन , कृषि एवं औद्योगिक विकास , नगरीकरण, सरकारी नीति आदि प्रमुख हैं।

17-4-**कृषि और जनसंख्या –**

प्राकृतिक संसाधन किसी देश की अमूल्य निधि होते हैं , परंतु उन्हें गतिशील बनाने , जीवन देने और उपयोगी बनाने का दायित्व देश की मानव शक्ति पर ही होता है , इस दृष्टि से देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास एवं समृद्धि का आधार स्तंभ होती है। जनसंख्या को मानवीय पूँजी कहना कदाचित अनुचित न होगा। विकसित देशों की वर्तमान प्रगति , समृद्धि व संपन्नता की पृष्ठभूमि में वहाँ की मानव शक्ति ही है जिसने प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण और शासन द्वारा उन्हें अपनी समृद्धि का अंग बना लिया है, परंतु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जनसंख्या देश की मानवीय पूँजी की श्रेणी में तभी आ सकती है जबकि वह शिक्षित हो , कुशल हो, दूरदर्शी हो और उसकी उत्पादकता उच्च कोटि की हो। कदाचित यदि ऐसा नहीं होता है तो मानवीय संसाधन के रूप में वह वरदान के स्थान पर एक अभिशाप से परिणित हो जायेगी क्योंकि उत्पादन कार्यों में उसका विनियोजन संभव नहीं हो पायेगा। स्पष्ट है कि मानवीय शक्ति किसी देश के निवासियों की संख्या पर नहीं वरन गुणों पर निर्भर करती है साधन सेवाओं के रूप में मानवीय संसाधन श्रम तथा उद्यमी को सेवाएँ प्रदान करते हैं , यदि मानवीय संसाधन उच्च कोटि के हैं , तो आर्थिक विकास की गति तेज हो जाती है। अत : आर्थिक विकास की दर के निर्धारण में मानवीय संसाधनों की गुणात्मक श्रेष्ठता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। उपयोग की इकाई के रूप में मानवीय संसाधन राष्ट्रीय उत्पाद के लिये मांग का निर्माण करते हैं। यदि मनुष्यों की संख्या राष्ट्रीय उत्पादन की तुलना में अधिक है तो जनसंख्या संबंधी अनेक समस्यायें उठ खड़ी होती हैं , जैसे बढ़ती जनसंख्या के कारण देश में खाद्यान्न की मांग बढ़ जाती है। इससे खाद्यान्नों की स्वल्पता की समस्या उत्पन्न हो जाती है, इसके अतिरिक्त बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण राष्ट्रीय उत्पादन के एक बड़े भाग का उपयोग, उपभोग कार्यों में कर लिया जाता है और निवेश कार्यों के लिये बहुत कम उत्पादन शेष बच पाता है इससे पूँजी निर्माण की गति धीमी पड़ जाती है , साथ ही बढ़ती जनसंख्या बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न करती है जिसके आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम बहुत दुष्कर होते हैं। सर्वाधिक महत्त्व एवं चिंता की बात यह है कि हमारे देश की जनसंख्या निरंतर तेज गति से बढ़ रही है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण जीवन को गुणात्मक श्रेष्ठता और उन्नत बनाने के सभी प्रयास असफल सिद्ध हुए हैं। भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ पूँजी का अभाव है और मानवीय संसाधन की अधिकता है वहाँ जनसंख्या परिसंपत्ति के बजाय दायित्व बन गई है।

आर्थिक विकास का ऐतिहासिक अनुभव और आर्थिक विकास की सैद्धांतिक व्याख्या यह स्पष्ट करती है कि आर्थिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं के विकास अनुभव इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के राष्ट्रीय उत्पाद , रोजगार और निर्यात की संरचना में कृषि क्षेत्र का योगदान उद्योग और सेवा क्षेत्र की तुलना में अधिक होता है। ऐसी स्थिति में कृषि का पिछड़ापन संपूर्ण अर्थव्यवस्था को पिछड़ा बनाये रखती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के कमजोर वर्ग के लोग जिसमें लघु एवं अति लघु कृषक और खेतिहर मजदूर सम्मिलित हैं और जिनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है , अधिकांशत: गरीबी के दुश्चक्र में फँसे रहते हैं , इनकी गरीबी अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का मुख्य कारण होती है आज के विभिन्न विकसित देशों का आर्थिक इतिहास यह स्पष्ट करता है कि कृषि विकास ने ही उनके औद्योगिक क्षेत्र के विकास का मार्ग प्रसस्त किया है। कृषि क्षेत्र ने ही उनके परिवहन और गैर कृषि आर्थिक क्रियाओं के लिये अवसर उत्पन्न किये हैं। आज के विकसित पूँजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के विकास के आरंभिक चरण में कृषि क्षेत्र ने वहाँ के गैर कृषि क्षेत्र के विकास हेतु श्रम शक्ति , कच्चा पदार्थ, भोज्य सामग्री और पूँजी की आपूर्ति की है। यूएसएसआर ने 1927 में सामूहिक कृषि प्रणाली अपनाकर बड़े पैमाने पर यंत्रीकरण का प्रयोग करके अपनी कृषि का विकास किया। सामूहिक कृषि

फार्मों पर भारी करारोपण एवं औद्योगिक उत्पादों की कीमतें बढ़ाकर कृषि अतिरेक को गैर कृषि क्षेत्र के विकास हेतु प्रयुक्त किया गया जिससे खाद्यान्न एवं व्यापारिक फसलों का उत्पादन तेजी से बढ़ा और कृषि श्रमिकों की उत्पादकता में 1926 से 1938 की अवधि में 25 से 30 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई। जापान में भी आर्थिक विकास की प्राथमिक अवस्था में कृषि अतिरेक का गैर कृषि कार्यों में प्रयोग किया। विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के उपरोक्त अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि किसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की पूर्वापेक्षा कृषि क्षेत्र का विकास है। कृषि क्षेत्र का विकास कृषि एवं संबंद्ध क्रियाओं में लगे लोगों की आर्थिक स्थिति में तो सुधार करता ही है साथ -साथ यह गैर कृषि क्षेत्र के लिये खाद्यान्न कच्चा पदार्थ, बाजार और श्रम की आपूर्ति करता है।

(अ).खाद्यान्न की उत्पादकता –

कृषि उत्पादकता को प्रति इकाई कृषि क्षेत्र प्रति कृषि श्रमिक अथवा प्रति इकाई निवेश (वित्तीय मूल्य) पर कुल कृषि उत्पादन के रूप में व्यक्त किया जाता है। इन्हें पृथक तौर पर भूमि उत्पादकता , श्रम उत्पादकता एवं पूंजी उत्पादकता भी कहा जाता है। कृषि उत्पादकता बढ़ाने में जिन कारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है उनमें भौतिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त उन्नतशील बीज , उर्वरक, सिंचाई, यंत्रीकरण, कृषक प्रशिक्षण इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। कृषि उत्पादकता के परिवर्ती प्रतिरूप से अतीत के कृषि विकास का आकलन किया जा सकता है। इससे कमजोर क्षेत्रों की पहचान कर कृषि नियोजन हेतु भावी रणनीति तैयार को जा सकती है। भूगोलविदों ने कृषि उत्पादकता ज्ञात करने की अनेक विधियों का सुझाव दिया है। माजिद हुसैन ने सभी फसलों से प्राप्त मुद्रा के आधार पर भारत को निम्न पाँच उत्पादकता प्रदेशों में विभाजित किया है।

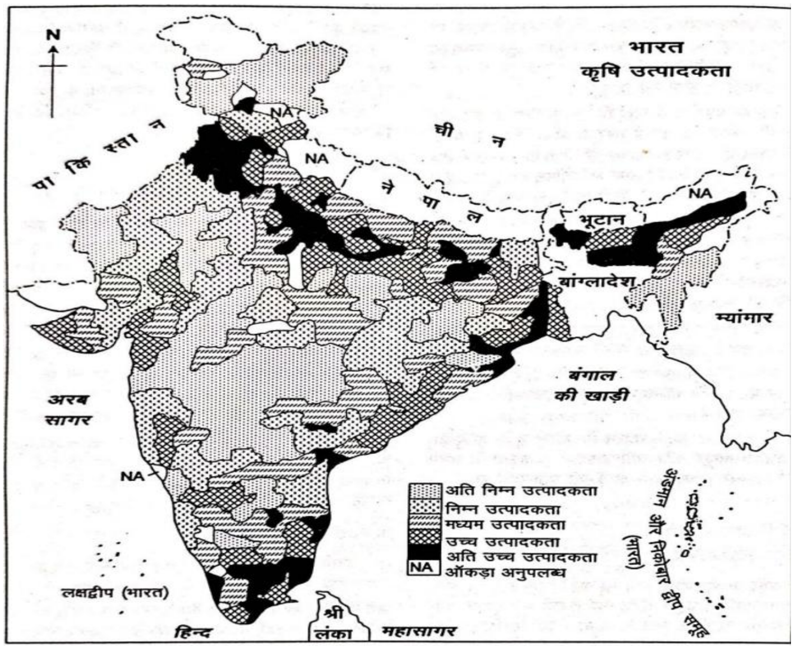

मानचित्र 17-3 भारत में कृषि उत्पादकता

1. अति उच्च उत्पादकता -

इसके अन्तर्गत गंगा -सतलुज मैदान के पंजाब , हरियाणा, गंगा- यमुना द्वाब, दक्षिणी बिहार, प० बंगाल एवं असम के निम्नवर्ती क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है। इसमें कुछ विशिष्ट फसलों (गेहूँ, चावल, जूट, मक्का, दलहन एवं तिलहन) की उत्पादकता उच्च वर्ग में आती है। दक्षिणी भारत के पालघाट , तंजावूर, आन्ध्र प्रदेश का गुण्टूर , उड़ीसा का कटक क्षेत्र भी इसी वर्ग में समाहित हैं । इन क्षेत्रों में भौगोलिक दशायें कृषि के लिए उपयुक्त हैं । उत्तरी भारत के इन्हीं क्षेत्रों में हरित क्रान्ति का उद्भव एवं विकास हुआ है।

2. उच्च उत्पादकता -

इस वर्ग में उपर्युक्त प्रदेशों के उपान्त क्षेत्र सम्मिलित हैं जिनमें उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्र के अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश का तटवर्ती क्षेत्र , तमिलनाडु का तटीय भाग , गुजरात का सूरत क्षेत्र तथा महाराष्ट्र के कोल्हापुर और सतारा जनपदों का उल्लेख किया जा सकता है । धरातलीय उपयुक्तता , जलवायु एवं मृदा की सर्वोच्चता तथा कृषि हेतु आवश्यक प्रावधान की सुलभता आदि के कारण इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता का स्तर ऊँचा पाया जाता है।

3. मध्यम उत्पादकता-

मध्यम उत्पादकता का क्षेत्र उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले की शिवालिक पहाड़ियों के सहारे पूरब में बिहार के दरभंगा तक विस्तृत है । मध्य तमिलनाडु , उड़ीसा का तटीय क्षेत्र , मध्य गुजरात, महाराष्ट्र में छिट-पुट रूप से, पूर्वी कर्नाटक, प० बंगाल में बीरभूम , बांकुड़ा एवं दीनाजपुर जनपद भी इसी वर्ग में सम्मिलित हैं ।

4. निम्न उत्पादकता-

इसके अन्तर्गत उत्तरी भारत में हिमाचल प्रदेश का उत्तरी भाग , उत्तरी पूर्वी बिहार , अर्ध रेगिस्तानी राजस्थान, गुजरात का अहमदाबाद क्षेत्र सम्पिलित हैं । दक्षिणी भारत में इसका विस्तार उड़ीसा , आन्ध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं गुजरात के छिट -पुट भागों में पाया जाता है। यहाँ कृषि के लिए भौगोलिक दशाएँ अनुकूल नहीं हैं।

5. अति निम्न उत्पादकता-

इसके अन्तर्गत जम्मू , लद्दाख, राजस्थान का मरु क्षेत्र , द० तेलंगाना तथा कर्नाटक का पठारी भाग सम्मिलित किया जाता है। इन क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाओं का अभाव है । वर्षा की कमी से यहाँ सूखे की आशंका बनी रहती है।

सारणी 1.2

चुनी फसलों की औसत उपज

फसलें	भारत				संयुक्त	चीन	जापान	पूर्व
	1950-51	1970-71	1990-91	2006-07	राज्य	1989		सोवियत संघ
चावल	668	1,123	1,740	2,127	6,490	5,728	3,662	4,242
गेहूँ	663	1,307	2,281	2,671	2,560	3,179	—	1,894
ज्वार	353	466	814	876	4,249	—	—	1,003
गन्ना (टन में)	33	48	65	71	80	60	—	—
कपास	88	106	225	422	1,624	—	—	1,700
जूट	1,043	1,032	1,634	2,339	—	—	—	—
मूंगफली	775	834	904	870	2,870	2,117	1,918	2,143

Source – (I) Economic Survey 2007-2008

(II) FAO Production Year Book, 1991

भारतीय कृषि की एक मुख्य समस्या इसकी निम्न उत्पादकता से सम्बद्ध है । सारणी से ज्ञात होता है कि भारत में कृषि उपज विश्व के अन्य देशों की तुलना में सबसे क "है यद्यपि इसमें सन् 1950-1955) से काफी वृद्धि हुई है। विश्व में प्रति हे० गेहूं को उपज का औसत भारत की अपेक्षा 30 प्रतिशत अधिक है। इसी भाँति विश्व में चावल की उपज का औसत भारत की तुलना में 60%, ज्वार-बाजरा का 80%, आलू का 60%, मक्का 40% और कपास का 25% अधिक पाया जाता है। इस कम उपज का मुख्य कारण मिट्टी की कम उर्वरता और उसे कृत्रिम उर्वरकों द्वारा आपूरित करने में रुचि का अभाव है। हाल के वर्षों में हरित क्रान्ति के अधीन , विशेषकर पंजाब एवं हरियाणा में , रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि हुई हैं।

आधुनिक कृषि तकनीक की शुरुआत के साथ -साथ संकर बीजों को अपनाने , सिंचाई सुविधाओं के विस्तार और भारत में खेती की गहन पद्धति के आवेदन के बाद , सभी फसलों की प्रति हेक्टेयर उपज में तेजी से वृद्धि दर्ज की गई है। तालिका 3.1 भारत में कृषि उत्पादकता की प्रवृत्ति को दर्शाती है , यानी प्रति हेक्टेयर औसत उपज। भारत में सभी खाद्यान्नों के लिए प्रति हेक्टेयर औसत उपज में 1949-50 में 5.5 क्विंटल से 1964-65 में 7.6 क्विंटल और फिर 2008-09 में 18.98 क्विंटल की वार्षिक वृद्धि दर दर्ज की गई है। 1950-65 के दौरान 1.4 प्रतिशत और 1965-2007 के दौरान 2.4 प्रतिशत। इसके अलावा,

चावल और गेहूं के संबंध में प्रति हेक्टेयर औसत उपज जो 1949-50 में क्रमशः 7.1 क्विंटल और 6.6 क्विंटल थी, धीरे-धीरे बढ़कर 1964-65 में 10.8 क्विंटल और 9.1 क्विंटल हो गई, जो 2.1 प्रतिशत और 1.3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर दर्शाती है। क्रमशः चावल और गेहूं के संबंध में हरित क्रांति के बाद की अवधि (1965-2009) के दौरान, चावल और गेहूं के संबंध में प्रति हेक्टेयर औसत उपज फिर से क्रमश: 21.86 क्विंटल और 28.91 क्विंटल हो गई है, जो गेहूं और गेहूं के संबंध में 3.4 प्रतिशत की महत्वपूर्ण वार्षिक वृद्धि दर दर्शाती है। चावल के संबंध में 2.3 प्रतिशत। लेकिन 1967-2009 की अवधि के दौरान मोटे अनाज की वार्षिक वृद्धि दर में केवल 1.3 प्रतिशत और दालों की केवल 0.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके अलावा, 1967-68 से 1980-81 के दौरान 1.28 प्रतिशत की तुलना में 1980-81 से 1993-94 की अवधि के दौरान सभी फसलों की प्रति हेक्टेयर उपज की वार्षिक वृद्धि दर 2.49 प्रतिशत हो गई। खाद्य और पोषण सुरक्षा आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई हैं, क्योंकि केवल भोजन आधारित दृष्टिकोण ही आर्थिक और सामाजिक रूप से स्थायी तरीके से कुपोषण पर काबू पाने में मदद कर सकता है। खाद्य उत्पादन खाद्य सुरक्षा के लिए आधार प्रदान करता है क्योंकि यह खाद्य उपलब्धता का प्रमुख निर्धारक है। यह पेपर पर्याप्त खाद्य उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए पारिस्थितिक नुकसान के बिना उच्च उत्पादकता और उत्पादन सुनिश्चित करने के विभिन्न पहलुओं से संबंधित है। प्रौद्योगिकी विकास और प्रसार में पारिस्थितिक विचारों को मुख्यधारा में लाकर हम सदाबहार क्रांति और स्थायी खाद्य और पोषण सुरक्षा के युग में प्रवेश कर सकते हैं। इसे सक्षम करने के लिए सार्वजनिक नीति समर्थन महत्वपूर्ण है।

(ब). खाद्यान्न की उपलब्धतता –

खाद्य उत्पादन खाद्य सुरक्षा का आधार है। खाद्य सुरक्षा की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत परिभाषा संयुक्त राष्ट्र (एफएओ) के खाद्य और कृषि संगठन द्वारा विश्व खाद्य सुरक्षा पर रोम घोषणापत्र, 1996 में दी गई है, जिसे एफएओ के विश्व में खाद्य असुरक्षा की स्थिति, 2001 में और परिष्कृत किया गया है। सुरक्षा [एक] एक ऐसी स्थिति है जो तब मौजूद होती है जब सभी लोगों के पास पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन तक भौतिक, सामाजिक और आर्थिक पहुंच होती है जो एक सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए उनकी आहार संबंधी जरूरतों और भोजन की प्राथमिकताओं को पूरा करता है" 1 ।
स्वामीनाथन (1986) 2 ने 'पोषण सुरक्षा' की अवधारणा को स्थानांतरित करने की आवश्यकता पर बल दिया है, जिसे उन्होंने "संतुलित आहार, स्वच्छ पेयजल, पर्यावरणीय स्वच्छता, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और पोषण साक्षरता तक भौतिक, आर्थिक और सामाजिक पहुंच "के रूप में परिभाषित किया है। 2 . तीन आयाम अर्थात । उपलब्धता, पहुंच और अवशोषण परिभाषा में शामिल हैं –

(i) उपलब्धता वांछित मात्रा में खाद्य भंडार की भौतिक उपलब्धता को संदर्भित करती है। खाद्यान्नों को भोजन के प्रतिनिधि के रूप में उपयोग करना (एक संदर्भ में पर्याप्त रूप से उचित है जहां खाद्यान्नों में खाद्यान्न का एक बड़ा हिस्सा होता है), खाद्यान्न की उपलब्धता घरेलू उत्पादन, फ़ीड, बीज और अपव्यय के साथ-साथ शुद्ध आयात और ड्रॉ-डाउन द्वारा दी जाती है। शेयरों की। किसी राष्ट्र के भीतर किसी भी स्थान पर भौतिक उपलब्धता भंडारण और परिवहन बुनियादी ढांचे और राष्ट्रीय क्षेत्र के भीतर बाजार एकीकरण पर निर्भर करती है।

(ii) पहुंच का निर्धारण पात्रताओं के बंडल द्वारा किया जाता है, जो लोगों की आरंभिक बंदोबस्ती से संबंधित है, वे क्या प्राप्त कर सकते हैं (विशेष रूप से भोजन तक भौतिक और आर्थिक पहुंच के संदर्भ में) और उनके द्वारा या तो उनके माध्यम से पर्याप्त भोजन के साथ पात्रता सेट प्राप्त करने के अवसर खुले हैं। स्वयं के प्रयास या राज्य के हस्तक्षेप या दोनों के माध्यम से।

(iii) अवशोषण को उपभोग किए गए भोजन के जैविक रूप से उपयोग करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया गया है। यह बदले में सबसे महत्वपूर्ण रूप से सुरक्षित पेयजल की उपलब्धता, स्वच्छता, एक स्वच्छ वातावरण, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और पोषण संबंधी ज्ञान और उचित प्रथाओं से भी संबंधित है।

हालाँकि, प्रारंभिक बिंदु खाद्य उत्पादन है जो खाद्य उपलब्धता के आधार को निर्धारित करता है। स्वामीनाथन 3 के अनुसार , यह देखते हुए कि भारत की जनसंख्या 2030 तक 1.5 बिलियन तक पहुंचने की संभावना है , देश के सामने चुनौती यह है कि प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि और सिंचाई जल संसाधनों में कमी और अजैविक और जैविक तनावों के विस्तार से अधिक से अधिक उत्पादन किया जाए। भारत वर्तमान में 1.15 अरब की आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए लगभग 230 मिलियन टन अनाज का उत्पादन करता है। खाद्य आवश्यकताओं की गणना करते समय , खेत जानवरों की जरूरतों को अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है। भारत में वर्तमान स्थिति यह है कि 1.8 अरब की अनुमानित आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पशुधन और मुर्गी पालन 3 की जरूरतों को पूरा करने के लिए अनाज उत्पादन को 2050 तक दोगुना करना होगा ।

2006 के अंत में किसानों पर राष्ट्रीय आयोग (NCF) द्वारा इसी तरह की चिंता व्यक्त की गई थी, "अगले 10 वर्षों में (2015 तक) वर्तमान 210 मिलियन टन से 420 मिलियन टन तक वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन को दोगुना करने के लिए , 40 मिलियन हेक्टेयर से कम से कम 160 मिलियन टन चावल और 100 मिलियन टन गेहूं का उत्पादन करने की आवश्यकता होगी। 25 मिलियन हेक्टेयर से। दलहन, तिलहन, मक्का और बाजरा को अतिरिक्त 160 मिलियन टन का योगदान देना होगा। इसके अलावा, 2015 तक सब्जियों और फलों के उत्पादन को बढ़ाकर 300 मिलियन टन से अधिक करने का राष्ट्रीय लक्ष्य है। चूंकि कृषि के लिए भूमि एक सिकुड़ता हुआ संसाधन है , इसलिए इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का मार्ग कृषि योग्य भूमि और सिंचाई की प्रति इकाई उच्च उत्पादकता ही हो सकता है। पानी। यदि उत्पादन की लागत उचित होनी है और हमारे कृषि उत्पादों की कीमतें विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी होनी हैं , तो कारक उत्पादकता को दोगुना करना होगा। औसत खेत का आकार नीचे जा रहा है और लगभग 80 प्रतिशत किसान परिवार सीमांत और छोटे किसान श्रेणियों के हैं। सौभाग्य से , पशुधन का स्वामित्व अधिक समतावादी है। कृषि-प्रसंस्करण और बायोमास उपयोग के माध्यम से छोटे कृषि उत्पादकता में वृद्धि, फसल-पशुधन एकीकृत उत्पादन प्रणालियों के माध्यम से छोटी कृषि आय में वृद्धि और कई आजीविका के अवसर, खाद्य उत्पादन लक्ष्यों को पूरा करने और भूख , गरीबी और ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने के लिए आवश्यक हैं।

स. खाद्यान्न का उपभोग -

भारत में खाद्य पदार्थों के उपभोग समाज का कौन -सा वर्ग किस प्रकार के भोजन को पसंद करता है , एनएसएसओ द्वारा वर्ष 2011-12 में एक सर्वेक्षण किया गया था| इस रिपोर्ट में प्रति व्यक्ति उपभोग को 12 वर्गों (फ्रैकटाइल) में विभाजित किया गया था| वर्ग 1 में उस सबसे गरीब 5% जनसंख्या को शामिल किया गया था जिसके उपभोग का स्तर सबसे निम्न है, इसके बाद वर्ग 2 में अगली 5% जनसंख्या, वर्ग 3 सबसे गरीब 10-20% जनसंख्या, जबकि वर्ग 4 सबसे गरीब 20-30% को दर्शाता है| वर्ग 12 उपभोग के मामले में सबसे धनी 5% जनसंख्या, वर्ग 11 इसके नीचे की 5% जनसंख्या और वर्ग 10, 80-90% जनसंख्या को दर्शाता है|

इस बात से हम सभी अवगत हैं कि भारतीय समाज में असमानताएँ विद्यमान हैं | आर्थिक स्तर पर धनी और निर्धन के मध्य अंतराल बहुत ही व्यापक है | विलासिता की वस्तुओं के उपभोग में भी असमानता का स्तर उच्च है , लेकिन सोचने वाली बात ये है कि खाद्य पदार्थों के उपभोग के स्तर पर कितनी असमानता है?

यह जानने के लिये कि समाज का कौन -सा वर्ग किस प्रकार के भोजन को पसंद करता है , एनएसएसओ द्वारा वर्ष 2011-12 में एक सर्वेक्षण किया गया था| इस रिपोर्ट में प्रति व्यक्ति उपभोग को 12 वर्गों (फ्रैकटाइल) में विभाजित किया गया था| वर्ग 1 में उस सबसे गरीब 5% जनसंख्या को शामिल किया गया था जिसके उपभोग का स्तर सबसे निम्न है, इसके बाद वर्ग 2 में अगली 5% जनसंख्या, वर्ग 3 सबसे गरीब 10-20% जनसंख्या, जबकि वर्ग 4 सबसे गरीब 20-30% को दर्शाता है| वर्ग 12 उपभोग के मामले में सबसे धनी 5% जनसंख्या, वर्ग 11 इसके नीचे की 5% जनसंख्या और वर्ग 10, 80-90%

जनसंख्या को दर्शाता है | अन्य शब्दों में उपयोग किये गए वर्ग का तात्पर्य प्रतिशत वर्ग 0-5%, 5-10%,10-20%, 20-30%, 30-40%, 70-80%, 80-90%, 90-95% और 95-100 % से है|

इस सर्वेक्षण में विभिन्न फ्रैकटाइल अथवा वर्गों के प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग को प्रदर्शित किया गया था| इसके अनुसार, शहरी जनसंख्या के सबसे धनी 5% लोग प्रति माह प्रति व्यक्ति पर 2,859 रुपए व्यय करते हैं जोकि ग्रामीण जनसंख्या के सबसे गरीब 5% लोगों द्वारा किये गए व्यय से 9 गुना अधिक है|

सबसे धनी लोग (शहरी जनसंख्या के सबसे अमीर 5% लोग) अथवा वर्ग 12 अनाज पर अधिक व्यय नहीं करते हैं, जबकि ये ग्रामीण जनसंख्या के सबसे गरीब 5% लोगों द्वारा अनाज पर किये गए व्यय से 2.2 गुना अधिक व्यय करते हैं| लेकिन यदि पोषण स्तर की बात की जाए तो इस सर्वेक्षण की एक अन्य ही तस्वीर दिखाई देती है| सबसे धनी 5% लोग सबसे गरीब 5% लोगों द्वारा सब्जियों पर किये गए व्यय की तुलना में दालों पर 3.8 गुना, अण्डों, मछली और माँस पर 14.5 गुना और दूध के उत्पादों पर 23.8 गुना अधिक व्यय करते हैं | ताजे फलों (जो बेशक विलासिता ही है) पर वे सबसे गरीब 5% लोगों के व्यय की तुलना में 61 गुना अधिक व्यय करते हैं|

परन्तु, सबसे गरीब 5% लोग बेसहारा हैं अतः सबसे धनी और सबसे गरीब अथवा प्रमुख 5% और शहरी जनसंख्या के 40-50% लोगों (मध्यम स्तरीय उपभोग) के मध्य यह अंतराल होना स्वाभाविक भी है| खाद्य पदार्थों को ग्रहण करने के स्तर में भी बड़ा अंतराल देखने को मिलता है | शहरी जनसंख्या के सबसे धनी 5% लोग 40-40% लोगों द्वारा खाद्य पदार्थों पर किये गए व्यय की तुलना में 3 गुना अधिक व्यय करते हैं| वे शहरी जनसंख्या के 40-50% वर्ग में आने वाले लोगों की तुलना में दालों पर 1.5 गुना, दूध के उत्पादों पर 2.6 गुना, अंडों, मछली और माँस पर 2.4 गुना अधिक व्यय करते हैं| ताजे फलों के मामले में शहरी भारत के प्रमुख 5% लोग 40-50% के मध्य आने वाली जनसंख्या की तुलना में 5 गुना अधिक व्यय करते हैं| ग्रामीण भारत का छठा वर्ग अथवा ग्रामीण भारत का 40-50% वाला वर्ग अपने शहरी समकक्ष की तुलना में खाद्य पदार्थों का उपभोग कम करता है|

17-5 भारत में खाद्य सुरक्षा -

"जीवन के लिये भोजन अपरिहार्य है। किन्तु पृथ्वी पर बहुत से लोगों को पर्याप्त भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता है। हजारों लोग भूख से मर जाते हैं तथा लाखों लोग कुपोषण से ग्रस्त हैं । वस्तुतः जनसंख्या , भोजन आपूर्ति तथा पर्यावरण में गहरा सम्बन्ध है। भोजन की अनुपलब्धता एक ओर तनाव एवं संघर्ष पैदा करती है, तो दूसरी ओर संसाधनों के अतिदोहन का भी कारण बनती है। भोजन सुरक्षा से तात्पर्य किसी देश की , अपनी आबादी को निरन्तर भोजन उपलब्ध कराने की योग्यता से है । विगत पाँच दशकों में खाद्यान्न उत्पादन तथा भोजन की सुरक्षा में आशातीत वृद्धि हुई है । वर्ल्ड बाच इन्स्टीट्यूट के अनुसार 1950 से 1990 के मध्य खाद्यान्न उत्पादन में 2.6 गुना वृद्धि हुई है। सभी महाद्वीपों पर 1950 तथा 1960 के दशकों में जनसंख्या वृद्धि की अपेक्षा खाद्यान्न उत्पादन में अधिक वृद्धि हुई। किन्तु 1990 में खाद्यान्नों के उत्पादन तथा भण्डारों में अत्यधिक गिरावट दर्ज हुई । 1950 से 1980 के दशक के मध्य तक भारत , चीन, मैक्सिको, आदि विकासशील देशों में खाद्यान्नों की भारी वृद्धि हुई। किन्तु लैटिन अमेरिका तथा अफ्रीका में खाद्यान्न उत्पादन में कमी दर्ज की गयी जिससे खाद्यान्न संकट पैदा हो गया । खाद्यान्नों की उपज में वृद्धि के बावजूद जनसंख्या की वृद्धि , सामाजिक विषमताओं , शस्य भूमि के विनाश तथा शस्य भूमि के कृष्येतर कार्यों में उपयोग, आर्दि कारणों से उपजों की वृद्धि के प्रयास विफल हो गये ।

सारणी 1.3

वर्ष में	उत्पादन (मिलियन मी० टन)	दशकीय परिवर्तन %	प्रति व्यक्ति उपलब्धता (किलोग्राम)	दशकीय परिवर्तन %
1950	631	—	246	—
1960	847	+34	278	+13
1970	1,103	+30	296	+6
1980	1,441	+31	322	+9
1990	1,684	+17	316	-2
2000	1,842	+9	295	-7

उपरोक्त तालिका 1.3 से स्पष्ट है कि 1950-80 के दौरान खाद्यान्न उत्पादन में दशकोय वृद्धि लगभग 30% रही है, उसके उपरान्त वृद्धि दर घटी है। यह भी स्पष्ट है कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता में वृद्धि 1950-1980 तक रही, तत्पश्चात, इसमें हास बढ़ता गया। भोजन की प्राप्ति जलीय स्रोतों से मत्स्य संसाधनों के रूप में भी होती है। मत्स्य संसाधनों द्वारा विश्व की जनसंख्या को 10% प्रोटीन आहार की प्राप्ति होती है, किन्तु मत्स्य संसाधनों का उपभोग विश्व में समान रूप से नहीं होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि कुल मछली उत्पादन का एक तिहाई पशु पोषाहार के रूप में प्रयुक्त होता है। विगत वर्षों में मत्स्योत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। विश्व की अधिकांश मछलियाँ पहले से ही अतिशय दोहन किये गये स्रोतों से प्राप्त होती है। मत्स्य वैज्ञानिकों के अनुमान में परम्परागत तथा शैलफिश प्रजातियों की मछलियों का उत्पादन चरम सीमा तक पहुँच गया है। पीरू की एंकोवी, केलिफोर्निया की सारडाइन, अलास्का की किंग क्रैब, अटलांटिक की हैरिंग तथा हबास आदि प्रजातियाँ समाप्त प्राय हैं। गैर परम्परागत प्रजातियों की मत्स्य प्राप्ति से उत्पादन में वृद्धि की सम्भावनायें हैं।

17-6- भारत में खाद्य समस्या का स्वरूप -

भारत में खाद्य समस्या ब्रिटिश काल में भी थी और यह स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी कई दशकों तक बनी रही किन्तु दोनों कालों की खाद्य समस्या के स्वरूप तथा उसे दूर करने के प्रयासों की प्रकृति में उल्लेखनीय अंतर देखने को मिलता है। अतः खाद्य समस्या की स्थिति का विवेचन दो स्पष्ट कालों -

(1) ब्रिटिश काल में खाद्य समस्या, और

(2) स्वतंत्रता के पश्चात खाद्यान्न समस्या।

I. ब्रिटिश काल में खाद्य समस्या -

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व (ब्रिटिश काल में) अनेक बार देश के सम्मुख खाद्य समस्या आयी थी। कई बार खाद्य समस्या ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था कि भोजन के अभाव में लाखों लोग भूख से तड़प-तड़प कर असमय में ही काल कवलित हो गये। खाद्यान्नों की कमी मुख्यतः अकालों के कारण होती थी | भारत में ब्रिटिश शासन के आरंभ (1770) में ही भयंकर अकाल (सूखा) पड़ा था और खाद्य पदार्थों के अभाव में लाखों लोगों की जानें गयी थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में उड़ीसा के अकाल (1835) और पंजाब तथा सिन्ध प्रांत के अकाल (1877) से कई लाख लोग भूख से मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। 1935 के अकाल में भी हजारों लोग भूख से मर गये थे। 1937 में बर्मा (वर्तमान म्यांमार) भारत से अलग हो गया। चावल उत्पादक काफी क्षेत्र बर्मा में चले जाने के कारण भारत में लगभग 20 लाख टन चावल की कमी पड़ गयी। इसके पश्चात् 1943 में बंगाल में बहुत बड़ा अकाल पड़ा जिसके कारण लगभग 30 लाख लोग भूख के कारण असमय मृत्यु के गाल में चले गये। इस प्रकार हम पाते हैं कि

बीसवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध अकालों और भुखमरी की गाथाओं से भरा हुआ है। खाद्यान्नों के अभाव की पूर्ति के लिए खाद्यान्नों का आयात किया जाता था किन्तु कभी -कभी आयातों को नियंत्रित (प्रतिबंधित) कर दिये जाने के कारण स्थिति अधिक कष्टकारी हो जाया करती थी । खाद्यान्नों का औसत वार्षिक आयात 1920-25 की अवधि में । 2 लाख टन, 1925-30 की अवधि में 6 लाख टन, 1930-35 की अवधि में 8 लाख टन और 1935-40 की अवधि में 12 लाख टन तक पहुँ गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय खाद्य उत्पादन में कुछ वृद्धि होने से खाद्यान्नों के आयात में कमी आयी और 1940-45 की अवधि में केवल 8 लाख टन खाद्यान्न का ही आयांत किया गया था। उल्लेखनीय है कि तत्कालीन ब्रिटिशि सरकार ने अकालों से निपटने तथा खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए कोई ठोस उपाय करने का प्रयास नहीं किया।

II. स्वतंत्रता के पश्चात खाद्यान्न समस्या -

अगस्त 1947 में भारत-पाक विभाजन के साथ स्वतंत्रता प्राप्त हुई । देश विभाजन के परिणामस्वरूप अविभाजित भारत की 82 प्रतिशत जनसंख्या भारत को मिली जबकि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का मात्र 77 प्रतिशत और कुल सिंचित क्षेत्र का केवल 68 प्रतिशत भाग ही भारत के अन्तर्गत आया। पाकिस्तान की कुल जनसंख्या की 18 प्रतिशत जनसंख्या के लिए 32 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र प्राप्त हुए । इस प्रकार देश विभाजन के परिणामस्वरूप भारत में खाद्यान्नों की आपूर्ति आवश्यकता से काफी कम हो जाना स्वाभाविक था| इससे स्वतंत्र भारत में खाद्य समस्या अधिक जटिल हो गयी। देश विभाजन के समय देश में लाखों शरणार्थियों के आ जाने से खाद्य पदार्थों की कमी और अधिक हो गयी। इस प्रकार खाद्य पदार्थों की कमी भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ विरासत के रूप में प्राप्त हुई जो अगले कई दशकों तक बनी रही।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत देश के योजनाबद्ध विकास पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। देश में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के लिए कई प्रकार के सार्थक प्रयत्न किये गये जिसके पर्णिमस्वरूप खाद्यान्नों के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होने लगी यद्यपि कभी -कभी सूखे एवं बाढ़ आदि के कारण उतार-चढ़ाव की स्थितियाँ भी आती रहीं। नियोजन काल में विद्यमान खाद्य समस्या का विश्लेषण मात्रात्तक और गुणात्मक दोनों आधारों पर अलग -अलग जाने सेनडाधिद, वह अलग किये जाने से अधि उभर कर सम्मुख आते हैं ।

(I)खाद्यान्नों का मात्रात्पक अभाव-

पंचवर्षीय योजनाओं में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि सकारात्मक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप इनके उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई किन्तु बढ़ती जनसंख्या बीच में सूखे एवं बाढ़ से होने वाली क्षति के कारण खाद्यान्नों की आपूर्ति आवश्य ई दशकों तक नहीं हो पायी और प्रतिवर्ष लाखों टन खाद्यान्नों का आयात करना पड़ता था 1980 तक देश ने खाद्यात्रों के संदर्भ में आत्म निर्भरता प्राप्त कर लिया । विभिन्न वर्षों में खाद्यान्नों (अनाज तथा दलहन) के उत्पादन और आयात की गयी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए किये गये विशेष प्रयलों रथा अनुकूल मानसून के परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय सुधार हुआ जिससे खाद्यानत्नों के आयात और कीमतों में कुछ कमी आयी। प्रथम योजना के अंतिम वर्ष (1955-56) में 650 लाख टन खाद्यान्न का उत्पादन किया गया जो उस वर्ष के निर्धारित लक्ष्य से अधिक था। किन्तु द्वितीय योजना में उत्पादन आवश्यकता से कम हुआ और अधिक मात्रा में (40 से 50 लाख टन) खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा । तृतीय योजना में खाद्यान्नों के उत्पादन के लिए अधिक ऊँचे लक्ष्य निर्धारित किये गये। 1960-61 में 720 लाख टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ जो एक रिकार्ड था। किन्तु इसके बाद के वर्षों में प्रतिकूल मानसून के कारण इतना उत्पादन नहीं किया जा सका।

1965-66 और 1966-67 में लगातार दो वर्षों तक मानसून की विफलता के कारण उत्पन्न सूखे की स्थिति के परिणामस्वरूप खाद्यान्नों का उत्पादन घटकर क्रमशः 546 और 576 लाख टन हो गया और इन वर्षों में क्रमशः 103 लाख टन और 87 लाख टन खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा। यह खाद्यान्नों के

वार्षिक आवात के सर्वोच्च स्तर को प्रकट करता है। 1966 के पश्चात् थोड़े उतार -चढ़ाव के साथ खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि होने लगी तथा 1970-71 में 845 लाख टन अनाज का उत्पादन हुआ और 20 लाख टन खाद्यान्न का आयात किया गया। 1980-81 में खाद्यान्न का उत्पादन बढ़कर 1041 लाख टन हो गया फिर भी 5 लाख टन खाद्यान्न आयात करना पड़ा। 1997 में 1742 लाख टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ और 10 लाख टन खाद्यान्न आयात किया गया। खाद्यान्न का उत्पादन बढ़कर 1999-2000 में 2098 लाख टन तक पहुँच गया। खाद्यान्न उत्पादन की बढ़ती प्रवृत्ति के आधार पर यह माना जाने लगा है कि अब भारत खाद्यान्नों के संदर्भ में आत्मनिर्भर हो गया है। भारत की जनसंख्या 1951 में 36.1 करोड थी जो 50 वर्ष पश्चातू बढ़कर 2001 में 102.7 करोड़ (लगभग 3 गुना) हो गयी। खाद्यान्नों के उत्पादन में इससे भी अधिक लगभग 4 गुना से अधिक वृद्धि (481 लाख टन से 2100 लाख टन) अंकित की गयी। खाद्य एवं कृषि संगठन (F.A.O.) ने प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के भोजन में अनाज की मात्रा 440 ग्राम आंकी है। भारत में अनाजों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1951 में 334 ग्राम प्रति दिन से बढ़कर 2000-2001 में 391 ग्राम प्रति दिन हो गयी है। खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि कृषि क्षेत्रों के विस्तार और उत्पादन दर में वृद्धि के परिणामस्वरूप सम्भव हो सकती है। अब फसलों के अंतर्गत क्षेत्र बढ़ने की संभावना कम है अतः खाद्य समस्या की चुनौती अधिक गंभीर हो सकती है। उत्पादन वृद्धि के लिए उन्नत उत्पादन तकनीकों तथा अधिक उत्पादन देने वाली प्रजातियों की खोज आदि के द्वारा ही बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप उत्पादन वृद्धि की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है।

खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि कृषि क्षेत्रों के विस्तार और उत्पादन दर में वृद्धि के परिणामस्वरूप सम्भव हो सकती है। अब फसलों के अंतर्गत क्षेत्र बढ़ने की संभावना कम है अतः खाद्य समस्या की चुनौती अधिक गंभीर हो सकती है। उत्पादन वृद्धि के लिए उन्नत उत्पादन तकनीकों तथा अधिक उत्पादन देने वाली प्रजातियों की खोज आदिं के द्वारा ही बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप उत्पादन वृद्धि की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है।

(II) खाद्य पदार्थों का गुणात्मक अभाव-

खाद्य पदार्थों के गुणात्मेंक अभाव का आशय भोजन में पोषक तत्वों की कमी से है। संतुलित भोजन के लिए प्रोटीन, विटामिन, खनिज, वसा आदि तत्व आवश्यक होते हैं। व्यक्ति के भोजन में इन तत्वों को निश्चित अनुपात में प्राप्त होना चाहिए। व्यापक निर्धनता तथा अशिक्षा के कारण अधिकांश भारतीयों के भोजन में किसी न किसी पोषक तत्व की कमी पायी जाती है। अल्प पोषण तथा कुपोषण के कारण कई प्रकार की बीमारियाँ पकड़ लेती हैं और व्यक्ति के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा इससे उसकी कार्यक्षमता घट जाती है। अधिक शारीरिक श्रम के लिए अधिक कैलरी और कम शारीरिक श्रम या मानसिक श्रम करने वाले व्यक्ति के लिए अपेक्षाकृत् कम कैलरी की आवश्यकता होती है। एक स्वस्थ पुरुष के लिए 2780 केलरी और एक स्वस्थ महिला के लिए 2080 कैलरी प्रदान करने वाले भोजन की आवश्यकता होती है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (F.A.O.) ने पुरुष के लिए 2600 कैलरी और महिलों के लिए 1900 केलरी वालें भोजन को आवश्यक माना है।

औसत आहार की दृष्टि से अधिकांश भारतवासियों का भोजन असंतुलित है क्योंकि उनसे वांक्षित मात्रा में कैलरी तथा पोषक तत्व (प्रोटीन, विटामिन, खनिज, वसा आदि) प्राप्त नहीं हो पाते हैं। भारतीयों के भोजन में अधिकांश मात्रा (दो तिहाई या इससे अधिक) खाद्यान्नों की होती है, अतः अधिकांश पोषक तत्व खाद्यान्नों से ही प्राप्त होते हैं। औसत भारतीय के भोजन में दूध, मांस, अंडे, मछली, फल, सब्जी आदि खाद्य पदार्थों की काफी कमी पायी जाती है। खाद्य एवं कृषि संगठन (F.A.O.) के एक अध्ययन के अनुसार जिन देशों के आहार में खाद्यान्न, जड़दार सब्जियों तथा चीनी की अधिकता पायी जाती है वहाँ

सारणी 17.4

भारत में दैनिक औसत आहार और संतुलित आहार (ग्राम प्रतिदिन)

खाद्य पदार्थ	औसत वास्तविक आहार	संतुलित आहार
खाद्यान्न	471.0	396.2
दालें	64.0	85.0
पत्तेदार सब्जी	24.4	113.4
अन्य सब्जियां	116.2	170.1
घी एवं वनस्पति तेल	26.1	56.7
दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थ	93.8	283.5
मांस, मछली एवं अण्डे	26.6	193.4
फल एवं मेवे	16.4	85.0
चीनी एवं गुड़	18.9	56.7

पोषण में स्पष्ट असंतुलन पाया जाता है। ज्ञातव्य है कि भारतीय आहार में दो -तिहाई से अधिक अंश इन्हीं तत्वों का होता है। भारतीय चिकित्सा शोध परिषद् (I.C.H.R.) के अनुसार एक भारतीय के औसत आहार और संतुलित आहार में अधिक अंतर पाया जाता है। इस तथ्य को तालिका 1.4 में दिखाया गया है।

17-7. भारत में खाद्य समस्या के कारण-

भारत में खाद्यान्न अभाव की समस्या उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से बढ़ने लगी थी किन्तु बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से यह अधिक गंभीर होती गयी। भारत में उत्पन्न खाद्य समस्या के लिए, उत्तरदायी प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं--

I. **देश विभाजन से खाद्य आपूर्ति में कमी** - 1937 में बर्मा (म्यांमार) भारत से अलग हो गया और वहाँ से चावल का आना बंद हो गया। इसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत -पाक विभाजन के फलस्वरूप अविभाजित भारत की 82 प्रतिशत जनसंख्या भारत के हिस्से में आयी जबकि इसके हिस्से कुल भूमि का 77 प्रतिशत और सिंचित क्षेत्र का 70 प्रतिशत भाग ही आया। इसी प्रकार चावल, गेहूँ और अन्य अनाज उत्पादक क्षेत्रों का क्रमश 72, 70 और 75 प्रतिशत भूभाग भारत के अन्तर्गत आया। इस प्रकार जनसंख्या की तुलना में उत्पादक क्षेत्र के कम होने के कारण खाद्यान्नों की आपूर्ति में कमी आना स्वाभाविक था ।

II. **प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव -** मानसून की अनिश्चितता के कारण देश में कई बार सूखा . एंव अकाल तथा बाढ़ों के कारण कृषि उत्पादनों में भारी कमी आने से खाद्यान्नों की आपूर्ति में काफी कमी आ जाती थी और पहले से विद्यमान खाद्य समस्या अधिक विकराल रूप धारण कर लेती थी। सिंचाई के साधनों के अभाव में अकाल के समय फसलों को बचाना संभव नहीं हो पाता था। अकाल की स्थिति कभी-कभी देशव्यापी होती थी तो कभी किसी प्रदेश विशेष में होती थी। सिंचन सुविधाओं के जद किये जाने के कारण वर्तमान में सूखे का दुष्प्रभाव पहले जैसा भंयकर और क्षतिकारक नहीं हो पाता है।

III. **निर्धनता-** स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व और पश्चात् भारत में भयंकर निर्धनता की स्थिति थी। नियोजन काल में आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए धनाभाव एक बड़ा अवरोधक था । इसी बीच कई बार सूखे के कारण अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गयी। धनाभाव के कारण खाद्यान्नों का आयात आवश्यकता के अनुरूप कर पाना कठिन था। इतना ही नहीं ग्रामीण क्षेत्रों के साथ नगरों में भी अधिकांश परिवार इतने निर्धन थे कि वे खाद्यान्नों का क्रय नहीं कर सकते थे। अतः देश व्यापी निर्धनता भी खाद्य समस्या को विकराल बनाने में सहायक रही है।

IV. **तीव्र जनसंख्या वृद्धि-** भारत की जनसंख्या 1901 में 23.84 करोड़ थी जो 40 वर्ष पश्चात् 1941 में 31.87 करोड़ हो गयी। 1951 में भारत की कुल जनसंख्या 36.11 करोड़ थी जो 50 वर्ष पश्चात् 102.70 करोड़ हो गयी । इस प्रकार जनसंख्या में लगभग तीन गुना वृद्धि हुई । यद्यपि कृषि भूमि में यथासंभव विस्तार किया जाता रहा है किन्तु तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति शुद्ध बोई गयी भूमि में निरन्तर कमी होती गयी है। 1931 में प्रति व्यक्ति शुद्ध बोई गयी भूमि 0.42 हेक्टेयर थी। यह क्रमशः घटती हुई 1951 में 0.34 हेक्टेयर, 1961 में 0.30 हेक्टेयर, 1971 में 0.26

हेक्टेयर, 1981 में 0.20 हेक्टेयर, और 1991 में 0.14 हेक्टेयर हो गयी है। प्रति व्यक्ति कृषि भूमि (बोई गयी भूमि) की उपलब्धता में होने वाली निरन्तर कमी के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति खाद्य एवं अन्य कृषि उत्पादों में भी लगातार कमी होती जा रही है।

V. **भूमि की उत्पादकता में ह्रास -** भारत में अनेक प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से भूमि की उर्वरा शक्ति और उत्पादकता में कमी आयी है। अधिक उत्पादन लेने के उद्देश्य से एक ही भूमि (खेत) पर बार- बार समान प्रकार की फसल उगाने और रासायनिक उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता में ह्रास हुआ है। इसके लिए परती छोड़ने की प्रथा में हास होना , फसल चक्र को न अपनाना, 'कीटनाशकों एवं रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग , अवैज्ञानिक जुताई से उत्पन्न मृदा अपरदन आदि मानव जन्य क्रियाएं अधिक जिम्मेदार हैं।

VI. **खाद्यान्नों की सूल्यवृद्धि -** खाद्यान्नों की मूल्य वृद्धि से उत्पादक और व्यापारी खाद्यान्नों को अधिक मूल्य पाने की लालच में अपने गोदामों में रोक लेते हैं जिससे बाजार में खाद्यान्नों का कृत्रिम अभाव पैदा हो जाता है। कृत्रिम अभावों तथा दैवी आपदाओं से उत्पन्न अभावों से निपटने के लिए , भारत सरकार खाद्यान्नों का बफर स्टाक रखती है और सार्वजनिक वितरण प्रणाली से इसका वितरण करती है।

VII. **प्राकृतिक कारण-** भारतीय कृषि मुख्यतः मानसूनी वर्षा पर आधारित होती है। भारत में वर्षा का वितरण एक समान नहीं है और साथ ही मानसून की अनिश्चितता के कारण अनेक बार सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। समय से वर्षा न हो पाने से भी फसलें नष्ट हो जाती हैं। सामान्यतः प्रत्येक दस वर्ष में एक या दो वर्ष सूखाग्रस्त होता है जिसमें अकाल की दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं। कभी - कभी देश के बृहत् भाग में भीषण सूखा पड़ जाता है जिससे कृषि उत्पादन बुरी तरह प्रभावित होता है और खादयात्रों के कम उत्पादन के कारण खाद्य समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है। उत्तरी भारत में प्राय: वर्षा ऋतु में नदियों में बाढ़ आने तथा शीत ऋतु में ओला पड़ने से फसलें नष्ट हो जाती हैं। समुद्र तटीय भागों में भी समुद्री तूफानों से फसलों को भारी क्षति पहुँचती है। इस प्रकार प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति से खाद्यान्नों के उत्पादन में कमी आती है जो खाद्य समस्या को जन्म देती है।

17-8. खाद्य समस्या को दूर करने के सरकारी प्रयास -

ब्रिटिश सरकार ने भारत की खाद्यान्न समस्या के निराकरण के लिए , 1942 से पहले कोई ठोस प्रयास नहीं किया। 1943 में बंगाल में पड़े अकाल ने सरकार और जनता का ध्यान खाद्यान्नों के अभाव की ओर आकर्षित किया । तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने 'अधिक अन्न उपजाओं' अभियान का आरंभ किया किन्तु उत्पादन बढाने का कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया था। यह अभियान केवल नारा बनकर ही रह गया और सफल नहीं हो पाया। खाद्यान्नों की कमी को पूरा करने के लिए विदेशों से खाद्यान्न आयात किये गये और उनके वितरण हेतु सार्वजनिक वितरण प्रणाली (राशनिंग व्यवस्था) लागू की गयी तथा खाद्यान्नों के मूल्य को नियंत्रित करने के प्रयास भी किये गये। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय (1947) देशभर में 14.5 करोड़ लोगों के लिए गाँवों और नगरों में राशन व्यवस्था लागू थी । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1947 में खाद्यान्न नीति समिति का गठन किया गया जिसने अपने प्रतिवेदन में खाद्य समस्या को हल करने हेतु कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये जिनमें प्रमुख हैं-
(1) सिंचाई सुविधाओं मे वृद्धि करना, (2) स्थानीय (देसी) खाद को विकसित करना, (3) उन्नत बीजों के वितरण की व्स्था करना , (4) उर्वरक का उत्पादन करना , (5) भूमिगत जल का पता लगाना , (6) कृषि योग्य बेकार पढ़ी भूमि को प्रयोग में लाना आदिं।

1952 में 'अधिक अन्न उपजाओ जाँच समिति ' गठित की गयी | इस समिति ने सुझाव दिया कि इस अभियान को इतना अधिक विस्तृत करने की आवश्यकता है कि ग्रामीण जीवन के सभी पक्षों का विकास संभव हो सके। खाद्यान्नों के बढ़ते मूल्य को नियंत्रित करने के उद्देश्य से 1957 में "खाद्यान्न जाँच समिति' गठित की गयी। समिति ने (1) उत्पादकों द्वारा खाद्यान्नों की जमाखोरी , (2) द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बढ़ाई गयी धन राशि , (3) बैंकों की बढ़ी हुई ऋण सीमा , (4) कृषि उत्पादन में

अपेक्षित वृद्धि के अभाव आदि को अधिक मूल्य वृद्धि का कारण बताया । इस समिति ने खाद्यान्नों के मूल्य नियंत्रण हेतु जो सुझाव दिया वे इस प्रकार है -(1) मूल्य नियंत्रण बोर्ड की स्थापित करना , (2) केन्द्रीय खाद्यान्न सलाहकार परिषद् को स्थापित करना , (3) खाद्यान्न की सस्ते मूल्य की दूकानों की स्थापना , (4) राशनिंग व्यवस्था तथा खाद्यान्न निशत्रण को समाप्त करना , (5) कुछ वर्षो तक खाद्यान्नों को आयात करना , (6) कुछ वर्षों तक खाद्यान्नों के थोक , स्थापार पर सरकारी देख -रेख करना, (7) द्वितीय पंचवर्षीय योजना में खाद्यान्न उत्पादन पर विशेष ध्यान देवा , (8) जनसंख्या बृद्धि को नियंत्रित करने हेतु सम्मिलित प्रयास करना आदि।

भारत सरकार ने विभिन्न पंचवर्षीय योजपाओं में खाद्य समस्या को हल करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किया जिसके परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक देश खाद्यान्न के संदर्भ में आत्मनिर्भर बनने में समर्थ हो गया। देश व्यापी खाद्य समस्या के निराकरण हेतु भारत सरकार ने नियोजन काल में जो खाद्य नीति अपनायी उसके प्रमुख पक्ष निम्नांकित हैं-

I. **खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के प्रयास -** नियोजन काल में भारत सरकार ने कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए संस्थागत और तकनीकी प्रयत्न किया । संस्थागत प्रयल्नों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन , जोत की सीमाबवन्दी , चकबन्दी आदि के प्रयास उल्लेखनीय हैं । नवीन एवं उन्नत कृषि तकनीक के अन्तर्गत उन्नतिशील बीजों , रासायनिक उर्वरकों , कीटनाशक दवाओं , सिंचन सुविधाओं के प्रसार , नवीन एवं उन्नत कृषि यंत्रों के प्रयोग आदि के परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंत तक हरित क्रांति आ चुकी थी। वर्ष 1966-67 में देश का कुल खाद्यान्न उत्पादन 670 लाख टन था। आगामी वर्षों में कृषि उत्पादकता में वृद्धि के फलस्वरूप 1983-84 में 1524 लाख टन और 1995-96 में लगभग 1900 लाख टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ।

II. **खाद्यान्न वितरण प्रणाली में सुधार-** खाद्य समस्या के निराकरण के उद्देश्य से खाद्यान्नों के वितरण प्रणाली में कई प्रकार के आवश्यक सुधार किये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारंभिक वर्षों में खाद्यान्न आधिक्य की दशा थी जिसके कारण कृषकों को कुछ प्रमुख खाद्यान्नों की न्यूनतम कीमत निर्धारित करने का आश्वासन दिया गया और 1954 में राशनिंग व्यवस्था समाप्त कर दी गयी। किन्तु द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उत्पादन घट जाने के कारण खाद्यान्नों का अभाव होने लगा और उनका मूल्य तेजी से बढ़ने लगा। सम्पूर्ण देश में खाद्यान्नों का समुचित वितरण सुनिश्चित करने के उद्देश्य से 1964 में देश को कई खाद्य क्षेत्रों में विभक्त किया गया । इस प्रकार के प्रत्येक खाद्य क्षेत्र में अतिरिक और अल्पता वाले राज्य सम्मिलित किये गये थे। खाद्यान्नों का व्यापार खाद्य क्षेत्रों के भीतर ही किया जा सकता था। खाद्यान्नों के अंतर्क्षेत्रीय व्यापार के लिए , निजी व्यापारियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। यह व्यवस्था कुछ ही वर्षो बाद समाप्त कर दी गयी। 1972-73 में गंभीर खाद्य संकट उपस्थित हो गया। खाद्यान्न आपूर्ति सुनिश्चित करने और जमाखोरी समाप्त करने के उद्देश्य से गेहूँ और चावल के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। यह कार्यक्रम भी प्रशासनिक असुविधा तथा निजी थोक व्यापारियों के विरोध के कारण सफल नहीं हो सका और मार्च 1974 में इसे स्थगित कर दिया गया।

खाद्य समस्या से निपटने के लिए सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक कारगर बनाने पर बल दिया। दिया। अभावग्रस्त क्षेत्र और निर्धन वर्ग के लोगों के लिए खाद्यान्न आपूर्ति के लिए सार्वजनिक वितरण प्रेणाली लागू की गयी। सरकार उत्पादन आधिक्य वाले क्षेत्रों से खाद्यान्नों का क्रय करके बफर स्टाक बनाती है। बफर स्टाक बनाने के लिए खाद्यान्नों का आयात भी किया जाता है। बफर स्टाक द्वारा उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से राशन कार्ड धारक निर्धन व्यक्तियों को खाद्यान्नों का वितरण किया जाता है। 1975-76 में ।। लाख टन खाद्यान्न का वितरण सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा किया गया। आगामी वर्षों में आवश्यकतानुसार इस मात्रा में कमी या वृद्धि भी की गयी। 1987-88 में सूखे की स्थिति न के कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली से लगभग 80 लाख टन खाद्यान्न का वितरण किया गया। सार्वजनिक वितरण प्रणाली आगामी वर्षों में भी जारी रही है।

III. मूल्य स्थिरीकरण --खाद्यान्नों के मूल्यों में होने वाले उतार -चढ़ाव को रोकने के उद्देश्य से कृषि उत्पाद की कीमतों के निर्धारण हेतु सुझाव देने के लिए केन्द्र सरकार ने "कृषि मूल्य आयोग' का गठन किया जिसे वर्तमान में "कृषि मूल्य एवं लागत आयोग ' कहा जाता है। यह आयोग कृषकों और उपभोक्ताओं दोनों के हितों को ध्यान में रखते हुए प्रति वर्ष विभिन्न कृषि उत्पादों के उचित मूल्य की संस्तुति करता है। कृषि मूल्यों में अनपेक्षित उतार -चढ़ाव को रोकने के उद्देश्य से बफर स्टाक (भण्डार) बनाया जाता है जिसके लिए अतिरेक उत्पादन क्षेत्रों से खाद्यान्नों का क्रय किया जाता है और आवश्यकतानुसार आयात भी किया जाता है | बफर स्टाक में एकत्रित खाद्यान्नों को उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से वितरित किया जाता है। कृषि उत्पादन को बढ़ाने हेतु कृषकों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कृषि उत्पादों की ऊँची कीमतें निर्धारित की गयी हैं

17-9-खाद्य समस्या के निराकरण के उपाय-

भारत में खाद्यान्न अभाव की समस्या को हल करने के लिए जिन उपायों का व्यावहारिक प्रयोग किया जा सकता हैं उनमें प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं-

I. **कृषि क्षेत्र का विस्तार -** कृषि योग्य किन्तु बेकार पड़ी भूमियों , परती आदि को कृषि उपयोग में लेकर कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि की जा सकती है। भारत का कुल प्रतिवेदित (1996-97) क्षेत्रफल 30.50 करोड़ हेक्टेयर है जिसका आधे से कम (46.84 प्रतिशत) कृषिगत भूमि है। कुल भूमि के 53.16 प्रतिशत भाग पर वन (22.6 प्रतिशत), कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि (3.6 प्रतिशत), स्थायी चारागाह (3.6 प्रतिशत), कृषियोग्य बेकार भूमि (4.6 प्रतिशत), परती (7.6 प्रतिशत) और झाड़-झंखाड़ (1.2 प्रतिशत) स्थित हैं। नियोजन काल में हजारों हेक्टेयर परती तथा बेकार पड़ी कृषि योग्य भूमि को खेती के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा चुका है किन्तु अभी भी कृषिक्षेत्र के विस्तार की अधिक सम्भावना है। देश के कृषिगत भूमि में बेकार पड़ी कृषि योग्य भूमि और परती भूमि को सम्मिलित करने पर लगभग 4 करोड़ हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि प्राप्त होगी और वर्तमान कृषिगत भूमि 4.3 करोड़ हेक्टेयर से बढ़कर लगभग 8 करोड़ हेक्टेयर हो जायेगी । वर्तमान समय में क्षारयुक्त (ऊसर) भूमि को कृषि योग्य बनाने के सराहनीय प्रयास चल रहे हैं। सिंचाई के साधनों की व्यवस्था करके मरुस्थलीय क्षेत्रों में भी फसलें उगायी जा सकती हैं।

II. **गहन कृषि -** भारत में प्रति हेक्टेयर खाद्यान्नों का उत्पादन बहुत कम है। आवश्यक उर्वरक , उन्नतिशील बीज, सिंचन सुविधा, उन्नत तकनीक आदि के प्रयोग द्वारा प्रति हेक्टेयर उत्पादन दर को अभी बढ़ाने की बड़ी सम्भावनाएं हैं। मिट्टी की उर्वरता तथा जलवायु एवं सिंचन सुविधा आदि के अनुसार फसल चक्र अपना कर अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के साथ ही मिट्टी की उर्वरता का संरक्षण भी किया जा सकता है। एक ही खेत में वर्ष में दो या अधिक फसलें उगा कर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। देश के अधिकांश सिंचित क्षेत्रों में गहन कृषि के द्वारा अधिकाधिक खाद्यान्नों तथा सब्जियों का उत्पादन किया जाने लगा है। खाद्यान्नों के अन्तर्गत प्रयुक्त कुल भूमि का लगभग 41 प्रतिशत क्षेत्र ही सिंचित है। अतः देश में सिंचाई के साधनों का विस्तार करके कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की प्रबल सम्भावनाएं , विद्यमान हैं। गहन कृषि द्वारा खाद्यान्नों के साथ ही अन्य भोज्य पदार्थों यथा फलों , सब्जियों, तिलहनों आदि के उत्पादन को भी बढ़ाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि फल , शाक-सब्जी, तिलहन, गन्ना कन्दमूल आदि खाद्यान्नों के पूरक के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

III. **पूरक खाद्य पदार्थों के उत्पादन पर बल -** खाद्यान्न के पूरक के रूप में विभिन्न प्रकार के हा शाक-सब्जियों , दूध एवं दुग्ध पदार्थों , मांस, मछली , अण्डों आदि का उपयोग किया जा सकता है। भोजन के लिए इन तत्वों का उपयोग आवश्यक भी होता है। अतः उद्यान कृषि की गहन विधियों का प्रयोग करके फल एवं शाक -सब्जियों के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। जड़ वाली फसलों जैसे आलू, मूली, प्याज, गाजर, शकरकंद, शलजम आदि में कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। आलू और चुकन्दर में स्टार्च अधिक मिलता है। प्रोटीन की कमी को शाक सब्जियों ,

दालों आदि से पूरा किया जा सकता है। अतः पूरक खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि खाद्य समस्या के समाधान में आवश्यक उपकरण सिद्ध हो सकती है।

IV. **जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण-** देश में खाद्य समस्या के मूल में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या ही है। जनसंख्या वृद्धि की तुलना में खाद्य पदार्थों के उत्पादन में प्राय : वृद्धि नहीं हो पाती है। अतः जबतक जनसंख्या की वृद्धि मंद या स्थिर नहीं हो जाती तबतक खाद्य समस्या हल करने के सभी उपाय अस्थायी प्रभाव वाले ही रहेंगे । अतः खाद्य समस्या को हल करने हेतु खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि के साथ ही जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना भी आवश्यक है।

V. **खाद्य पदार्थों की सुरक्षा-** उत्पादित खाद्यान्नों का एक बड़ा हिस्सा खेतों , गोदामों तथा घरों में चूहों, कीटों आदि के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है अथवा सड़ जाता है। कीटनाशक दवाओं के प्रयोग तथा भ्रण्डारण की उन्नत वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग करके प्रति वर्ष हजारों टन खाद्यान्नों को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। उन्नतिशील बीजों की खेती में कीटनाशक दवाओं का प्रयोग प्रायः अपरिहार्य हो गया है। शीतगृहों की सुविधा में वृद्धि करके आलू आदि सब्जियों तथा फलों का संरक्षण किया जा सकता है।

VI. **भोजन की आदत में परिवर्तन-** भारतवासियों के भोजन में सामान्यतः खाद्यान्नों की प्रमुखता पायी जाती है। अन्य खाद्य पदार्थों यथा सब्जियों , फलों, दूध एवं दुग्ध पदार्थों, मांस, मछली , अण्डा आदि का प्रयोग आवश्यकता से कम किया जाता है। औसत भारतीय भोजन में चावल , रोटी , दाल आठि की प्रधानता पायी जाती है। इससे एक ओर भारतीयों को प्रायः संतुलित आहार नहीं मिल पाता है , ते दूसरी ओर खाद्यान्नों के अभाव की समस्या भी जटिल होती जाती है। अतः केवल खाद्य समस्या वें निराकरण के लिए ही नहीं बल्कि सामान्य स्वास्थ्य के उत्थान तथा कुपोषण एवं अल्पपोषण को दूर करे के लिए भी भोजन में फलों , शाक-सब्जियों , दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थों , मांस , मछली , अंडों आदि के प्रयोग को बढ़ाये जाने की भी आवश्यकता है।

17-10- सारांश -

इकाई 17 के प्रस्तुत अध्ययन में भारत की 60 प्रतिशत से अधिक आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि और संबद्ध गतिविधियों पर निर्भर है। इसलिए, समग्र आर्थिक विकास के लिए इस क्षेत्र का विकास एक आवश्यक अनुलाभ है। आर्थिक सर्वेक्षण 2012-13 के अनुसार 52004-05 की स्थिर कीमतों पर 2010-11 में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि और संबद्ध क्षेत्र का हिस्सा 14.5 प्रतिशत था। 2010-11 में कुल कृषि और संबद्ध गतिविधियों से उत्पादन के मूल्य में पशुधन और मत्स्य क्षेत्र का हिस्सा 28.4 प्रतिशत था। जबकि 2004-05 से 2010-11 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में औसतन 8.62 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, इसी अवधि के दौरान कृषि क्षेत्र की जीडीपी में केवल 3.46 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। हालांकि , कृषि क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण बनी हुई है क्योंकि 2001 की जनगणना के अनुसार यह देश में लगभग 58 प्रतिशत रोजगार के लिए जिम्मेदार है। यह पत्र आज भारत के सामने आने वाले खाद्य उत्पादन के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करता है और खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए आवश्यक उपायों और आवश्यक नीतिगत समर्थन पर सुझाव देता है। डॉ एम एस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय किसान आयोग (एनसीएफ) ने दिसंबर 2004 से अक्टूबर 2006 तक अपनी पांच रिपोर्ट 4 , 7 , 8 , 9 , 10 की श्रृंखला में इस दिशा में कई सिफारिशें की थीं जो आज भी प्रासंगिक बनी हुई हैं। पेपर 'खाद्य उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने की रणनीतियां ' पर हमारे पास पहले से ही उपलब्ध इस जलाशय पर काफी हद तक आकर्षित करता है और आशा करता है कि दिए गए सुझावों को प्राथमिकता और ध्यान मिलेगा जिसके वे हकदार हैं।

खाद्य उत्पादन की वर्तमान स्थिति (इसमें खेती की जाने वाली खाद्य फसलें , पशुधन, मुर्गी पालन और मत्स्य उत्पादन शामिल हैं। विश्व स्तर पर, भारत अनाज का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक है , केवल चीन और यूएसए इसके आगे हैं। भारत दूध उत्पादन में पहले स्थान पर है और दुनिया में मछली का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक और अंतर्देशीय मत्स्य पालन का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। मात्स्यिकी क्षेत्र

लगभग 11 मिलियन लोगों को आजीविका प्रदान करता है जो पूरी तरह से /आंशिक रूप से मत्स्य पालन और इस क्षेत्र से जुड़ी सहायक गतिविधियों में शामिल हैं। दुनिया में भारत गाय और भैंस के मामले में पहले और बकरियों में दूसरे , भेड़ में तीसरे और मुर्गी पालन में सातवें स्थान पर है और लगभग 90 मिलियन लोग पशुधन क्षेत्र में काम करते हैं 10 डेयरी उद्योग 18 मिलियन लोगों (9.8 मिलियन प्राथमिक और 8.6 मिलियन सहायक रोजगार) को रोजगार प्रदान करता है , इसमें द्वितीयक बाजार स्तर 11 पर पशु उत्पादों की बिक्री , पुन: प्रसंस्करण और परिवहन में कार्यरत व्यक्तियों को शामिल नहीं किया गया है । इनमें से 70 प्रतिशत महिलाएं हैं और 67 प्रतिशत की भूमि , ऋण या प्रौद्योगिकी तक पहुंच नहीं है। 70 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों में से जिनके पास पशुधन है, विशाल बहुमत या तो भूमिहीन या सीमांत किसान हैं । 1950-51 और 2006-2007 के बीच, देश में खाद्यान्न का उत्पादन (चावल, गेहूं, मोटे अनाज और दालों का उत्पादन शामिल है) जनसंख्या की वृद्धि की तुलना में 2.5 प्रतिशत की औसत वार्षिक दर से बढ़ा , जो औसत 2.1 प्रतिशत थी। इस अवधि के दौरान 12 . भुखमरी और अकाल की भविष्यवाणियों को दूर करते हुए , भारत साठ के दशक के अंत में हरित क्रांति के बाद ऐसी स्थिति में आ गया था , जहां हमें कभी -कभी छोड़कर, 1976-1977 और 2005-2006 के बीच मुश्किल से ही खाद्यान्न आयात का सहारा लेना पड़ा था।

एक अनुमान बताता है कि हरित क्रांति के बिना , 1970 और 2000 के बीच विकासशील देशों में लगभग 3 करोड़ बच्चों की मृत्यु हो गई होती , इनमें से दो-तिहाई से अधिक बच्चे अकेले एशिया 13 में थे । हालांकि खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर 1990-2007 के दौरान घटकर 1.2 प्रतिशत रह गई, जो जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 1.9 प्रतिशत से कम है। परिणामस्वरूप अनाज और दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में गिरावट देखी गई। अनाज की प्रति व्यक्ति खपत 1990-1991 में 468 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन के शिखर से घटकर 2005-2006 में 412 ग्राम प्रति दिन प्रति दिन हो गई, जो इस अवधि के दौरान 13 प्रतिशत की गिरावट का संकेत है। (जीओआई 2008)। 1981-1990 की अवधि की तुलना में 1991-2000 की अवधि में वृद्धि की कम दर होने के बाद , 1991-2000 और 2001-2005 की दो अवधियों के बीच खाद्यान्न उपलब्धता में 4.5 प्रतिशत की गिरावट आई। चिंता का विषय यह है कि हरित क्रांति ने जिस आत्मनिर्भरता की स्थिति को हासिल करने में हमारी मदद की, उससे आगे बढ़ते हुए हमें हाल के वर्षों में खाद्यान्नों के आयात का सहारा लेना पड़ा है।

दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1950-1951 में 124 ग्राम/दिन से बढ़कर 1990-1991 में 176 ग्राम/दिन से बढ़कर 2011-2012 में 290 ग्राम/दिन हो गई, यह आंकड़ा वैश्विक प्रवृत्ति 15 के साथ तुलनीय है । हमारा कुल दूध उत्पादन दुनिया में सबसे ज्यादा है , लेकिन अंतरराष्ट्रीय मानकों के हिसाब से प्रति पशु उत्पादकता बेहद कम है। 2011-2012 में अंडों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता एक समय में पांच अंडे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से बढ़कर 55 अंडे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष हो गई। मान्यता प्राप्त क्षेत्र से मांस उत्पादन 1998-1999 में 1.9 मिलियन टन से बढ़कर 2010-2011 में 4.9 मिलियन टन हो गया। वैश्विक मछली उत्पादन का लगभग 4.4 प्रतिशत हिस्सा, मत्स्य क्षेत्र लगभग 145 मिलियन लोगों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार देता है ।

17-11- स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न-1.और पोषण की समस्या राज्य में अधिक है

अ. हरियाणा -उत्तर प्रदेश ब . राजस्थान- मध्य प्रदेश

स. बिहार- असम द . बंगाल- उड़ीसा

प्रश्न 2. एक व्यक्ति के लिए कितना कैलोरी भोजन की आवश्यकता होती है -

अ. 2550-2650 ब. 2041-2141

स. 1860-1960 द. 2010-2110

प्रश्न 3.F.A.O. क्या है-

अ. राष्ट्रीय कृषि विकास योजना ब . राष्ट्रीय बागवानी मिशन
स. खाद्य कृषि संगठन द . राष्ट्रीय सिंचाई मिशन
प्रश्न 4. सबसे अधिक खाद्य उत्पादन वाले पांच राज्य कौन से हैं -
अ. बिहार,असम,कर्नाटक,उड़ीसा,केरल ब .पश्चिमबंगाल,उत्तरप्रदेश,पंजाब,गुजरात हरियाणा
स. उत्तराखंड,तमिलनाडु,उड़ीसा,मेघालय,असम द .तमिलनाडु,उत्तरप्रदेश,पंजाब,गुजरात, उड़ीसा
प्रश्न 5. खाद एवं कृषि संगठन एफ .ए.ओ.की रिपोर्ट के अनुसार 1980 से 90 दशक में उष्णकटिबंधीय वनों का ह्रास कितने प्रतिशत हुआ है -
अ.1.0 ब. 1.5
स.1.8 द.0.8
प्रश्न 6. भारत की खाद्य समस्या के लिए महत्वपूर्ण उत्तरदाई कारक नहीं है -
अ. शिक्षा का अभाव ब . भारत पाक विभाजन
स.प्राकृतिक आपदाएं द . जनसंख्या वृद्धि
उत्तरमाला: 1.(ब), 2.(अ), 3.(स), 4.(ब), 5.(द), 6.(अ)

17-12- संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1.MAXWELL (S) & SMITH (M). Household food security; a conceptual review". In S. Maxwell & T.R. Franken berger, eds. Household Food Security: Concepts, Indicators, Measurements: A Technical Review. 1992 New York and Rome:UNICEF and IFAD.
2. ODI. 1997. Global hunger and food security after the World Food Summit. ODI Briefing Paper 1997 (1) February. London: Overseas Development Institute.
3. Global Hunger Index. (2019). www.globalhungerindex.org/india.html
4. UPADHYAY (R) & Palanivel (C). (2011). Challenges in achieving food security in India. Iranian Journal of Public Health. 40(4): 31.
5. JASWAL (S). (2014). Challenges to food security in India. IOSR Journal of Humanities and Social Science. 19: 93-100.
6. MOROOKA (K), MILA (R), & FONSECA (N) (2014). A bibliometric approach to interdisciplinarity in Japanese rice research and technology development. Scientometrics , 98(1): 73-98.
7. TATRY (M) (2014). EU27 and USA leadership in fruit and vegetable research: a bibliometric study from 2000 to 2009. Scientometrics, 98(3): 2207-2222.
8. ZHOU (P), YONGFENG (Z), & MEIGEN (YU) (2013). A bibliometric investigation on China-UK collaboration in food and agriculture. Scientometrics,97 (2): 267-285.
9. VANGA (S) (2015). Global food allergy research trend: a bibliometric analysis
10. Maurya, S.D. Population Geography, Prayag Pustak Bhawan, Allahabad, 2013
11. Maurya, S.D. Resources and Environment Geography, Prayag Pustak Bhawan, Allahabad, 2006
12. Tiwari R.C. , Singh B.N. Agriculture Geography, Pwalika Publication Allahabad, 2016

17-13 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1. भारत में खाद्य समस्या के स्वरूप तथा इसके उत्तरदाई कारकों की समीक्षा कीजिए ?
प्रश्न 2. भारत में खाद्य उत्पादकता को विश्लेषण कीजिए ?

प्रश्न 3. जनसंख्या एवं कृषि पर निबंध लिखिए ?
प्रश्न 4 भारत में खाद्य समस्या के निराकरण का उल्लेख कीजिए ?
प्रश्न 5. भारतीय कृषि की समस्याओं का विश्लेषणात्मक परीक्षण कीजिए ?
प्रश्न 6. कृषि पर नियम निरंतर बढ़ता जनसंख्या भार एवं उसके प्रभाव का उल्लेख कीजिए ?

इकाई 18 - भारतीय कृषि एवं जलवायु परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 कृषि एवं जलवायु परिवर्तन
18.4 भारतीय कृषि में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव
18.5 कार्बन डाइऑक्साइड के निषेचन के कारण फसलों के पोषण मूल्य में कमी
18.6 विभिन्न फसलों पर प्रभाव
18.7 खाद्य सुरक्षा एवं कुपोषण और खाद्य कीमत पर अस्थिरता
18.8 कृषि विकास पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के उपाय
18.9 जलवायु स्मार्ट कृषि (क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर)
18.10 फसल उत्पादन में नई तकनीक का विकास
18.11 सारांश
18.12 संदर्भ- ग्रंथ- सूची
18.13स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर
18.14 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

18.1.प्रस्तावना-
कृषि और जलवायु का आपस में गहन संबंध रहा है पर्यावरणीय कारकों में जलवायु एक प्रमुख कारक है किसी क्षेत्र की वनस्पति प्रभावित होती है। क्योंकि फसलों का विकास पौधों और वनस्पतियों से हुआ है। कृषि की वि -जातियां संवर्धन जलवायु के विभिन्न तत्वों द्वारा प्रभावित होती है जलवायु के विभिन्न तत्व जैसे- तापमान,आर्द्रता, वर्षा,पवन प्रवाह और पवन वेग आदि प्रमुख हैं । आज कल विश्व जलवायु परिवर्तन की समस्या से जूझ रहा है, जिसके कारण भारत भी अछूता नहीं रह गया है !जलवायु परिवर्तन के कारण वातावरण में कई तरह के बदलाव जैसे - तापमान में वृद्धि, कम या अधिक बारिश, वायु की दिशा में बदलाव आदि हो रहे हैं । जैसे कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है । परिवर्तन का मुख्य कारण ग्लोबल वार्मिंग है। और ग्लोबल वार्मिंग का मुख्य कारण पर्यावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड , नाइट्रस ऑक्साइड, जैसी ग्रीन हाउस गैसों की मां ठीक है । ग्रीन हाउस गैसें इनके अवरक्त विकिरण यानी इंफ्रारेड को वायुमंडल से बाहर नहीं जाने देती है जिसके परिणाम स्वरूप के औसत तापमान में वृद्धि होती है, जिसे ग्लोबल वार्मिंग कहा जाता है। वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण, ध्रुवीय बर्फ पिघल रही है, जिसके परिणाम स्वरूप महासागर और नदियों का जल स्तर बढ़ रहा है और बाढ़ और चक्रवातों की संख्या बढ़ रही है । भारतीय कृषि पर सूखे का खतरा अधिक है क्योंकि आज भी सिंचाई प्रणाली मानसून आधारित है और कृषि योग्य भूमि का दो तिहाई हिस्सा वर्षा पर आधारित क्षेत्र है। पूर्वोत्तर भारत में बाढ़ का खतरा, पूर्वी तटीय क्षेत्रों में चक्रवात, उत्तर पश्चिम भारत में ठंड, प्योर उत्तरी क्षेत्रों में गर्म लहरें बढ़ रही हैं। इन जलवायु आपदाओं से कृषि उत्पादन पर भारी नुकसान हो रहा है ! जलवायु परिवर्तन कृषि को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है फसलों ,मिट्टी, रेड मवेशियों ,कीट पतंगों आदि पर प्रभाव रहा है।

18.2उद्देश्य-
प्रस्तुतइकाईकेअध्ययनमेंविवर्तनकेप्रभावसेकृषिकेक्षेत्रमेंहमदेनेऔरकृषिकीउत्पादकताकोस्थाईरूपसेब ढ़ाने, हवाईपरिवर्तनकेप्रतिअनुकूलन,

औरलचीलापनबनानेकृषिक्षेत्रमेंजीएचजीउत्सर्जनवपरिवर्तनकेप्रतिस्वयंकोअनुकूलितकरनेतथासततविकासमार्गकेद्वाराठीकऔरपर्यावरणीयलक्ष्योंकोएकसाथहासिलकरनेकेलिएप्रेरणावर्धककार्यकरनेकीआवश्यकताहै।
भारतीयकृषिको"राष्ट्रीयसततकृषिमिशन"केअंतर्गतजलवायुपरिवर्तनकेप्रतिअधिकप्रभावीएवंअनुकूलनबनानेहेतुरणनीतिप्रमुखउद्देश्यहैअनुसंधान , प्रौद्योगिकीप्रतिपादनप्रायोजितएवंप्रतियोगीअनुदान, क्षमतानिर्माणबिंदुओंमेंभारतीयकृषि(फसल, पशुइत्यादि) कोजलवायुपरिवर्तनशीलताकेप्रतिसक्षमबनानाजलवायुसहकृषिअनुसंधानमेंलगेवैज्ञानिकोंकोदूसरेहितधारकोंकीक्षमताकाविकासकरनातथाकिसानोंकोवर्तमानजलवायुखतरेकेअनुकूलनहेतुप्रोद्योगिकीपैकेजकाप्रदर्शनदिखानेकाउद्देश्यहैसाथहीकृषिविकासहेतुसुझावप्रस्तुतकरनेकेलक्ष्यरखेगएहैं।

18.3. कृषि एवं जलवायु परिवर्तन-

भारत में कृषि प्रमुखतः मौसम पर आधारित है और जलवायु परिवर्तन की वज़ह से होने वाले मौसमी बदलावों का इस पर बेहद असर पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के कारण हुई तापमान वृद्धि से कृषि प्रभावित होती है , इसलिये यह ज़रूरी है कि किसानों को यह पता होना चाहिये कि इस समस्या का सामना कैसे किया जाए ।
असमानवर्षाहोनेकीवज़हसेहमारेदेशमेंफसलोंकाखराबहोनाआमबातहै।कईगाँवोंमेंदेखनेकोमिलताहैकि हरियालीकानामो-निशानतकनहींहैऔरकिसानोंकेलियेपशुओंकापेटभरपानाएकबड़ीचुनौतीबनगयाहै।होनेवालेनएपरिवर्तनोंकोतुरंतअपनानेमेंसमस्याउत्पन्नहोतीहै।हरमौसममेंकिसानअलग-अलगफसललेतेहैंयाउनकासम्मिश्रणकरतेहैं।बोरवेल, ट्रैक्टरतथाअन्यकृषिमशीनरीपरउन्हेंभारीखर्चकरनापड़ताहै।भारतकीकुलकृषिभूमिका 67% भागमानसूनतथाअन्यमौसमोंमेंहोनेवालीवर्षापरनिर्भरहै।कृषिकीमौसमपरअत्यधिकनिर्भरताकीवज़हसेफसलोंपरलागतअधिकआतीहै, विशेषकरमोटेअनाजोंकीफसलोंपर, जिनकीखेतीअधिकतरउनक्षेत्रोंमेंहोतीहैजोवर्षापरनिर्भरहोतेहैं।फसलकेलगातारप्रभावितहोनेकीवज़हसेऐसेकिसानोंकीसंख्यातेज़ीसेबढ़रहीहै, जोगाँवमेंअपनीखेतीकीज़मीनछोड़करनिकटवर्तीशहरोंकीओरपलायनकररहेहैं।शहरोंमेंइनकिसानोंकोकेवलमज़दूरीकाहीकाममिलपाताहैक्योंकिउनकेपासकिसीभीप्रकारकाकौशलनहींहोता।
IPCC कीछठीआकलनरिपोर्टकेअनुसार : "जलवायुपरिवर्तनकेप्रभावकृषि , वानिकी , मत्स्यपालनऔरजलीयकृषिपरजोरदेरहेहैं , मानवआवश्यकताओंकोपूराकरनेकेप्रयासोंमेंतेजीसेबाधाडालरहेहैं।

18.4. भारतीय कृषि में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव-

जलवायु परिवर्तन लंबे समय तक चलने वाला परिवर्तन है । मौसम के पैटर्न के सांख्यिकीय वितरण में जो एक पारिस्थितिकी के लिए बड़ी समस्या है और अपने जहरीले स्तर के साथ लंबे समय तक बना रहता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन जलवायु परिवर्तन का ही भाग है.कृषि जलवायु परिवर्तन का लक्ष्यकर्ता और योगदानकर्ता दोनों है . कृषि ग्रीन हाउस गैसों का दूसरा सबसे बड़ा स्त्रोत है।
2014 में भारत के अंदर उत्सर्जीत कुल ग्रीन हाउस गैसों में 3402 मिलियन मीट्रिक टन कार्बन डाई ऑक्साइड था, जो कुल वैश्विक ग्रीन हाउस गैस का 6.55 % था। इसका मुख्य कारण है रसायनों का उपयोग। उर्वरक, कम पोषक तत्व उपयोग -दक्षता वाले कीटनाशक , एंटेरिक किण्वन , प्रत्यारोपित चावल की खेती आदि । इसके अतिरिक्त, 1/3 विश्व स्तर पर उत्पादित भोजन जलवायु परिवर्तन के कारण या तो खत्म हो जाता है या बर्बाद हो जाता है । जलवायु लचीलापन को आम तौर पर एक

सामाजिक-पारिस्थितिक तंत्र के लिए अनुकूली क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । जलवायु परिवर्तन द्वारा उस पर लगाए गए बाहरी दबावों के मुकाबले तनावों को अवशोषित और कार्य को बनाए रखना औरअनुकूलन, पुनर्गठनऔर अधिक वांछनीय विन्यासों में विकसित होना, जो सिस्टम की स्थिरता में सुधार करते हैं, जिससे यह भविष्य के जलवायु परिवर्तन प्रभावों के लिए बेहतर तैयार हो जाता है।आज इस दुनिया में शायद ही कोई ऐसा होगा जिस पर जलवायु परिवर्तन का कोई प्रभाव न पड़ा हो जिसमे कृषि विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील है । जलवायु परिवर्तन के विभिन्न प्रकार के खतरे है। उनमें बढता तापमान ,कार्बन दी ऑक्साइड एवं वर्षा जो प्रत्यक्ष रूप से पौधे की वृधि को एवं अप्रत्यक्ष रूप से भूमि की उपलब्धता , सिंचाई, खरपतवार वृद्धि, कीट और रोगों द्वारा प्रकोप आदि को प्रभावित करते है । जलवायु परिवर्तन में हर किसी को चोट पहुँचाने की क्षमता है , लेकिन किसानों के इसकी चपेट में आने की संभावना सबसे अधिक रहती है और वे इससे सर्वाधिक प्रभावित होते भी हैं। भारत में कृषि प्रमुखत मौसम पर आधारित है और जलवायु परिवर्तन की वज़ह से होने वाले मौसमी बदलावों का इस पर बेहद असर पड़ता । 1970 के बाद से वैश्विक औसत तापमान 1.7°C प्रति शताब्दी की दर से बढ़ रहा है .उच्च तापमान फसलों की गुणवत्ता और उपज को कम कर देता है और यह खरपतवार और कीट प्रसार को भी प्रोत्साहित करता है .गर्मी तनाव के कारण फसले जल्दी परिपक्वता की और चली जाती है जिससे उनकी उपज में कमी आ जाती है । औसत तापमान में 1°c वृद्धि के परिणामस्वरूप चावल जैसे C3 पौधे की अनाज उपज में 6% (ससींद्रन।, 2000) वहीं गेहूं, सोयाबीन, सरसों, मूंगफली, आलू में 3 से 7% की गिरावट दर्ज की गयी है.उत्तर-पश्चिमी भारत में विशेष रूप से गेहूँ के तापमान में हर 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से उपज में 4 एम .टी. की कमी आती है.वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन अल्पकालिक फसल की विफलता की संभावना को और लंबे समय तक उत्पादन में गिरावट को बढ़ाता है। वर्षा के पैटर्न में बदलाव किट -लाभकारी किट के बिच की परस्पर क्रिया को बदल देता है। वर्षा के पैटर्न में बदलाव से पानी की उपलब्धता में बदलाव होगा , जो खरपतवारो को बढ़ावा देगा। इस प्रकार से कृषि रसायनों के प्रयोग की दर बढेगी जो पर्यावरण प्रदुषण को बढ़ावा देगा.किसान हर साल चाहता है कि उसकी फसल की उत्पादन प्रणाली में कम विभिन्नता के साथ उपज अच्छी आये पर हर साल बड़ते सूखे एवं बाढ़ की वजह से उसके उत्पादन में बहुत अधिक विभिन्नता के साथ कम उपज हो रही है । सूखे के कारण उपलब्ध पशुओ के चारे की गुणवत्ता भी कम हो जाती है।जलवायु परिवर्तन का कृषि पर निम्न प्रभाव पड़ रहे हैं , जिससे किसानों की चिंताए बढ़ रही हैं । असमान वर्षा होने की वज़ह से हमारे देश में फसलों का खराब होना आम बात है । कई गाँवों में देखने को मिलता है कि हरियाली का नामो-निशान तक नहीं है और किसानों के लिये पशुओं का पेट भर पाना एक बड़ी चुनौती बन गया है। होने वाले नए परिवर्तनों को तुरंत अपनाने में समस्या उत्पन्न होती है . हर मौसम में किसान अलग -अलग फसल लेते हैं या उनका सम्मिश्रण करते हैं । बोरवेल, ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि मशीनरी पर उन्हें भारी खर्च करना पड़ता है । फसल के लगातार प्रभावित होने की वज़ह से ऐसे किसानों की संख्या तेज़ी से बढ़ रही है , जो गाँव में अपनी खेती की ज़मीन छोड़कर निकटवर्ती शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। शहरों में इन किसानों को केवल मज़दूरी का ही काम मिल पाता है, क्योंकि उनके पास किसी भी प्रकार का कौशल नहीं होता । भारत में मानसून की अच्छी वर्षा होतीहै , लेकिन बढ़ते तापमान की समस्या से भी देश को दो -चार होना पड़ता है। भारत में 120 मिलियन हेक्टेयर ऐसी भूमि है, जो किसी-न-किसी प्रकार की कमी (Degradation) से ग्रस्त है। लघु तथा सीमांत किसान इससे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।कृषि की मौसम पर अत्यधिक निर्भरता की वज़ह से फसलों पर लागत अधिक आती है, विशेषकर मोटे अनाजों की फसलों पर, जिनकी खेती अधिकतर उन क्षेत्रों में होती है, जो वर्षा पर निर्भर होते हैं।

अनुमान लगाया है कि आने वाले 80 वर्षों में खरीफ फसलों के मौसम में औसत तापमान में 0.7 से 3.3°C की वृद्धि हो सकती है. इसके साथ वर्षा भी कमोबेश प्रभावित होगी, जिसकी वज़ह से रबी के मौसम में गेहूँ की उपज में 22% की गिरावट आ सकती है तथा धान का उत्पादन 15% तक कम हो सकता है।

1.जलवायुपरिवर्तनमृदामेंहोनेवालीप्रक्रियाओंएवंमृदा-जलकेसंतुलनकोप्रभावितकरताहै।मृदा-जलकेसंतुलनमेंअभावआनेकेकारणवशसूखीमिट्टीऔरशुष्कहोतीजाएगी, जिससेसिंचाईकेलियेपानीकीमाँगबढ़जाएगी।

2.जलवायुपरिवर्तनकेजलीय-चक्रणकोप्रभावितकरनेकेपरिणामस्वरूपकहींअकालतोकहींबाढ़काखतराबढ़जाताहै, जिससेफसलोंकोभारीतादादमेंनुकसानपहुँचताहै।

3.पिछले 30- 50 वर्षोंकेदौरानकार्बनडाइऑक्साइडकीमात्रा 450 पीपीएम (पार्ट्सपरमिलियन) तकपहुँचगईहै।कार्बनडाइऑक्साइडकीमात्रामेंवृद्धिकुछफसलोंजैसेकिगेहूँतथाचावल, जिनमेंप्रकाशसंश्लेषणकीप्रक्रियासी- 3 माध्यमसेहोतीहै, केलियेलाभदायकहै, क्योंकियेप्रकाशसंश्लेषणकीप्रक्रियाकोतीव्रकरतीहैएवंवाष्पीकरणकेद्वाराहोनेवालीहानियोंकोकमकरतीहै।परंतुइसकेबावजूदकुछमुख्यखाद्यान्नफसलोंजैसेगेहूँकीउपजमेंमहत्वपूर्णगिरावटपाईगईहै, जिसकाकारणहैतापमानमेंवृद्धि।उच्चतापमानफसलोंकेवृद्धिकीअवधिकोकमकरताहै, श्वसनक्रियाकोतीव्रकरताहैतथावर्षामेंकमीलाताहै।

4.उच्चतापमान, अनियमितवर्षा, बाढ़, अकाल, चक्रवातआदिकीसंख्यामेंबढ़ोतरी, कृषिजैवविविधताकेलियेभीसंकटपैदाकररहाहै।

5.बागवानीफसलेंअन्यफसलोंकीअपेक्षाजलवायुपरिवर्तनकेप्रतिअतिसंवेदनशीलहोतीहैं।

6.उच्चतापमानसब्जियोंकीपैदावारकोभीप्रभावितकरताहै।

7.जलवायुपरिवर्तनअप्रत्यक्षरूपसेभीकृषिकोप्रभावितकरताहैजैसेखरपतवारकोबढ़ाकर, फसलोंऔरखरपतवारकेबीचस्पद्र्धाकोतीव्रकरना, कीट-पतंगोंतथारोगजनकोंकीश्रेणीकाविस्तारकरनाइत्यादि।

I.मौसम में बदलाव का सीधा प्रभाव-

उच्चतापमान, अनियमितवर्षा, बाढ़, अकाल, चक्रवातआदिकीसंख्यामेंबढ़ोतरी, कृषिजैवविविधताकेलियेभीसंकटपैदाकररहाहै।किसानकईपीढ़ियोंसेखेतीकेलिएमौसमीबरसातपरहीनिर्भररहेहैंलेकिनअबबदलतेमौसमकेकारणउन्हेंनुकसानहोरहाहै।देशमेंफसलउत्पादनमेंउतार-चढ़ावकाकारणकमवर्षा, अत्यधिकवर्षा, अत्यधिकनमी, फसलोंपरकीड़ेलगना, बेमौसमबारिश, बाढ़वसूखाऔरओलोंकीबौछारआदिमुख्यहैं।पिछलेकुछसालोंसेमौसमचक्रनेहमेंचौंकानेऔरपरेशानकरनेकाजोसिलसिलाशुरूकियाहैजोहमारेलिएऔरखेतीकेलिएमुसीबतबनगयाहैं।आजदेशमेंनियमितबाढ़, चक्रवातऔरसूखेजैसीप्राकृतिकआपदाओंकीबढ़तीआवर्त्तिसेस्पष्टहोजाताकिभारतजलवायुपरिवर्तनसेसर्वाधिकप्रभावितदेशोंमेंसेएकहै।

II.बढ़ता तामपान (औसत तापमान में वृद्धि)-

भारत का तापमान वर्ष 1900 से वर्तमान तक लगभग 2°C बढ़ चुका है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) के अनुसार प्रति 1°C तापमान बढ़ने पर गेहूँ के उत्पादन में 4-5 मिलियन टन की कमी

होती है। कई प्रधान फसलें गर्मी के प्रति बेहद संवेदनशील होती हैं और जब तापमान 36 डिग्री सेल्सियस से अधिक हो जाता है , तो सोयाबीन के अंकुर मर जाते हैं और मकई पराग अपनी जीवन शक्ति खो देते हैं।

III.गर्म तरंगे –

2018 की गर्मियों में , शायद जलवायु परिवर्तन से जुड़ी गर्मी की लहरों ने दुनिया के कई हिस्सों में औसत उपज को बहुत कम कर दिया। अगस्त के महीने के दौरान , अधिक फसल विफलताओं के परिणामस्वरूप वैश्विक खाद्य कीमतों में वृद्धि हुई । गेहूं , चावल और मक्का का उत्पादन मांग को पूरा करने में विफल रहा।

IV.छरण और मृदा उर्वरता-

पिछले दशकों में देखा गया है कि गर्म वायुमंडलीय तापमान , अधिक चरम वर्षा घटनाओं एवं तीव्र जल चक्र में वृद्धि कर रहे हैं । छरण एवं मृदा के निम्नीकरण होने की संभावना बढ़ रही है । मृदा की उर्वरता ग्लोबल वार्मिंग से प्रभावित हो जाएगी जलवायु के चरम होने के के फलस्वरूप मैं बढ़त के कारण छरण खतरा अधिक होगा , यद्यपि वर्षा को तीव्रता मृदा को बेहतर जल प्रदान करती है । तापमान में वृद्धि खनिजों के उत्पादन में उच्चतर को प्रेरित करती है एवं मृदा के कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में कमी एवं वायुमंड लीय CO_2 की सांद्रता बढ़ जाएगी।

V.वर्षा में परिवर्तन(वर्षा के पैटर्न में बदलाव)-

भारत का दो तिहाई कृषि क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है और कृषि की उत्पादकता वर्षा एवं इसकी मात्रा पर निर्भर करती है। वर्षा की मात्रा व तरीकों में परिवर्तन से मृदा क्षरण और मिट्टी की नमी पर प्रभाव पड़ता है। जलवायु के कारण तापमान में वृद्धि से वर्षा में कमी होती है जिससे मिट्टी में नमी समाप्त होती जाती है। इसके अतिरिक्त तापमान में कमी व वृद्धि होने का प्रभाव वर्षा पर पड़ता है जिस कारण भूमि में

अपक्षय और सूखे की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव कुछ वर्षों से गहन रूप से प्रभावित कर रहे हैं। मध्य भारत 2050 तक शीत वर्षा में 10 से 20 प्रतिशत तक कमी अनुभव करेगा। पश्चिमी अर्धमरुस्थलीय क्षेत्र द्वारा सामान्य वर्षा की अपेक्षा अधिक वर्षा प्राप्त करने की संभावना है। इसी प्रकार मध्य पहाड़ी क्षेत्रों में तापमान में वृद्धि एवं वर्षा में कमी से चाय की फसल में कमी हो सकती है।

VI.कीट एवं रोगों में वृद्धि –

जलवायु परिवर्तन के कारण कीटों और रोगाणुओं में वृद्धि होती है। गर्म जलवायु में कीट -पतंगों की प्रजनन क्षमता बढ़ जाती है जिससे कीटों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है और इसका कृषि पर काफी दुष्प्रभाव पड़ता है। साथ ही कीटों और रोगाणुओं को नियंत्रित करने की कीटनाशकों का प्रयोग भी कहीं ना कहीं कृषि फसल के लिए नुकसानदायक ही होता है।

हालांकि कुछ अधिक सूखा -सहिष्णु फसलों को जलवायु परिवर्तन से लाभ हुआ है। ज्वार की पैदावार , जिसका खाद्यान्न के रूप में प्रयोग दुनिया में विकासशील देश के अधिकांश लोग करते हैं , 1970 के दशक के बाद पश्चिमी , दक्षिणी और दक्षिण -पूर्वी एशिया में लगभग 0.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। उप सहारा अफ्रीका में 0.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई। किन्तु यदि कुछ फसलों को छोड़ दिया जाए तो , कुल फसल उत्पादकता पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव नकारात्मक ही पड़ता है। जलवायु परिवर्तन से कीट व रोगों की बढ़त पर जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। तापमान , नमी तथा वातावरण की गैसों से पौधो , फफून्द तथा अन्य रोगाणुओं के प्रजनन में वृद्धि तथा कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं के अन्तर्सम्बन्धों में बदलाव आदि दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे। गर्म जलवायु कीट -पंतगों की प्रजनन क्षमता में वृद्धि हेतु सहायक होता है। लम्बे समय तक चलने वाले वसन्त , गर्मी व पतझड़ के मौसम में अनेक कीटों की प्रजनन संख्या अपना जीवन चक्र पूरा करती है। जाड़ों में कहीं छुप कर ये लार्वा को बचाए रखते हैं। हवा के रुख में बदलाव से हवाजनित कीटों में वृद्धि के साथ -साथ बैक्टीरिया और फंगस में भी वृद्धि होती है। इनको नियन्त्रित करने के लिए अधिक से अधिक मात्रा में कीटनाशक प्रयोग किए जाते हैं जो अन्य बीमारियों को बढ़ावा देते हैं। जानवरों में बीमारियाँ भी समान रूप से बढ़ेगी।

जलवायु परिवर्तन के कृषि पर तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभावों के अध्ययन की जरूरत है। कृषि वैज्ञानिकों की यहाँ कमी नहीं है , लेकिन कृषि वैज्ञानिक भी अभी जलवायु परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पा रहे है। इसलिए इस दिशा में कोई शोध शुरू नहीं हुआ। हमें इस क्षेत्र में तत्काल दो काम करने

चाहिए। एक यह कि जलवायु -परिवर्तन से कृषि चक्र पर क्या फर्क पड़ रहा है यह जानना तथा दूसरे क्या इस परिवर्तन की भरपाई कुछ वैकल्पिक फसलें उगाकर पूरी की जा सकती है ? साथ ही हमें ऐसी किस्म की फसलें विकसित करनी चाहिए जो जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने में सक्षम हो , मसलन फसलों की ऐसी किस्मों का ईजाद जो ज्यादा गरमी , कम या ज्यादा बारिश सहन करने में सक्षम हो।

18.5.कार्बन डाइऑक्साइड के निषेचन के कारण फसलों के पोषण मूल्य में कमी-

कार्बन डाइऑक्साइड गैस वैश्विक तापन में लगभग 60 प्रतिशत की भागीदारी करती है। कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि से व तापमान में वृद्धि से पेड़ -पौधों तथा कृषि पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। पिछले 30-50 वर्षों के दौरान कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा लगभग 450 पीपीएम (प्वाइंट्स पर मिलियन) तक पहुँच गयी है। हालांकि कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि कुछ फसलों जैसे गेहूं तथा चावल के लिए लाभदायक है क्योंकि ये प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया को तीव्र करती है और वाष्पीकरण के द्वारा होने वाली हानियों को कम करती है। परन्तु इसके बावजूद कुछ मुख्य खाद्यान्न फसलों जैसे गेंहू की उपज में काफी गिरावट आई है जिसका कारण कार्बन डाइऑक्साइड की वृद्धि ही है अर्थात तापमान में वृद्धि। वायुमंडल में CO_2 की सांद्रता बढ़ने से गेँहू , चावल, सोयाबीन जैसी अधिकांश खाद्यान फसलों में प्रोटीन एवं अन्य आवश्यक तत्त्वों की कमी देखी गई है।

18.6. विभिन्न फसलों पर प्रभाव-

अनुमान लगाया है कि आने वाले 80 वर्षों में खरीफ फसलों के मौसम में औसत तापमान में 0.7 से 3.3°C की वृद्धि हो सकती है। इसके साथ वर्षा भी कमोबेश प्रभावित होगी , जिसकी वज़ह से रबी के मौसम में गेहूँ की उपज में 22% की गिरावट आ सकती है तथा धान का उत्पादन 15% तक कम हो सकता है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण विश्व कृषि इस सदी में गंभीर गिरावट का सामना कर रही है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल (IPCC) के अनुसार, वैश्विक कृषि पर जलवायु परिवर्तन का कुल प्रभाव नकारात्मक होगा। हालांकि कुछ फसल इससे लाभान्वित भी होंगी किन्तु फसल उत्पादकता पर जलवायु परिवर्तन का कुल प्रभाव सकारात्मक से ज्यादा नकारात्मक होगा। भारत में 2010-2039 के बीच जलवायु परिवर्तन के कारण लगभग 4.5 प्रतिशत से 9 प्रतिशत के बीच उत्पादन के गिरने की संभावना है। एक शोध के अनुसार , यदि वातावरण का औसत तापमान 1 डिग्री सेल्सियस बढ़ता है तो इससे गेहूं का उत्पादन 17 प्रतिशत तक कम हो सकता है। इसी प्रकार 2 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से धान का उत्पादन भी 0.75 टन प्रति हेक्टेयर कम होने की संभावना है। कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जो सम्भावित प्रभाव दिखने वाले हैं वे मुख्य रूप से दो प्रकार के हो सकते हैं — पहला क्षेत्र आधारित तथा दूसरा फसल आधारित। अर्थात विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों पर अथवा एक ही क्षेत्र की प्रत्येक फसल पर अलग -अलग प्रभाव पड़ सकता है। गेहूँ और धान हमारे देश की प्रमुख खाद्य फसलें हैं। इनके उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पड़ रहा है।

गेहूँ उत्पादन

1. अध्ययनों में पाया गया है कि यदि तापमान 2 से.ग्रे. के करीब बढ़ता है तो अधिकांश स्थानों पर गेहूँ की उत्पादकता में कमी आएगी। जहाँ उत्पादकता ज्यादा है (उत्तरी भारत में) वहाँ कम प्रभाव दिखेगा, जहाँ कम उत्पादकता है वहाँ ज्यादा प्रभाव दिखेगा।
2. प्रत्येक 1 से.ग्रे. तापमान बढ़ने पर गेहूँ का उत्पादन 4-5 करोड़ टन कम होता जाएगा। अगर किसान इसके बुवाई का समय सही कर लें तो उत्पादन की गिरावट 1-2 टन कम हो सकती है।

धान का उत्पादन

1. हमारे देश के कुल फसल उत्पादन में 42.5 प्रतिशत हिस्सा धान की खेती का है।
2. तापमान वृद्धि के साथ-साथ धान के उत्पादन में गिरावट आने लगेगी।
3. अनुमान है कि 2 से.ग्रे. तापमान वृद्धि से धान का उत्पादन 0.75 टन प्रति हेक्टेयर कम हो जाएगा।
4. देश का पूर्वी हिस्सा धान उत्पादन में ज्यादा प्रभावित होगा। अनाज की मात्रा में कमी आ जाएगी।
5. धान वर्षा आधारित फसल है इसलिए जलवायु परिवर्तन के साथ बाढ़ और सूखे की स्थितियाँ बढ़ने पर इस फसल का उत्पादन गेहूँ की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित होगा।

तालिका-1

वर्ष	मौसम	तापमान वृद्धि (से.ग्रे.)		वर्षा में परिवर्तन (प्रतिशत)	
		न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम
2020	रबी	1.08	1.54	-1.95	4.36
	खरीफ	0.87	1.12	1.81	5.10
2050	रबी	2.54	3.18	-9.22	3.82
	खरीफ	1.81	2.37	7.18	10.52
2080	रबी	4.14	6.31	-24.83	-4.50
	खरीफ	2.91	4.62	10.10	15.18

जलवायु परिवर्तन से केवल फसलों का उत्पादन ही नहीं प्रभावित होगा वरन उनकी गुणवत्ता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अनाज में पोषक तत्वों और प्रोटीन की कमी पाई जाएगी जिसके कारण सन्तुलित भोजन लेने पर भी मनुष्यों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा और ऐसी कमी की अन्य कृत्रिम विकल्पों से भरपाई करनी पड़ेगी। गंगा तटीय क्षेत्रों में तापमान वृद्धि के कारण अधिकांश फसलों का उत्पादन घटेगा।

18.7.खाद्य सुरक्षा एवं कुपोषण और खाद्य कीमत पर अस्थिरता-

देश में बेहिसाब बारिश के चलते आने वाली बाढ़ हो या बरसात के अभाव से सूखे के हालात - दोनों ही फसल उत्पादन के लिए भारी नुक़सानदेह हैं । मौजूदा प्रमाणों से कृषि उत्पादन और मौसम के उग्र तेवरों (बार-बार आने वाला भयंकर सूखा या सैलाब) के बीच मज़बूत संबंध का पता चलता है। विश्व बैंक के मुताबिक भोजन सामग्रियों की घरेलू क़ीमतों में वैश्विक खाद्यान्न क़ीमतों में बढ़ोतरी के हिसाब से ही बदलाव आ रहे हैं । सूखे की समस्या ने इसे और विकराल बना दिया है । भारत में खाद्य क़ीमतों की महंगाई का कई पड़ोसी देशों तक विस्तार हो गया. इनमें बांग्लादेश, भूटान, नेपाल और श्रीलंका शामिल हैं। 2008 के महंगाई भरे दौर में भारत में घरेलू मांग आसमान छूने लगी थी । 2009 में जलवायु पर अल नीनो के प्रभाव से हालात और विकट हो गए . सूखे की समस्या के चलते खाद्य सामग्रियों की किल्लत पैदा हो गई।शोध से पता चला है कि खाद के तौर पर कार्बन के इस्तेमाल के संतुलनकारी प्रभावों से कृषि उत्पादन पर ग्लोबल वॉर्मिंग के नकारात्मक असर को दूर किया जा सकता है । कार्बन डाईऑक्साइड के बढ़े स्तर से फ़सलों की पैदावार को बढ़ावा मिल सकता है। कर्नाटक में हुए एक और अध्ययन से तापमान में बेतहाशा बदलावों से फ़सल उत्पादन और उत्पादकता पर पड़ने वाले गंभीर प्रभावों का ख़ुलासा हुआ है । कीट-पतंगों और फ़सलों से जुड़े रोगों में होने वाली बेहिसाब बढ़ोतरी के साथ अक्सर इन्हीं घटनाओं के तार जोड़े जाते हैं । सौ बात की एक बात ये है कि जलवायु परिवर्तन का खाद्य सुरक्षा पर सीधा असर होता है । विनाशकारी कीटों और बीमारियों से खाद्य फ़सलों और मवेशियों पर घातक प्रभाव पड़ता है। इससे खाद्य की उपलब्धता में गिरावट आती है।

I.खाद्य कीमतों में वृद्धि-

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रक्षेपित प्रभाव के अनुसार उत्पादन में तापमान के बढ़ने और उपलब्धता के घटने से में कमी आ रही है । खाद्यान्नों की कीमतें बढ़ती चली जा रही है तथा आनुपातिक रूप से क्रय शक्ति रही कम हो रही है । भारत की कृषि उत्पादक को जलवायु परिवर्तन सबसे ज्यादा(सिंचाई की उपलब्धता , मिट्टी की उर्वरता इत्यादि) प्रभावित कर रही है । जिससे अनाजों की उत्पादकता में निरंतर कमी होती जा रही है जिसके चलते खाद्य कीमतों में भारी वृद्धि हुई है।

II. उच्च खाद्य उत्पादन लागत-

जलवायु में होने वाले नए परिवर्तनों को तुरंत अपनाने में समस्या उत्पन्न होती है । हर मौसम में किसान अलग-अलग फसल लेते हैं या उनका सम्मिश्रण करते हैं । बोरवेल, ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि मशीनरी पर उन्हें भारी खर्च करना पड़ता है ।फसल के लगातार प्रभावित होने की वज़ह से ऐसे किसानों की संख्या तेज़ी से बढ़ रही है, जो गाँव में अपनी खेती की ज़मीन छोड़कर निकटवर्ती शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। शहरों में इन किसानों को केवल मज़दूरी का ही काम मिल पाता है, क्योंकि उनके पास किसी भी प्रकार का कौशल नहीं होता । कृषि की मौसम पर अत्यधिक निर्भरता की वज़ह से फसलों पर लागत अधिक आती है, विशेषकर मोटे अनाजों की फसलों पर , जिनकी खेती अधिकतर उन क्षेत्रों में होती है , जो वर्षा पर निर्भर होते हैं।

III. दुग्ध उत्पादन में कमी-

जलवायु परिवर्तन का असर उनके खाने -पीने में सबसे ज्यादा पड़ता है अगर पशु को कोई बीमारी है या यहां के तापमान को उसमें झेलने की क्षमता नहीं है तो पशुओं खान छोड़ देता है इससे सीधा असर दूध उत्पादन पर पड़ता है। "बरेली स्थित भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान के न्यूट्रीशियन विभाग के प्रधान वैज्ञानिक डॉ पुतान सिंह ने बताया , "दूसरा दूध उत्पादन की कमी का सबसे बड़ा कारण पशुओं का संतुलित आहार भी है। ज्यादा छोटे किसान के पास जो भी होता है वो अपने पशुओं को खिला देता है। जबकि एक वयस्क पशु के रोज 50 प्रतिशत हरा चारा और 50 प्रतिशत सूखा चारा तो देना ही चाहिए। भारत अभी सालाना 16 करोड़ (वर्ष 2015-16) लीटर दूध का उत्पादन कर रही है। इसमें 51 प्रतिशत उत्पादन भैंसों से , 20 प्रतिशत देशी प्रजाति की गायों से और 25 प्रतिशत विदेशी प्रजाति की गायों से आता है। शेष हिस्सा बकरी जैसे छोटे दुधारू पशुओं से आता है। देश के इस डेयरी व्यवसाय से छह करोड़ किसान अपनी जीविका कमाते हैं। हमारे देश में पशुपालन ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आय का एक बड़ा जरिया है। भारत में सबसे ज्यादा दुधारु पशु हैं और दुनिया में सबसे ज्यादा दूध का उत्पादन भी देश में होता है। करीब 15 करोड़ टन दूध हम पैदा करते है। लेकिन विश्व में जितना दूध पैदा होता है यह उसका महज तकरीबन दस फीसदी ही है। अगर हम अपने दुधारु पशुओं की नस्लों को सुधारे तो दूध उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। बढ़ते तापमान और जलवायु परिवर्तन से स्थिति और भी बदतर होती जाएगी।राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान के वरिष्ठ पशु वैज्ञानिक डॉ . एके चक्रवर्ती बताते हैं, "इससे निपटने के लिए देश को स्वदेशी नस्लों को अपनाने की ओर बढ़ना होगा। हमारी स्वदेशी नस्लें विपरीत मौसमी परिस्थितियों को झेलने में अधिक सक्षम होती हैं। साहिवाल प्रजाति की गाय एक उदाहरण है। इस स्वदेशी प्रजाति की गाय को देश के किसी भी हिस्से में पाला जा सकता है। इसी तरह भैंसों में भी मुर्रा प्रजाति की भैंस हर राज्य में पाली जा सकती है।

18.8. कृषि विकास पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के उपाय-

जलवायु परिवर्तन के करने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए जाने चाहिए जो निम्नवत हैं।

I.संरक्षण कृषि एवं शुष्क कृषि को बढ़ावा-
संरक्षण कृषि और शुष्क कृषि को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। इसके साथ -साथ प्रत्येक गाँव को विभिन्न मौसमों में फसल कीटों और महामारियों के बारे में मौसम आधारित पूर्व चेतावनी के साथ समय पर वर्षा के पूर्वानुमान की जानकारी दी जानी चाहिये।

II.कृषि अनुसंधान कार्यक्रम के तहत शुष्क कृषि अनुसंधान पर ध्यान केंद्रित करना-
कृषि अनुसंधान कार्यक्रमों के तहत शुष्क भूमि अनुसंधान पर पुनः ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। इसके तहत ऐसे बीजों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये जो सूखे जैसी स्थिति में फसल उत्पादन जोखिम को 50% तक कम कर सकते हैं।

III.गेहूं की फसल रोपण में बदलाव-
गेहूँ की फसल रोपण के समय में कुछ फेरबदल करने पर विचार किया जाना चाहिये। एक अनुमान के अनुसार, ऐसा करने से जलवायु परिवर्तन से होने वाली क्षति को 60-75% तक कम किया जा सकता है।

IV.फसल बीमा कवरेज(कर्ज़) की मात्रा बढ़ाने की आवश्यकता-
किसानों को मिलने वाले फसल बीमा कवरेज़ और उन्हें दिये जाने वाले कर्ज़ की मात्रा बढ़ाने की आवश्यकता है। सभी फसलों को बीमा कवरेज देने के लिये इस योजना का विस्तार किया जाना चाहिये। फसल बीमा के लिये ग्रामीण बीमा विकास कोष का दायरा बढ़ाया जाना चाहिये। कर्ज़ पर लिये जाने वाले ब्याज पर किसानों को मिलने वाली सब्सिडी को सरकार की सहायता से बढ़ाया जाना चाहिये। इस संबंध में सरकार द्वारा हाल ही में लघु और सीमांत किसानों को प्रतिमाह दी जाने वाली सहायता राशि एक स्वागत योग्य कदम है।

18.9. जलवायु स्मार्ट कृषि(क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर)-

देश में जलवायु-स्मार्ट कृषि विकसित करने की ठोस पहल की गई है और इसके लिये राष्ट्रीय स्तर की परियोजना भी लागू की गई है। यह एक एकीकृत दृष्टिकोण है , जिसमें फसली भूमि, पशुधन, वन और मत्स्य पालन के प्रबंधन का प्रावधान होता है। यह परियोजना खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन की परस्पर चुनौतियों का सामना करने के लिये बनाई गई है। खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने में दुनिया काफी आगे आ चुकी है . हालांकि, पहले किया हुआ सारा अच्छा काम जलवायु परिवर्तन के खतरे के कारण कभी भी बिगड़ सकता है . सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल (एसडीजी) 1 और 2 एक ऐसी दुनिया का सपना देखते हैं जहां कोई गरीबी नहीं हो , जहां कोई भूख नहीं हो . भोजन की मांग को पूरा करने के लिए 2006 की तुलना में 2030 तक खाद्य आपूर्ति को 60 प्रतिशत तक बढ़ाना पड़ेगा .भोजन की अनुमानित मांग को पूरा करने के लिए हम लोगों को बढ़ी हुई उपज की जरूरत होगी , जबकि हो सकता है कि प्रति एकड़ उपज को ज्यादा बढ़ाना मुमकिन ही न हों . परन्तु, इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) या सरकारों के जलवायु परिवर्तन के लिए बने पैनल के अनुसार , साल 2050 तक हमें उपज में 10-25 प्रतिशत तक की कमी देखने को मिल सकती है . इसकी पूरी दुनिया की खाद्य उपलब्धता पर भारी प्रभाव होगा . इस बात में कोई संदेह ही नहीं है कि पूरी दुनिया की खाद्य उपलब्धता इससे प्रभावित होगी. जलवायु परिवर्तन के कारण पशुधन के क्षेत्र में भी उत्पादकता , भोजन और चारे की उपज में और जंतुओं की सेहत में गिरावट होगी . पौधों पर आधारित और जंतुओं पर आधारित बीमारियों का फैलाव बढ़ जाने की भी संभावना होगी . समुद्रों पर निर्भर समुदायों को भी जीविकोपार्जन में अस्थिरता का सामना करना पड़ेगा . यह अनुमान लगाया गया है कि बढ़ते हुए तापमान के कारण 2050 तक मछलियों की प्रजाति को पकड़ने में 40 प्रतिशत तक की कमी आ

जाएगी। साफ़ है कि हमें खाद्य की आपूर्ति में भारी मुसीबतों का सामना करना पड़ सकता है . चाहे वह फसल हो, मांस हो या मछली. इसके प्रभाव से लाखों छोटे और लघु किसानों की आय पर प्रभाव पड़ने की संभावना है . छोटे और लघु किसानों की आय पर प्रभाव पड़ने से गरीबी के स्तर में भी वृद्धि हो सकती है. फूड और एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन (खाद्य और कृषि संगठन) ने अनुमान लगाया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण हमें 122 मिलियन लोग गहन गरीबी में देखने को मिल सकते हैं . भारत के आर्थिक सर्वेक्षण ने खेती की आय में कमी होने की बात को दोहराया है . इसका नतीजा यह होगा कि उपभोक्ता की क्रय शक्ति कम होगी और भोजन के लोगों तक पहुंचने में समझौता करना पड़ेगा . साथ ही, हमें पोषण में गिरावट भी देखने को मिल सकती है , क्योंकि भोजन तक पहुँच सीमित हो जाएगी . जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मांग और आपूर्ति दोनों पर महसूस किए जाएंगे . इसलिए, भविष्य के लिए अपने को तैयार करने के लिए हमें तुरंत कदम उठाने की जरूरत है.

क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर (सीएसए) आख़िर है क्या ? मोटे तौर पर कहें तो , सीएसए तीन आपस में जुड़ी हुई चुनौतियों से निबटने की कोशिश करती है : उत्पादकता और आय बढ़ाना, जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होना और जलवायु परिवर्तन को कम करने में योगदान देना. इसका अर्थ है कि हमें खेतों में डाली जाने चीजों को लेकर ज्यादा योग्य होना होगा . उदाहरण के लिए सिंचाई को ही लें — जल के उचित इस्तेमाल के लिए माइक्रो -इरिगेशन को लोकप्रिय बनाना होगा . भारत में, फसल के बाद होने वाले 92,000 करोड़ रुपये (रु.920 बिलियन) सालाना तक के नुकसान को एक प्रभावी कोल्ड चेन विकसित करके कम किया जा सकता है . जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होना यह दर्शाता है कि खेतों को जलवायु परिवर्तन को झेलने लायक बनाना होगा . यानि, जब हम सीएसए की पहल को डिज़ाइन कर रहे होते हैं तो सीएसए 'एक-साइज़-सबके-लिए-फिट'वाला नहीं होता है . इसलिए, मुख्यधारा की सीएसए के लिए पहले हमें प्रमाणों के आधार को विस्तृत करता होगा . जैसे — उदाहरण के लिए , जलवायु परिवर्तन के अनुमानित प्रभावों से कृषि क्षेत्र में ख़ासतौर से प्रभावित होने वाले क्षेत्रों की पहचान करनी होगी. इसी तरह से , उतना ही महत्वपूर्ण है नीतियों का ऐसा माहौल बनाना जो स्थानीय और राष्ट्रीय संस्थानों को मजबूत करे . सीएसए को विभिन्न प्रकार के आर्थिक अपकरणों का भी पीछे से सहयोग होना चाहिए. खेतों के स्तर तक प्रभावी पहुँच , विस्तार और तकनीकी सहायता शायद सबसे जरूरी लिंक है. सीएसए के तरीकों को अपनाने के लिए किसानों को उनकी भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप तकनीकी और आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने की ज़रूरत है . इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग भी बेहद महत्वपूर्ण है . योजनाओं को लागू करने के लिए निजी क्षेत्र को भी साझीदार बनाया जाना चाहिए . उदाहरण के लिए, वूना (अनेक पूर्वी और दक्षिण अफ़्रीकी भाषाओं में फसल) कार्यक्रम, जिसे एडम स्मिथ इंटरनेशनल द्वारा लागू किया जाता है और यूके के अंतर्राष्ट्रीय विकास के विभाग (डीएफआईडी) द्वारा वित्तीय सहयोग दिया जाता है , निजी क्षेत्र की कंपनियों को मुख्यधारा सीएसए में साझीदार बना रहा है. ऐसे प्रोजेक्ट को और आगे बढ़ाने की जरूरत है ताकि पूरी तरह से सस्टेनेबल (संवहनीय) खेती की तरफ जाया जा सके . इसके अलावा, इन प्रोजेक्ट को सेवाओं की प्रभावी आपूर्ति के लिए वर्तमान सरकारी योजनाओं के साथ मिला कर काम करना होगा .देश के स्तर पर चलाए जा रहे कार्यक्रम को भी वैश्विक स्तर पर ले जाना होगा . उदाहरण के लिए ज़ीरो बजट खेती को भारत में कुछ बढ़ावा मिल रहा है. यह एक इंटीग्रेटेड फार्मिंग सिस्टम (समेकित कृषि प्रणाली) है जो रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक से दूर रह कर स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का समर्थन करती है. बुनियादी रूप से सस्टेनेबल प्रकृति की होने के कारण यह तरीका खेतों की जलवायु परिवर्तन को झेलने की क्षमता बढ़ाने और जलवायु परिवर्तन को कम करने में काफी कारगर है . अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां — इससे जुड़े दस्तावेज तैयार करने और संभावित रूप से अपनाने और पूरी दुनिया में इस तरीके को दोहराने के लिए पायलट प्रोजेक्ट पर ध्यान दे सकती हैं . फ्रांस ने भी, कृषि के भविष्य पर कानून पास किया है , जिसका लक्ष्य अलग ढंग से विकसित करना , शोध करना और सिखाना है . इस अनुभव से सीखे हुए सबक को वैश्विक स्तर पर बढ़िया तरीके से दोहराया जा सकता है . एक बार फिर, अंतर्राष्ट्रीय संगठन जानकारी साझा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं । जलवायु परिवर्तन के

प्रभाव गंभीर होंगे. इनको कम करने की रणनीति में वैश्विक साझीदारी और जानकारी को साझा करना सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ हैं . सीएसए को अपनाने के लिए नीतियों और कार्य योजना के प्रचार के लिए ग्लोबल एलायंस फॉर क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर या क्लाइमेट स्मार्ट कृषि के लिए वैश्विक गठबंधन (जीए-सीएसए) की ख़ास भूमिका होगी . जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का पता लगाने को , ख़ासतौर पर क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय स्तर पर, काफी बढ़ावा देना होगा. अंतर्राष्ट्रीय अकादमिक समुदाय को इस काम को पूरा करने के लिए पर्याप्त अनुदान दे कर सहयोग करना होगा . इसके साथ, किसानों को तकनीकी और आर्थिक सहयोग दिया जाना ज़रूरी है ताकि , वे जलवायु परिवर्तन को झेल जाने वाले और योग्य खेत बना सकें, यह शायद सबसे ख़ास लिंक है।

I.उत्पादकता में वृद्धि-
खाद्य और पोषण सुरक्षा में सुधार के लिये खाद्यान्नों का अधिक उत्पादन और दुनिया के 75 प्रतिशत गरीबों की आय को बढ़ाना जो ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और मुख्य रूप से आजीविका के लिये कृषि पर निर्भर हैं।

II.लचीलेपन में वृद्धि-
सूखा, फसल कीट, बीमारी और अन्य किसी प्रकार के खतरे की चपेट में कमी लाने के साथ कम अवधि वाले मौसम और अनिश्चित मौसम पैटर्न जैसे दीर्घकालिक खतरों के प्रति अनुकूलन क्षमता में सुधार।

III. कम उत्सर्जन-
उत्पादित प्रत्येक कैलोरी भोजन के लिये कम उत्सर्जन , कृषि के लिये वनों की कटाई न करना और वातावरण से कार्बन अवशोषण के तरीकों की पहचान करना।

IV.फसल चक्रण-
फसल चक्रण का मतलब है कि दो या दो से अधिक अलग -अलग फसलें एक के बाद एक उगाई जाती हैं। फसल चक्रण की योजना में , एक किसान लगातार दो मौसमों में एक ही फसल कभी नहीं उगाता है। फसल चक्रण मिट्टी के कटाव को रोकने , मिट्टी की संरचना में सुधार करने , मिट्टी के पोषक तत्वों में वृद्धि करने , जैव विविधता को बढ़ावा देने और खरपतवार और कीट आबादी को कम करने में मददगार पाया गया है।

V.वर्षा जल के उचित प्रबंधन-
तापमान वृधि के साथ फसलो मे सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है। ऐसे मे जमींन का सरक्षण व वर्षा जल को एकत्रित करके सिंचाई हेतु प्रयोग मे लाना एक सहयोगी एवं उपयोगी कदम हो सकता है। वाटर शेड प्रबन्धन के माध्यम से हम वर्षा जल को सिंचित कर सिंचाई के रूप मे प्रयोग कर सकते है। इससे हमें जहा एक और हमे सिंचाई की सुविधा मिलेगी । वहीं दूसरी और भू -जल पुनभरण मे भी मदद मिलती है।

VI.जैविक एवं समग्रित कृषि-
संपूर्ण विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या एक गंभीर समस्या है , बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति के लिए मानव द्वारा खाद्य उत्पादन की होड़ में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए तरह-तरह की रासायनिक खादों , जहरीले कीटनाशकों का उपयोग , प्रकृति के जैविक और अजैविक पदार्थो के बीच आदान -प्रदान के चक्र को (इकालाजी सिस्टम) प्रभावित करता है , जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति खराब हो जाती है , साथ ही वातावरण प्रदूषित होता है तथा मनुष्य के स्वास्थ्य में गिरावट

आती है। प्राचीन काल में मानव स्वास्थ्य के अनुकुल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप खेती की जाती थी, जिससे जैविक और अजैविक पदार्थो के बीच आदान -प्रदान का चक्र निरन्तर चलता रहा था , जिसके फलस्वरूप जल, भूमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता था। भारत वर्ष में प्राचीन काल से कृषि के साथ -साथ गौ पालन किया जाता था , जिसके प्रमाण हमारे ग्रांथों में प्रभु कृष्ण और बलराम हैं जिन्हें हम गोपाल एवं हलधर के नाम से संबोधित करते हैं अर्थात कृषि एवं गोपालन संयुक्त रूप से अत्याधिक लाभदायी था , जोकि प्राणी मात्र व वातावरण के लिए अत्यन्त उपयोगी था। परन्तु बदलते परिवेश में गोपालन धीरे -धीरे कम हो गया तथा कृषि में तरह -तरह की रसायनिक खादों व कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है जिसके फलस्वरूप जैविक और अजैविक पदार्थो के चक्र का संतुलन बिगड़ता जा रहा है, और वातावरण प्रदूषित होकर , मानव जाति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। अब हम रसायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों के उपयोग के स्थान पर, जैविक खादों एवं दवाईयों का उपयोग कर, अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं जिससे भूमि , जल एवं वातावरण शुध्द रहेगा और मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ रहेंगे।भारत वर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती है। हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है अधिक उत्पादन के लिये खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरको एवं कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता है जिससे सीमान्य व छोटे कृषक के पास कम जोत मे अत्यधिक लागत लग रही है और जल , भूमि, वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहा है साथ ही खाद्य पदार्थ भी जहरीले हो रहे है। इसलिए इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिये गत वर्षो से निरन्तर टिकाऊ खेती के सिध्दान्त पर खेती करने की सिफारिश की गई , जिसे प्रदेश के कृषि विभाग ने इस विशेष प्रकार की खेती को अपनाने के लिए , बढ़ावा दिया जिसे हम "जैविक खेती" के नाम से जानते है । भारत सरकार भी इस खेती को अपनाने के लिए प्रचार -प्रसार कर रही है।

जैविक खेती से लाभ

कृषकों की दृष्टि से लाभ भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृध्दि हो जाती है। सिंचाई अंतराल में वृध्दि होती है । रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से कास्त लागत में कमी आती है। फसलों की उत्पादकता में वृध्दि।मिट्टी की दृष्टि सेजैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है। भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती हैं। भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होगा। पर्यावरण की दृष्टि से भूमि के जल स्तर में वृध्दि होती हैं। मिट्टी खाद पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण मे कमी आती है। कचरे का उपयोग, खाद बनाने में, होने से बीमारियों में कमी आती है । फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृध्दि अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता का खरा उतरना। जैविक खेती , की विधि रासायनिक खेती की विधि की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन देती है अर्थात जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णत : सहायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक खेती की विधि और भी अधिक लाभदायक है । जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है इसके साथ ही कृषक भाइयों को आय अधिक प्राप्त होती है तथा अंतराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद अधिक खरे उतरते हैं। जिसके फलस्वरूप सामान्य उत्पादन की अपेक्षा में कृषक भाई अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक समय में निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या , पर्यावरण प्रदूषण, भूमि की उर्वरा शक्ति का संरक्षण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती की राह अत्यन्त लाभदायक है । मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए नितान्त आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हों , शुध्द वातावरण रहे एवं पौष्टिक आहार मिलता रहे, इसके लिये हमें जैविक खेती की कृषि पध्दतियाँ को अपनाना होगा जोकि हमारे नैसर्गिक संसाधनों एवं मानवीय पर्यावरण को प्रदूषित किये बगैर समस्त जनमानस को खाद्य सामग्री उपलब्ध करा सकेगी तथा हमें खुशहाल जीने की राह दिखा सकेगी।खेती मे रासायनिक खादों व कीटनाशको के इस्तेमाल से जहां एक और मृदा की उत्पादकता घटती है वहीं दूसरी और इनकी मात्र भोजन श्रंखला के

माध्यम से मानव शरीर मे पहुंच जाती है । जिससे अनेक प्रकार की बिमारिया होती है .रासायनिक खेती से हरित गेसो के उत्सर्जन मे भी इजाफा होता है । अंतः हमे जैविक खेती करने की तकनीको पर अधिक से अधिक जोर देना चाहिए । एकल कृषि के बजाय समग्रित खेती मे जोखिम कम होता है । समग्रित खेती मे अनेक फसलो का उत्पादन किया जाता है । जिससे यदि एक फसल किसी प्रकोप से समाप्त हो जाये तो दूसरी फसल से किसान की रोजी रोटी चल सकती है।

VII.मौसम पूर्वानुमान-

जलवायु परिवर्तन के इस दौर मे किसान भाई मौसम के पूर्वानुमान के द्वारा आंधी ,तूफ़ान एवं असमय वर्षा होने से होने वाले नुक्सान को कम कर सकते है .इसके लिए मौसम विभाग द्वारा किसान भाइयों के लिए संभाग स्तर पर कृषि विश्वविद्यालयोंमें कृषि मौसम क्षेत्र इकाई एवं जिले स्तर पर प्रत्येक कृषि विज्ञान केन्द्र पर जिला कृषि मौसम इकाई की स्थापना की गयी है , जिससे किसान भाई हर मंगलवार एवं शुक्रवार को मौसम आधारित कृषि सलाह बुलेटिन व्हाट्स उप द्वारा प्राप्त कर असमय मौसम में आने वाले परिवर्तन से किसान भाई उनकी फसलों में होने वाले नुक्सान को समय रहते कम कर सकते हैं.

VIII.कृषि वानिकी-

कृषि वानिक दो शब्दों "कृषि" व "वानिकी" के मिलने से बना है | अर्थात कृषि वानिकी भूमि उपयोग की वह प्रणाली है , जिसमें सुनियोजित ढंग से वृक्षों की खेती की जाती है | इसके अंतर्गत काष्ठ वृक्ष या झाड़ीदार पौधों / बांस के साथ खाद्यान्न फसलों का उत्पादन , चारा उत्पादन के साथ पशुपालन , मछलीपालन, मधुमक्खीपालन, रेशम कीट पालन या लाह उत्पादन इत्यादि को अपनाया जाता है। इस तकनीक के अंतर्गत उगाए जाने वाले वृक्ष बहुउद्देशीय दृष्टि से लाभकारी होते हैं । कृषि वानिकी में उगाये जाने वाले वृक्षों से उत्पादन के रूप में उपस्कर लकड़ी (टिम्बर), जलावन, काष्ठ, कोयला, चारा, फल, व अन्य कई प्रकार के उत्पाद प्राप्त होते हैं। साथ ही कृषक की आय में बढ़ोतरी , भूमि संरक्षण, मिट्टी की उर्वरता में सुधार , घेराबंदी , वायु अवरोधी सुरक्षा , पर्यावरण संरक्षण एवं जलवायु में सुधार इत्यादि भी संभव है। कृषि वानिकी में भूमि का सुनियोजित एवं वैज्ञानिक उपयोग किया जाता है । इसका लाभ यह है कि भूमि से अनुकूलतम लाभ की प्राप्ति होती है | दैनिक जीवन में उपयोग के लिए काष्ठ -लकड़ी, पशुओं के लिए चारा ,जलावन आदि की प्राप्ति कृषि वानिकी से होती है तथा साथ ही प्राकृतिक वनों से इसका दोहन कम होता है। कृषि वानिकी भूमिगत जल के स्तर को बढ़ाने में सहायक होता है। मृदा संरक्षण का वास्तविक अर्थ केवल मृदा को ह्रास से बचाना नहीं ,बल्कि उसकी गुणवत्ता को भी बनाए रखना है | कृषि वानिकी से मृदा का संरक्षण भी संभव हो पाता है। पेड़ों की जड़ें मिट्टी को कटाव को रोक कर मृदा संरक्षण तो करती ही हैं साथ ही जैविक घटकों के कारण मिट्टी की उर्वरता भी बनी रहती है | वृक्षों की जड़ें मिट्टी में गहराई तक जाकर नमी एवं वायु प्रवाह के संतुलन में योगदान देती हैं | कृषि वानिकी कृषकों को आर्थिक सुरक्षा भी प्रदान करती है | प्राकृतिक आपदाओं जैसे- बाढ़, सूखा आदि के प्रभावों को इसके माध्यम से कम किया जा सकता है | फसल के क्षतिग्रस्त होने पर वैकल्पिक स्रोत के तौर पर वानिकी का विकल्प कृषक के पास रहता है। इसके अंतर्गत जलछाजन प्रबंधन के तहत वानस्पतिक आवरण का अच्छादन सम्यक रूप से बढ़ाया जा सकता है और वनों के पुनर्जीवीकरण में सहायता मिलती है। कई प्रकार के वृक्षों को जैविक खाद अथवा जैव पीड़कनाशी के तौर पर प्रयुक्त किया जाता है। नीम ,तुलसी,करंज (पोंगामिया) इत्यादि इसके अच्छे उदाहारण हैं | अब कई ऐसे पौधे हैं जिनकी खेती जैव -इंधन बनाने के लिए भी की जाती है | जट्रोफा इसका सर्वोत्तम उदाहारण है |

18.10. फसल उत्पादन में नई तकनीक का विकास-

जलवायु परिवर्तन के साथ साथ हमें फसलो के प्रारूप एवं उनके बीज बुने के समय में भी परिवर्तन करना होगा। पारम्परिक ज्ञान एवं नयी तकनीको के समन्वयन तथा समावेश द्वारा वर्षा जल सरक्षण एवं कृषि जल का उपयोग मिश्रीत खेती व इन्टरक्रॉपिंग करके जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटा जा

सकता है। कृषि वानिकी अपनाकर भी हम जलवायु परिवर्तन के खतरों से निजात पा सकते है .फसल बिमा के विकल्पों को मुहैया करना, ताकि लघु एवं सीमांत किसान इनका लाभ उठा सके।

जलवायु

अदरक की खेती गर्म और आर्द्रता वाले स्थानों में की जाती है। मध्यम वर्षा बुवाई के समय अदरक की गाँठों (राइजोम) के जमाने के लिये आवश्यक होती है। इसके बाद थोड़ी ज्यादा वर्षा पौधों को वृद्धि के लिये तथा इसकी खुदाई के एक माह पूर्व सूखे मौसम की आवश्यकता होती हैं। अगेती बुवाई या रोपण अदरक की सफल खेती के लिये अति आवश्यक है। 1500-1800 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी खेती अच्छी उपज के साथ की जा सकती है। परन्तु उचित जल निकास रहित स्थानों पर खेती को भारी नुकसान होता है। औसत तापमान 25 डिग्रीसेन्टीग्रेड, गर्मियों में 35 डिग्रीसेन्टीग्रेड तापमान वाले स्थानों पर इसकी खेती बागों में अन्तरवर्तीय फसल के रूप में की जा सकती हैं ।

भूमि

अदरक की खेती बलुई दोमट जिसमें अधिक मात्रा में जीवांश या कार्बनिक पदार्थ की मात्रा हो वो भूमि सबसे ज्यादा उपयुक्त रहती है। मृदा का पीएच . मान 5.6 ये 6.5 अच्छे जल निकास वाली भूमि सबसे अच्छी अदरक की अधिक उपज के लिए रहती है। एक ही भूमि पर बार -बार फसल लेने से भूमि जनित रोग एवं कीटों में वृद्धि होती है। इसलिये फसल चक्र अपनाना चाहिए । उचित जल निकास ना होने से कन्दों का विकास अच्छे से नही होता ।

खेती की तैयारी

मार्च-अप्रैल में खेत की गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद खेत को खुला धूप लगने के लिये छोड़ देते हैं। मई के महीने में डिस्क हैरो या रोटावेटर से जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बना लेते हैं। अनुशंसित मात्रा में गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट और नीम की खली का समान रूप से खेत में डालकर पुनः कल्टीवेटर या देशी हल से 2-3 बार आड़ी-तिरछी जुताई करके पाटा चला कर खेत को समतल कर लेना चाहिये। सिचाई की सुविधा एवं बोने की विधि के अनुसार तैयार खेत को छोटी -छोटी क्यारियों में बाँट लेना चाहिये। अंतिम जुताई के समय उर्वरकों को अनुशंसित मात्रा का प्रयोग करना चाहिये। शेष उर्वरकों को खड़ी फसल में देने के लिये बचा लेना चाहिये।

बीज (कंद) की मात्रा

अदरक के कन्दों का चयन बीज हेतु 6-8 माह की अवधि वाली फसल में पौधों को चिन्हित करके काट लेना चाहिये अच्छे प्रकन्द के 2.5-5 सेमी. लम्बे कन्द जिनका वजन 20-25 ग्राम तथा जिनमें कम -से-कम तीन गाँठें हों प्रवर्धन हेतु कर लेना चाहिये । बीज उपचार मैंकोजेव फफूँदी से करने के बाद ही प्रर्वधन हेतु उपयोग करना चाहिये।

बुआई का समय

अदरक की बुवाई दक्षिण भारत में मानसून फसल के रूप में अप्रैल -मई में की जाती जो दिसम्बर में परिपक्व होती है। जबकि मध्य एवं उत्तर भारत में अदरक एक शुष्क क्षेत्र फसल है। जिसके लिए अप्रैल से जून माह तक बुवाई योग्य समय है। सबसे उपयुक्त समय 15 मई से 30 मई है। 15 जून के बाद बुवाई करने पर कंद सड़ने लगते हैं और अंकुरण पर प्रभाव बुरा पड़ता है। केरल में अप्रैल के प्रथम सप्ताह पर बुवाई करने पर उपज 200% तक अधिक पाई जाती है। वहीं सिंचाई क्षेत्रों में बुवाई की सबसे अधिक उपज फरवरी के मध्य बोने से प्राप्त हुई तथा कन्दों के जमाने में 80% की वृद्धि ऑकी गयी। पहाड़ी क्षेत्रों में 15 मार्च के आस -पास बुवाई की जाने वाली अदरक में सबसे अच्छा उत्पादन प्राप्त हुआ।

बीज(कंद) की मात्रा

अदरक के कन्दों का चयन बीज हेतु 6-8 माह की अवधि वाली फसल में पौधों को चिन्हित करके काट लेना चाहिये अच्छे प्रकन्द के 2.5-5 सेमी. लम्बे कन्द जिनका वनज 20-25 गर्म तथा जिनमें कम से कम तीन गाँठें हो प्रवर्धन हेतु कर लेना चाहिये। बीज उपचार मैंकोजेव फफूँदी से करने के बाद ही प्रर्वधन हेतु उपयोग करना चाहिये।
अदरक 20-25 कुंटल प्रकन्द प्रति हे . बीज दर उपयुक्त रहता हैं। तथा पौधों की संख्या 140000 प्रति हे. पर्याप्त मानी जाती हैं। मैदानी भागों में 15-18 कु.हे. बीजों की मात्रा का चुनाव किया जा सकता है। क्योंकि अदरक की लागत का 40-46% भाग बीज में लग जाता इसलिये बीज की मात्रा का चुनाव,प्रजाति, क्षेत्र एवं प्रकन्दों के आकार के अनुसार ही करना चाहिये ।

बोने की विधि एवं बीज व क्यारी अंतराल
प्रकन्दों को 40 सेमी. के अन्तराल पर बोना चाहिये। मेड़ या कूड़ विधि से बुवाई करनी चाहिये ।प्रकन्दों को 5 सेमी़ की गहराई पर बोना चाहिये। बाद में अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद या मिट्टी से ढक देना चाहिये । यदि रोपण करना है तो कतार से कतार 30 सेमी. और पौध से पौध 20 सेमी.पर करें।अदरक की रोपाई 15*15 20*40 या 25*30 सेमी. पर भी कर सकते हैं । भूमि की दशा या जल वायु के प्रकार के अनुसार समतल कच्ची क्यारी , मेड-नाली आदि विधि से अदरक की बुवाई या रोपण किया जाता है ।

समतल विधि
हल्की एवं ढालू भूमि में समतल विधि द्वारा रोपण या बुवाई की जाती हैं । खेती में जल निकास के लिये कुदाली या देशी हल से 5-6 सेमी. गहरी नाली बनाई जाती है जो जल के निकास में सहायक होती है। इन नालियों में कन्दों को 15-20 सेमी. की दूरी अनुसार रोपण किया जाता है। तथा रोपण के दो माह बाद पौधों पर मिट्टी चढ़ाकर मेडनाली विधि बनाना लाभदायक रहता है।

ऊंची क्यारी विधि
इस विधि में 1*3 मी.आकार की क्यारीयों कों जमीन से 20 सेमी.ऊंची बनाकर प्रत्येक क्यारी में 50 सेमी.चौड़ी नाली जल निकास के लिये बनाई जाती है। बरसात के बाद यही नाली सिचाई के कसम में असती है। इन उथली क्यारियों में 30*20 सेमी.की दूरी पर 5-6 सेमी.गहराई पर कन्दों की बुवाई करते हैं।भारी भूमि के लिये यह विधि अच्छी है।

मेड़ नाली विधि
इस विधि का प्रयोग सभी प्रकार की भूमियों में किया जा सकता है। तैयार खेत में 60 या 40 सेमी.की दूरी पर मेड़ नाली का निर्माण हल या फावड़े से काट के किया जा सकता है। बीज की गहराई 5-6 सेमी. रखी जाती है।

रोपण हेतु नर्सरी तैयार करना
यदि पानी की उपलब्धता नही या कम है तो अदरक की नर्सरी तैयार करते हैं। पौधशाला में एक माह अंकुरण के लिये रखा जाता है। अदरक की नर्सरी तैयार करने हेतु उपस्थित बीजों या कन्दों को गोबर की सड़ी खाद और रेत (50:50) के मिश्रण से तैयार बीज भौया पर फैलाकर उसी मिश्रण से ढंक देना चाहिए तथा सुबह -शाम पानी का छिड़काव करते रहना चाहिये। कन्दों के अंकुरित होने एवं जड़ों से जमाव शुरु होने पर उसे मुख्य खेत में मानसून की बारिश के साथ रोपण कर देना चाहिये । प्रकन्द बीजों को खेत में बुवाई , रोपण एवं भण्डारण के समय उपचारित करना आवश्यक है। बीज उपचारित करने के लिये (मैंकोजेब+मैटालैक्जिल) या कार्बोन्डाजिम की 3 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर के पानी के हिसाब से घोल बनाकर कन्दों को 30 मिनट तक डुबो कर रखना चाहिये । साथ ही स्ट्रप्टोसाइकिलन /

प्लान्टो माइसिन भी 5 ग्राम की मात्रा 20 लीटर पानी के हिसाब से मिला लेते हैं जिससे जीवाणु जनित रोगों की रोकथाम की जा सके ।पानी की मात्रा घोल में उपचारित करते समय कम होने पर उसी अनुपात में मिलाते जाय और फिर से दवा की मात्रा भी । चार बार के उपचार करने के बाद फिर से नया घोल बनायें । उपचारित करने के बाद बीज कों थोड़ी देर उपरांत बोनी करें।

छाया का प्रभाव
अदरक को हल्की छाया देने से खुला में बोई गयी अदरक से 25 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त होती है। तथा कन्दों की गुणवत्ता में भी उचित वृद्धि पायी गयी है ।

फसल प्रणाली
अदरक की फसल को रोग एवं कीटों में कमी लाने एवं मृदा के पोषक तत्वो के बीच सन्तुलन रखने हेतु। अदरक को सिंचित भूमि में पान ,हल्दी,प्याज, लहसुन, मिर्च अन्य सब्जियों , गन्ना, मक्का और मूंगफली के साथ फसल को उगाया जा सकता है। वर्षा अधिक सिंचित वातावरण में 3-4 साल में एक बार आलू, रतालू, मिर्च, धनियॉ के साथ या अकेले ही फसल चक्र में आ सकती हैं । अदरक की फसल को पुराने बागों में अन्तरवर्तीय फसल के रूप में उगा सकते हैं ।
मक्का या उर्द के साथ अन्तरावर्ती फसल लेने में मक्का 5-6 किग्रा / एकड़+उर्द 10-15 किग्रा. / एकड़ बीज की आवश्यकता होती है। मक्का और उर्द अदरक की फसल को छाया प्रदान करती हैं । तथा मक्का 6-7 कु./एकड़ और उर्द 2 कु./एकड़।

पलवार
अदरक की फसल में पलवार बिछाना बहुत ही लाभदायक होता है। रोपण के समय इससे भूमि का तापक्रम एवं नमी का सामंजस्य बना रहता है। जिससे अंकुरण अच्छा होता है । खरपतवार भी नही निकलते और वर्षा होने पर भूमि का क्षरण भी नही होने पाता है। रोपण के तुरन्त बाद हरी पत्तियाँ या लम्बी घास पलवार के लिये ढाक,आम,केला या गन्ने के ट्रेस का भी उपयोग किया जा सकता है । 10-12 टन या सूखी पत्तियाँ 5-6 टन /हे. बिछाना चाहिये । दुबारा इसकी आधी मात्रा को रोपण के 40 दिन और 90 दिन के बाद बिछाते हैं , पलवार बिछाने के लिए उपलब्धतानुसार गोबर की सड़ी खाद एवं पत्तियाँ, धान का पूरा प्रयोग किया जा सकता है । काली पॉलीथीन को भी खेत में बिछा कर पलवार का काम लिया जा सकता हैं। निदाई , गुड़ाई और मिट्टी चढाने का भी उपज पर अच्छा असर पढ़ता है। ये सारे कार्य एक साथ करने चाहिए ।

निदाई,गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाना
पलवार के कारण खेत में खरपतवार नही उगते अगर उगे हों तो उन्हें निकाल देना चाहिये , दो बार निदाई 4-5 माह बाद करनी चाहिये। साथ ही मिट्टी भी चढ़ाना चाहिए । जब पौधे 20-25 सेमी़ ऊंचे हो जाएं तो उनकी जड़ों पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक होता है। इससे मिट्टी भुरभुरी हो जाती है। तथा प्रकंद का आकार बड़ा होता है , एवं भूमि में वायु आगमन अच्छा होता हैं। अदरक के कंद बनने लगते हैं तो जड़ों के पास कुछ कल्ले निकलते हैं। इन्हे खुरपी से काट देना चाहिऐ , ऐसा करने से कंद बड़े आकार के हो पाते हैं

18.11 सारांश-
इकाई 18 के प्रस्तुत अध्ययन में भारत में जलवायु परिवर्तन के चलते भारत की कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव एवं उनसे बचने के भी उपाय बताये गये है , विकास की विधियों व तकनीकों को प्राथमिकता देनी चाहिये।संबंधित क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा दिये जाने की आवश्यकता है। साथ ही भारत

को स्वदेशी हरित प्रौद्योगिकी विकसित करने की भी आवश्यकता है। हमें पृथ्वी एवं उसके संसाधनों के संरक्षण को व्यवहार में लाकर जीवन शैली का हिस्सा बनाने की जरूरत है। प्रकृति हमारा भरण -पोषण करती है। इसके बदले में हमें प्रकृति की देखभाल व संरक्षण को प्राथमिकता देनी होगी। जलवायु परिवर्तन की वजह से प्रदूषण , भू-क्षरण और सूखा पड़ने से पृथ्वी की तीन - चौथाई भूमि क्षेत्र की गुणवत्ता कम हो गई है। यदि ऐसे ही भूमि की गुणवत्ता कम होती रही तो इससे कृषि उपज को नुकसान होगा और वर्ष 2050 तक वैश्विक अनाज उत्पादन में काफी कमी आ सकती है। दुनियाकीआबादी 2050 मेंलगभगनौअरबहोजाएगीऔरइसकेलियेमौजूदाखाद्यान्नउत्पादनसेदोगुनेकीज़रूरतपड़ेगी।भारतजैसेकृषिप्रधानदेशोंकोइसकेलियेअभीसेनएउपायकरनेहोंगे।इसकेसाथहीअपनीआबादीपरभीलगामलगानीहोगी। उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि आज पूरा विश्व जलवायु परिवर्तन की समस्या से जूझ रहा है ,जिसके कारण भारत भी अछूता नहीं रह सका है।जलवायु परिवर्तन एक महत्वपूर्ण बिंदु है। भूगोलवेत्ताओं ने पहले ही बताया है कि पर्यावरण में कई बदलाव जैसे कि तापमान में वृद्धि ,वर्षा का असमान वितरण ,भूस्खलन ,वायु प्रदूषण ,चक्रवात आदि कृषि पर नकारात्मक होने के कारण जलवायु परिवर्तन एक गंभीर समस्या है। क्योंकि आज तक मनुष्यों को इतने बड़े जलवायु परिवर्तन संकट का सामना करने के लिए मजबूर नहीं किया गया है ,लेकिन आज ये स्थितियाँ बनी रहीं ,तो हम इस धरती पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के आगे एक पीढ़ी के जीवन को नहीं बचा पाएंगे। कई कारणों के चलते हम पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण हमारी खेती योग्य भूमि के साथ -साथ हमारा भविष्य भी खतरे में है ,उन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए ,हमें पर्यावरण की दृष्टि से संरक्षित क्षेत्रों को अपनाना होगा। जलवायु परिवर्तन के कृषि पर तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभावों के अध्ययन की जरूरत है।कृषिवैज्ञानिकोंकीयहाँकमीनहींहै , लेकिनकृषिवैज्ञानिकभीअभीजलवायुपरिवर्तनकोस्वीकारनहींकरपारहेहै।इसलिएइसदिशामेंकोईशोधशुरूनहींहुआ।हमेंइसक्षेत्रमेंतत्कालदोकामकरनेचाहिए।एकयहकिजलवायु-परिवर्तनसेकृषिचक्रपरक्याफर्कपड़रहाहैयहजाननातथादूसरेक्याइसपरिवर्तनकीभरपाईकुछवैकल्पिकफसलेंउगाकरपूरीकीजासकतीहै? साथहीहमेंऐसीकिस्मकीफसलेंविकसितकरनीचाहिएजोजलवायुपरिवर्तनकेखतरोंसेनिपटनेमेंसक्षमहो, मसलनफसलोंकीऐसीकिस्मोंकाईजादजोज्यादागरमी, कमयाज्यादाबारिशसहनकरनेमेंसक्षमहो।

18.12. संदर्भ- ग्रंथ- सूची

1. डॉ .एके . सिंह , उपमहानिदेशक ,बागवानीप्रभाग ,कृषिअनुसंधानभवन – ॥, नईदिल्ली।
2. कोलीहरिनारायण (1996): पर्यावरणऔरमानवसंसाधन , सूचकप्रकाशक , जयपुर (राज) ।
3. कुमार , प्रमिलाऔरश्रीकमलशर्मा (1985): कृषिभूगोल , एम . पी . हिंदीग्रंथअकादमी , भोपाल।
4. पांडेजेएनऔरएसआरकमलेश (1999): कृषिभूगोल , वसुंधराप्रकाशन , गोरखपुर (उ . प्र .)।
5. पांडे , जगत , नारायण (1969): पूर्वीउत्तरप्रदेश , उत्तरभारतभूगोलजर्नल , गोरखपुरकासंयोजनक्षेत्र।
6. शर्माबीएल (1979): क्रॉपिंगलैंडयूज़इंटेंसिटीएंडप्रोडक्टिविटीइनराजस्थान , भूदर्शन।
7. शर्मासुरेशचंद्र (1971): ज़िलाइटावा , उत्तरभारतभूगोलजर्नलमेंभूमिउपयोग , कृषिमंत्रालय , जनवरी 2013.
8. मौसमएवंजलवायुपरिवर्तनसमाचारपत्र , 2013
9. पर्यावरणविकासमंत्रालय , भारतसरकार , नईदिल्ली।
10.Tiwari,R.C and tripathi, S. : Agriculture development: Retrospects and prospects: A case of gorakhpur district, national Geography Vol.28(2),1993, pp 97-113.
11.Tiwari,R.C.,2007: Geography of India, prayag Pustak Bhavan, allahabad,960 pp.

Tiwari,R.C.,2005: Environmental scenario in India, In prof. L.R. Singh felicitation volume, ed. by Askok K.Dutt:et.al(accepted).

18.13. स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

1. जलवायु परिवर्तन के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली गैस-
(अ) मिथेन, कार्बन डाइऑक्साइड (ब) नाइट्रोजन, सल्फर डाइऑक्साइड
(स) अमोनिया, क्लोरीन (द) मिथेल आइसोसाइनेट, फॉर्मलडिहाइड

2. समग्रित कृषि क्या है-
(अ) एकल कृषि (ब)स्थानांतरित कृषि
(स) अनेक फसलों की कृषि (द) निर्वाहक कृषि

3. जलवायु परिवर्तन से कौन सी फसल सबसे अधिक प्रभावित है-
(अ) दलहन-तिलहन (ब) ज्वार- बाजरा
(स) गन्ना- मक्का (द) गेहूँ-चावल

4. धान के खेतों से कौन सी गैस निकलती है-
(अ) ऑर्गन (ब) नियान
(स) मीथेन (द) हीलियम

5 आईपीसीसी क्या है-
(अ) जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (ब) हरित भारत हेतु राष्ट्रीय मिशन
(स) सुस्थिर कृषि पर राष्ट्रीय मिशन (द) जलवायु परिवर्तन पर सरकारी पैनल

6. शुष्क कृषि जहां वर्षा-
(अ) 100-125 सेंटीमीटर (ब)100-150 सेंटीमीटर
(स)75 सेंटीमिटर से कम (द) 125-150 सेंटीमीटर

7. जलवायु स्मार्ट कृषि क्या है-
(अ) कृषिगत क्षेत्रों को विकसित करने की प्रणाली
(ब) खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन से जुड़ी समस्या के समाधान के लिए एकीकृत दृष्टिकोण
(स) एक कृषि प्रणाली
(द) वायुमंडल के बढ़ते तापमान को रोकने के लिए सुरक्षा कार्यक्रम

उत्तरमाला 1. (अ) 2. (द) 3. (द) 4. (स) 5. (द) 6. (स) 7. (ब)

18.14. अभ्यास प्रश्न(परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1. "जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव"विस्तृत व्याख्या कीजिए?
प्रश्न 2. जलवायु स्मार्ट कृषि क्या है इसकी समीक्षा कीजिए?
प्रश्न 3. कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के उपाय की विवेचना कीजिए?
प्रश्न 4. परिवर्तन के कारण कौन-कौन सी फसल अधिक प्रभावित हो रही है सकारण व्याख्या दीजिए?
प्रश्न 5. टिप्पणियां लिखिए-
I.जैविक एवं समग्रीत कृषि
II.कृषि वानिकी
III.खाद्य सुरक्षा
IV.शुष्क कृषि